ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अमृत बोध

(भाग-२)

पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर
शिक्षण-शिविर प्रसंग पर हुए
पूज्य गुरुदेवश्री के मंगल प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद व सम्पादन :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

प्रकाशकीय

अन्तिम जिनेश्वर महावीरस्वामी के प्रवर्तमान शासन में अनेक आचार्य भगवन्तों, मुनि भगवन्तों ने स्वयं की प्रचण्ड साधना द्वारा मोक्षमार्ग को जीवन्त रखा है। उनकी सातिशय दिव्य प्रज्ञा के निमित्त से प्रवाहित अनेक परमागमों में मोक्षमार्ग का रहस्य स्पष्ट करके रखा है। उनके प्रत्येक वचनों में अमृत नितर रहा है। हम सभी का महान सद्भाग्य है कि ऐसे परमागम आज भी मौजूद हैं।

प्रवर्तमान काल हुण्डावसर्पिणी नाम से प्रचलित है ऐसे निकृष्ट काल में मोक्षमार्ग का जीवन्त रहना एक आश्चर्यकारक घटना है। भगवान की दिव्यध्वनि की मधुर गुंजार जिनागमों में जीवन्त है ही, परन्तु उनको स्पष्ट करनेवाला कोई नहीं था। समाज घोर रुढ़िवाद में जकड़ा हुआ था। क्रियाकाण्ड में धर्म माननेवाले तथा मनवानेवालों का प्रभाव वर्तता था। सत्य मोक्षमार्ग क्या है, जन्म-मरण का अन्त किस प्रकार आये, आत्मिकसुख किस प्रकार प्राप्त हो—इत्यादि अनेक विषय प्राय: लुप्त हो गये थे।

ऐसे घोर तिमिरमय काल में एक ऐसे सूर्य का प्रकाश हुआ जिसने सम्पूर्ण समाज को नयी दिशा प्रदान कर असीम-अमाप उपकार किया है। सौराष्ट्र के उमराला जैसे छोटे से गाँव में हम सभी के तारणहार परमोपकारी ज्ञान दिवाकर अज्ञान का नाश करनेवाले, कृपालु कहान गुरुदेव का जन्म हम सभी को तारने के लिये ही हुआ है। स्थानकवासी सम्प्रदाय में जन्म हुआ तथा उसी में दीक्षित भी हुए तथापि सत्य की शोध, आत्महित करने की प्रचण्ड भावना से आपश्री शाश्वत् सुख के पन्थ में आये। आपश्री के गुणगान क्या करना! जिसकी कोई कीमत नहीं हो सकती ऐसे परम निर्मल मोक्षमार्ग को आपश्री ने स्वयं की निष्कारण करुणा से प्रकाशित कर वर्तमान समाज पर अनन्त-अनन्त उपकार किया है।

आपश्री का आत्मा के प्रति प्रेम, मुमुक्षु किस प्रकार मोक्षमार्ग तक पहुँचे ऐसी निष्कारण करुणा, जिनदेव-जिनधर्म, जिनवाणी आदि के सातिशय बहुमान से नितरती आपश्री की वाणी मुमुक्षुओं को सराबोर कर देती है। प्रत्येक वचन में प्रवाहित अमृत मुमुक्षुओं को अजरामर पद की प्राप्ति कराता है। जिस शुद्धोपयोग में से बाहर आने पर आपश्री का उत्पन्न हुआ विकल्प मुमुक्षुओं के जन्म-मरण मिटा सकता हो तो आपश्री के शुद्धोपयोग की क्या बात करना, आपका अन्तरंग वैभव तो जो स्वसंवेदन ज्ञान में आवे, वही जानता है।

ऐसे परमपवित्र स्वसंवेदन को जन्म देनेवाली प्रशममूर्ति धन्य अवतार पूज्य भगवती माता चम्पाबेन, धर्मरत्न, धर्म की शोभा इत्यादि अनेक प्रशंसायुक्त शब्दों से पूज्य गुरुदेवश्री मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए थकते नहीं थे। पूज्य गुरुदेव ने परमागमों के ऊपर प्रवचन करके मोक्षमार्ग का रहस्य तो खोला ही है, परन्तु अन्तिम वर्षों में पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर भी आपश्री ने प्रवचन किये हैं। पूज्य गुरुदेव प्रवचनों में अनेक बार फरमाते थे, हमने कभी कोई शास्त्र छपाओ, ऐसा नहीं कहा। परन्तु यह 'बहिनश्री के वचनामृत' पुस्तक एक लाख छपाओ। ऐसी सर्व प्रथम आज्ञा दी।

ऐसा तो उनके वचनामृत में क्या भरा है ? यह तो प्रस्तुत प्रवचनों का जब मुमुक्षु रसपान करेंगे, तब वे स्वयं ही समझ जाएँगे।

जो गूढ़ सिद्धान्त परमागमों में से निकालना, समझना, मुमुक्षुओं को कठिन लगता है उन्हीं सिद्धान्तों को सादी भाषा में वचनामृत में स्पष्ट रूप से समझाया गया है। मुमुक्षुओं के कलेजे की कोर समान पूज्य बहिनश्री की सातिशय प्रज्ञा में रही हुई गहराई, उनकी विशालता, मुमुक्षुओं की प्रत्येक उलझन दूर करनेवाले उनके वचनामृत वास्तव में इस काल की अजायबी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में ईस्वी सन् 1980 में शिक्षण शिविर के प्रसंग पर हुए कुल 50 प्रवचनों में से 25 प्रवचन लिये गये हैं। प्राय: सभी प्रवचन हिन्दी भाषा में चले हैं, इसलिए मात्र उनकी लिपि बदलकर हिन्दी भाषा में ही प्रकाशित किये गये हैं। प्रस्तुत सी.डी. प्रवचनों को शब्दश: उतारकर, जहाँ कोष्ठक भरने की आवश्यकता लगी, वहाँ कोष्ठक भरा गया है तथा वाक्य रचना पूर्ण की गयी है। जहाँ कुछ सुनाई नहीं दिया वहाँ '....' करके छोड़ दिया गया है। पाठकवर्ग स्वयं की समझ अनुसार अर्थ घटन करे यही प्रार्थना है। 25 प्रवचन पहले भाग में तथा 25 प्रवचन इस दूसरे भाग में प्रकाशित किये जा रहे हैं।

प्रस्तुत प्रवचन हिन्दी भाषा में होने पर भी गुरुदेवश्री की मूल भाषा गुजराती होने से उन्हें शुद्ध हिन्दीरूप प्रदान करने के उद्देश्य से यह प्रस्तुत प्रकाशन हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया जा रहा है। जिसे सी.डी. प्रवचन के साथ दोबारा मिलान कर लिया गया है।

कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई द्वारा पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन की 104वीं मंगल जयन्ती प्रसंग पर प्रथम भाग (गुजराती लिपि में) तथा द्वितीय भाग भगवान महावीर निर्वाण दिवस के अवसर पर प्रकाशित किया गया। शब्दश: प्रवचनों को उतारने और सम्पादित करने का कार्य श्री नीलेशभाई जैन भावनगर द्वारा किया गया है। इन्हीं प्रवचनों को प्रस्तुतरूप से हिन्दी में प्रस्तुत करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। यदि प्रस्तुत प्रवचनों में किसी प्रकार की क्षति रह गयी हो तो देव-शास्त्र-गुरु की शुद्ध अन्तकरणपूर्वक क्षमायाचना करते हैं। मुमुक्षुवर्ग से विनम्र प्रार्थना है कि यदि उन्हें कोई क्षति ज्ञात हो तो सुधारकर हमें भेजें, जिससे अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन www.vitragvani.com पर रखे गये हैं।

अन्त में, प्रस्तुत प्रवचनों का रसपान करके सभी जीव शाश्वत् सुख को प्राप्त करें, यही भावना है।

निवेदक
ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
मुम्बई

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्वार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी

सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और

न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य–गुण–पर्याय, उपादान–निमित्त, निश्चय–व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व–पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्‌चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश–विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं – यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्‌कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य–गुण–पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्‌पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
२६	६-९-१९८०	३६६, ३६८, ३६९	१
२७	७-९-१९८०	३६९, ३७१	१६
२८	८-९-१९८०	३७१, ३७२	२९
२९	१०-९-१९८०	३७३, ३७६, ३७७	४३
३०	११-९-१९८०	३७७, ३७८	५७
३१	१२-९-१९८०	३७८	७१
३२	१३-९-१९८०	३७८, ३८०, ३८२	८२
३३	१४-९-१९८०	३८२, ३८४	९६
३४	१५-९-१९८०	३८४, ३८७, ३९०	१०९
३५	१६-९-१९८०	३८९, ३९०	१२४
३६	१७-९-१९८०	३९१, ३९३	१३८
३७	१८-९-१९८०	३९३	१५२
३८	१९-९-१९८०	३९३, ३९४, ३९६	१६५
३९	२०-९-१९८०	३९७, ३९८	१७९
४०	२१-९-१९८०	४०१, ४०३	१९१
४१	२२-९-१९८०	४०५, ४०७	२०५
४२	२३-९-१९८०	४०९, ४१०	२१९
४३	२५-९-१९८०	४१५	२३४
४४	२७-९-१९८०	४१०, ४१२	२४७
४५	२८-९-१९८०	४१३, ४१४	२६१
४६	२९-९-१९८०	४१६, ४१७	२७५
४७	३०-९-१९८०	४१७, ४१९	२९०
४८	०५-१०-१९८०	४२३	३०५
४९	०६-१०-१९८०	४२९, १, २	३१९
५०	०६-११-१९८०	३, ५	३३२

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का अपार उपकार

(पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के भक्तिभीने उद्गार)

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी तो तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि जैसी महामंगलकारी, आनंद उपजानेवाली थी। ऐसी वाणी का श्रवण जिनको हुआ वे सब भाग्यशाली हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी और पूज्य गुरुदेवश्री तो इस काल के एक अचम्भा थे। बाहरी अभ्यास तो जीव को अनादि से है परन्तु चैतन्य का अभ्यास तो इस काल में पूज्य गुरुदेवश्री ने बहुत सालों तक करवाया है। उनकी वाणी रसात्मक-कसदार थी। उनके अन्तर में श्रुत की धारा और उनकी वाणी में भी श्रुत की गंगा बहती थी। उनकी महा आश्चर्यकारी मुखमुद्रा-शान्तरस बरसाती, उनके नयन उपशमरस भरपूर। अहो! गुरुदेवश्री तो भरत (क्षेत्र) के सौभाग्य थे, भरतक्षेत्र भाग्यशाली कि पूज्य गुरुदेव विदेह से सीधे यहाँ पधारे। सौराष्ट्र भाग्यशाली, जैनसमाज महाभाग्यशाली। पूज्य गुरुदेवश्री ने सच्चा जिनशासन स्वयं ने प्रगट किया। प्रसिद्धरूप से समझाया। और ऐसा काल तो कभी ही आता है। अहो! इस सोनगढ़ में तो 45-45 साल तक मूसलधार बारिश की माफ़िक मिथ्यात्व के जमे हुए चिकने सेवार जैसे पापभाव को उखेड़ने के लिये तेज हवा की माफ़िक पूज्य गुरुदेवश्री ने सम्यक्श्रुत की प्रभावना की थी। उनकी कृपा हमलोगों पर सदैव रहती थी। हम तो उनके दास हैं, अरे! दास तो क्या? दासानुदास ही हैं। 3.

★ ★ ★

अहो! पूज्य गुरुदेवश्री ने तो समग्र भरत(क्षेत्र) को जागृत कर दिया है। उनका तो इस क्षेत्र के सर्व जीवों पर अमाप उपकार है। अनन्त-अनन्त उपकार है, पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अनादि मंगलरूप तीर्थंकर का द्रव्य था। इतना ही नहीं उन्हें वाणी का अद्भुत-अनुपम और अपूर्व योग था। पूज्य गुरुदेवश्री अनुपम द्रव्य थे। अपूर्वता के दातार-उनकी वाणी सुननेवाले पात्र जीवों को अन्तर से अपूर्वता भासित हुए बिना नहीं रहती। उपादान सबका अपना-अपना लेकिन उनका निमित्तत्त्व प्रबल से प्रबल था। उन्हें सुननेवाले को अपूर्वता भासित हुए बिना रहे ही नहीं। उनकी वाणी में ऐसा अतिशय था कि उन्हें सुननेवाला कोई भी जीव कभी भी नीरस होकर उनका वक्तव्य सुनते हुए छोड़ दे ऐसा नहीं बनता। ऐसा परम कल्याणकारी मूसलधार उपदेश था। 4.

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अमृत बोध

(भाग-२)

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर विविध प्रवचन)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण कृष्ण - १२, शनिवार, दिनांक ६-९-१९८०
वचनामृत - ३६६, ३६८, ३६९ प्रवचन-२६

जिसने आत्मा को पहिचाना है, अनुभव किया है, उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है, प्रत्येक पर्याय में शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है। विविध शुभभाव आयें, तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता और वे भाव मुख्यता नहीं पाते।

मुनिराज को पंचाचार, व्रत, नियम, जिनभक्ति इत्यादि सर्व शुभभावों के समय भेदज्ञान की धारा, स्वरूप की शुद्ध चारित्रदशा निरन्तर चलती ही रहती है। शुभभाव नीचे ही रहते हैं; आत्मा ऊँचा का ऊँचा ही—ऊर्ध्व ही—रहता है। सब कुछ पीछे रह जाता है, आगे एक शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है॥३६६॥

वचनामृत, ३६६। **जिसने आत्मा को पहिचाना है,...** पहली बात तो यह है कि आत्मा का ज्ञान प्रथम होना चाहिए, पीछे सब बात। आत्मा ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप शुद्ध नित्यानन्द, उसके सन्मुख होकर उसका अनुभव होना चाहिए। पहली... आहाहा! **जिसने**

आत्मा को पहिचाना... कि मैं तो ज्ञान और आनन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ। ऐसी उसको आत्मा को पहिचान होती है, अनुभव किया है, पहिचाना है तो अनुभव भी किया है कि आत्मा आनन्द–ज्ञानस्वभाव (है)। उसका अनुभव, आनन्द का अनुभव सम्यग्दर्शन होने पर (हुआ है)। धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म की प्रथम शुरुआत, उसमें पहले पहिचान कर अनुभव किया। आहाहा! थोड़ा कठिन है।

सर्व प्रथम यह करने का है। देह से तो भिन्न है परन्तु दया, दान, पुण्य–पाप के भाव, उससे भी यह चैतन्य भगवान ज्ञायकभाव भिन्न है। आहाहा! उसका जब पहले ज्ञान हो, तब उसका अनुभव होता है। यह आत्मा जैसा है, ऐसा ख्याल में आता है, तब उसका अनुभव होता है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! **उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है,...** अधिकार बहुत अच्छा आया है। मूल अधिकार है। **जिसने आत्मा को पहिचाना है, अनुभव किया है, उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है,...** कोई भी क्रियाकाण्ड जगत का हो, शरीर, वाणी, मन का या शुभाशुभ भाव हो, फिर भी आत्मा ही दृष्टि में समीप वर्तता है। आहाहा! ऐसी कठिन बात।

उसको आत्मा ही... 'ही' शब्द है न? आत्मा ही। आत्मा ही मुख्य वर्तता है। प्रत्येक प्रसंग में आत्मा का ज्ञान हुआ है तो आत्मा ही प्रत्येक प्रसंग में मुख्य वर्तता है। आहाहा! आत्मा को छोड़कर कभी ज्ञानी की दृष्टि पर ऊपर नहीं जाती। पर होता है, उसको जानते हैं, परन्तु दृष्टि का ध्येय जो ध्रुव आया है, उसमें से हटते नहीं। आहाहा! ऐसी धर्म की बात। **उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है, प्रत्येक पर्याय में...** आत्मा की प्रत्येक अवस्था में–कोई भी अवस्था हो – शुभ हो या अशुभ हो, परन्तु **शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है।** कोई भी पर्याय में–अवस्था में आत्मा ही मुख्य वर्तता है। पर्याय की मुख्यता कभी नहीं होती। आहाहा! यह बात!

.... उस अवस्था की मुख्यता कभी नहीं होती। दृष्टि में आत्मा की पहिचान हुई और अनुभव हुआ तो आत्मा ही सदा प्रथम मुख्य वर्तता है। आहाहा! ऐसी बात। (अज्ञानी) कहे, यह करो, यह करो, यह करो। .... आत्मा क्या चीज़ है, वह कुछ नहीं। आहाहा! अनन्त काल हुआ।

अनन्त कालथी अथडयो, विना भान भगवान,
सेव्या नहि गुरु संत ने, मूक्या नहि अभिमान॥

आहाहा! अपना स्वरूप ज्ञान और आनन्दस्वरूप त्रिकाली प्रभु, उसकी प्रथम दृष्टि हुई और अनुभव में पहिचाना... आहाहा! उसकी प्रत्येक पर्याय में, प्रत्येक अवस्था की दशा में आत्मा की मुख्यता वर्तती है। पर्याय की मुख्यता वर्तती नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं? पर्याय में अनेक अवस्था होती है, फिर भी धर्मी जीव की-आत्मा के अनुभवी की दृष्टि में से आत्मा त्रिकाल नहीं हटता। दृष्टि में आत्मा ही मुख्य वर्तता है। आहाहा!

विविध शुभभाव आयें, तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता... आहाहा! कहते हैं कि शुभभाव आयें, दया का, भक्ति का, पूजा का भाव धर्मी को भी आये, विविध प्रकार के शुभभाव आयें। एक प्रकार का नहीं, अनेक प्रकार के। दया, दन, व्रत, भक्ति, पूजा (आदि)। **शुभभाव आयें, तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता...** शुभभाव के काल में भी धर्मी को त्रिकाली आत्मा विस्मृत नहीं होता। आहाहा! यह भाषा पहले तो समझनी कठिन पड़े। ऐसा मार्ग! कभी सुना नहीं, कभी किया नहीं। आहाहा!

जिसने आत्मा की मुख्यता (की), यह मुख्य वस्तु भगवान आत्मा ही मुख्य वस्तु है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव आता है, फिर भी उस समय भी आत्मा जो मुख्य वस्तु है, उसकी मुख्य नहीं हटती, पर्याय की मुख्यता नहीं होती। द्रव्य की जो द्रव्यदृष्टि हुई है, उसकी मुख्यता रहती है। कठिन बात है। आहाहा! कुछ करना या छोड़ना कहे तो ठीक लगे। क्योंकि अज्ञान में वह अनादि का अभ्यास है। यहाँ तो कहते हैं, करना तो कुछ नहीं है, परन्तु कदाचित् शुभाशुभ परिणाम आवे, उस समय भी शुद्धात्मा की मुख्यता दृष्टि में से हटती नहीं। आहाहा!

दृष्टान्त दिया था न? माँ और बेटी भीड़ में चले जाते हों। उसमें बेटी से माँ की अंगुली छूट गयी और अकेली रह गयी और भीड़ में आगे निकल गयी। पुलिस ने देखा कि यह लड़की अकेली है, उसकी माँ (नहीं है)। उसे पूछे... यह हमने प्रत्यक्ष देखा हे, पोरबन्दर में। चौमासा पोरबन्दर में था। उपाश्रय के पास ही लड़की गुम हो गयी। उसकी माँ आगे चली गयी तो गुम गई। ख्याल नहीं रहा। पुलिस आयी। पुलिस ने पूछा, तू कौन

है ? मेरी माँ। नाम क्या है ? मेरी माँ। तेरी सहेल कौन है ? उस पर से गली ढूँढ़कर वहाँ ले जा सके। तेरी गली कौन-सी है ? मेरी माँ। एक ही (बात), मेरी माँ, मेरी माँ। आहाहा !

ऐसे धर्मी को सब प्रसंग में प्रभु मेरा आत्मा शुद्ध अन्दर जो मुख्य अनुभव में आया, उसकी मुख्यता हमेशा रहती है। आहाहा !

विविध शुभभाव आयें... विविध अर्थात् अनेक प्रकार के। भक्ति का, नाम भगवान स्मरण, णमो अरिहंताणं आदि आयें। परन्तु उस समय भी आत्मा जो दृष्टि में शुद्ध अनुभव में आया और आत्मा को जो पहिचाना है, उसकी विस्मृति नहीं होती। शुभभाव अनेक प्रकार के आते हैं, उस समय भी आत्मा शुद्ध चैतन्य की दृष्टि है, उसकी विस्मृति नहीं होती। आहाहा ! ऐसा मार्ग। भभूतमलजी ! पैसे में कुछ सूझे, ऐसा नहीं है। धूल में। **विविध शुभभाव आयें...** विविध अर्थात् अनेक प्रकार। दया का, दान का, स्मरण का, वाँचन का, समझाना, ऐसे विविध शुभभाव आयें। फिर भी **शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता...** शुद्धात्मा त्रिकाली जो है, वह जो दृष्टि में आया है, वह विस्मृत (नहीं हो जाता), उसे भूल जाए—ऐसा नहीं होता। आहाहा ! प्रवीणभाई ! यह कभी सुना नहीं। पैसे इकट्ठे किये करोड़ों। करोड़ोंपति। धूल-धूलपति। आहाहा !

मुमुक्षु :- ....

पूज्य गुरुदेवश्री :- करोड़ अर्थात् धूल। करोड़ का अर्थ धूल है - पैसा। आहाहा ! जगत की मिट्टी है। यह तो अभी नोट आ गयी, पहले नगद रुपया था। अब नोट आ गया। परन्तु वह नोट भी पुद्‌गल-धूल है। पैसा, सोने का... क्या कहते हैं ? गुल्ली। आपके नाम भूल जाते हैं। सोने की गुल्ली हो तो भी धूल-मिट्टी है। अरे.. ! मणि रत्न हो लाख रुपये का, तो भी वह धूल-मिट्टी है। दुनिया ने उसकी कीमत की है। उसमें कोई कीमत-वीमत नहीं है। आहा.. !

प्रभु आत्मा में तो कीमत है। आहा.. ! अनन्त ज्ञान। ज्ञान तो हो परन्तु वह ज्ञान भी अनन्त है। जिस ज्ञान का अन्त नहीं, इतनी ज्ञान की शक्ति है। ऐसे श्रद्धा है, वह शक्ति भी अनन्त है। आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा में है, वह भी अनन्त—अन्त नहीं, इतना अनन्त है। ऐसे आत्मा को पहिचाना तो वह और विविध प्रकार के शुभभाव हों, शुभभाव

हो, अशुभ को एक ओर रखो। हिंसा, झूठ, विषयभोग वह तो अकेला पाप है। परन्तु विविध प्रकार के-अनेक प्रकार के शुभभाव आयें, **तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता...** आहाहा! शुद्ध भगवान पवित्र आनन्दनाथ, जो अनुभव में, पहिचान में, ज्ञान में आया, उसकी कभी कोई प्रसंग में विस्मृति नहीं होती। आहा...!

और वे भाव मुख्यता नहीं पाते। क्या कहते हैं ? कि धर्मी को जो शुभभाव आते हैं, परन्तु वह मुख्यता नहीं पाते। मुख्यता तो ज्ञायकस्वभाव भगवान आत्मा है, उसकी मुख्यता धर्मी को कभी छूटता नहीं। शुभभाव के समय भी शुभभाव की मुख्यता नहीं होती। आहाहा! ऐसी बात। **शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता...** विविध प्रकार का भाव-भक्ति, पूजा में दिखे, समकिती बाहर शुभभाव में उत्साहित दिखे, फिर भी वहाँ जो त्रिकाली ज्ञायकभाव पहिचान में, अनुभव में आया, वह कभी विस्मृत नहीं होता अथवा उसकी कभी गौणता नहीं हो जाती। शुभभाव बहुत ऊँचा आये तो उसकी मुख्यता हो जाए और स्वभाव की गौणता हो जाए, ऐसा कभी नहीं होता। आहाहा! **नहीं हो जाता और वे भाव मुख्यता नहीं पाते।** शुभभाव मुख्यता को प्राप्त नहीं होते। शुभभाव आवे, धर्मी को भी आत्मधर्म प्राप्त किया है, उसको शुभभाव आता है, परन्तु वह शुभभाव मुख्यता नहीं पाते, उसकी मुख्यता कभी नहीं होता, शुभभाव तो गौण हो जाता है और त्रिकाली ज्ञायक जो जानने में आया, उसकी मुख्यता रहती है। अरे..! ऐसा धर्म कैसा ? आहा..! दुनिया में ऐसी बात सुनने मिलीन मुश्किल। उसमें यह मुख्यता और गौणता...

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- अन्तर देखते हैं, अन्तर। ज्ञान में जो वस्तु ज्ञेयरूप से ज्ञात हुई, वह कभी हटती नहीं। ज्ञान में, यह मेरी माँ है, यह जनेता है, ऐसा ख्याल में आया तो चाहे जितनी स्त्रियों को देखे तो भी कोई स्त्री की मुख्यता नहीं हो जाती, माँ की मुख्यता रहती है। आहाहा! समझ में आया ?

उसी प्रकार धर्मी जीव उसे कहते हैं कि जिसे शुभादि भाव तो अनेक प्रकार के होते हैं, फिर भी उसकी मुख्यता—चैतन्य ज्ञायकस्वभाव की मुख्यता नहीं हटती और शुभभाव की मुख्यता नहीं होती। आहाहा! भाषा तो सादी है, परन्तु भाव बहुत गहरा है,

भाई ! आहाहा ! अरे.. ! अनन्त काल में कभी कोई दरकार नहीं की। बाहर की माथापच्ची कर–करके मर गया। एक तो संसार की प्रवृत्ति पाप के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। वहाँ से छूटकर यहाँ आये तो कहे, दया, दान, पुण्य, शुभभाव की क्रिया में अटक जाए। मूल चीज़ रह गयी। मूल चीज़ दृष्टि में आये बिना जन्म–मरण का कभी अन्त आता नहीं। वही कहते हैं।

अनेक शुभभाव आते हैं, परन्तु वह भाव मुख्यता नहीं पाते। है ? मुख्यता तो चैतन्य शुद्ध ध्रुव शुद्ध चैतन्य, उसकी अन्तर में से मुख्यता, प्रधानता, अग्रेसरता, अग्रता नहीं जाती और कोई शुभभाव मुख्य हो जाए, ऐसा होता नहीं। आहाहा !

मुनिराज को... अब मुनिराज की परिभाषा करते हैं। **पंचाचार,...** आहाहा ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य–पाँच आचार। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य। ये पाँच आचार हो, पंच महाव्रत हो–व्रत, कोई नियम लिया हो कि अमुक जगह... आहा.. ! आता है न, उस प्रकार का नियम ? ऐसी साड़ी पहनी हो, ऐसा ... हो, और वह लड्डू खाती हो, तो ही मुझे उसके हाथ से लेना है, नहीं तो नहीं लेना है। ऐसा नियम भी लेते हैं। फिर भी उस नियम काल में भी आत्मा की मुख्यता नहीं हटती। आहाहा ! है ?

नियम, जिनभक्ति... वीतराग की भक्ति करते हैं। **इत्यादि सर्व शुभभावों के समय भेदज्ञान की धारा,...** आहाहा ! उस सब भाव के काल में भेदज्ञान की धारा अर्थात् शुभभाव राग है, भगवान आत्मा वीतरागी आनन्द है, ऐसा भेदज्ञान–दो का पृथक् ज्ञान कभी भूल नहीं जाते। आहाहा ! यह कैसी बात ? अनन्त काल हुआ, अनन्त काल हुआ, उसने कभी सत्य बात खोजी नहीं। असत्य में सन्तुष्ट हो गया, जीवन चला जाता है और चौरासी के अवतार, कौआ, कुत्ता, सूकर, चींटी, कुंजर, हाथी ऐसे अवतार कर–करके मर गया और मरकर माँस आदि खाता हो, सिंह, बाघ फिर मरकर नरक में जाए। आहाहा !

अरे... ! भगवान आत्मा अन्दर मुख्य चीज़ है, उसको पहिचाने, तब तो शुभभाव के समय भेदज्ञान की धारा तो चलती है। क्या कहते हैं ? भक्ति चलती हो, भाव आता है, उत्साह, उल्लास भक्ति में दिखता है ज्ञानी को, फिर भी भेदज्ञान की धारा–शुभ से मैं भिन्न हूँ, यह बात भूलाती नहीं। भेदज्ञान का कभी नाश नहीं होता। कोई भी प्रसंग में हो।

आहाहा! रागादि के प्रसंग में, भक्ति में हो, राग से भिन्न जो भेदज्ञान हुआ है, उसे वह भूलता नहीं। आहाहा! ऐसा उपदेश।

अनन्त काल हुआ, अनन्त भव किये, कभी आत्मा क्या चीज़ है, वह सुनने में आया, फिर भी उस ओर रुचि, अनुभव किया नहीं। आहा..! बाकी क्रियाकाण्ड तो इतने किये कि नौवीं ग्रैवेयक चला जाए, परन्तु एक भव कम नहीं हो। आत्मा के अनुभव बिना भव कम नहीं होता तीन काल में। आहा..!

जिनभक्ति इत्यादि सर्व शुभभावों के समय भेदज्ञान की धारा,... अर्थात् यह राग है और मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसी **भेदज्ञान की धारा, स्वरूप की शुद्ध चारित्रदशा निरन्तर चलती ही रहती है।** आहाहा! राग से भिन्न चलती है और शुद्ध चारित्रदशा। मुनिराज, सच्चे मुनि नग्न मुनि दिगम्बर मुनि होते हैं। जंगल में बसते हैं। आहाहा! उनको चारित्रदशा में निरन्तर चलती रहती है। शुद्ध चारित्रदशा में भी भेदज्ञान निरन्तर वर्तता है। आहाहा! भाषा... ये तो बहिन रात को बोले होंगे तो किसी बहिनों ने लिख लिया होगा। यह तो अन्दर की बातें हैं। आहाहा!

शुभभाव नीचे ही रहते हैं;... धर्मी को शुभभाव आता है-दया, दान, भक्ति, पूजा परन्तु आत्मा के मुख्य भाव से यह शुभभाव नीचे रहते हैं। वह अधिकपना नहीं पाते। आहाहा! समझ में आया? बात तो निकट है, है तो निकट-समीप, परन्तु कठिन है। पुरुषार्थ अनन्त पुरुषार्थ चाहिए। वह कभी किया नहीं और बाहर में जिन्दगी चली गयी। आहाहा! पशु तुल्य अवतार। पशु जैसे मजदूरी करे, वैसे यह भी पूरा दिन राग और पुण्य-पाप, राग की मजदूरी करता है। आहाहा! अपने आत्मा की कीमत नहीं की। राग के विकल्प से भिन्न प्रभु, उसको जिसने जाना नहीं.. आहाहा! उसने कुछ किया नहीं। और उसने जाना (तो) उसे चारित्र (दशा में) निरन्तर चलता रहता है, भेदज्ञान हमेशा रहता है। मुनि को चारित्र-स्वरूप की रमणता में भक्ति आदि का राग आता है, परन्तु भेदज्ञान अन्दर से भिन्नता हमेशा चालू रहती है। आहाहा!!

सेठ का नौकर पूरा दिन काम करे, सेठ के नाम से। फिर भी अन्दर में जानता है कि यह सब धन्धा और फल सेठ का है। वह कभी भूलता नहीं। राणपुर में ऐसा बना था।

नौकर होशियार था। नौकर का काम करता था। बड़ी दुकान थी। सेठ बैठे, आये परन्तु सेठ के दिमाग का ठिकाना नहीं था। इसलिए बीच में कुछ बोले जाए तो नौकर कहे, घर चले जाओ। और नौकर की छाप भी ऐसी थी। आपका काम नहीं है। व्यापार-धन्धें में कैसे बोलना, कैसे करना आपको मालूम नहीं। चला जाए। सेठ को नौकर पर इतना विश्वास था। उसकी मुख्यता उसे कभी छूटती नहीं। फिर भी उसके हृदय में, इस व्यापार का फल मुझे नहीं मिलनेवाला है, फल तो सेठ को मिलेगा। आहाहा! ऐसा बना है। सेठ था, वह दुकान पर आये और बराबर बोले नहीं, (तो नौकर कहे), आप कुछ मत बोलना। घर चले जाओ। चला जाए। इतना उसे नौकर पर बहुमान था। आदमी ऐसा था। मुझे दूसरा कहना है कि नौकर भले सेठ के बहाने सब काम करे, परन्तु अन्तर में जानता है कि फायदे-नुकसान का व्यापार सेठ का है। मेरा नहीं है। मुझे तो जो मेरी नौकरी है, वह नौकरी है। आहाहा!

वैसे यहाँ शुभभाव के काल में भी आत्मा जानता है कि मैं तो आत्मा हूँ। यह शुभभाव मैं नहीं। आता है अशुभ से बचने को, परन्तु वह शुभभाव दया, दान, भक्ति मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! **शुभभाव नीचे ही रहते हैं;...** शुद्ध शुद्ध आत्मा की मुख्यता में चैतन्य ज्ञायकस्वभाव, उसकी मुख्यता में शुभभाव भी गौण रहता है, नीचे रहते हैं, उसको अधिकता नहीं मिलती। अधिकपना तो शुभ से भिन्न आत्मा है, आनन्द और ज्ञान को अधिकता देते हैं। आहाहा! अरे रे...! ऐसी बातें कैसी! वीतराग की बात ऐसी है। तीन लोक के नाथ जिनेन्द्र देव अनन्त तीर्थंकरों का यह वजन है। बहिन तो वहाँ महाविदेह में थी, वहाँ से आयी हैं। आहाहा! प्रभु के पास थी। सेठ के पुत्र थे। वहाँ से सीधा ग्रहण किया, सुना हुआ। थोड़ी भूल हो गयी तो यहाँ काठियावाड़ में अवतार हो गया। यह उनके वचन हैं। रात को बहिनों के बीच बोले होंगे। बहिनों ने लिख लिया। आहाहा!

कहते हैं,... आहा..! **शुभभाव नीचे ही रहते हैं;...** आत्मा पुण्य-पाप, शुभ-अशुभभाव से भिन्न शुद्धभाव, दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा यह शुभभाव, रागभाव है। परन्तु उससे भिन्न आत्मा का शुद्धभाव राग बिना का भाव, उस राग बिना के भाव की मुख्यता से राग आता है, उसकी मुख्यता कभी नहीं होती। राग आता है परन्तु उसकी मुख्यता कभी नहीं होती। आहाहा! ऐसा कैसा यह ? ऐसा मार्ग है, प्रभु! जन्म-मरण रहित

होने का और आत्मज्ञान का मार्ग कोई अलौकिक है! अभी बहुत फेरफार हो गया है। आहाहा! थोड़े शब्दों में कितना भरा है! आहा..!

शुभभाव नीचे ही रहते हैं; आत्मा ऊँचा का ऊँचा ही—ऊर्ध्व ही—रहता है। ऊँचा अर्थात् राग की महत्ता, महिमा नहीं आती। महिमा तो चिदानन्द, राग से भिन्न आत्मा की महिमा है, वह महिमा कभी हटती नहीं। आहाहा! **ऊर्ध्व ही—रहता है।** भगवान का स्वभाव आत्मा जिसने जाना है, उसको तो अन्तर में आत्मा मुख्य ही रहता है। आहाहा! **सब कुछ पीछे रह जाता है,...** तीर्थंकर गोत्र का भाव कदाचित् आवे तो भी उसकी मुख्यता नहीं होती, क्योंकि वह विकल्प और राग है। जिससे बन्धन हो, वह राग है। आहाहा! और आत्मा का स्वभाव रागरहित शुद्ध चैतन्यमूर्ति आनन्दकन्द प्रभु, उसकी दृष्टि हुई, उसकी मुख्यता कभी जाती नहीं। **सब कुछ पीछे रह जाता है,...** आहाहा! बहुत अच्छी बात आयी है। आज श्वेताम्बर पर्यूषण है न? आज श्वेताम्बर का, कल से स्थानकवासी के। अपने आयेंगे पंचमी से। रविवार, पंचमी, भाद्रपद पंचमी से चतुर्दशी तक। आहा..!

सब कुछ पीछे रह जाता है, आगे एक शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है। दृष्टि में तो आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु,.. आहाहा! शुद्ध आत्मा पवित्र, पुण्य और पाप के मलिन भाव से भिन्न, उसकी मुख्यता दृष्टि में आती है, वह कभी हटती नहीं। आहाहा! उसका नाम धर्मी और धर्म कहते हैं। अरे रे! ३६६ हुआ न? **आगे एक शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है।** कोई भी पर्याय, ज्ञानी अशुभभाव में भी आ जाते हैं। आहा...! फिर भी आत्मा जो आनन्दस्वरूप है, उसी मुख्यता नहीं जाती। कमजोरी से पर्याय में कोई राग आता है। लड़ाई का (भाव) भी समकिती को आ जाता है।

भरत और बाहुबली, दोनों भाई। ऋषभदेव भगवान के दो पुत्र। समकिती आत्मज्ञानी (थे), दोनों लड़ाई में आ गये। परन्तु वह भाव हो, उसमें आत्मा की अन्दर मुख्यता है, उस मुख्यता की कभी गौणता नहीं होती। आहाहा! अरेरे..! लाखों का व्यापार करते हों, करोड़ों का धन्धा हो, परन्तु धर्मी कि जिसने आत्मा जाना है, उसको कभी उसकी मुख्यता नहीं रहती—करोड़ों की कमाई एक दिन की हो, एक दिन में करोड़ों की, फिर भी समकिती-धर्मी-समकिती धर्म की प्रथम सीढ़ीवाला, उसे आत्मा की मुख्यता हटकर पैसे की मुख्यता कभी आती नहीं। अरे रे..! ऐसी बातें है, प्रभु! अरे...! जिन्दगी चली जाती

है। क्षण में देह चला जाएगा। यह भाव समझा नहीं और आत्मा का कुछ किया नहीं तो परिभ्रमण मिटेगा नहीं। चौरासी के अवतार... आहाहा! अनन्त काल से किये हैं, वह करते रहता है।

यहाँ कहते हैं, आहाहा! चाहे जितने शुभाशुभभाव हो, धर्मी को शुद्धात्मद्रव्य की मुख्यता हमेशा रहती है। समझ में आया? आहाहा! यह धर्मी का लक्षण। ऐसी क्रिया करे, फलाना करे, ढिकना करे वह कोई धर्मी का लक्षण नहीं है। आहाहा! ३६६ हुआ न?

पंचेन्द्रियपना, मनुष्यपना, उत्तम कुल और सत्य धर्म का श्रवण उत्तरोत्तर दुर्लभ है। ऐसे सातिशय ज्ञानधारी गुरुदेव और उनकी पुरुषार्थप्रेरक वाणी के श्रवण का योग अनन्त काल में महापुण्योदय से प्राप्त होता है। इसलिए प्रमाद छोड़कर पुरुषार्थ करो। सब सुयोग प्राप्त हो गया है, उसका लाभ ले लो। सावधान होकर शुद्धात्मा को पहिचानकर भवभ्रमण का अन्त लाओ॥३६८॥

३६८। किसी ने लिखा है कि यह पढ़ना। **पंचेन्द्रियपना,...** यह पंचेन्द्रियपना मिला। पाँच इन्द्रियाँ। काया, जीभ, नाक, आँख और कान। पाँच। **मनुष्यपना, उत्तम कुल और सत्य धर्म का श्रवण...** सत्य बात का श्रवण। बापू! धर्म के नाम पर अनेक प्ररूपणा चलती है, वह धर्म के नाम पर झूठी (है)। सत्य धर्म की प्ररूपणा श्रवण मिलनी, वह महा पुण्य का उदय हो तो (मिलता है)। आहाहा! परमात्मा का पूर्वापर विरोधरहित श्रवण, ऐसी बात... आहाहा! **धर्म का श्रवण उत्तरोत्तर दुर्लभ है।** पहले तो पंचेन्द्रियपना दुर्लभ (है)। आहाहा! कहा था न? शास्त्र में लेख है। निगोद के जीव अनन्त हैं, उसमें अनन्त काल से पड़े हैं। उसमें से लट हो, लट... लट, तो भी छहढाला में ऐसा है कि उसमें से लट हो तो भी चिन्तामणि प्राप्त हुआ। अनन्त काल से निगोद में जीव पड़े हैं और अनन्त पड़े हैं, वे कभी त्रस नहीं हुए हैं। मनुष्य तो हुए नहीं। आहाहा! निगोद में से निकलकर त्रसपना प्राप्त करना, त्रसपना लट, चींटी। उसे भी शास्त्र में-छहढाला में एक चिन्तामणि गिना है।

मुमुक्षु :- दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय सही त्रसतणी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, वह। उन्हें कण्ठस्थ है। आहाहा!

वैसे यह मनुष्यपना, पंचेन्द्रियपना, आहाहा! उत्तम कुल और सत्य धर्म का श्रवण, एक के बाद एक दुर्लभ है। आहाहा! पैसे मिलना या पुत्र-पुत्री मिलने दुर्लभ नहीं है। वह तो अनन्त बार मिले और गये और नरक में चला गया। आहाहा! अरबोंपति अनन्त बार हुआ। मरकर नरक में चला गया। आहाहा! या तो निगोद में चला गया। तत्त्व का विरोध किया हो और तत्त्वदृष्टि की खबर नहीं हो और तत्त्व से विरुद्ध हो जाए, वह मरकर निगोद में जाता है। प्याज, लहसुन अथवा काई, पानी में काई होती है। एक कण में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। आहाहा! ऐसे अनन्त भव किये। उसमें यह उत्तरोत्तर दुर्लभ है। आहाहा..!

ऐसे सातिशय ज्ञानधारी गुरुदेव और उनकी पुरुषार्थप्रेरक वाणी के श्रवण का योग अनन्त काल में महापुण्योदय से प्राप्त होता है। सत्य श्रवण और सत्य धर्म का योग। आहाहा! महा **पुरुषार्थप्रेरक वाणी के श्रवण का योग अनन्त काल में महापुण्योदय से प्राप्त होता है।** आहाहा! सत्य वाणी सुनने मिलनी... जीवन ऐसे ही चला जाए। आहाहा! हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे-हीराजी महाराज, वे बेचारे क्रिया करे, तत्त्वदृष्टि की कुछ भी समझ नहीं थी। दूसरे का कर सकता है या नहीं, वह भी खबर नहीं। दूसरे की दया पालनी वह धर्म। आहा..! बहुत ऊँचे थे। स्थानकवासी में, 'हीरा अेटला हिर बाकी सुतरना फालका।' उतनी उनकी नर्मी। क्रियाकाण्ड में भी बहुत (चुस्त थे)। परन्तु यह तत्त्व की बात सुनी नहीं थी। आत्मा राग से भिन्न है, शुभराग धर्म नहीं है, यह शब्द सुनने नहीं मिला था। आहाहा! २१ वर्ष उसमें रहे थे न। गुरु की मौजूदगी चार साल रही। (संवत्) १९७० में दीक्षा ली थी, तो १९७४ तक। आहा... ! यह शब्द भी सुनने नहीं मिले थे। क्योंकि यह बात ही नहीं है। बात तो दया करो, यह करो, वह करो, ऐसी प्ररूपणा। सुननेवाले सुनकर कुछ करे, सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण (करे)।

यहाँ कहते हैं, **महापुण्योदय से प्राप्त होता है। इसलिए प्रमाद छोड़कर...** आहाहा! अवसर आया है, प्रभु! अब समझ ले। ऐसा अवसर मिलना मुश्किल है। ऐसी सत्य वाणी सुनने मिलनी... आहाहा! है कठिन, है अपूर्व, अपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी नहीं की ऐसी। आहाहा! ऐसी वाणी भी महापुण्योदय से प्राप्त होती है। **इसलिए प्रमाद छोड़कर पुरुषार्थ**

करो। आहाहा! प्रमाद छोड़कर अन्तर चैतन्यमूर्ति भगवान ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उसकी पहिचान करो। उसके बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा, प्रभु! आहाहा! बाकी लाखों, करोड़ों का दान करे, करोड़ों रुपये का मन्दिर बनाये, धर्म नहीं है। वह कहीं धर्म नहीं है, शुभभाव है।

अभी अफ्रीका गये थे। उन लोगों ने साठ लाठ इकट्ठे किये। पन्द्रह लाख तो पहले किये थे। पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाने के लिये। मेरे जाने के बाद पैंतालीस लाख इकट्ठे किये। साठ लाख। पच्चीस लाख का मन्दिर बनायेंगे। नैरोबी। करोड़ोंपति बहुत हैं। कहा, बापू! यह करो, परन्तु वह भाव धर्म नहीं है। अशुभ से बचने के लिये थोड़ा शुभ आये। तुम करोड़ों रुपये खर्च करो और पच्चीस लाख का मन्दिर बनाओ, इसलिए धर्म हो जाए और भव कम हो, वह बात नहीं है, बापू! वहाँ के लोग नरम हैं। बड़ी सभा इकट्ठी होती थी। शान्ति से सुनते थे। आहाहा!

एक इन्द्र हुआ, इन्द्र। साढ़े तीन लाख रुपये में और भगवान की जो मुख्य प्रतिमा विराजमान की, उसे विराजमान करनेवाले ने साढ़े पाँच लाख रुपये (दिये)। लक्ष्मीचन्दभाई। साढ़े पाँच लाख रुपया। भगवान को विराजमान करने की प्रतिमा अभी बनेगी, पधरामणी हो गयी हो, मैं तथा तब। परन्तु अभी मन्दिर कच्चा है, नया है। अभी बारह महीने लगेंगे। बड़ा करेंगे। कहा, इन सबमें क्रिया तो पर की होती है। उसमें करनेवाले का भाव कदाचित् शुभ हो, परन्तु उससे धर्म हो, ऐसा नहीं है। यहाँ तो स्पष्ट बात है। अफ्रीका हो या काठियावाड़ हो। आहाहा! वहाँ पैसेवाले बहुत हैं। ४५० तो एक गाँव में करोड़पति हैं। ४५०। और १५ तो अरबपति हैं। वह अरबपति हमारे पास आया था। अमुक बात करता था, श्वेताम्बर था। अपने दिगम्बर मुमुक्षु वहाँ मन्दिर नहीं जाते थे। इसलिए वह बात करता था, महाराज! आपके दिगम्बर मण्डल के लोग वहाँ नहीं आते हैं। हम वहाँ परदेश में गये, उसमें क्या कहना? उसे कहा, बापू! तत्त्वज्ञान समझ में आने के बाद व्यवहार कैसा हो, वह समझ में आयेगा। उतनी बात कही। तत्त्वज्ञान आत्मज्ञान है, वह समझने के बाद व्यवहार कैसा हो, वह बाद में समझ में आयेगा। पहले कुछ भी व्यवहार माने, वह व्यवहार समझ में नहीं आयेगा। वह बेचारा आया था। बाद में मुम्बई भी आया था। अरबपति। ऐसे १५ अरबपति वहाँ हैं। आहाहा! उसमें धूल में क्या है? बापू! ऐसा बड़ा

राजा अनन्त बार हुआ। आहाहा! और मरकर नरक में गया। आहाहा! यह बात दुर्लभ मिली है।

इसलिए प्रमाद छोड़कर पुरुषार्थ करो। सब सुयोग प्राप्त हो गया है,... आहाहा! सब सुयोग अर्थात् जितनी बाह्य सामग्री चाहिए, देव-गुरु-शास्त्र, वाणी मिले हैं, **उसका लाभ ले लो।** उसमें यह लाभ ले-आत्मा का ज्ञान कर ले और उसे समझ ले। आहाहा! बाकी तो सब व्यर्थ है। दुनिया तो प्रशंसा करेगी। पाँच लाख दे तो मानो... ओहोहो! अभी पाँच लाख दिये न। भाई! गंगवाल, नहीं? मिश्रीलाल, मिश्रीलाल गंगवाल। पच्चीस करोड़ है। उसके पास है। वहाँ गये थे। प्रवचन में तो सब आते हैं न। उसने अभी पाँच लाख दिये। पाँच लाख क्या, पाँच करोड़ दे तो कुछ धर्म हो जाए, ऐसा थोड़ा भी नहीं है। उसमें शुभभाव हो तो पुण्य हो और उसमें भी धर्म माने तो मिथ्यात्व हो। अरे..! ऐसी बातें हैं। सुने, सुनते थे। आहा...! पाँच-पाँच लाख रुपया निकाले। एक भगवान की प्रतिमा विराजमान की। लक्ष्मीचंदभाई थे, साढ़े पाँच लाख देकर विराजमान की। अभी हम गये थे। हम थे, तब प्रतिष्ठा हो गयी। काम अभी बहुत बाकी है। सैकड़ों पेटियाँ संगमरमर की आयी हैं। करेंगे। आहा..! बापू! वह शुभभाव है। वह शुभभाव कभी अधिक हो जाए... आहाहा! और वह धर्म का रूप धारण करे, ऐसा नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि, लाभ ले, बापू! सावधान होकर। आहाहा! अपना स्वभाव ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, शुद्ध पवित्र दर्शनस्वभाव, ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का सागर प्रभु है। आत्मा अनन्त-अनन्त शक्ति कहो, गुण कहो, स्वभाव कहो, उसका सागर आत्मा है। उसे **सावधान होकर शुद्धात्मा को पहिचानकर...** आहाहा! यह करना है। **शुद्धात्मा को पहिचानकर भवभ्रमण का अन्त लाओ।** तो भवभ्रमण का अन्त आयेगा। नहीं तो चौरासी के अवतार कर-करके हैरान हो गया है। कभी विचार भी नहीं किया कि मैंने अनन्त भव कहाँ किये? किस जगह किये? किस क्षेत्र में, किस काल में, किस स्थिति में (किये)? आहाहा!

नरक में अनन्त बार गया। पहली नरक में दस हजार वर्ष की स्थिति, वहाँ अनन्त बार गया। दस हजार और एक समय की स्थिति में भी अनन्त बार गया, फिर दो समय की स्थिति में अनन्त बार गया। ऐसे सब सिद्धान्त में लेख हैं। ऐसे एक सागर की स्थिति

तक। समय-समय की अधिकता में अनन्त-अनन्त बार उत्पन्न हुआ। आहाहा! अरे..! उसके दु:ख की बातें क्या करनी? आहाहा! उसकी उष्ण वेदना का एक कण यहाँ लाये तो आसपास के दस-दस योजन के लोग मर जाए। उतनी अग्नि। उसमें प्रभु! तूने लाखों वर्ष, अरबों वर्ष निकाले। अरे..! सागरोपम! सागरोपम निकाले। इसलिए अब सब सामग्री प्राप्त हो गयी है। मनुष्यपना आदि। सत्य श्रवण भी मिल गया है। आहाहा!

सावधान होकर शुद्धात्मा को पहिचानकर... किसकी पहिचान? शुद्धात्मा। पुण्य और पाप के विकल्प से-भाव से रहित। शरीर से तो रहित है। यह तो मिट्टी-धूल है। परन्तु अन्दर में दया, दान का भाव.. दया, दान, भक्ति, पूजा का भाव हो, वह भी राग है, मैल है। उससे भी भिन्न आत्मा है। उसको पहिचानकर... आहाहा! **भवभ्रमण का अन्त लाओ**। आहाहा! ३६८ पूरा हुआ।

चैतन्यतत्त्व को पुद्‌गलात्मक शरीर नहीं है, नहीं है। चैतन्यतत्त्व को भव का परिचय नहीं है, नहीं है। चैतन्यतत्त्व को शुभाशुभपरिणति नहीं है, नहीं है। उसमें शरीर का, भव का, शुभाशुभभाव का संन्यास है।

जीव ने अनन्त भवों में परिभ्रमण किया, गुण हीनरूप या विपरीतरूप परिणमित हुए, तथापि मूल तत्त्व ज्यों का त्यों ही है, गुण ज्यों के त्यों ही हैं। ज्ञानगुण हीनरूप परिणमित हुआ, उससे कहीं उसके सामर्थ्य में न्यूनता नहीं आयी है। आनन्द का अनुभव नहीं है, इसलिए आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है, नष्ट नहीं हो गया है, घिस नहीं गया है। शक्तिरूप से सब ज्यों का त्यों रहा है। अनादि काल से जीव बाहर भटकता है, अति अल्प जानता है, आकुलता में रुक गया है, तथापि चैतन्यद्रव्य और उसके ज्ञान-आनन्दादि गुण ज्यों के त्यों स्वयमेव सुरक्षित रहे हैं, उनकी सुरक्षा नहीं करनी पड़ती।

—ऐसे परमार्थस्वरूप की सम्यग्दृष्टि जीव को अनुभवयुक्त प्रतीति होती है॥३६९॥

३६९। किसी ने लिखा है, यह पढ़ना। किसी ने लिखा है। **चैतन्यतत्त्व को पुद्‌गलात्मक शरीर नहीं है,...** क्या कहते हैं? भगवान जो अन्दर चैतन्य वस्तु अरूपी

अनन्त गुण का पिण्ड है, उसको यह पुद्‌गलस्वरूप शरीर नहीं है। चैतन्य को शरीर नहीं है। शरीर जड़ है, उससे चैतन्यप्रभु भिन्न है। आहाहा! चैतन्य जानन प्रकाशमूर्ति-ज्ञान की प्रकाशमूर्ति, ज्ञान का पूर उसका नूर, ज्ञान के तेज का पूर, ऐसा जो यह भगवान आत्मा... आहाहा! वह चैतन्य है और यह शरीर जड़ पुद्‌गल है। दोनों चीज़ सर्वथा भिन्न है।

यह आत्मा शरीर का कुछ नहीं कर सकता। हाथ हिले आदि सब जड़ की क्रिया, जड़ से (होती है), आत्मा से नहीं। अरे..! कैसे बैठे? पूरा दिन काम ले और कहे कि उससे होता नहीं। प्रभु तो न कहते हैं। अनन्त तीर्थंकरों की पुकार है कि एक तत्त्व का दूसरे तत्त्व के साथ कोई मेल नहीं है। चाहे तो जड़ हो, चाहे तो चैतन्य हो। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को... आहाहा! छूता नहीं। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। ऐसा पाठ है, समयसार की तीसरी गाथा। आहाहा! शरीर को आत्मा छूता नहीं। (शरीर) जड़ (है), आत्मा चैतन्य। जाति ही पूरी अलग है। अरे..!

चैतन्यतत्त्व को पुद्‌गलात्मक शरीर नहीं है, नहीं है। नहीं है, दो बार डाला है। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप, उसको यह पुद्‌गल शरीर नहीं है। उसका नहीं है। नहीं है, नहीं है। आहाहा! इत्यादि-इत्यादि कहेंगे.... (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण कृष्ण - १३, रविवार, तारीख ७-९-१९८०
वचनामृत - ३६९, ३७१ प्रवचन-२७

वचनामृत-३६९। थोड़ा चला था कल। फिर से। **चैतन्यतत्त्व...** जो अन्दर आत्मा ज्ञानस्वरूपी ज्ञानतत्त्व आत्मा, (उसको) **पुद्गलात्मक शरीर नहीं है, नहीं है**। नहीं है, नहीं है। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप अन्दर है, उसको यह पुद्गल शरीर, पुद्गलस्वरूप शरीर नहीं है, नहीं। निश्चय से भी नहीं है और व्यवहार से भी नहीं है। आहा..! **चैतन्यतत्त्व को भव का परिचय नहीं है, नहीं है**। आहाहा! भव का परिचय चैतन्यतत्त्व को नहीं है। वह तो पर्याय में है, वस्तु तो वस्तु है। त्रिकाल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय। प्रतिपक्ष नहीं है, उससे विरुद्ध नहीं, अविनश्वर ऐसी चीज चैतन्यतत्त्व, उसे भव का परिचय नहीं है, नहीं है। आहाहा! भव आदि पर्याय-अवस्था में होता है, दशा में भव आदि होता है। वस्तु है, वह तो त्रिकाल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय (है)। आहाहा!

चैतन्यतत्त्व को भव का परिचय नहीं है, नहीं है। परिभ्रमण का परिचय चैतन्यतत्त्व को, मूल वस्तु को नहीं है। आहाहा! **चैतन्यतत्त्व को शुभाशुभपरिणति नहीं है,...** शुभ और अशुभभाव। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, काम, क्रोध, दया, दान, भक्ति, पूजा। यह शुभाशुभभाव चैतन्यतत्त्व में नहीं है। चैतन्यतत्त्व में नहीं है, नहीं है। आहा..! **उसमें शरीर का, भव का, शुभाशुभभाव का संन्यास है**। त्याग है। आहाहा! उसका त्याग करना पड़ता नहीं। त्याग ही है। आहाहा! वह तो विकार का त्याग करना पड़ता है, वह भी बिल्कुल नाममात्र है। शुद्ध चैतन्यतत्त्व दृष्टि में लाकर जहाँ अन्दर में स्थिर हुआ तो विकार की उत्पत्ति नहीं हुई, उसको व्यवहार से आत्मा ने नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! तो पर के (त्याग की) तो बात ही कहाँ है? अन्तर में विकार का त्याग नाममात्र है। वह चैतन्य प्रभु है। आहाहा!

जीव ने अनन्त भवों में परिभ्रमण किया,... अनन्त-अनन्त भव नरक के, निगोद के, त्रस के अनन्त-अनन्त भव किये। इतना विचार करे तो भी उसका सनातन तत्त्व इतने भव किये, फिर भी चैतन्यतत्त्व तो निर्मल निरावरण रहा है। उसमें-तत्त्व में कुछ फर्क नहीं हुआ। आहाहा! अनन्त काल अनन्त भवों में परिभ्रमण किया, **गुण हीनरूप...** आत्मा में अनन्त गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि वह तो ध्रुव त्रिकाल है। उसकी वर्तमान परिणति... गुण हीनरूप परिणमा। परन्तु गुण जो त्रिकाली है, उसमें कोई हीनरूप नहीं (हुए)। उसकी पर्याय में हीनरूप है। आहाहा! द्रव्य जो वस्तु और उसके गुण तो त्रिकाल निरावरण ध्रुव है। उसकी परिणति-पर्याय में दोष है। है?

गुण हीनरूप या विपरीतरूप परिणमित हुए, तथापि मूल तत्त्व ज्यों का त्यों ही है,... मूल चैतन्यतत्त्व जो अनादि त्रिकाल निरावरण, वह तत्त्व तो जैसा है, वैसा ही है। चाहे उसने अनन्त भव किये, परन्तु उस तत्त्व में कोई हीनता या विपरीतता तत्त्व में नहीं आयी है। आहाहा! कैसे बैठे? **गुण ज्यों के त्यों ही हैं।** गुण की परिणति हीन हुई, परन्तु गुण ध्रुव ज्यों के त्यों हैं। आहाहा! उसकी पर्याय में हीनता, अधिकता, परिभ्रमण चौरासी के अवतार पर्याय में हुए। गुण तो जैसा है, वैसा ही रहा। द्रव्य जैसा है, वैसा अनादि-अनन्त है। आहाहा! गुण भी जैसा है, वैसा है।

पहले उसे उसकी पहिचान करनी पड़े। जो चीज़ जैसी है, ऐसा ख्याल में आये बिना, उस ओर रुचि झुकती नहीं। आहाहा! जो तत्त्व जिस तरह, जिस प्रकार अनादि-अनन्त है, ऐसा ख्याल आये बिना उसमें रुचि, पुसाना, दृष्टि जमती नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग।

ज्ञानगुण हीनरूप परिणमित हुआ,... आत्मा में ज्ञानगुण है-जाननस्वभाव। वह पर्याय में-अवस्था में हीनरूप दशा हुई। **उससे कहीं उसके सामर्थ्य में न्यूनता नहीं आयी है।** आहाहा! पर्याय में इतनी हीनता हुई कि निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग में विकास रह गया। अक्षर के अनन्तवें भाग में विकास। काई आदि। वहाँ जीव हैं, उसमें अनन्त जीव हैं। ऐसी हीनता पर्याय में तो अक्षर के अनन्तवें भाग में हुई। परन्तु वस्तु में कोई अन्तर नहीं है। है? **ज्ञानगुण हीनरूप परिणमित हुआ, उससे कहीं उसके सामर्थ्य में**

न्यूनता नहीं आयी है। उसकी शक्ति जो है, ज्ञानगुण की जो शक्ति है–सामर्थ्य है, स्वरूप की स्थिति की जो ताकत है, उस ताकत में हीनता नहीं आती। आहाहा! ऐसी बात है। पर्याय और गुण के बीच इतना अन्तर। ओहोहो! यह बात कठिन लगे।

सामर्थ्य में न्यूनता नहीं आयी है। ज्ञानस्वभाव केवल ज्ञानमूर्ति है। प्रभु तो केवल–अकेली ज्ञान की मूर्ति है। वह ज्ञानमूर्ति ध्रुवस्वरूप पर्याय में हीनता होने पर भी गुण तो वैसा का वैसा रहा है। आहाहा! हीन पर्याय में गुण वैसा का वैसा रहा, यह कैसे बैठे? आहाहा! गुण है, वह ध्रुव है। ध्रुव द्रव्य और गुण है, वह तो ध्रुव नित्य है। पलटती अवस्था में हीनाधिकता होती है। परन्तु वस्तु में कोई हीनाधिकता होती नहीं। आहाहा! यह बात सुननी मुश्किल पड़े, वह उसे अन्तर में बैठनी कि अन्तर चैतन्यतत्त्व और उसका चैतन्यगुण, उसकी पर्याय में हीनता होने पर भी तत्त्व और गुण में कोई हीनता नहीं हुई। आहाहा! वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

सर्वज्ञ भगवान तीर्थंकरदेव परमेश्वर के ज्ञान में यह भासित हुआ, ऐसी बात वाणी द्वारा–दिव्यध्वनि द्वारा आ गयी। वही वचन बहिन के मुख में से आये हैं। आहा..!

आनन्द का अनुभव नहीं है... पहले ज्ञान क्यों लिया? कि ज्ञान की पर्याय प्रगट है। ज्ञान की पर्याय प्रगट है। तो प्रगट है, अल्प है, प्रगट अल्प है, फिर भी वस्तु में अल्पता आयी नहीं। इसलिए पहला शब्द यह लिया। ज्ञानगुण जो त्रिकाल है, उसकी वर्तमान पर्याय प्रगट तो है ही, सर्व जीव को। निगोद से लेकर सर्व जीव को विकास की पर्याय तो है ही। यदि न हो तो जड़ हो जाए। आहाहा! गुण की पर्याय हीन होने पर भी गुण में हीनाधिकता नहीं आयी। गुण तो जैसा है, ऐसा है। पहले यह क्यों लिया? ज्ञान की पर्याय प्रगट है इसलिए। अब प्रगट नहीं है, उसकी बात लेते हैं। क्या (कहा)?

आनन्द का अनुभव नहीं है... ज्ञान का अनुभव तो पर्याय में है। ज्ञान की पर्याय–अवस्था में उसका ज्ञान है, ऐसा तो ख्याल है। भले सत्य ख्याल नहीं है। परन्तु यह ज्ञान की पर्याय है, ऐसा तो है। परन्तु आनन्द की पर्याय तो वर्तमान में है ही नहीं। आहाहा! दो में अन्तर किया, चन्दुभाई! एक का प्रगट अंश है, हीन है या पूर्ण केवलज्ञान हो जाए, तो

द्रव्य और गुण तो जैसे हैं वैसे हैं। आहाहा! ज्ञान की पर्याय तो अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद के जीव को खुली तो है। उतनी पर्याय खुली न हो तो पर्याय बिना का जड़ हो जाए। आहाहा! अब दूसरा गुण लिया। आनन्द की पर्याय.. आहाहा!

आनन्द का अनुभव नहीं है,... ज्ञान की पर्याय तो अज्ञान में भी प्रगट तो है। ज्ञानगुण त्रिकाल, उसका अज्ञान है, भान न हो तो भी वर्तमान पर्याय में उसका विकास, ज्ञान की पर्याय की प्रगटता / अस्ति तो है। अनुभव नाम का गुण, आनन्द गुण है, उसकी तो पर्याय में अस्ति अज्ञान में अनादि से नहीं है। आहाहा! समझ में आया? साधारण शब्द नहीं है। अन्दर मर्म है। आहा..! ज्ञान की पर्याय, विचार आदि भले अज्ञान हो, परन्तु यहाँ तो प्रगट अंश है थोड़ा। फिर भी वस्तु तो जैसी है वैसी है। अब, आनन्द का तो पर्याय में अनुभव है नहीं। उसका क्या समझना? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव पर्याय में वर्तमान अवस्था में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव है नहीं, दु:ख का अनुभव है। आहाहा! अनादि अज्ञानी को राग और द्वेष, पुण्य और पाप, ऐसे दु:खरूप भाव का अनुभव है। संयोग के कारण दु:ख नहीं है, स्वभाव के कारण दु:ख नहीं है। दु:ख तो पर्याय में अपनी भूल से... पर्याय में भूल है, वस्तु में भूल नहीं है और पर के कारण भूल नहीं है। क्योंकि परचीज़ को तो आत्मा छूता ही नहीं। आहाहा! ऐसा तो पहले समझना कठिन पड़े। आहाहा!

ज्ञान की पर्याय तो प्रगट है थोड़ी, अज्ञान में भी। भले चार गति में भटकता है। चींटी, मकोड़ा को भी ज्ञान की पर्याय का थोड़ा विकास तो है। फिर भी वस्तु, ज्ञानगुण में तो हीनता-अधिकता है नहीं। गुण तो ध्रुवरूप जैसा है, वैसा है। आहाहा! अब रहा आनन्द। आनन्द का अनुभव तो है नहीं पर्याय में। दु:ख का अनुभव है। राग और द्वेष, पुण्य और पाप, काम और क्रोध का विकल्प, राग का कोलाहल, असंख्य प्रकार का राग, उसका वेदन अनादि अज्ञानी को है। वह तो दु:ख है। वह दु:ख है, उसमें आनन्द का तो अनुभव है नहीं। फिर भी, आनन्द का अनुभव नहीं होने पर भी,... आहाहा!

आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है,... चला नहीं गया है। आहाहा! क्या कहते हैं? आनन्दगुण की वर्तमान दशा में अनादि संसार परिभ्रमण में कभी आनन्द का-

अतीन्द्रिय आनन्द का अवस्था में तो अनुभव है नहीं। आहाहा! मूल चीज़ की बात है। कठिन लगे। आहाहा! फिर भी... आहाहा! **आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है,...** भले आनन्दगुण की पर्याय में प्रगट में आनन्दगुण की पर्याय है नहीं; प्रगट में तो आनन्दगुण से विपरीत विकाररूप दु:ख का अनुभव है। फिर भी आनन्दगुण में कुछ कमी आयी नहीं। आहाहा! ऐसी बात समझनी... कभी अभ्यास नहीं किया। मूल चीज़ का अभ्यास नहीं है। ऊपर से बात कर-करके जीवन व्यतीत किया। आहाहा!

जिसका पर्याय में अनुभव नहीं है और उससे उल्टा दु:ख का अनुभव है, ऐसा होने पर भी आनन्दगुण तो जैसा है, वैसा है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानगुण की तो पर्याय में प्रगटता है। श्रद्धागुण में भी प्रगटता-विपरीत श्रद्धा, ऐसा तो है। चारित्रगुण में भी विपरीतता रागादि है। परन्तु आनन्दगुण की तो पर्याय है नहीं। आहाहा! प्रगट में तो उसकी पर्याय है ही नहीं। तो वह चीज़ है या नहीं? आहाहा! पर्याय में उसका कुछ नमूना है नहीं। उल्टा नमूना है दु:ख का। आहा..! तो भी **आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है,...** अन्तर में तो अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु विराजता है। आहाहा! पर्याय में आनन्द का अनुभव न होने पर भी और दु:ख का अनुभव होने पर भी, विकृत दु:ख का अनुभव होने पर भी अविकृत आनन्दगुण तो जैसा है, वैसा है। आहाहा! कभी सुना नहीं है। प्रवीणभाई! धूल के कारण पूरा दिन करोड़ रुपया, करोड़ों रुपया... पोपटभाई के पुत्र। आहाहा! उसी में घुस गया, धूल में। पूरा दिन यह लिया, यह दिया, ब्याज आया, फलाना किया, ढिकना किया। आहाहा!

भगवान आत्मा... यहाँ तो बहिन यह कहते हैं, प्रभु! तेरे में आनन्द का तो कोई नमूना बाहर में है नहीं। पर्याय में तो दु:ख है। तो आनन्दगुण है या नहीं? समझ में आया? पर्याय में-अवस्था में तो दु:ख है। राग और द्वेष, पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान, व्रत और भक्ति सब दु:ख, दु:खरूप परिणाम हैं। दु:खरूप परिणाम है तो आनन्द है या नहीं? आहाहा! आनन्द तो जैसा है ऐसा है, त्रिकाली गुण। पर्याय में चाहे जितनी विकृत अवस्था हुई,... आहाहा! पर्याय में आनन्द का नमूना भी नहीं आया। ज्ञान का तो नमूना अनादि से है। फिर भी अन्दर में ज्ञानगुण तो जैसा है, वैसा है। वैसे

आनन्दगुण का नमूना तो अज्ञानी को है नहीं। दु:खरूप ही दशा है, वह आनन्दगुण की उल्टी दशा है। संसार पूरा दु:खरूप है। पूरा संसार व्यापार-धन्धा, स्त्री, कुटुम्ब, व्यापार अकेले पापमय है। आहाहा! ऐसा पापमय, दु:खमय होने पर भी अन्तर में आनन्दगुण में कोई कमी आयी नहीं अथवा आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु!

आनन्द का अनुभव नहीं है, इसलिए आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है,... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ। भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय सुख का सागर है। पर्याय में सुख का नमूना अनादि से अज्ञान के कारण, मिथ्या भ्रम के कारण-परवस्तु को मैं कर सकता हूँ, पर को सुधार सकता हूँ, पर की मदद कर सकता हूँ, परवस्तु मेरे कब्जे में है, ऐसे मिथ्या भ्रम के कारण दु:ख का तो अनुभव है। तो आनन्द का नमूना है नहीं। तो आनन्दगुण है या नहीं? आहाहा! **आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है,...** आनन्दगुण तो अन्दर त्रिकाल पड़ा ही है। आहाहा! बात कोई अलौकिक है।

नष्ट नहीं हो गया है,... आनन्दगुण आत्मा में जो त्रिकाल वस्तु है, उसकी वर्तमान पर्याय में उसका अनुभव थोड़ा भी नहीं है, उल्टे दु:ख का अनुभव है, फिर भी वह आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है। आहाहा! आनन्दगुण तो सदा अनादि-अनन्त अन्दर पड़ा ही है। आहाहा! शक्कर को चाहे जितना मैल हाथ में हो और उसे छुए, तो मैल ऊपर है, परन्तु शक्कर मैलरूप नहीं हो जाती। आहाहा! वैसे आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसकी पर्याय में तो अनादि से अकेली दु:ख की पर्याय है। मैल की दु:ख की पर्याय है। ऐसा होने पर भी आनन्दगुण अन्दर में से कहीं चला नहीं गया है। आहाहा! कैसी सादी भाषा में गुण का अस्तित्व सिद्ध करते हैं! आहाहा!

नष्ट नहीं हो गया है,... आहाहा! आनन्दगुण, अन्तर अतीन्द्रिय आनन्दगुण का पिण्ड प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, ऐसा होने पर भी पर्याय में दु:ख है तो आनन्दगुण नष्ट नहीं हो गया है। वैसे.. आहाहा! चला गया नहीं है। दो (बात)। **और घिस नहीं गया है।** तीन। पर्याय में अनादि से दु:ख का वेदन है तो आनन्दगुण घिस गया हो, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! आनन्दगुण तो जैसा है, वैसा अनादि है। चाहे जितने एकेन्द्रिय के दु:ख में हो, नरक के दु:ख में हो... आहाहा! या मनुष्यपने भी इकलौती सन्तान हो और शादी के दो महीने बाद मर गया हो और वह जो रोये, कूटे... आहाहा! देखा है सबको। लेकिन उस

समय भी, बाहर में दु:ख का अनुभव होने पर भी अन्तर का आनन्द कहीं चला नहीं गया। आहाहा! ऐसा कभी सुना नहीं है। प्रवीणभाई! सब गप्प सुनी है। आहाहा!

ऐसा भगवान अन्दर विराजता है। उसके अस्तित्व की-हयाती की कितनी तैयारी है कि जिसकी पर्याय में ऐसा दु:ख हो फिर भी, उसका आंशिक अनुभव नहीं होने पर भी, वह तो पूर्ण गुण से भरा ही है। आहाहा! तीन बात कही। एक तो आनन्दगुण का अनुभव नहीं है। आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है। नष्ट नहीं हो गया है। आनन्द का नाश नहीं हुआ है। वह तो ठीक है कि नाश न हो। परन्तु घिस नहीं गया। थोड़ा घिस गया हो, इतने-इतने दु:ख सहन किये, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय आदि में, तो वह आनन्दगुण थोड़ा घिस गया (ऐसा नहीं है)। आहाहा! भाषा तो देखो!

प्रभु अन्दर भरा है। सच्चिदानन्द प्रभु। सत् कायम रहनेवाला और चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द का भण्डार भगवान। इस आनन्द का वर्तमान में आंशिक अनुभव नहीं होने पर भी कहीं चला नहीं गया है, नष्ट नहीं हुआ है, तथा घिसा नहीं है। पर्याय में बिल्कुल आनन्द नहीं है, इसलिए कुछ घिस गया हो, (ऐसा नहीं है)। घसारो को क्या कहते हैं? क्या? (घिस गया)। घिस जाए। कोई ऊँची चीज़ हो, और किसी के साथ घिसे तो घिस जाती है न? आहाहा! आहाहा! घिसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तूने तेरी बात सुनी नहीं। आहाहा! मूल तत्त्व की बात के बिना बाकी (सब) कर-करके मर गया। चौरासी के अवतार कर-करके मर गया। आहाहा! देखो! बहिन के वचन तो देखो! कितने न्याय से भरे हैं।

ज्ञानगुण का अनुभव है, फिर भी हीनाधिक कुछ भी हो, परन्तु वस्तु पूर्ण है। आनन्द का तो अनुभव भी नहीं है। आहाहा! और अनुभव है तो उससे उल्टा दु:ख का है। दु:ख के अनुभव से वह पूर्ण दु:खरूप है, ऐसा होता है? आहाहा! दु:खरूप अनुभव होने पर भी भगवान अन्दर अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु (है)। यह इन्द्रिय के विषय तो जहर है। पाँच इन्द्रियों के विषय की ओर झुकाव अकेला जहर, राग और दु:ख है। आहाहा! अज्ञानी को अनादि से पर्यायबुद्धि में से दृष्टि हटी नहीं है। दु:खरूप है वही मैं हूँ—(ऐसा चलता है)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि दु:खरूप दशा हो, फिर भी अन्दर आनन्दगुण तो जैसा है, वैसा है। आहाहा! गजब बात! क्योंकि पर्याय में अन्तर है। पर्याय में उसका नमूना का अंश अतीन्द्रिय आनन्द का है नहीं। उल्टा है, विषयभोग का, जहर का। आहा..! विषयभोग जहर का प्याला है। परन्तु उसे मालूम नहीं है, इसलिए मुझे ठीक लगता है, ऐसा मिथ्यात्वभाव विपरीत भाव को पोसता है। मिथ्यात्व को पोसता है। आहाहा! आनन्द का गुण का... आहाहा! बड़ा न्याय रखा है। पर्याय में अनुभव नहीं हुआ है, फिर भी ज्ञानगुण का चला नहीं गया है, कहीं ज्ञानगुण नहीं है—ऐसा नहीं। आनन्द-आनन्दगुण। आनन्दगुण नहीं है, ऐसा नहीं। और आनन्दगुण नष्ट हो गया है, ऐसा नहीं। तथा आनन्दगुण थोड़ा घिस गया, बहुत दु:ख हुआ, निगोद में रहा.. आहाहा! अक्षर के अनन्तवें भाग में विकास (रहा), आनन्द का तो आंशिक विकास भी नहीं था, ऐसी स्थिति में भी आनन्द तो जैसा है, वैसा है। आहाहा अरे..! उसने तत्त्व का विचार भी किया है। क्या जीव है, क्या अजीव है, जीव में गुण क्या है और उसकी पर्याय-अवस्था में क्या होता है और अवस्था में वह दशा न हो तो भी वह चीज़ क्या है? अवस्था में आनन्द तो है नहीं। आहाहा! जहर का आनन्द है। विषय का, पैसे का, स्त्री का, पुत्र का, भोग का। आहाहा! ऐसी स्थिति में भी आनन्द नाम का गुण तो जैसा है, वैसा पड़ा ही है। और वह घिसा नहीं है और नष्ट हुआ नहीं। आहा..! भले अनन्त काल दु:ख की दशा में चला गया। फिर भी आनन्दगुण जो त्रिकाल है, वह थोड़ा भी घिसा नहीं। स्पर्श नहीं हुआ। आहा..!

दु:ख की पर्याय का अनुभव अनादि से अज्ञानी को है। उससे आनन्द घिस जाए,... आहा..! अतीन्द्रिय आनन्द को कोई हीनता आ जाए, त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु, उस आनन्द में कोई हीनता हो जाए, इतने दु:ख में रहा तो भी घिसा नहीं। आहाहा! भगवन्त! बात तो भगवान! बहुत ऊँची बात है, प्रभु! आहाहा! तत्त्व का विचार करके निर्णय किया नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या है यह? पर्याय में शरीर, वाणी, मन, कर्म तो है ही नहीं। क्या कहा? द्रव्य-गुण में तो है नहीं, त्रिकाली है। परन्तु पर्याय में शरीर, वाणी, मन, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब परिवार, पैसा, इज्जत वह तो उसकी पर्याय में भी नहीं है। मात्र उस पर्याय में वह मेरा है, ऐसी ममता-मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आता है? भाषा तो सादी है। भाव तो है, वह है। आहाहा!

प्रभु! तू आनन्द का नाथ है न, आहाहा! तूने आनन्द काल दु:ख में व्यतीत किया। परन्तु तेरे आनन्द में कुछ कमी नहीं हुई, नष्ट हुआ नहीं, गुण चला गया नहीं और घिसा नहीं। बहुत दु:ख भोगा, इसलिए घिस जाए (-ऐसा नहीं है) । आहाहा! एक ईंट हो और दूसरी ईंट लगे तो घिस जाए। आनन्दगुण ऐसे भी नहीं घिसा है। आहाहा! ऐसा आनन्दगुण का नाथ प्रभु, पर्याय से पार ऐसे तत्त्व की अन्दर दृष्टि करना, यही धर्म की मुख्य पहली सीढ़ी और श्रेणी है। आहाहा! कठिन लगे, सुना नहीं हो, इसलिए दूसरा हो जाए, ऐसा कुछ नहीं है। बापू! प्रभु! मार्ग तो यह है।

अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त केवलियों यह मार्ग कह गये हैं। इसने लक्ष्य में लिया नहीं है। सुना होने पर भी सुनने जैसा किया नहीं है, सुना फिर नहीं सुनने के बराबर कर दिया। आहाहा! लोग नहीं कहते ? इस कान से सुना, उस कान से निकाल दिया। कुछ ध्यान में नहीं लिया। आहाहा! ऐसे भगवन्त की बातें बहुत बार सुनी और दूसरे कान से निकाल दी। उस पर कुछ वजन नहीं दिया, वजन तो वह जो करता है, यह करूँ, यह करूँ (उस पर वजन दिया) । कर कुछ नहीं सकता, आतमा के सिवा हाथ भी नहीं हिला सकता, प्रभु! आहाहा! दाल, चावल, सब्जी भी नहीं खा सकता। दाढ़ को हिला नहीं सकता। रोटी के दो टुकड़े नहीं कर सकता। आहाहा! ऐसा प्रभु चैतन्य भिन्न वस्तु है। वह पर की कोई क्रिया अज्ञान में भी नहीं कर सकता। अज्ञान में भी कर सकता नहीं। आहाहा! अज्ञान को घोटता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भले ही अज्ञान को घोटे और वर्तमान में आनन्द नहीं है, तो भी अन्तर में से वह चला नहीं गया है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द से भरा है, वह वैसा का वैसा है। कान्तिभाई! यह बात कैसे बैठे ? एक तो सुनने नहीं मिलती। बाहर की मात्र संसार की बातें। पुण्य की, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा अकेला पुण्य-संसार। आहाहा!

यहाँ, उससे रहित प्रभु। आनन्दगुण का नमूना पर्याय में नहीं है, फिर भी चला नहीं गया है। आहाहा! **शक्तिरूप से सब ज्यों का त्यों रहा है।** तीन बोल कहे, उसके बाद लिया। शक्तिरूप से-आनन्द की शक्तिरूप से, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव के सामर्थ्यरूप

से अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द सामर्थ्यरूप से **सब ज्यों का त्यों रहा है**। आहाहा! सब गुण, एक नहीं परन्तु अनन्त गुण। बाहर में चाहे जितनी हीनतारूप, कमीरूप, विपरीत हो जाओ, अन्तर में तो जैसा है, वैसा का वैसा अनादि-अनन्त गुण है। आहाहा! कभी विचार भी किया नहीं। कभी सुनने मिला नहीं कि क्या है यह तत्त्व?

यहाँ तत्त्व की बात बताते हैं। परम तत्त्व भगवान आत्मा अनादि-अनन्त जैसा है, वैसा है। उसको पर्याय में दु:ख का अनुभव हुआ हो, फिर भी अतीन्द्रिय आनन्द में कुछ भी कमी होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! कैसे उसका विश्वास आये? दूसरा विश्वास आये। आहा..! यह बीज बोओगो वृक्ष होगा। बाजरे का बीज बोयेंगे तो बाजरा पकेगा, वहाँ गेहूँ नहीं पकेगा। वहाँ विश्वास की जो जात है, उसका विश्वास है। यह गेहूँ का बीज है तो गेहूँ पकेगा, बाजरे का है तो बाजरा पकेगा। उसे बीज के फल की और बीज की श्रद्धा है। अनादि अज्ञान की श्रद्धा। आहाहा!

यह एक महाबीज अन्दर आनन्दमूर्ति प्रभु, उसकी जो अन्दर प्रतीति-श्रद्धा करके बोया, उसका परमात्मा का फल हुए बिना छुटकारा नहीं। आहाहा! भले ज्ञान कोई कम-ज्यादा हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। अन्तर वस्तु का विश्वास, दृष्टि, बाहर में इतना दु:खादि होने पर भी वस्तु अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है, ऐसा अन्तर में अनुभव करके प्रतीति होनी, वह भव के अभाव का कारण है। आहाहा! बहुत अच्छी बात आयी। पैसे के कारण कहाँ फुरसत है? भभूतभाई! भभूति लगायी है। आहा..! यह भभूति अलग जाति की है। मन्दिर बनाया है न? बेंगलोर में। आठ लाख रुपया दिया है, इन्होंने। वहाँ मन्दिर बनाया है न? आठ लाख इनके और चार लाख जुगराजजी ने (दिये)। स्थानकवासी करोड़पति हैं। मुम्बई के स्थानकवासी हैं। उन्होंने चार लाख दिये, आठ लाख इनके। बारह लाख। अभी तो पन्द्रह लाख के ऊपर मन्दिर हुआ। उस समय तो वह वहाँ थे तब हुआ न। आहाहा! वह सब चीज़ तो बाह्य है, प्रभु! आत्मा को तो वह चीज़ कभी छूती नहीं। उस प्रसंग में राग की मन्दता हो तो शुभभाव हो। परन्तु शुभभाव भी विकार, राग और दु:ख है। आहाहा! अरे..! उसके अन्दर है, उसकी उसे प्रतीति नहीं है।

मुमुक्षु :- मालूम तो है...

पूज्य गुरुदेवश्री :- मालूम नहीं पड़ता है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- सच बात है। आहाहा!

प्रभु! तुझमें यह पड़ा है न। तूने सुना नहीं, इसलिए नहीं है—ऐसा (कैसे कहें ?) आहाहा! अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द, अतीन्द्रिय अनन्त दर्शन, अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त चारित्रशक्ति का पिण्ड प्रभु है। उसमें कभी कमी-अधिकता होती नहीं। वस्तु में कभी गुण-शक्ति-सत्त्व... आहाहा! शक्तिवान और शक्ति, शक्तिवान वह द्रव्य और शक्ति वह गुण, इन दोनों में कभी हानि, कमी-अधिकता होती नहीं। ऐसे तत्त्व की अन्दर नजर कर। आहाहा! पर्यायबुद्धि छोड़ दे। वर्तमान में पर्याय के अंश में.. आहाहा! अन्तर में भगवान विराजता है, परमात्मा विराजते न हो तो परमात्मा होगा कैसे ? अरिहन्तपना अन्दर शक्तिरूप न हो, स्वभावरूप न हो तो अरिहन्त होगा कैसे ? बाहर से कोई चीज़ आये ऐसा है ? आहाहा!

इसलिए कहते हैं, चाहे जितनी पर्याय में हीनाधिकता हुई, **शक्तिरूप से सब ज्यों का त्यों रहा है। अनादि काल से जीव बाहर भटकता है,...** आहाहा! बाहर लक्ष्य करता है। बाह्य चीज़ को छूता नहीं। परन्तु बाह्य चीज़ के लक्ष्य में भटक रहा है। बाह्य चीज़ के लक्ष्य में भटक रहा है। आहाहा! बाह्य चीज़ उसे छूती नहीं। परन्तु बाह्य वस्तु के लक्ष्य से, अन्तर लक्ष्य से भ्रष्ट होता हुआ,... आहाहा! अन्तर की चीज़ से भ्रष्ट होता हुआ, बाह्य चीज़ का लक्ष्य करके (भटकता है)। बाह्य चीज़ उसे दु:ख या लक्ष्य नहीं करवाती। आहाहा! मात्र अपने आनन्द को भूलकर परचीज़ में अपना अस्तित्व मानकर, मुझे इसमें मजा आता है, यह मेरी चीज़ है। पुत्र-पुत्री, पैसा, इज्जत, वाणी मेरी चीज़ है, यह मिथ्यात्व का सेवन है। आहाहा!

अनादि काल से जीव बाहर भटकता है, अति अल्प जानता है,... जानता है, विकास तो थोड़ा है। अनादि से अल्प जानता है। **आकुलता में रुक गया है,...** वहाँ आनन्द तो थोड़ा भी नहीं है। आहाहा! अकेली शुभ-अशुभराग की आकुलता में रुक गया है। सूक्ष्म लगे, प्रभु! बात तो यह है। तीन लोक के नाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव अनन्त

तीर्थंकरों का यह कथन है। जो बात कहीं और नहीं है। है, वह बहुत गूढ़ और गम्भीर है। गूढ़ और गम्भीर को सुलझाकर, उसकी श्रद्धा करना, यह कोई अपूर्व अलौकिक बात है। आहा..! अपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी नहीं किया, वह चीज़ यह अन्तर की है। बाकी सब तो पूर्व में अनन्त बार जाना, देखा और माना। आहाहा!

अनादि काल से जीव बाहर भटकता है, अति अल्प जानता है, आकुलता में रुक गया है, तथापि... तो भी **चैतन्यद्रव्य...** चैतन्यवस्तु **और उसके ज्ञान-आनन्दादि गुण ज्यों के त्यों स्वयमेव...** अपने से **सुरक्षित रहे हैं,...** आहाहा! द्रव्य अर्थात् वस्तु और उसकी शक्ति अर्थात् गुण स्वयंमेव सुरक्षित हैं। **सुरक्षित रहे हैं,...** आहाहा! उसकी रक्षा करे तो रहे, ऐसा है नहीं। रक्षा न करे तो न रहे, ऐसी यह चीज़ नहीं है। यह चीज़ तो अनादि-अनन्त अन्दर सुरक्षित है। आहाहा! इस चमड़ी से तो पार परन्तु पुण्य-पाप का विकल्प, राग उससे पार प्रभु, जैसा है वैसा अनादि का पड़ा ही है। आहाहा! ऐसा उपदेश। उसमें तो करना कि यह करो, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। कहाँ थी समकित बिना? आहा..! दूल्हे बिना की बारात। दूल्हे बिना की बारात। दूल्हा नहीं है, बारात निकाली। उसे बारात नहीं कहते। उसे तो लोगों का समूह कहते हैं। आहाहा!

वैसे भगवान आत्मा, उसकी पर्यायबुद्धि छोड़कर द्रव्यबुद्धि न हो, तब तक उसकी मुख्यता नहीं है और दूसरे की मुख्यता है। वह दूल्हे बिना की बारात है। आहाहा! वर समझते हो? दूल्हा कहते हैं न? आहाहा! **अति अल्प जानता है, आकुलता में रुक गया है, तथापि चैतन्यद्रव्य और उसके ज्ञान-आनन्दादि गुण ज्यों के त्यों स्वयमेव सुरक्षित रहे हैं,...** स्वयमेव-अपने से सुरक्षित है। उसकी कोई रक्षा करे तो रहे, ऐसी यह चीज़ नहीं है। स्वयंसिद्ध वस्तु अनादि-अनन्त है। उसके गुण सुरक्षित अनादि-अनन्त हैं। आहा..! उनकी सुरक्षा नहीं करनी पड़ती। अनन्त गुण और अपना जो द्रव्य त्रिकाली शुद्ध चिदानन्द, उसकी कोई रक्षा नहीं करनी पड़ती। आहाहा!

ऐसे परमार्थस्वरूप की सम्यग्दृष्टि जीव को अनुभवयुक्त प्रतीति होती है। आहाहा! अन्तिम शब्द है न वह? **ऐसे परमार्थस्वरूप की...** द्रव्य-गुण त्रिकाली ध्रुव और पर्याय में चाहे जितनी हीनाधिकता और विपरीतत हो, परन्तु अन्तर में कुछ नहीं है। अन्दर में द्रव्य और गुण तो पूर्ण अखण्डानन्द भरा है। आहाहा! **ऐसे परमार्थस्वरूप की सम्यग्दृष्टि**

जीव को अनुभवयुक्त प्रतीति होती है। उसका अनुभव करके प्रतीति होती है। जान करके प्रतीति होती है। आहाहा! राग और दु:ख से भिन्न ऐसा आनन्दादि ज्ञान का अनुभव करके, जानकर अनुभव होकर प्रतीति होती है। जाने बिना की प्रतीति किसकी? जो चीज़ दृष्टि में आयी नहीं, तो प्रतीति किसकी? **परमार्थस्वरूप की सम्यग्दृष्टि जीव को अनुभवयुक्त...** आहाहा! गुण के भानसहित प्रतीति होती है। आहाहा! एक बोल एक घण्टा चला। कितना अच्छा है! एक घण्टा पूरा होने आया। आहाहा! बाद में ३७१। वह है न?

जैसे स्वप्न के लड्डुओं से भूख नहीं मिटती, जैसे मरीचिका के जल से प्यास नहीं बुझती, वैसे ही पर पदार्थों से सुखी नहीं हुआ जाता।

'इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे॥'

—यही सुखी होने का उपाय है। विश्वास करो॥३७१॥

३७१। किसी ने लिखकर रखा है कि यह पढ़ना। आहाहा! ३७१। **जैसे स्वप्न के लड्डुओं से भूख नहीं मिटती,...** सपने में लड्डू खाया और भूख थी तो लड्डू खाने से भूख नहीं मिटती। आहाहा! स्वप्न में भोजन किया, मैसुर खाया। भूख बहुत लगी थी और मैसुर खाये। इससे पेट नहीं भरता। **जैसे मरीचिका के जल से प्यास नहीं बुझती,...** सूर्य के तेज से पानी-जल जैसा दिखे न? उससे तृषा नहीं छिपती। **वैसे ही पर पदार्थों से सुखी नहीं हुआ जाता।** विशेष कहेंगे.... (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३५, श्रावण कृष्ण - १४, सोमवार, तारीख ८-९-१९८०
वचनामृत - ३७१, ३७२ प्रवचन-२८

वचनामृत ३७१। **जैसे स्वप्न के लड्डुओं से भूख नहीं मिटती,...** क्षुधा हो, क्षुधा और स्वप्न में लड्डू आये, उससे कहीं भूख मिटती है? **स्वप्न के लड्डुओं से भूख नहीं मिटती, जैसे मरीचिका के जल से...** सूर्य के धूप में रेत हो, उसमें जल जैसा दिखता है-मरीचि। आहा..! उससे कोई प्यास नहीं बुझती। वह कोई पानी नहीं है। उससे प्यास नहीं बुझती। **वैसे ही परपदार्थों से सुखी नहीं हुआ जाता।** आत्मा के सिवा-अलावा कोई भी चीज़-लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, स्त्री, पुत्र, मकान, इज्जत वह सब परपदार्थ है। परपदार्थ से सुखी नहीं हुआ जाता। आहाहा! पूरी दुनिया से फर्क पड़े तब, अन्दर में आये। पूरी दुनिया का रस उड़ जाए। आहाहा!

कहते हैं, वैसे ही परपदार्थ सब। शुभ विकल्प से लेकर पूरी दुनिया की चीज़ अनुकूल पैसा, स्त्री, कुटुम्ब, इज्जत में सुख नहीं है। अज्ञानी कल्पना करके उसमें सुख मानता है। सुखी है नहीं। स्वप्न के लड्डू से जैसे भूख नहीं मिटती, वैसे अपना सुख परपदार्थ से नहीं मिलता। आहाहा! पैसे की अनुकूलता हो, पुत्र की अनुकूलता हो और नौकर भी अच्छे काम करनेवाले मिले, तो कहते हैं, परपदार्थ से थोड़ा भी सुख नहीं है। परपदार्थ में जितना तेरा लक्ष्य जाता है, उतना तो दुःख है। आहा..! परपदार्थ से दुःख नहीं है। आहा..! परपदार्थ में लक्ष्य जाने से जो रागादि, द्वेषादि (होते हैं), अनुकूल जानकर राग और प्रतिकूल जानकर द्वेष (होता है), अनुकूल-प्रतिकूल कोई चीज़ नहीं है। चीज़ तो आत्मा ज्ञान है, सब चीज़ ज्ञान का ज्ञेय है। ज्ञान में जानने लायक है। बस! इससे अतिरिक्त, आत्मा के अलावा राग का विकल्प दया, दान का वहाँ से लेकर बाह्य सब चीज़, उसमें कहीं मेरापना नहीं है और उसमें कोई सुख का साधन है नहीं। आहाहा! और पूरा दिन उसके पीछे जिन्दगी गँवाता है। पैसा कमाना, स्त्री, पुत्र.. आहाहा!

बहिन ने यहाँ दृष्टान्त दिया है, उसके बाद गाथा है। समयसार की निर्जरा अधिकार की २०६ गाथा है। २०६ गाथा। गाथा नहीं रखकर हरिगीत रखा है।

'इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे॥'

जिसमें सदा.. भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप आनन्दमूर्ति प्रभु, उसमें तू रतिवन्त बन। वहाँ जा और वहाँ तू रति-प्रेम कर। तुझे आनन्द होगा। आहाहा! बहुत फेरफार। **इसमें सदा रतिवंत बन,..** प्रभु आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसमें सदा रति-रति प्रेम कर। और **इसमें सदा सन्तुष्ट रे।** वहाँ सन्तुष्ट कर बाह्य पदार्थ में कहीं अनुकूलता मिले और सन्तोष माने वह तो दुःख है। आहाहा! **इसमें सदा सन्तुष्ट रे।** भगवान आत्मा आनन्द और सच्चिदानन्द प्रभु, उसमें सदा सन्तोष मान, उसमें आनन्द है, उसमें शान्ति है, उसमें प्रभुता है, उसमें सर्वस्व है। जितनी शान्ति और सुख चाहिए, वह सर्वस्व उसमें है।

इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे। उसके कारण तुझे उत्तम सुख तेरे में होगा, बाकी बाहर में कहीं नहीं है। आहाहा! ऐसा मानना... शरीर मिट्टी-धूल है, उससे भी आत्मा में कोई सुख नहीं, दुःख है। उस ओर लक्ष्य करने से, उसका ध्यान रखने से, उसकी सम्भाल करने से विकार और दुःख उत्पन्न होता है। आहाहा! एक स्वपदार्थ के अलावा सब पदार्थ में लक्ष्य करने से दुःख उत्पन्न होता है और परपदार्थ, राग से लेकर पर को अपना मानकर मिथ्यात्व होता है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! एक ओर प्रभु आत्मा और एक ओर यह सब वस्तुएँ। आहा..!

उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे। बाह्य कोई भी चीज़ में तेरे सुख की गंध नहीं है। आहाहा! अपने आत्मा के अलावा सर्व चीज़ में लक्ष्य देने से तो दुःख होगा और उस चीज़ को अपनी मानने से मिथ्यात्व होगा। आहाहा! अपनी चीज़ जो निज स्वरूप ज्ञान और आनन्दस्वरूप, त्रिकाली सनातन शाश्वत् जिसकी सत्ता-मौजूदगी है, ऐसी चीज़ के अलावा कोई भी चीज़... आहाहा! मक्खन हो और मैसुर हो, पत्तरवेलिया हो, वह सब जड़ परपदार्थ (है)। तेरा वहाँ लक्ष्य जाएगा तो तुझे दुःख होगा। आहाहा! ऐसा करना। एक आत्मा के अलावा सब पदार्थ, विकल्प-दया, दान, भक्ति, व्रत का विकल्प उठता है, उस विकल्प से लेकर सब चीज़ पर है। पर में लक्ष्य जाने से अपना सुख के लक्ष्य से भ्रष्ट होता है।

आहाहा! अपने में आनन्द है, उस आनन्द से भ्रष्ट होता है, तब पर में आनन्द और सुख मानने लगता है। इससे अतिरिक्त परवस्तु मेरी है, मैं उसका हूँ, ऐसी दृष्टि को तो परमात्मा मिथ्यादृष्टि कहते हैं, वह मिथ्यादृष्टि है, जैन है ही नहीं। जैन की उसे खबर नहीं। जैन 'घट-घट अन्तस जिन बसे, घट घट अन्तर जैन।' आहाहा!

घट घट अंतर जिन वसे, घट घट अंतर जैन,
मतमदिरा के पान सौ मतवाला समझै न।

परन्तु अपने अभिप्राय का दारू पिया है। आहाहा! उस दारू के नशे में मतवाला को पर में से अपनी बुद्धि हटती नहीं। आहाहा! जैन तो अन्तर बसता है, आत्मा जैनस्वरूप ही है। जैन कोई पक्ष नहीं है, जैन कोई सम्प्रदाय नहीं है। आहाहा! अन्तर स्वरूप राग के विकल्प से भिन्न ऐसी अपनी 'जि' चीज़ है, उस चीज़ में रहना, दृष्टि करना और राग से एकता नहीं करना, उसका नाम जैन कहने में आता है। आहाहा! बड़ी कठिन बात। यह तो गुजराती है। मूल गाथा निर्जरा अधिकार, समयसार की २०६ गाथा है, उसका गुजराती है। आहाहा!

यही सुखी होने का उपाय है। अन्तर में जाना, बाहर से चिन्ता और उपयोग हटाकर अन्तर में अचिन्ता और उपयोग लगा देना। आहाहा! यह एक ही सुखी होने का उपाय है। सुखी होने का यह एक ही इलाज और उपाय वीतराग मार्ग में है। अज्ञानी किसी भी प्रकार से रास्ता बतावें, उससे कुछ होता नहीं। इतनी बार भक्तामर पढ़ो तो तुम्हें सुख होगा, ऐसा लगा दे। फिर हमेशा भक्तामर बोले। आहा..! भक्तामर बोलने से पैसे से, कुटुम्ब से, इज्जत से सुखी होगा। सुबह भक्तामर बोले। आहा..!

कालावड में एक बार गये थे, कालावड। उपाश्रय के सामने कोई मकान था। ब्राह्मण था कि कोई भी हो, परन्तु भक्तामर सुबह बोलता था। मुझे लगा, यह क्यों भक्तामर सवेरे (बोलता है)? गहराई में यह होता है कि भक्तामर बोलेंगे तो सब व्यवस्थित रहे और रुचि के अनुकूल सब सामग्री रहे। आहाहा! अरे..! प्रभु! बाह्य सामग्री तो एक रजकण भी उसके काल में जहाँ जानेवाला, रहनेवाला, जैसी स्थिति में रहनेवाला हो, वह वहाँ रहता है। उसमें दूसरे परमाणु का तो अधिकार नहीं है, आत्मा का अधिकार तो परमाणु पर बिल्कुल अंशमात्र नहीं है। आहाहा!

यह शरीर परमाणु का पिण्ड है। उसमें आत्मा का बिल्कुल अधिकार नहीं है। वह तो जड़-मिट्टी-धूल है। ऐसे लक्ष्मी भी धूल-मिट्टी है। यह कागज है, कागज है, वह मिट्टी है न? क्या कहते हैं? नोट... नोट। पहले नगद पैसे थे, अब नोट हो गयी। है तो वह भी धूल। ऐसी नोट पाँच सौ, हजार, दो हजार देखे.. उसमें हजार-हजार की एक-एक नोट (देखकर) आहा..! (करने लगता है)। क्या है? प्रभु! क्या है? अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त-अनन्त सन्तोष अन्दर में पड़ा है। अन्तर चीज़ में अनन्त आनन्द और सन्तोष है। उसे भूलकर पर कोई भी छोटी-बड़ी चीज़ में सुख की कल्पना करना, वह मिथ्यात्वभाव है और वह दु:ख है। आहाहा!

यहाँ अन्दर में भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति प्रभु, वीतरागस्वरूपी विराजमान सर्वांग आनन्द से भरा प्रभु, असंख्य प्रदेशी सर्वांग अतीन्द्रिय आनन्द से भरा है, वहाँ जा। वहाँ उपयोग लगा। वहाँ वृत्ति को... श्रीमद् में आता है न? 'मूलमार्ग सांभलो जिननो रे, करी वृत्ति अखंड सन्मुख।' वृत्ति अर्थात् परिणति, परिणति अर्थात् पर्याय। 'करि वृत्ति अखंड सन्मुख...' पर्याय को द्रव्य सन्मुख अखण्ड कर। भंग भेद नहीं, गुण और गुणी ऐसा भेद भी नहीं। ऐसी परिणति अखण्ड पर लगा दे। तो वह जैन मार्ग है। आहाहा! यह तो सवेरे भक्तामर बोले, या आनुपूर्वी सवेरे गिने, या तो नमस्कार मन्त्र की माला गिने। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! वहाँ कहीं भी सुख नहीं है। यही एक सुखी होने का उपाय (है)। आत्मा में अन्दर में रुचि करके, पुसान करके अन्दर में एकाग्र होकर सुख का वेदन करना, वही एक ही उपाय सुखी होने का है। आहाहा! **विश्वास करो...** आहा..! है? विश्वास करो। प्रभु में सब है। मेरी चीज़ के सिवा कोई चीज़ में मेरा सुख, आनन्द है नहीं। आहाहा! ऐसा तो कभी विचार भी नहीं किया हो। बाहर में कुछ सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण, दान किया, कुछ किया तो हो गया। वह सब तो परक्रिया है। परक्रिया में तो राग है; राग है, वह तो दु:ख है। आहाहा! इसमें सुखी होने का उपाय है। विश्वास, श्रद्धा (कर)। त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द से भरा पड़ा प्रभु है, विश्वास कर। रुचि कर, रुचि कर। उसका पुसान कर। उसके अलावा कोई चीज़ में पुसान करने की चीज़ है नहीं। आहा..! यह मार्ग है। पैसे के कारण आपको कहाँ सूझे ऐसा है। कहा था न? उसने मन्दिर में आठ लाख खर्च किये थे। दो करोड़ का स्टील थी, चालीस लाख

मिले। आठ लाख खर्च किये और चालीस लाख मिले। कोई तो कल कहता था कि दो करोड़ से ज्यादा.. मैंने कहा, मैंने बोल दिया है, चार-पाँच करोड़। उसे पैसे बढ़ गये हैं। ऐसा कोई कहता था।

मुमुक्षु :- आप विराजमान थे, इसलिए बढ़ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो वह चीज़ पड़ी थी और यहाँ काम में रुके थे, उसमें भाव बढ़ गया। उसमें आत्मा में क्या हुआ? आत्मा में हुआ, 'यह मेरा है'—ऐसी ममता है तो दु:ख हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- धूल में भी नहीं है। एक दिन के दस-दस हजार पैदा करता है। चन्दुभाई के भाई! पूनमचन्द, पूनमचन्द। मुम्बई। पूनमचन्द। मलूकचन्दभाई उनके पिताजी अहमदाबाद में दु:खी हो गये हैं। अहमदाबाद में दो पुत्र हैं। एक लड़का स्विटरजलैण्ड है। उसके पास चार-पाँच करोड़ है, एक यहाँ है, उसके पास पाँच-छह करोड़, दूसरा अहमदाबाद में है, उसके पास थोड़े हैं, दस लाख जितने। अभी बिस्तर में है। गिर गये, कमजोर शरीर था, गिर गये तो हड्डी टूट गयी। अर्ध पक्षघात हो गया। आहाहा! चार-चार पुत्र ऐसे पैसेवाले। दो पुत्र तो पाँच-पाँच, छह-छह करोड़वाले। धूल वहाँ क्या करे?

मुमुक्षु :- पुत्र के पास पैसे हो, उसमें पिता को क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री :-पैसा उसका है, खर्च करने हो तो खर्च कर सकते हैं। वह ना नहीं कहेगा। परन्तु खर्च करे तो भी क्या हुआ? खर्च करना, वह तो जड़ वस्तु है। जड़ को मैं देता हूँ, प्रभु! मार्ग दूसरा है। जड़ चीज़ को मैं देता हूँ, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा! क्योंकि उस चीज़ का मालिक तू नहीं है। वह चीज़ जहाँ रहनेवाली है, जैसी पर्याय होनेवाली है, ऐसे उसके कारण से उत्पन्न होती है। उसका तू मालिक बनकर मैंने दिया, मैंने लिया और मैंने ऐसा किया (मानता है)। प्रभु का मार्ग कठिन है, प्रभु! आहाहा! वीतराग जिनेश्वर सर्वज्ञदेव का मार्ग दुनिया से कोई अलग है। ३७१ (पूरा हुआ।)

जैसे पाताल कुआँ खोदने पर, पत्थर की आखिरी पर्त टूटकर उसमें छेद हो जाने पर पानी की जो ऊँची पिचकारी उड़ती है, उसे देखने से पाताल के पानी का अन्दर का भारी जोर ख्याल में आता है, उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग द्वारा गहराई में चैतन्यतत्त्व के तल तक पहुँच जाने पर, सम्यग्दर्शन प्रगट होने से, जो आंशिक शुद्ध पर्याय फूटती है, उस पर्याय का वेदन करने पर चैतन्यतत्त्व का अन्दर का अनन्त ध्रुव सामर्थ्य अनुभव में—स्पष्ट ख्याल में आता है ॥३७२ ॥

३७२। आहाहा! **जैसे पाताल कुआँ खोदने पर, पत्थर की आखिरी पर्त टूटकर...** आखिरी का पत्थर। **टूटकर उसमें छेद हो जाने पर...** आहा..! यहाँ बोटाद के पास गाँव है। क्या नाम? वहाँ से निकले थे। जनडा। क्या? जनडा.. जनडा। जनडा के पास से निकले थे। जनडा में खोदते-खोदते इतना खोदा फिर भी पानी नहीं निकला। एक बाकी रह गया था। वह टूटे तो पानी निकले। उसमें एक बारात निकली, बारात। दस बजे थे। यहाँ कुआ है तो यहाँ पानी मिलेगा। ऊपर से देखा तो पानी नहीं था, फिर ऊपर एक बड़ा पत्थर था, उसे डाला। डाला तो अन्दर से एकदम पानी निकला। आखिरी पर्त रह गयी थी। वह फूटा और फिर पानी निकला। अभी तो कोष रहता है, दस, बारह, पन्द्रह कोष पानी (रहता है)। हम निकले थे, जनडा। बोटाद और बडौदा के बीच में है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **जैसे पाताल कुआँ खोदने पर, पत्थर की आखिरी पर्त टूटकर उसमें छेद हो जाने पर पानी की जो ऊँची पिचकारी उड़ती है,...** आहाहा! वह आखिरी पर्त टूट जाए, तब अन्दर छेद होने से पानी निकलता है। पानी उड़े। इतना जोर कि अन्दर पानी कितना चला जा रहा है कि जिसे एक छेद हुआ तो उछलता है। आहाहा! **पानी की जो ऊँची पिचकारी उड़ती है,...** आहाहा! **उसे देखने से पाताल के पानी का अन्दर का भारी जोर ख्याल में आता है,...** आहा..! यह तो दृष्टान्त देते हैं। अरेरे! **उसे देखने से पाताल के पानी का अन्दर का भारी जोर ख्याल में आता है,...** अन्दर में पानी का जोर पाताल में कितना चलता है कि छेद हुआ तो पिचकारी उठी। आहाहा! यह दृष्टान्त है।

उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग द्वारा... आहाहा! राग की मन्दता करते-करते सूक्ष्म उपयोग हो जाए, अन्दर में सूक्ष्म उपयोग करे। जानने-देखने का जो उपयोग है, वह बहुत

पतला और सूक्ष्म करे... आहा..! तो उस **सूक्ष्म उपयोग द्वारा गहराई में...** गहराई में चैतन्य का पाताल जो अन्दर है,... आहाहा! पर्याय एक समय की है। उसमें अनादि का खेल है। कभी पर्याय के अन्दर पाताल में भगवान विराजता है, पूर्णानन्द का नाथ, उस ओर तो कभी दृष्टि की नहीं। **गहराई में चैतन्यतत्त्व के तल तक पहुँच जाने पर,...** आहाहा! उपयोग जानने-देखने का सूक्ष्म करके, अन्तर में पहुँच जाए पाताल में, पर्याय पर जो दृष्टि हैं, उसको अन्तर में ले जाए, आहा..! सूक्ष्म उपयोग करके। भाषा तो सादी है, परन्तु (भाव गहरे हैं)। आहाहा! **तल तक पहुँच जाने पर, सम्यग्दर्शन प्रगट होने से,..** आहाहा! पाताल में से फूटकर जैसे पानी उड़ता है, ऐसे भगवान आत्मा उपयोग सूक्ष्म करके आत्मा में लगा दे तो अन्तर में सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। आनन्द की धारा बहती है। आहाहा!

जैसे वह पानी की पिचकारी उड़ती है, पिचकारी जैसे निकलती है, वैसे यहाँ अन्दर... आहा...! भगवान महाप्रभु.. दूसरी चीज़ को खबर नहीं है, है या नहीं, शरीर को खबर नहीं है कि हम है या नहीं, उसको खबर है? यहाँ अपनी खबर है और दूसरे सबकी खबर है। पैसे को पैसे की खबर नहीं। आत्मा को खबर है कि यह पैसा जड़ है। आहाहा! स्त्री आदि को खबर नहीं है कि मैं उसकी नहीं हूँ। वह तो मानती है कि यह मेरे पति हैं। मेरे पतिदेव हैं। आत्मा जाने अन्दर से कि मेरे से तो वह चीज़ भिन्न है। मेरा और उसका कोई सम्बन्ध है नहीं। आहाहा!

ऐसा सूक्ष्म उपयोग, जानन-देखन का उपयोग / व्यापार सूक्ष्म करके पाताल में अन्दर द्रव्य में; द्रव्य अर्थात् वस्तु पाताल में ले जाए तो उसको सम्यग्दर्शन की कणिका छूटती (प्रगटती) है। आहाहा! उसमें आनन्द की धारा के साथ, अतीन्द्रिय आनन्द की धारा के साथ सम्यग्दर्शन फूटता है। आहाहा! भाषा सादी है, परन्तु वस्तु तो बहुत महँगी है। कभी अभ्यास किया नहीं और प्रेम भी नहीं। पूरी दुनिया में ऐसे ही.. जिन्दगी पूरी करके जाए चार गति में। आहा..! बहुत लोग तो माँस आदि न खाते हों, वे बहुभाग तो पशु होंगे, तिर्यंच होंगे। आहाहा!

यह प्रभु अन्दर विराजता है, उसे सूक्ष्म उपयोग द्वारा, जैसे पाताल में से पानी की

पिचकारी उठती है, वैसे सूक्ष्म उपयोग करने से अन्तर में से सम्यग्दर्शन और ज्ञान की धारा निकलती है। आहाहा! ऐसा मार्ग।

उपयोग द्वारा गहराई में चैतन्यतत्त्व के तल तक... चैतन्य तत्त्व का तल ऊपर है वह पर्याय है। यह जानने-देखने का जो व्यापार होता है, वह तो पर्याय है। अनादि की वहाँ दृष्टि है। पर्याय पर दृष्टि, पर्याय पर अस्तित्व, पर्याय पर मान्यता और वही मैं हूँ, ऐसे अनादि काल से पर्यायदृष्टि तो है। आहाहा! उस दृष्टि को जिसकी पर्याय है, उस पर ले जा, सूक्ष्म उपयोग करके। बात गहन है, प्रभु! मार्ग तो ऐसा है। दूसरी रीति से कोई मनावे और आसान कर दे, आसान, वह आसान नहीं होगा। आसान के बदले आसानी की राख होगी। आहाहा!

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन प्रगट करने की यही विधि है?

पूज्य गुरुदेवश्रीः- यही विधि है।

जो वर्तमान पर्याय, उसका उपयोग पर की ओर झुका है, अनादि से पर की ओर झुका और वही काम किया है। संसार दु:ख का। आहाहा! उसको एक बार कहते हैं, प्रभु! तुझे मनुष्यपना मिला और वीतराग की वाणी सुनने का अवसर मिला.. आहाहा! एक बार तो तू ले। ज्ञान में सूक्ष्म उपयोग करके अन्तर में जा। आहाहा! ऐसी बात है, लो। दूसरे कहे, ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। इतनी सामायिक करो, इतने प्रतिक्रमण करो। जो करना है, वहाँ तो क्रिया का कर्ता (होता है), वह मिथ्यादृष्टि है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! पर की क्रिया का कर्तृत्व मानना, उसे प्रभु मिथ्यादृष्टि अजैन कहते हैं। आहाहा! बात कठिन, प्रभु! परन्तु सत्य बात तो यह है। परम सत्य परमात्मा स्वयं परमात्मा है आत्मा। अप्पा सो परमप्पा। आहाहा!

मुमुक्षु :- आत्मा-आत्मा घूंटने से काम नहीं चलेगा, पर्याय को अन्दर ले जाना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय को अन्दर ले जानी है। आत्मा तो ध्रुव है। आहा..! वर्तमान पर्याय को-अवस्था को, जो बाहर घूमती है, राग और द्वेष, ठीक-अठीक में बाहर में काम करती है.. ओहोहो! वह वर्तमान पर्याय जो अवस्था है, उसे वहीं रहने दे। वह तो

राग में रही। बादवाली पर्याय पलट करके अन्दर में ले जा। आहाहा! गहरी बात है। बाहर में धन्धा, पैसे कमाये और दुकान, नौकर... साहब पधारे, साहब। पधारो साहब! उसमें तो उसे ऐसा हो जाए... आहाहा!

मुमुक्षु :- बहिनश्री ने मन्त्र बताया है, मूल मन्त्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह मन्त्र है। बोटाद में रायचन्द गाँधी थे। पैसेवाले (थे)। और ...का व्यापार। ...का उन दिनों में। साठ साल पहले पचास हजार की कमाई थी। दुकान बड़ी, कोने में दुकान थी। नौकर बहुत थे। सेठ न हो तो नौकर पैर लम्बे करके पड़े हो-बैठे हो। लम्बी गली थी। बाजार लगी थी। उसमें ख्याल आया कि सेठ आये। सेठ आये इसलिए सब एकदम बहियाँ इत्यादि लेकर (ठीक ठाक बैठ गये)। बोटाद की बाजार में आखिर की दुकान है। रायचन्द गाँधी की। आहाहा! उसके दो पुत्र अभी मुम्बई में है। चम्पक और हीरालाल, मुम्बई में है। नयी औरत के दो। पुरानीवाली के सब मर गये। आहाहा! उस दिन उसे ऐसा था कि... आहाहा! पुत्र, यह, वह... बहुत कमाई। उसमें क्या है? वह तो अनन्त बार हो गया। आहा..!

यहाँ, सूक्ष्म उपयोग करने से... रायचन्द गाँधी श्रीमद् का पढ़ते थे। श्रीमद् राजचन्द्र। आहाहा! **सूक्ष्म उपयोग द्वारा...** यह उसकी विधि है, आत्मा को प्राप्त करने की।

मुमुक्षु :- सौ बार पढ़ा, इतनी महिमा आयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, यह वस्तु ऐसी है। आहाहा! बहिन ने तो उस समय रात्रि में थोड़ी-थोड़ी बात की, लिखा गया और बाहर आ गया। आहाहा! इस प्रकार सूक्ष्म उपयोग (अर्थात्) जानने-देखने का जो व्यापार, उसे सूक्ष्म करके, जो स्थूलता से बाहर घूमता है, चारों ओर बाहर राग और द्वेष में (घूमता है), उसको सूक्ष्म करके गहराई में, **उपयोग द्वारा गहराई में...** अन्दर गहराई में चैतन्यरूपी पाताल जो गहरा द्रव्य है... आहाहा! **चैतन्यतत्त्व के तल तक पहुँच जाने पर,...** वह चैतन्यतत्त्व का तल है। पर्याय एक समय की वर्तमान है, उसमें अन्तर में तत्त्व देखो तो तल में महाप्रभु भगवान है। आहाहा!

सर्वज्ञ भगवान ने जो आत्मा देखा, वह आत्मा परमात्मस्वरूप ही है। सर्वज्ञस्वरूपी

प्रभु है। जो सर्वज्ञ होते हैं, कहाँ से होते हैं ? बाहर से सर्वज्ञता आती है ? आहा.. ! प्रभु ! सर्वज्ञ नाम की शक्ति अन्दर पड़ी है। ४७ शक्ति में आता है, समयसार। ४७ शक्ति है न ? ४७ को हिन्दी में क्या कहते हैं ? चार और सात। आहाहा ! उसमें सर्वज्ञ और सर्वदर्शि शक्ति अन्दर पड़ी है। प्रभु सर्वज्ञशक्तिवन्त ही है। उसका सर्वज्ञपना कहीं बाहर से आता नहीं, कोई क्रियाकाण्ड से आता नहीं। आहाहा ! जहाँ सर्वज्ञशक्ति अन्दर पड़ी है, वहाँ पर्याय को पाताल में ले जा। आहाहा ! गहराई, गहराई, गहराई। गम्भीर द्रव्यस्वभाव है, वहाँ ले जा। चैतन्यतत्त्व के तल तक। तल ध्रुव **तक पहुँच जाने पर, सम्यग्दर्शन प्रगट होने से,...** आहाहा ! वहाँ यथार्थ जैसी चीज़ है, ऐसी प्रतीत हो जाती है। क्योंकि ख्याल आ गया कि यह चैतन्य आनन्द है और पूरी आनन्द की मूर्ति और वीतराग की मूर्ति आत्मा है। ऐसा जो प्रतीति में आता है.. आहाहा !

जो आंशिक शुद्ध पर्याय फूटती है,... सम्यग्दर्शन तो आंशिक है, वह कोई पूर्णता नहीं है, पूर्णता तो सर्वज्ञता है। आहाहा ! **जो आंशिक शुद्ध पर्याय फूटती है,...** आहाहा ! अनन्त-अनन्त गुणों की एक समय में सूक्ष्म उपयोग अन्दर में देने से अनन्त गुणों की सूक्ष्म पर्याय एक समय में अनन्ती पर्यायें प्रगट होती हैं। अकेला सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वीतरागता, आनन्द, वीर्य, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता.. अरे.. ! कहाँ तक कहें ? आत्मा में जो योग नाम का गुण है, उसका अयोगपना तो चौदहवें गुणस्थान में होता है, परन्तु उस अयोग का अंश भी चौथे (गुणस्थान में) प्रगट होता है। आहाहा ! अनन्त जितने गुण हैं, उस अनन्त गुणों के तल में जाने पर अनन्त गुण का एक अंश, सबका एक अंश, अनन्त के अनन्त अंश,... आहाहा ! प्रगट होते हैं। यह विधि है, यह मार्ग है, भाई ! आहाहा ! दूसरे किसी भी प्रकार से कहकर, यहाँ का निश्चय है, सोनगढ़वाले निश्चय की बातें करते हैं, एकान्त निश्चय है, व्यवहार (उड़ा देते हैं)। सुन न, प्रभु ! व्यवहार है, होता है, कौन इन्कार करता है ? परन्तु वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा !

निश्चय अपना स्वरूप अन्दर तल में जाने पर... आहाहा ! जैसे पानी का विरडा होता है, पानी का विरडा समझते हो ? चाहे जितना भी भरो, पानी निकलता ही रहता है। हमारे उमराला में बड़ी नदी है, कालुभार। विरडा होता है न ? नदी पूरी हो गयी हो, इतना

विरडा (होता है), उसमें से पानी का घड़ा भरते ही रहो, फिर भी पानी निकलता ही रहता है। अन्दर में से पानी आता ही रहे। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा में पर्याय में ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है, वह बाहर आती है... विशेष.. विशेष.. विशेष.. विशेष.. और अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें बाहर आती हैं। आहाहा! एक ही पर्याय बाहर आती है, ऐसा नहीं। इसलिए श्रीमद् ने समकित की परिभाषा करते हुए, सर्वगुणांश सो समकित, ऐसा कहा। सर्व गुणांश। जितने गुण हैं, उसका एक अंश पर्याय में प्रगट होता है। आहाहा!

ऐसी **जो आंशिक शुद्ध पर्याय छूटती है,...** आहाहा! आंशिक, हों! वह अंश है। **उस पर्याय का वेदन करने पर...** आहाहा! उस पर्याय का वेदन (करने पर)। अनादि से तो राग और द्वेष का वेदन है। पुण्य और पाप असंख्य प्रकार के शुभ-अशुभ भाव, उसी का वेदन और चार गति है। यह वेदन भिन्न जाति का है। आहा..! पर्याय का वेदन करने पर। आहाहा! जो पर्याय फूटती है-निकलती है, उसका वेदन करके। आहाहा! **चैतन्यतत्त्व का अन्दर का...** चैतन्यतत्त्व का अन्दर का **अनन्त ध्रुव सामर्थ्य अनुभव में-स्पष्ट ख्याल में आता है।** कि इस चीज़ में जो आनन्द आया, वह पूर्ण आनन्दमय है, ऐसा ख्याल आता है। वस्तु पूर्ण आनन्दमय है, उसका बाहर में-पर्याय में तो अंश आया। आहाहा! वह अंश अन्दर पूर्ण है, ऐसी प्रतीत करवाता है। आहाहा! ऐसा मार्ग कभी सुना नहीं हो, कभी किया नहीं। धूल को प्राप्त करने और स्त्री-पुत्र को प्रसन्न रखने में पूरा दिन पाप की गठरी बाँधता है। आहाहा! यह प्रभु अन्दर, उसे कहते हैं कि एक बार सूक्ष्म उपयोग कर और उसके तल पर ले जा। उसका तल... तल-पाताल। पर्याय का, वर्तमान पर्याय का पाताल ध्रुव है। आहाहा!

मुमुक्षु :- १४४ गाथा का पूर्ण हृदय इसमें समा गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वस्तु यह है, मार्ग यह है, प्रभु!

पहले निर्णय में तो पक्का करे कि मार्ग तो यह है, बाकी दूसरा कोई मार्ग है नहीं। दूसरा कोई कहते हो कि यह करो, वह करो, यह करो। तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। भक्तामर हमेशा बोलना, फलाना ऐसा करना, आनुपूर्वी गिनना। लाख, करोड़ गिन, अनन्त बार गिना। भक्तामर अनन्त बार गिना। आहाहा! वह सब तो विकल्प, राग है। सूक्ष्म

उपयोग (कर)। जैसे अन्दर में से पाताल में से आखिरी पर्त, पत्थर की पर्त-पर्त। पत्थर की पर्त होती है न आखिर की ? वह टूटने पर जैसे पानी फटता है, वैसे यहाँ एक आखिरी पर्त, मिथ्यात्व के अंश की पर्त टूटती है (तो) पाताल में से अन्दर में से पर्याय आती है। आहाहा ! बहुत अच्छी बात है। आहाहा ! दूसरे कुछ भी मानते हों। अनादि से दूसरा माना कहाँ है ? आहा.. !

अरे.. ! हमारे हीराजी महाराज बेचारे कैसे सज्जन थे। यह बात सुनने नहीं मिली थी। आहाहा ! यह बात चलती ही नहीं थी। वह तो यह करो, वह करो, यह करो... यह करो कहनेवाले वह और सुननेवाले को उसमें मजा आता था। यह बात.. ! आहाहा ! अन्दर में चैतन्यतल भगवान राग और पुण्य के विकल्प से पार, वह पर्याय जो सूक्ष्म है, राग से भिन्न होकर सूक्ष्म पर्याय को पाताल में अर्थात् द्रव्य में, वस्तु का जो स्वरूप है, उसमें जोर देना, तो उसमें से सम्यग्दर्शन आदि पर्याय प्रगट होती है और चैतन्यतत्त्व का अन्दर का अनन्त ध्रुव... आहाहा ! पर्याय का वेदन होने पर उसको ख्याल आ जाता है कि यह चीज़ अनन्त ध्रुव सामर्थ्य अनुभव में स्पष्ट ख्याल में आता है। यह चीज़ ध्रुव है, अनन्त है। यह सम्यग्दर्शन तो एक नूमना आया, नमूना आया।

जैसे रुई की गठरी होती है न ? रुई की बड़ी गठरी। पच्चीस-पचास मण। नमूना निकाले। ऐसी ही पूरी चीज़ अन्दर भरी है। वैसे सूक्ष्म उपयोग, ज्ञान का सूक्ष्म उपयोग चैतन्यद्रव्य पर जोड़ने से... यह चैतन्यगुण की गठरी है। आहाहा ! चैतन्यगुण का गोदाम है। गुण का गोदाम है। अनन्त गुण जिसमें है। अनन्त स्वभाव का सागर है। अनन्त शक्ति का पिण्ड है। शक्ति अर्थात् गुण। आहाहा ! उस तत्त्व पर दृष्टि करने से जो पर्याय प्रगट हुई, उस पर्याय के वेदन से चैतन्यतत्त्व का अन्दर का अनन्त ध्रुव सामर्थ्य अनुभव में आता है। ओहोहो ! इतने अंश में इतना आनन्द और शान्ति (है तो) पूरी चीज़ कैसी है ! सारी पूर्ण चीज़ की प्रतीति तब आती है। आहाहा !

मुमुक्षु :- दृष्टान्त और सिद्धान्त सुन्दर में सुन्दर।

पूज्य गुरुदेवश्री :- सुन्दर में सुन्दर है। आहाहा ! शान्तिभाई ! ये आपके पैसे-फैसे की बातें (नहीं है)। बड़े नौकर ऐसा करते हैं, वैसा करते हैं। दुकान पर गये थे, पच्चीस

लोग। सबको पाँच सौ-हजार देते होंगे। एक-एक को। ऐसे पच्चीस लोग दुकान में काम करते थे। धूल इकट्ठी हो। आहाहा!

मुमुक्षु :- धूल से दाने आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- धूल से दाने नहीं आते हैं। दाना दाने के कारण आता है। पैसा दूसरी चीज़ है, दाना दूसरी चीज़ है। प्रभु! एक चीज़ से दूसरी चीज़ आती है, यह मान्यता बिल्कुल भ्रम और अज्ञान है। आहाहा! अरेरे..! उसकी निज सत्ता के सामर्थ्य की बात, प्रभु! सुनी नहीं। जिन्दगी में उसने क्या किया? आहाहा! ३९ से ४३ गाथा है न? समयसार की ३९ से ४३। वहाँ तो शुभभाव में रुकनेवाले को नपुंसक कहा है। ३९ से ४३ गाथा है, समयसार। वहाँ शुभ-अशुभभाव में रुकनेवाले को, अनादि से वहाँ रुका है, उसको नपुंसक कहा है। पावैया / हिजड़ा कहा है। जैसे पावैया / हिजड़े को वीर्य नहीं होता है तो पुत्र नहीं होता। वैसे पुण्य और पाप में धर्म की प्रजा नहीं होती। आहाहा! शुभ और अशुभभाव नपुंसकता है। दो जगह आया है। एक वहाँ है और एक १५४ में है, पुण्य-पाप अधिकार है न? १५४ गाथा। समयसार। वहाँ है।

जो कोई पुण्य और पाप में रुककर अन्दर में नहीं जाते हैं, वे नामर्द, नपुंसक है। मूल पाठ में तो दो बार **क्लीब,** दो बार **क्लीब,** ही है। नपुंसक अर्थ किया है। आहाहा! प्रभु! तुझे पुरुषार्थ, वीर और आदमी तो तब कहें... आहाहा! तेरा अन्दर भगवान विराजता है, वहाँ जाकर पाताल तोड़। आहाहा! वहाँ सब ऋद्धि भरी है।

यही कहते हैं, अनन्त ध्रुव। अन्दर का चैतन्यतत्त्व का एक अंश का भी वेदन आया, वहाँ तत्त्व का अन्दर का अनन्त ध्रुव सामर्थ्य अनुभव में अर्थात् स्पष्ट ख्याल में आया। ख्याल में आया कि यह पूरी चीज़ आनन्द से भरी है। यह पूरी चीज़ ज्ञान से भरी है। ज्ञान का अंश सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ, उसके द्वारा पूरा आत्मा ज्ञान से भरा है, आनन्द का अंश प्रगट हुआ, उससे पूरा आनन्द से भरा है। वीर्य का अंश प्रगट हुआ, वर्तमान निर्मल दशा प्रगट करने में वीर्य-पुरुषार्थ प्रगट हुआ। तो वह भी अंश आया। तो अन्तर में पूर्ण वीर्य है, पुरुषार्थ पूर्ण है। ऐसे अंश के वेदन में पूरे अंशी का माहात्म्य आता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

ऐसे देखो तो धमाधम कितनी लगे। वहाँ गये थे न ? अफ्रीका। अफ्रीका गये थे। तुम थे न ? धमाधम। २६ दिन रहे। ४५ लाख रुपया इकट्ठा किये। १५ लाख पहले किये थे। २६ दिन रहे उसमें ४५ लाख (आये) । एक प्रतिमा लक्ष्मीचन्दभाई ने विराजमान की। मण्डल के प्रमुख है। एक प्रतिमा भगवान की बीच में विराजमान की, उसके साढ़े पाँच लाख दिये। आहाहा ! उसमें उत्साह और जागृति देखने में आती है। वह तो राग मन्द हो तो पुण्य है। वह साढ़े पाँच लाख क्या, करोड़ रुपया दे। वह धर्म नहीं है। आठ लाख उसने दिये हैं। बैंगलोर में मन्दिर बनाया। कुछ भी हो, वह तो प्रभु ! बाहर की राग की मन्दता है। परन्तु आत्मा में अन्दर में जो शक्ति पड़ी है, उसको पहुँचने में तो सूक्ष्म उपयोग, ज्ञान का सूक्ष्म उपयोग। शुभ और अशुभराग से रहित। शुभ और अशुभराग दोनों पुण्य और पाप। दोनों संसार है। आहाहा ! सूक्ष्म उपयोग अन्दर लगाने से स्पष्ट ख्याल में आता है कि यह चीज़ अन्दर पूर्ण है, ऐसा स्पष्ट ख्याल में आता है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - १, बुधवार, तारीख १०-९-१९८०
वचनामृत - ३७३, ३७६, ३७७ प्रवचन-२९

सब तालों की कुंजी एक—'ज्ञायक का अभ्यास करना'। इससे सब ताले खुल जाएँगे। जिसे संसार कारागृह से छूटना हो, मुक्तिपुरी में जाना हो, उसे मोह-राग-द्वेषरूप ताले खोलने के लिये ज्ञायक का अभ्यास करनेरूप एक ही कुंजी लगानी चाहिए।।३७३।।

वचनामृत-३७३। ३७२ हो गया है। **सब तालों की कुंजी एक...** एक लड़की कोई बोलती थी। हिन्दुस्तान की। सब तालों की कुंजी एक। आहाहा! **सब तालों की कुंजी एक...** क्या? **'ज्ञायक का अभ्यास करना'**। जाननस्वभाव ज्ञायकभाव, जाननस्वरूप जिसका, ज्ञानस्वरूप त्रिकाल का अभ्यास करना। वह सब तालों की कुंजी है। आहाहा! **इससे सब ताले खुल जाएँगे।** ज्ञायक का अभ्यास करना। शुभाशुभभाव होता है। परन्तु उस पर जोर नहीं देकर, अन्दर ज्ञायक स्वभाव जो त्रिकाली ज्ञायक है, उसका अन्तर में स्वसन्मुख का अभ्यास करने से, सब ताले खुल जाएँगे। सबका न्याय दिमाग में आ जाएगा।

जिसे संसार कारागृह से छूटना हो,... आहाहा! यह संसार का परिभ्रमण, चार गति के भव, जिसे संसार कारागृह लगा हो और उससे छूटना हो, **मुक्तिपुरी में जाना हो,...** सिद्धदशा प्राप्त करनी हो, जन्म-मरण रहित होने की दशा प्राप्त करनी हो, **उसे मोह-राग-द्वेषरूप ताले खोलने के लिये...** आहाहा! मोह अर्थात् पर ओर की सावधानी। और **राग-द्वेषरूप ताले खोलने के लिये ज्ञायक का अभ्यास करनेरूप...** ज्ञायक। मैं तो एक जाननस्वरूप हूँ। जानन-ज्ञायकस्वरूप ही आत्मा त्रिकाल है। उससे राग-द्वेष तो भिन्न चीज़ है। शरीर तो भिन्न चीज़ है ही, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का परिणाम वह भी विकार और विष समान (है)। आत्मा ज्ञायक अमृत स्वरूप, उससे भिन्न है। लेकिन सब ताले खोलने के लिये ज्ञायक का अभ्यास करना। ज्ञायक का अभ्यास है,

शुभ-अशुभ राग कमजोरी से होते हैं, ज्ञायकभाव की दृष्टि नहीं छूटने से उसका जानने-देखनेवाला रहते हैं। आहाहा! ऐसी वस्तु है।

ज्ञायक का अभ्यास करनेरूप एक ही कुंजी लगानी चाहिए। मोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वह चारित्रदोष; मोह-मिथ्यात्व श्रद्धादोष। दोनों दोष को टालने के लिये एक ही कुंजी है। ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा जानन स्वभाव अनादि-अनन्त एकरूप, उसका अन्तर सन्मुख अभ्यास करना, वह मोह-राग-द्वेष टालने की कुंजी है। आहा..! बहुत संक्षेप में है। **मोह-राग-द्वेषरूप ताले खोलने के लिये ज्ञायक का अभ्यास करनेरूप एक ही कुंजी लगानी चाहिए।** कोई लड़की बोलती थी। उसे कण्ठस्थ करवाया था। सब ताले की कुंजी एक ज्ञायक... ऐसा बोलती थी। हिन्दी थी, हिन्दी। लोगों को यह कण्ठस्थ (हो जाता है), सादी भाषा है न।

अभ्यास करनेरूप एक ही कुंजी... ज्ञायक चैतन्य त्रिकाली, ज्ञायकस्वरूप भगवान, उसकी रुचि, दृष्टि करके उस ओर का अभ्यास और सन्मुख करनी चाहिए। तो सब ताले खुल जाएँगे। सब मोह-राग-द्वेष का नाश हो जाएगा। इसके अलावा दूसरा कोई उपाय है नहीं। आहाहा! जन्म-मरण रहित होने का कारण यह एक ही कुंजी है।

पूर्ण गुणों से अभेद ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करने से, उसी के आलम्बन से, पूर्णता प्रगट होती है। इस अखण्ड द्रव्य का आलम्बन वही, अखण्ड एक परमपारिणामिकभाव का आलम्बन है। ज्ञानी को उस आलम्बन से प्रगट होनेवाली औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभावरूप पर्यायों का—व्यक्त होनेवाली विभूतियों का—वेदन होता है परन्तु उनका आलम्बन नहीं होता—उन पर जोर नहीं होता। जोर तो सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है। क्षायिकभाव का भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेषभाव है। सामान्य के आश्रय से ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है, ध्रुव के आलम्बन से ही निर्मल उत्पाद होता है। इसलिये सब छोड़कर, एक शुद्धात्मद्रव्य के प्रति—अखण्ड परमपारिणामिकभाव के प्रति—दृष्टि कर, उसी के ऊपर निरन्तर जोर रख, उसी की ओर उपयोग ढले, ऐसा कर॥३७६॥

३७६। **पूर्ण गुणों से अभेद ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करने से,...** आहाहा! एक तो पूर्ण गुणों से अभेद। ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसे अनन्त गुण। अनन्त गुणों से एक अभेद। अन्दर कहीं भिन्न-भिन्न नहीं है, वस्तु तो एक ही है। अनन्त गुण का पिण्ड वस्तु एक है। और वह पूर्ण गुण है। जिसका स्वभाव है, वह तो पूर्ण ही है। अपना स्वभाव जानन-देखन, आनन्द, वह पूर्ण स्वभाव है। और पूर्ण है, वह गुणों से अभेद, गुण से एकरूप ऐसा जो आत्मा-आत्मद्रव्य। आहा..! **ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करने से,...** आहाहा! मूल बात है। अन्यमति भी यह पढ़कर प्रसन्न हो जाते हैं। ऐसी यह कुंजी है। आहाहा!

पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करने से, उसी के आलम्बन से,... ज्ञानस्वरूपी ज्ञायक भगवान अनादि-अनन्त नित्य प्रभु, उसके अवलम्बन से। आहाहा! **पूर्णता प्रगट होती है।** उसके अवलम्बन से प्रथम शुरुआत में मोह-राग-द्वेष मन्द हो जाते हैं। मोह का नाश होता है और राग-द्वेष मन्द हो जाते हैं। बाद में उसी का अवलम्बन लेने से पूर्णता प्रगट होती है। सिद्धपद केवलज्ञान की प्राप्ति भी उसके अवलम्बन से होती है। आहाहा!

इस अखण्ड द्रव्य का आलम्बन... आहाहा! एकरूप... अभ्यास न हो, उसे यह कठिन लगे। अन्दर ज्ञान, दर्शन आदि गुण, वह गुण पूर्ण है। और पूर्ण का एकरूप, वह ज्ञायक है, द्रव्य है। **इस अखण्ड द्रव्य का आलम्बन वही,...** इस अखण्ड द्रव्य का आलम्बन। आहाहा! **वही, अखण्ड एक परमपारिणामिकभाव का आलम्बन है।** परमपारिणामिक अर्थात् त्रिकाली स्वभाव। आहा..! अखण्ड द्रव्य का आलम्बन, वस्तु त्रिकाली ध्रुव का आलम्बन, **वही, अखण्ड एक परमपारिणामिकभाव का आलम्बन है।** वही परमपारिणामिकभाव। पारिणामिक परम सहज भाव। त्रिकाल भाव। आहाहा!

अनादि-अनन्त सनातन सत्य प्रभु आत्मा, उसकी अनादि-अनन्त की कुंजी, उसका आलम्बन, **वही, एक परमपारिणामिकभाव का आलम्बन है।** परमपारिणामिक कहते हैं न? उदय तो राग-द्वेष है। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तो पर्याय है। यह तो त्रिकाली वस्तु को अखण्ड द्रव्य कहते हैं। आहाहा! **त्रिकाली द्रव्य का आलम्बन वही, एक परमपारिणामिकभाव का आलम्बन है।** एक द्रव्य का आलम्बन है, वह परमपारिणामिक का ही आलम्बन है। आहाहा! अगम्य बात। यह करना, यह करना, यह करना। उसे वह सूझता है, जो अनादि से सूझता है। यह वस्तु सूझनी-बुझनी, वह अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ

और सब चिन्ता से रहित, सब चिन्ता से रहित एक अखण्ड आनन्द परमपारिणामिकस्वभाव, जो द्रव्य कहो या पारिणामिकस्वभाव कहो, परम द्रव्य पदार्थ अनन्त गुणों का पूर्ण कहो या उसको परमपारिणामिकभाव कहो, उसका आलम्बन है। आहाहा!

ज्ञानी को उस आलम्बन से... धर्मी जीव को अखण्ड पंचम पारिणामिकभाव, जिसमें उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और उदय—ऐसी जो चार पर्याय है, चार भाव वह पर्याय है, वह पर्याय भी जिसमें नहीं है। वह अखण्ड द्रव्य है। पदार्थ भगवान तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने जो प्रगट किया, वह चीज़ यह है। आहाहा! प्रगट अवलम्बन से **प्रगट होनेवाली...** क्या कहते हैं? अखण्ड परमपारिणामिकस्वभाव अर्थात् जो सहज स्वभाव अर्थात् त्रिकाली एकरूप स्वभाव, उसके आलम्बन से प्रगट होनेवाली। उसके—द्रव्य के अवलम्बन से, त्रिकाली ज्ञायक परमपारिणामिक स्वभावभाव, उसका आधार-आलम्बन से प्रगट होनेवाली **औपशमिक,...** पर्याय। आहाहा! **क्षायोपशमिक और क्षायिकभावरूप पर्यायों का...** आहाहा!

एक त्रिकाली का अवलम्बन लेने से प्रगट होनेवाली जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक। आहाहा! क्षायिक समकित, क्षायिक चारित्र या केवलज्ञान, उसका भी उसको अवलम्बन नहीं है। आहाहा! जिसमें अनन्त गुण से परिपूर्ण भरा है प्रभु, उसके अवलम्बन से इन पर्यायों का **व्यक्त होनेवाली...** जो यह शक्ति है, उसमें से उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, ये तीन पर्याय है। वह व्यक्त प्रगट होती है। वस्तु प्रगट नहीं होती, वस्तु तो त्रिकाल है। त्रिकाल के अवलम्बन से व्यक्त अर्थात् प्रगट उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक धार्मिक दशा, धर्म की दशा... आहाहा! उन **विभूतियों का-वेदन होता है...** आहाहा! क्या कहा? पूर्ण स्वरूप अन्तर में ज्ञायक चैतन्य द्रव्य परमपारिणामिक स्वभाव, उसके अवलम्बन से प्रगट होनेवाली पर्याय, उशम, क्षयोपशम, क्षायिक धार्मिक पर्याय, उसका वेदन धर्मी को होता है। उसका अनुभव अर्थात् वेदन होता है। द्रव्य का वेदन नहीं होता। द्रव्य है, वह तो त्रिकाली ध्रुव है। उसके अवलम्बन से पर्याय में ये जो तीन प्रकार की निर्मल पर्याय प्रगट-व्यक्त होती है, उसका वेदन होता है। ध्रुव का वेदन होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात। यह सब बात.. सम्प्रदाय में... बात चलती नहीं। बापू! मार्ग ही बदल गया है। आहाहा!

वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव अनन्त सर्वज्ञों ने फरमान किया कि तेरी चीज़ ही

ज्ञायकस्वरूप पड़ी है, अनन्त गुण का पूर है, उसके अवलम्बन से पर्याय में जो प्रगट दशा होती है, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, उसका वेदन है। ध्रुव का वेदन नहीं है। आहाहा! पूरे दिन इस संसार के काम कारण यह बात... उसमें तो दो घड़ी सामायिक करे, प्रौषध कर लिया, हो गया। शाम को प्रतिक्रमण कर लिया, बिछाना छिड़ककर चले घर। अरे... भाई! ऐसी क्रियाकाण्ड तो अनन्त बार की। वह तो राग की क्रिया है। आहाहा! उसमें कहीं भी ज्ञायक का अवलम्बन है नहीं। और वह ज्ञायक के अवलम्बन से प्रगट होती भी नहीं। वह क्रिया का राग का भाव निमित्त के वश होता है। निमित्त अर्थात् कर्म के निमित्त के वश, हों! निमित्त से नहीं। यह पर्याय—राग और द्वेष, दया और दान, व्रत और भक्ति, पूजा, काम, क्रोध निमित्त कर्म के वश होकर होते हैं। उससे नहीं और वह पर्याय विकारी है। है, दु:खरूप है। वह निमित्त के वश होती है। और धर्मपर्याय त्रिकाली के आलम्बन से होती है। आहाहा!

दो प्रकार की पर्याय। पर्याय अर्थात् अवस्था। आत्मा की हालत-दशा। उस दशा के दो प्रकार। एक धर्म की दशा। वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक। एक अधर्म की दशा। मिथ्यात्व, राग, द्वेष, पुण्य-पाप, व्रत, अव्रत, काम, क्रोध भाव, वह अशुद्धदशा निमित्त—पर के वश उत्पन्न होती है। और यह जो तीन पर्याय निर्मल है, वह स्व के अवलम्बन से उत्पन्न होती है। आहाहा! भाषा तो सादी है, भाव तो महादुर्लभ है। अनन्त काल में अपूर्व बात कभी की नहीं, सुनी नहीं। सुनने मिली तो निकाल दी, वह तो निश्चय है, निश्चय है, निश्चय है। आहाहा!

भगवान आत्मा त्रिकाली जो ज्ञायकस्वरूप वस्तु शाश्वत है, उसके अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाली पर्याय धर्मपर्याय है। उसका वेदन धर्मी को होता है और निमित्त के आधीन विकार पर्याय होती है, उसका वेदन धर्मी को है, परन्तु दु:खरूप वेदन है। वह दु:खरूप वेदन है। और आत्मा के अवलम्बन से जो पर्याय का वेदन है, वह सुखरूप है। आहाहा! ऐसी बात। क्या कहा, समझ में आया? कि त्रिकाल के अवलम्बन से होनेवाली व्यक्त पर्याय, उन विभूतियों का वेदन होता है। वह सुखरूप है। **परन्तु उनका आलम्बन नहीं होता...** किसका? व्यक्त पर्याय प्रगट हुई, उसका अवलम्ब नहीं (होता)। आहाहा! अवलम्बन तो त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप का (होता है)।

सामान्य का पर्याय में उसका अवलम्बन, विशेष में। सामान्य तो ध्रुव है। उसमें कुछ (पर्याय) है नहीं। सामान्य ध्रुव का वर्तमान विशेष पर्याय से, उसके अवलम्बन से जो पर्याय प्रगट होती है, वह वेदनयोग्य-धार्मिक पर्याय वेदनयोग्य है। आहाहा! ऐसी बात है। और जितनी निमित्ताधीन; निमित्त से नहीं.. जैसे यहाँ त्रिकाली के अवलम्बन से निर्मल पर्याय होती है, वैसे निमित्त के वश होकर मिथ्यात्व, राग-द्वेष, काम, क्रोध, मोह, विषय, वासना के विकारी भाव उत्पन्न होते हैं। उस विकारी भाव का दुःखरूप वेदन है और आत्मा के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाली पर्याय, (उसका) सुखरूप वेदन है। आहाहा! वह धर्म है। निमित्त के आधीन जो राग-द्वेष है, वह अधर्म है। आहाहा! चाहे तो व्रत, तप, भक्ति का परिणाम हो, परन्तु है अधर्म। धर्म नहीं। आहाहा!

उस त्रिकाली (के) आलम्बन से, प्रभु पूर्णानन्द का नाथ, जो नव तत्त्व में जीवतत्त्व कहा। पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा वह सब तो पर्याय है। पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह तो पर्याय है। जीवद्रव्य त्रिकाली है। उस त्रिकाली द्रव्य के आलम्बन से जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है, उसका नाम यहाँ उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक (कहते हैं)। शास्त्र भाषा से निर्मल पर्याय के नाम है। उसका वेदन (होता है)। और निमित्ताधीन होकर जितना राग-द्वेष हो, वह दुःख का वेदन है। आहाहा!

यहाँ तो यह कहना है कि त्रिकाली चैतन्य के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाली व्यक्त पर्याय जो निर्मल प्रगट होती है, उसका आलम्बन नहीं लेना। आलम्बन तो त्रिकाली द्रव्य का (लेना)। आहाहा! है? उसका आलम्बन नहीं होता। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायक चैतन्यप्रभु, उसके आलम्बन से जो धार्मिक शान्ति, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो मोक्ष का मार्ग निर्मल निर्विकल्प उत्पन्न होता है, उसका अवलम्बन नहीं लेना। अवलम्बन तो त्रिकाल का है। आहाहा! ऐसी बात है। कितनों ने तो सुना नहीं हो, यह क्या है। अन्तर का अवलम्बन क्या? वस्तु नित्यानन्द प्रभु ध्रुव अनादि-अनन्त आत्मा, वह शुद्ध पवित्र वस्तु है। उसके आलम्बन से पर्याय होती है, वह धार्मिक-उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक धार्मिक - वह वेदनयोग्य है। परन्तु वह आश्रय-अवलम्बन करनेयोग्य नहीं है। आहाहा!

जो त्रिकाली तत्त्व भगवान सबका पूर्णानन्द से भरा पड़ा प्रभु अन्दर है। उसके अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाली पर्याय धार्मिक-शान्ति, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, यह

उसके अवलम्बन से प्रगट होती है। प्रगट होती है, परन्तु उसका अवलम्बन नहीं होता। आहाहा! अवलम्बन तो त्रिकाली का है। कहो, देवीलालजी! ऐसी बातें हैं। ऐसा उपदेश कहाँ से निकाला? हमने तो कभी सुना भी नहीं था। अनादि का मार्ग यह है। महाविदेह का मार्ग यह है। प्रभु के पास यह मार्ग वर्तता है। आहाहा!

यहाँ तो इतना कहना है कि अवलम्बन का आधार तो त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा ही है। उसके अवलम्बन से प्रगट होनेवाली धार्मिक पर्याय, वीतरागी उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक—ये तीनों वीतरागी पर्याय है। इस वीतरागी पर्याय का वेदन है। ध्रुव का वेदन नहीं होता। परन्तु आलम्बन ध्रुव का है। वेदन पर्याय का है, आलम्बन ध्रुव का है। आहाहा! आलम्बन पर्याय का नहीं, ध्रुव का वेदन नहीं। आहाहा! समझ में आता है?

भगवान आत्मा में दो प्रकार। यह (शरीर) तो पर है, जड़ मिट्टी, धूल। अन्दर कर्म धूल है। अब अन्दर में निमित्त के आधीन होनेवाला विकार, वह तो दु:खरूप है। चाहे तो व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान, दया, काम, क्रोध, भोग, विषय, व्यापार-धन्धा का परिणाम, वह सब पाप है। आहाहा! वह निमित्ताधीन है। उसका वेदन है, वह दु:खरूप है। वेदन है, दु:खरूप है और उसका आलम्बन तो है ही नहीं। परन्तु अपने त्रिकाली स्वभाव के अवलम्बन से निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसका वेदन है। आलम्बन नहीं है। ध्रुव का आलम्बन है, परन्तु ध्रुव का वेदन नहीं है। अरे.. अरे... ऐसी बातें क्या करते हैं? जिन्दगी में कभी सुनी न हो, ऐसी बातें हैं, प्रभु! आहा..!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का यह हुकम है। आहाहा! **उन पर जोर नहीं होता।** क्या कहते हैं? चैतन्यद्रव्य जो ज्ञायक त्रिकाल उसके अवलम्बन से धार्मिक पर्याय उत्पन्न होती है, उसका वेदन है परन्तु उसका आलम्बन नहीं लेना और **उन पर जोर नहीं होता।** पर्याय चाहे तो क्षायिक प्रगट हो, क्षायिक समकित, परन्तु उस पर जोर नहीं देना। आहाहा! वह पर्याय है, अवस्था है, वर्तमान परिणति की दशा है, वह आलम्बन योग्य नहीं है, वेदन योग्य है। आहाहा! और त्रिकाली चीज़ आलम्बन योग्य है; वेदन योग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बात!

मुमुक्षु :- बहुत सरल करके दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऐसा मार्ग है। आहाहा! अरे..! अनन्त काल में इसने ध्यान नहीं दिया। अपना स्वरूप क्या है, उसका तो ध्यान दिया ही नहीं। बाहर के खेल में रगड़ गया और चार गति में भटक मरा। आहाहा! अपनी चीज़ अन्दर क्या है और उसका आलम्बन ही धर्म का, जन्म-मरण के अन्त का, धर्म का अर्थात् जन्म-मरण के अन्त का यह कारण है। आहाहा!

उनका आलम्बन नहीं होता - उन पर जोर नहीं होता। धर्म की पर्याय त्रिकाली के अवलम्बन से प्रगट होती है,परन्तु उस पर जोर नहीं देना। जोर तो त्रिकाली पर है। आहाहा! ऐसा तो कभी सुना भी न हो। अरेरे! ऐसा कहाँ चलता है। यह तो बहिन रात को अनुभव से बात करते हुए बात निकल गयी और यह लिखा हुआ बाहर आ गया। यह तो लिखा हुआ बाहर आ गया, शब्दश:। **उन पर जोर नहीं होता।** उन पर का अर्थ? आत्मद्रव्य जो वस्तु त्रिकाल है, उसके अवलम्बन में जो पर्याय प्रगट हुई, उस पर जोर न देना कि मुझे ऐसा प्रगट हुआ है, मुझे ऐसा प्रगट हुआ है तो उसके आश्रय से मैं आगे बढ़ूँगा, ऐसा जोर नहीं देना। मुझे धर्मपर्याय प्रगट हुई है तो उस पर्याय के आश्रय से मैं आगे बढ़ूँगा, ऐसा जोर देना नहीं। आहाहा! मीठालालजी! ऐसी मीठी बात है। मधुर मीठी। आहाहा! महँगी पड़े, प्रभु! अनादि का अभ्यास नहीं है। आहाहा! और धर्म के नाम पर भी विकार का आलम्बन और अभ्यास।

विकार रहित अन्दर चीज़ पड़ी है। त्रिकाली अनन्त गुण का पूर्ण स्वरूप। गुण पूर्ण, तो अनन्त गुण का पूर्ण रूप। उस द्रव्य के अवलम्बन से जो नयी पर्याय प्रगट व्यक्त होती है, शक्ति में थी, शक्ति में तो आनन्द और शान्ति आदि थे, परन्तु उसका अवलम्बन लेने से व्यक्ति अर्थात् प्रगट दशा में आनन्द आता है। आहाहा! प्रगट दशा में धार्मिक दशा प्रगट होती है। उसका वेदन होता है परन्तु उसका आलम्बन लेना नहीं। एक बात। उस पर जोर देना नहीं। दो बात। उस पर जोर नहीं देना कि मुझे समकित हुआ तो उससे केवलज्ञान होगा। समकित हुआ तो उससे चारित्र होगा। उससे होगा, ऐसा जोर देना नहीं। आहाहा! ऐसी बात भाग्यशाली को सुनने मिले ऐसी है, बापू! क्या हो?

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ प्रभु महाविदेह में विराजते हैं। आहाहा! उनके साक्षात् समवसरण में सुनी हुई वाणी। आहाहा! बहिन भी वहाँ थे। सेठ को पुत्र थे। आहाहा! शान्ताबहिन का जीव वहाँ था। वे भी सेठ के पुत्र थे। भगवान की वाणी सुनने जाते थे। आहाहा!

कहते हैं, भगवान ने तो ऐसा कहा... आहाहा! पूर्णानन्द स्वरूप प्रभु, आत्मा जो है वह वस्तु है, पदार्थ है, तत्त्व है, अस्तिवाली चीज़ है। वह अस्तिवाली चीज़ पूर्ण है। चीज़ अपूर्ण नहीं होती। वस्तु अपूर्ण, अशुद्ध, परालम्बनवाली वस्तु नहीं होती। आहाहा! स्वावलम्बी वस्तु त्रिकाली अन्दर पड़ी है, प्रभु! उसके अवलम्बन से वेदनवाली पर्याय का वेदन हो, अनुभव हो, परन्तु उसका आलम्बन नहीं (होता) और उस पर जोर देना नहीं कि यह हुआ तो ऐसा होगा, ऐसा नहीं लेना। जोर तो द्रव्य पर देना, आहाहा! ऐसी बात। शिवलालभाई! कभी सुनी न हो। आहाहा! अरे..! यह कैसा होगा? ये कोई नया मार्ग निकाला होगा? अरे..! अनन्त तीर्थंकर... साक्षात् भगवान विराजते हैं, वहाँ की (बात) है। आहाहा!

उन पर जोर नहीं होता। जोर तो सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है। आहाहा! माल-माल रखा है, अकेला माल! आहाहा! क्या कहा? जोर जो आलम्बन लेना है, वह तो सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है। जोर तो अखण्ड द्रव्य पर ही होता है। पर्याय पर जोर नहीं होता। आहाहा! **क्षायिकभाव का भी आश्रय...** आहाहा! क्षायिकभाव। आहाहा! नीचे क्षायिकभाव तो समकित होता है। फिर ऊपर आगे बढ़ने पर क्षायिक (होता है)। फिर भी उस **क्षायिकभाव का भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता...** उसका आश्रय और आधार नहीं लिया जाता, वह पर्याय है। वस्तु त्रिकाली भगवान भिन्न है। पर्याय का आलम्बन तो द्रव्य है। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है परन्तु समझने योग्य यह है, प्रभु! दूसरे प्रकार से प्रसन्न होकर जिन्दगी चली जाएगी। अरेरे! कहाँ जाएगा? बापू! अनादि-अनन्त है, उसकी सत्ता तो अनादि-अनन्त रहनेवाली है। आहाहा! ऐसी चीज़ का लक्ष्य और आश्रय नहीं किया और बाहर में जिन्दगी गँवायी, प्रभु! कहाँ जाएगा? चार गति चौरासी के अवतार। आहाहा! कहाँ-कहाँ भटका। यहाँ करोड़ोंपति मरकर सुअर में जाए, कौवे में जाए, चींटी हो, आहाहा! नरक में भी जाए, माँस आदि खाता हो तो। बनिये को तो माँस आदि होता नहीं। आहाहा!

क्षायिकभाव का भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता... क्यों ? **क्योंकि वह तो पर्याय है,...** आहाहा ! पर्याय का आश्रय नहीं लेना । आहाहा ! वह **विशेषभाव है ।** क्या कहते हैं ? पर्याय तो विशेषभाव है । द्रव्य है, वह सामान्य भाव है । सामान्य अर्थात् कायम रहनेवाली एकरूप चीज़ सामान्य है और पलटती अवस्था, वह पर्याय में विशेषभाव है । आहाहा ! सामान्य है, वह विशेष के बिना कभी होता नहीं । त्रिकाल में कोई भी द्रव्य, किसी भी समय अकेले विशेष बिना सामान्य त्रिकाल रहता नहीं । आहाहा ! चाहे तो उल्टा विशेष हो या सुलटा विशेष हो, परन्तु विशेष बिना द्रव्य सामान्य कभी अकेला नहीं रहता । वह यहाँ कहते हैं । क्षायिकभाव का भी आश्रय-आलम्बन नहीं लिया जाता, क्योंकि वह तो पर्याय विशेषभाव है ।

भले केवलज्ञान हुआ, परन्तु वह विशेषभाव है, सामान्य नहीं । सामान्य अर्थात् त्रिकाल एकरूप रहनेवाला द्रव्यस्वभाव तो एकरूप रहनेवाला है । वह सामान्य है और यह पर्याय आदि है, वह तो विशेष है । आहाहा ! पूरा द्रव्य सामान्य-विशेषस्वरूप ही है । पूरा पदार्थ सामान्य-विशेषस्वरूप ही पदार्थ है । पर के कारण, पर की विशेषता के कारण इसकी विशेषता है, (ऐसा नहीं है) । क्या कहा ? आत्मा में सामान्यपना तो त्रिकाल है । परन्तु उसमें जो विशेष है, वह पर के कारण यह विशेष है, ऐसा भी है नहीं । आहाहा ! विशेष भी उसका स्वभाव है । सामान्य और विशेष दो मिलकर एक प्रमाण का द्रव्य है । प्रमाण का द्रव्य है । आहाहा ! निश्चय का द्रव्य त्रिकाली एक है । प्रमाण का द्रव्य त्रिकाली द्रव्य और पर्याय दो मिलकर प्रमाण का द्रव्य है । आहाहा ! ऐसी बात, ऐसा उपदेश ।

भाई ! मार्ग तो ऐसा है । सुनने मिले तो विचार में आये । विचार में आये तो अन्दर में पुरुषार्थ करे । यह चीज़ है तो इस ओर मुझे जाना है । परन्तु चीज़ सुनी ही नहीं, यथार्थ बात (ही नहीं है), जाये कहाँ ? आहाहा ! बाहर के क्रियाकाण्ड में रुक जाए और जिन्दगी चली जाए । ऐसा तो अनन्त बार जैन में मुनिपना, दिगम्बर का मुनिपना अनन्त बार लिया है । श्वेताम्बर और स्थानकवासी तो थे ही नहीं । वह तो बाद में निकले हैं । दिगम्बर धर्म तो अनादि-अनन्त है । आहाहा ! उसमें भी साधुपना लेकर अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत आदि अनन्त (बार) पाले हैं । परन्तु अन्दर में अपनी चीज़ क्या है ? कायम रहनेवाली चीज़ क्या है ? उस पर दृष्टि दी नहीं । आहाहा !

आलम्बन नहीं लिया जाता... क्षायिकभाव का भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेषभाव है। विशेष, समझ में आया? इस कायम रहनेवाली चीज़ को सामान्य कहते हैं और पलटती दशा को विशेष कहते हैं। पलटे, पलटता है, विकार पलटता रहता है न? वह विशेष है। पलटती अवस्था को विशेष कहते हैं और कायम एकरूप रहनेवाली वस्तु को सामान्य कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात!

सामान्य के आश्रय से ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है,... आहाहा! देखो! बहुत अच्छी बात है, पैराग्राफ बहुत अच्छा आया है। भाद्रपद एकम। नया महीना शुरु हुआ। आहाहा! क्या कहते हैं? सामान्य जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसके आश्रय से ही, आश्रय से ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है। आहाहा! त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से ही शुद्धपर्याय प्रगट होती है। त्रिकाली शुद्ध स्वभाव है, उसके आलम्बन से ही पर्याय में शुद्धपर्याय प्रगट होती है। आहाहा! क्योंकि पर्याय बिना का द्रव्य कभी नहीं रहता, तीन काल में तीन लोक में। पर्याय बिना का रहे तो द्रव्य क्या है, कारण कौन है, वह मालूम नहीं पड़ता। आहाहा!

वह कहते हैं, **सामान्य के आश्रय से ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है,...** ध्रुव के अवलम्बन से ही.. सामानय कहो या ध्रुव कहो। **ध्रुव के आलम्बन से ही निर्मल उत्पाद होता है।** आहाहा! बहुत अच्छी बात आयी है। त्रिकाली भगवान निर्मल, उसके आश्रय से ही निर्मल उत्पाद होता है। वह विशेष। ध्रुव के अवलम्बन से ही निर्मल पर्याय (प्रगट होती है)। ध्रुव कहो या सामान्य कहो। सामान्य कहो तो उसकी अवस्था को विशेष कहो। और ध्रुव कहो तो उसकी पर्याय को अध्रुव कहो। समझ में आया? आहाहा! त्रिकाली भगवान जब ध्रुव कहो तो पर्याय को अनित्य और अध्रुव कहो। त्रिकाली को जब सामान्य कहो तो पर्याय को विशेष कहो। बात तो वह की वही है। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत स्पष्टीकरण हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे..! ऐसी बात सुनने मिले, भाग्य बिना (नहीं मिलती)। प्रभु एक ओर रह गये। भरतक्षेत्र में प्रभु का विरह पड़ा। आहाहा! बात प्रभु के घर की रह गयी। उसे छोड़कर बाहर की बात में चढ़ गये। और सच्ची बात को झूठी ठहराने लगे और झूठी को सच्ची ठहराने लगे। आहाहा! प्रभु! क्या करे? उसको जो बैठा हो, उस अनुसार करे।

वह उसे बैठा हो, उस अनुसार करे। दूसरा करे कहाँ से ? उसके अभिप्राय में, परिणाम में जो बात बैठी हो, उस अनुसार वह चले। आहाहा!

ध्रुव के आलम्बन से ही निर्मल उत्पाद होता है। इसलिए सब छोड़कर,... आहाहा! इसलिए लक्ष्य में से सब छोड़कर **एक शुद्धात्मद्रव्य के प्रति...** एक शुद्धात्मद्रव्य। आहाहा! कहो, देवीलालजी! बहुत अच्छी बात आयी है। आहाहा!

मुमुक्षु :- अत्यन्त आनन्द की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा! यह बात.. बापू! आहा! भले ही कोई उसे एकान्त कहे, निश्चयाभास कहे, ऐसा कहकर उड़ाये। ... आहाहा!

यह प्रभु अन्दर ध्रुव विराजता है। उत्पाद-व्यय तो पर्याय है। वस्तु है, वह उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है। उत्पाद-नयी अवस्था उत्पन्न हो, पुरानी अवस्था का व्यय हो और ध्रुवपने कायम रहे। इसलिए उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। वह यहाँ कहते हैं, ध्रुव के अवलम्बन से ही निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है। **इसलिए सब छोड़कर, एक शुद्धात्मद्रव्य के प्रति...** एक शुद्धात्मा द्रव्य वस्तु। त्रिकाल पवित्र शुद्ध भगवान आत्मा के प्रति। अर्थात् **अखण्ड परमपारिणामिकभाव के प्रति...** आहाहा! अखण्ड परमपारिणामिक स्वभाव। जो सामान्य कहो, ध्रुव कहो, एकरूप कहो। आहाहा! उसे यहाँ अखण्ड परमपारिणामिकभाव (कहा)। परमपारिणामिकभाव। अकेल पारिणामिकभाव नहीं। पारिणामिकभाव तो पर्याय को भी पारिणामिक कहते हैं। परन्तु ध्रुव त्रिकाली है, वह अखण्ड परमपारिणामिकभाव है। आहाहा! यह ३७६वाँ बोल है।

मुमुक्षु :- सार में सार।

पूज्य गुरुदेवश्री :- सार में सार है।

मुमुक्षु :- बारह अंग का सार।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बारह अंग का सार। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु ध्रुव, उसका आश्रय लेने से जो पर्याय प्रगट होती है, उसका (पर्याय का) आश्रय लेना नहीं। आहाहा! त्रिकाली ध्रुव के आश्रय से जो धर्म की पर्याय उत्पन्न होती है, उसका आश्रय लेना योग्य नहीं है। उस पर जोर देने योग्य नहीं है। आहाहा!

अखण्ड परमपारिणामिकभाव... परमपारिणामिक अर्थात् सहज स्वभाव। त्रिकाली सहज स्वभाव। उसको किसी ने किया नहीं, कोई ईश्वर नहीं है कि आत्मा को बनाया। वह अनादि परम स्वभावस्वरूप सत्ता ही पड़ी है। आहाहा! परमपारिणामिक। परमपारिणामिक अर्थात् सहज। परम सहज भाव के प्रति। आहाहा! **परमपारिणामिकभाव के प्रति-दृष्टि कर,...** भगवान! परम स्वभाव के प्रति दृष्टि कर। आहाहा! परमपारिणामिक अर्थात् परम सहज स्वभाव। त्रिकाली ध्रुव स्वभाव, त्रिकाली सामान्य स्वभाव, त्रिकाली एक अखण्ड स्वभाव, उस पर दृष्टि कर। आहाहा!

उसी के ऊपर निरन्तर जोर रख,... दृष्टि वहाँ कर और उसी के ऊपर निरन्तर जोर भी वहाँ रख। प्रगट पर्याय पर जोर नहीं देना। आहाहा! बहुत अच्छी बात आ गयी है। **उसी के ऊपर निरन्तर जोर रख, उसी की ओर उपयोग ढले ऐसा कर।** आहाहा! ज्ञायक चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु नित्यानन्द ध्रुवस्वरूप, उस ओर उपयोग ढले, वर्तमान में जानन उपयोग को वहाँ ढाल। उस ओर ले जा। आहाहा! जो जानन उपयोग जो जानता है, वह बाहर में माथापच्ची में पड़ा है कि यह किया, वह किया, यह रखा, यह लिया, वह दिया। वह जानन उपयोग पर में रुक गया है। उस उपयोग को अन्तर में जोड़ दे। आहाहा! है? **उसी की ओर उपयोग ढले ऐसा कर।** आहाहा! ३७६। बहुत अच्छी बात आयी। उसके बाद ३७७ है।

स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये मुनिराज जंगल में बसे हैं। उस हेतु उनको निरन्तर परमपारिणामिकभाव में लीनता वर्तती है—दिन-रात रोम-रोम में एक आत्मा ही रम रहा है। शरीर है किन्तु शरीर की कोई चिन्ता नहीं है, देहातीत जैसी दशा है। उत्सर्ग एवं अपवाद की मैत्रीपूर्वक रहनेवाले हैं। आत्मा का पोषण करके निज स्वभावों को पुष्ट करते हुए विभावभावों का शोषण करते हैं। जिस प्रकार माता का पल्ला पकड़कर चलता हुआ बालक कुछ अड़चन दिखने पर अधिक जोर से पल्ला पकड़ लेता है, उसी प्रकार मुनि परीषह-उपसर्ग आने पर प्रबल पुरुषार्थपूर्वक निजात्मद्रव्य को पकड़ लेते हैं। 'ऐसी पवित्र मुनिदशा कब प्राप्त करेंगे!' ऐसा मनोरथ सम्यग्दृष्टि को वर्तता है॥३७७॥

३७७। नीचे। **स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये...** आहाहा! क्या कहते हैं? अन्तर जो स्व भाव, अपना जो त्रिकाली स्वभाव, स्व अर्थात् अपना भाव त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु, ध्रुव स्वभाव उसमें से **विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये मुनिराज जंगल में बसे हैं।** आहाहा! जंगल में चले जाते हैं। अन्दर में से विशेष-विशेष, सामान्य में से विशेष-विशेष निकालने के लिये... आहाहा! बाहर का सर्व संग छोड़कर जहाँ मनुष्य का आहट न हो, मनुष्य का आना-जाना न हो, ऐसे जंगल में मुनि चले जाते हैं। आहाहा! बड़े चक्रवर्ती शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ तीन तो चक्रवर्ती थे, तीर्थंकर थे, कामदेव थे। उनके जैसा रूप किसी का नहीं था। ऐसी सबकी पदवी थी। आहाहा! परन्तु वे आत्मा में अन्दर सामान्य में से विशेष प्रगट करने के लिये जंगल में चले गये। छियानवें हजार स्त्रियाँ छोड़कर, छियानवें करोड़ सैनिक छोड़कर। आहाहा! अकेले जंगल में अन्तर में सामान्य स्वभाव में से विशेष एकाग्रता करके प्रगट करने के लिये जंगल में चले गये। आहाहा! **मुनिराज जंगल में बसे हैं।** इस कारण से जंगल में बसे हैं.. मुनि जंगल में क्यों बसते हैं? कि **स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये मुनिराज जंगल में बसे हैं।** समझ में आया? जंगल में क्यों चले जाते हैं? अन्दर से विशेष प्रगट करने के लिये। आहाहा! विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - २, गुरुवार, तारीख ११-९-१९८०
वचनामृत - ३७७, ३७८ प्रवचन-३०

वचनामृत ३७७। मुनि की मुख्य बात कही है। बात तो यह है कि आत्मा वस्तु की ऐसी स्थिति है कि जो योग का कम्पन तेरहवें गुणस्थान तक है, वह कम्पन जीव में नहीं है। आहाहा! सयोग दशा। सयोगी केवली। उन्हें भी योग कम्पन है। परन्तु वह पर्यायदृष्टि से जानने जैसी है। वस्तुस्थिति देखने पर उसमें योग है ही नहीं। पन्द्रह योग है—चार मन, चार वचन, सात काया के। औदारिक, वैक्रियक, आहारक और कार्माण। आहाहा! ऐसी जो वस्तु, उसे प्रगट करने और विशेष अनुभव करने के लिये... **स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये...** आहाहा! स्वभाव में तो आनन्द पड़ा है। आहाहा! योग की कम्पनक्रिया भी आत्मा में है नहीं। अरे..! ऐसा लिया न मार्गणा में? संयमलब्धिस्थान भी जीव में नहीं। आहाहा! क्योंकि वह तो क्षयोपशमभाव है। संयमलब्धिस्थान क्षयोपशमभाव है। वह भी जीव में नहीं है। आहाहा! उसकी दृष्टि, ऐसे जीव की दृष्टि, उसका अनुभव, वह सम्यग्दर्शन की शुरुआत है। आहाहा! यह चीज़ मुख्य समझे नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, **स्वभाव में से...** उसमें तो कुछ है नहीं। कम्पन, राग, द्वेष आदि स्वभाव में तो है नहीं। आहाहा! कम्पन है नहीं। जो कम्पन चौदहवें में जाये, अयोगी दशा, उसका एक अंश भी चौथे गुणस्थान में प्रगट होने पर... जीव में तो वह है ही नहीं। आहाहा! जीवद्रव्य के अन्दर जो योग मन, वचन, काय के वश से होनेवाली कम्पन दशा, वह भी जीवद्रव्य में नहीं है। जीवद्रव्य में है नहीं। आहाहा! यहाँ जीव को जाना। जीव-आत्मा उसे कहते हैं, जिसमें संयमलब्धिस्थान का विकास हो, वह भी पर्याय में है, वस्तु में है नहीं। आहाहा! और उस वस्तु की दृष्टि में आनन्द है।

स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये... विशेष क्यों कहा? चौथे, पाँचवें में आनन्द तो था, परन्तु मुनिराज तो विशेष आनन्द के लिये.. आहाहा! **स्वभाव में**

से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये... विशेष क्यों कहा ? कि आनन्द प्रगट होता है, वह भी विशेष है और चौथे, पाँचवें से भी मुनि को विशेष आनन्द होता है। इसलिए विशेष के दो प्रकार। आनन्द स्वयं विशेष है पर्याय में और विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये **मुनिराज जंगल में बसे हैं...** आहाहा! ऐसा जो यह भगवान आत्मा अयोगी स्वरूप भगवान आत्मा, उसका स्वरूप अयोग, अकषाय और आनन्द और पूर्ण ज्ञानादि अनन्त शक्ति का सागर। उसे **विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये मुनिराज जंगल में बसे हैं।** दूसरा कोई कारण नहीं है। आहा! जहाँ मनुष्य की कोई आहट न हो, आहट अर्थात् आना-जाना। एकान्त कोई जंगल में गुफा में, कोई खाली (स्थान) हो, वहाँ जाकर ध्यान में (रहते हैं)। जो चीज़ है, वह तो स्वयं के पास है। आहाहा!

विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये मुनिराज जंगल में बसे हैं। आहाहा! गृहस्थाश्रम में पंचम गुणस्थान होता है, परन्तु मुनि को जो आनन्द होता है, ऐसा आनन्द नहीं (होता)। आहाहा! क्योंकि यहाँ पंचम में तो थोड़ी उपाधि भी है। यहाँ कुछ नहीं है। एक प्रभु आत्मा.. आत्मा.. आत्मा। **उस हेतु उनको निरन्तर परमपारिणामिकभाव में लीनता वर्तती है,...** आहाहा! इस कारण से सन्तों को अन्तर निरन्तर, अन्तर में **निरन्तर परमपारिणामिकभाव में लीनता वर्तती है,...** आहाहा! परमपारिणामिक स्वभाव जो ध्रुव, जो नित्य स्वभाव, जो सामान्य स्वभाव, उसमें मुनिराज की लीनता वर्तती है। आहाहा! लीनता है, वह विशेष है, वह पर्याय है। परन्तु द्रव्य जो है, वह सामान्य है। उसमें विशेष लीनता के लिये जंगल में बसते हैं। आहाहा!

दिन-रात... दिन हो या रात हो.. आहाहा! भगवान तो सदा निरन्तर अनादि सनातन पड़ा है। उसे कोई दिन और रात की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! दिन हो तो ठीक पड़े और रात के अन्धेरे में ठीक न पड़े, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! प्रकाश का पुंज प्रभु.. दिन-रात परमपारिणामिकभाव में लीनता वर्तती है। आहाहा! स्वभावभाव जो त्रिकाल, लब्धिस्थान भी जिसमें गिनती में आया नहीं, कम्पन भी जिसमें गिनने में आया नहीं, ऐसा परम स्वभावभाव, उसमें लीनता वर्तती है। **दिन-रात रोमरोम में एक आत्मा ही रम रहा है।** आहाहा! मुनिपना। भगवान! धन्य दशा! आहा..! अन्तर का पंचम पारिणामिक स्वभाव, उसका अनुभव बिना समकित न हो तो मुनिपना तो कहाँ से हो ? आहाहा! ऐसी दशा!

शरीर है किन्तु शरीर की कोई चिन्ता नहीं है,... दिन-रात रोम-रोम में एक आत्मा ही रम रहा है। दिन-रात कहा तो पिछली रयन में सोते हैं या नहीं ? लेकिन वे तो अन्तर में आनन्द में है। उस समय भी अन्तर में आनन्द में ही है। आहाहा! निद्रा के काल में भी अतीन्द्रिय आनन्दमय दशा है। आहाहा! पूर्ण प्रभु भिन्न (उसमें अन्य) कुछ है नहीं। दूर नहीं है। जहाँ जाओ वहाँ स्वयं है। आहाहा! कोई क्षेत्र, कोई काल में, कोई जंगल या कोई गाँव। आहाहा! अपना शुद्धस्वरूप, उसमें रोम-रोम में एक आत्मा ही रम रहा है। रोम-रोम में (कहा) उसका अर्थ-आत्मप्रदेश में। रोम तो बाल है। **शरीर है किन्तु शरीर की कोई चिन्ता नहीं है, देहातीत जैसी दशा है।** देह से रहित हो, ऐसी तो जिनकी दशा हो गयी। आहाहा! चलते सिद्ध ऐसा कहा है। **उत्सर्ग एवं अपवाद की मैत्रीपूर्वक रहनेवाले हैं।** अन्तर में लीन रहते हैं और लीन रहने में थोड़ा प्रमाद आ जाए तो अपवाद मार्ग में स्वाध्याय आदि का विकल्प आता है। स्वाध्याय का विकल्प वह अपवाद है। अन्तर में तो स्वाध्याय-स्व-अध्याय है। आहाहा!

अन्तर स्वरूप भगवान आत्मा स्व सन्मुख में तो स्वाध्याय है ही, परन्तु जरा अन्दर विशेष लीन न हो सके, विशेष-विशेष; विकल्प आता है तो वह अपवादमार्ग है। तो वह अपवाद ख्याल में आ जाता है कि अभी अन्तर में स्थिर नहीं रह सकता हूँ। अपवाद और उत्सर्ग। अन्तर में रहना वही उत्सर्गमार्ग है। यह तो विकल्प आता है, प्रमाद है। आहाहा! संज्वलन का उदय है। चौथी कषाय है, उसका थोड़ा उदय है। उसको अपवाद कहते हैं। **उत्सर्ग और अपवाद की मैत्रीपूर्वक रहनेवाले हैं। आत्मा का पोषण करके...** आहाहा! ऐसी बात। मुनि किसे कहें ? आहाहा! जो **आत्मा का पोषण करके निज स्वभावभावों को पुष्ट करते हुए...** निज स्वभावभाव शक्तिरूप जो है, उसको व्यक्तरूप से पुष्टि करते हुए – प्रगटरूप पुष्टि करते हुए। आहाहा! शक्तिरूप तो परमात्मा ही है। शक्ति-सामर्थ्य उसका भगवान आत्मा का स्वभाव, परमात्मा का स्वभाव ही है। यहाँ तो व्यक्त प्रगट करने की दशा। आहाहा!

निज स्वभावभावों को पुष्ट करते हुए... पर्याय में। ध्रुव तो है ही। उसके अवलम्बन से.. आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द को पुष्ट करते हुए **विभावभावों का शोषण करते हैं।** विकल्प का नाश करते हैं। शोषण अर्थात् नाश। दया, दान, व्रतादि पंच महाव्रत के

विकल्प, वह तो अपवादमार्ग है, दोष है, दु:ख है। आहाहा! उसका शोषण करते हैं। विकल्प उठता है, उसका तो नाश करने का प्रयत्न है। आहाहा! ऐसा मार्ग।

जिस प्रकार माता का पल्ला पकड़कर चलता हुआ बालक... साड़ी पकड़कर चलता है। उसमें कोई कुत्ता आ गया तो माँ की साड़ी बराबर पकड़े। कुत्ता आया, कोई बिल्ली आयी तो बराबर पकड़े। आहाहा! **जिस प्रकार माता का पल्ला पकड़कर चलता हुआ बालक कुछ अड़चन दिखने पर...** कुत्ता आया या कोई बिल्ली या गिलहरी आयी तो बालक डर गया। **अड़चन दिखने पर अधिक जोर से पल्ला पकड़ लेता है,...** पल्ला। आहाहा! दृष्टान्त (देते हैं)।

उसी प्रकार मुनि परीषह-उपसर्ग आने पर... क्षुधा हो और आहार मिले नहीं, तृषा हो और पानी मिले नहीं। आहाहा! और जंगल में सख्त धूप (पड़ती हो), उसमें ध्यान में बैठे हो। कहते हैं, ऐसा परीषह पड़े, **उपसर्ग आने पर...** कोई जानवर आकर थप्पड़ मारे। आहाहा! ऐसा उपसर्ग आने पर **प्रबल पुरुषार्थपूर्वक...** प्रबल पुरुषार्थपूर्वक **निजात्मद्रव्य को पकड़ लेते हैं।** आहाहा! जैसे (बालक) उसकी माँ का पल्ला विशेष पकड़ लेता है, उसकी गोद में चला जाए। ऐसे चलता हो, बाहर कोई कुत्ता आया हो तो उसकी गोद में चला जाए। आहाहा! वैसे, जब परीषह और उपसर्ग होता है, तब **प्रबल पुरुषार्थपूर्वक निजात्मद्रव्य को पकड़ लेते हैं।** आहाहा!

ऐसी पवित्र मुनिदशा... ऐसी पवित्र मुनिदशा **कब प्राप्त करेंगे! ऐसा मनोरथ सम्यग्दृष्टि को वर्तता है।** आहाहा! गृहस्थाश्रम में भी समकिती को ऐसा भाव वर्तता है। कब मैं यह छोड़ूँ और कब मैं मुनि होऊँ। कब जंगल में मेरे आत्मा में परीषह उपसर्ग आने पर भी मैं डिगू नहीं और आनन्द में जम जाऊँ! आहाहा! सब अनजानी बातें। आहा..! अकेला आत्मा.. आत्मा। व्रत, नियम और प्रत्याख्यान भी विकल्प और राग (है)। आहाहा! जोग, मन-वचन-काया के जोग का कम्पन भी नहीं। मन, वचन, काया तो नहीं, वह तो जड़ है, लेकिन उसके वश होकर कम्पन होता है, उससे रहित। आहाहा! अपने आत्मा को पकड़ लेते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! कल तो ३७६ (बोल) आया था, आज ३७७ है। **ऐसी पवित्र मुनिदशा कब प्राप्त करेंगे! ऐसा मनोरथ सम्यग्दृष्टि को वर्तता है।** आहाहा!

श्रीमद् ने अपूर्व अवसर में कहा न ? श्रीमद्।

'अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा ? बाह्यान्तर वर्तूं निर्ग्रंथ जो।' बाह्य और अभ्यन्तर निर्ग्रंथ दशा वर्तो। आहा.. ! अपूर्व अवसर अेवो... वह गुजराती है। क्यारे आवशे ? 'क्यारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो, सर्व भावनु छेदन करी।' सर्व भावथी उदासीन। उदासीन-पर में उदास। आहाहा ! एक आत्मा में रमणता। वही एक सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्षमार्ग (है)। बाकी मोक्षमार्ग दूसरी कोई चीज़ है नहीं। आहाहा !

वह कहते हैं, **ऐसा मनोरथ सम्यग्दृष्टि को वर्तता है**। भले ही गृहस्थाश्रम में रहे। रागादि हो, परन्तु मनोरथ में तो.. आहा.. ! मैं कब मुनि हो जाऊँ और जंगल में आत्मदशा आनन्द की पुष्टि करूँ। ऐसी भावना सदा रहती है। वह ३७७ (पूरा हुआ)।

जिसे स्वभाव की महिमा जागी है, ऐसे सच्चे आत्मार्थी को विषय-कषायों की महिमा टूटकर उनकी तुच्छता लगती है। उसे चैतन्यस्वभाव की समझ में निमित्तभूत देव-शास्त्र-गुरु की महिमा आती है। कोई भी कार्य करते हुए उसे निरन्तर शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का खटका लगा ही रहता है।

गृहस्थाश्रम में स्थित ज्ञानी को शुभाशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का अवलम्बन करनेवाली ज्ञानतृत्वधारा निरंतर वर्तती रहती है। परन्तु पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण अस्थिरतारूप विभाव परिणति बनी हुई है, इसलिये उनको गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं। स्वरूप में स्थिर नहीं रहा जाता, इसलिये वे विविध शुभभावों में युक्त होते हैं:—'मुझे देव-गुरु की सदा समीपता हो, गुरु के चरणकमल की सेवा हो' इत्यादि प्रकार से जिनेन्द्रभक्ति-स्तवन-पूजन एवं गुरुसेवा के भाव होते हैं तथा शास्त्र-स्वाध्याय के, ध्यान के, दान के, भूमिकानुसार अणुव्रत एवं तपादि के शुभभाव उनके हठ बिना आते हैं। इन सब भावों के बीच ज्ञातृत्व-परिणति की धारा तो सतत चलती ही रहती है।

निजस्वरूपधाम में रमनेवाले मुनिराज को भी पूर्ण वीतरागदशा का अभाव होने से विविध शुभभाव होते हैं:—उनके महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, पंचाचार, स्वाध्याय, ध्यान इत्यादि सम्बन्धी शुभभाव आते हैं तथा जिनेन्द्रभक्ति-श्रुतभक्ति-

गुरुभक्ति के उल्लासमय भाव भी आते हैं। 'हे जिनेन्द्र! आपके दर्शन होने से, आपके चरणकमल की प्राप्ति होने से, मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ ? अर्थात् आप मिलने से मुझे सब कुछ मिल गया।' ऐसे अनेक प्रकार से श्री पद्मनन्दी आदि मुनिवरों ने जिनेन्द्रभक्ति के स्रोत बहाये हैं।—ऐसे-ऐसे अनेक प्रकार के शुभभाव मुनिराज को भी हठ बिना आते हैं। साथ ही साथ ज्ञायक के उग्र आलम्बन से मुनियोग्य उग्र ज्ञातृत्वधारा भी सतत् चलती ही रहती है।

साधक को—मुनि को तथा सम्यग्दृष्टि श्रावक को—जो शुभभाव आते हैं, वे ज्ञातृत्वपरिणति से विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण उनका आकुलतारूप से—दु:खरूप से वेदन होता है, हेयरूप ज्ञात होते हैं, तथापि उस भूमिका में आये बिना नहीं रहते।

साधक की दशा एकसाथ त्रिपुटी (-तीन विशेषताओंवाली) है:—एक तो, उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है, जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा होती है; दूसरा, शुद्ध पर्यायांश का सुखरूप से वेदन होता है; और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावों का समावेश है, उसका—दु:खरूप से, उपाधिरूप से वेदन होता है।

साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वे भाव हठपूर्वक होते हैं। यों तो साधक के वे भाव हठरहित सहजदशा के हैं, अज्ञानी की भाँति 'ये भाव नहीं करूँगा तो परभव में दु:ख सहन करना पड़ेंगे' ऐसे भय से जबरन कष्टपूर्वक नहीं किये जाते; तथापि वे सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते। शुभभावों के साथ-साथ वर्तती, ज्ञायक का अलम्बन लेनेवाली जो यथोचित निर्मल परिणति, वही साधक को सुखरूप ज्ञात होती है।

जिस प्रकार हाथी के बाहर के दाँत—दिखाने के दाँत अलग होते हैं और भीतर के दाँत—चबाने के दाँत अलग होते हैं, उसी प्रकार साधक को बाह्य में उत्साह के कार्य—शुभ परिणाम दिखायी दें, वे अलग होते हैं और अन्तर में आत्मशान्ति का—आत्मतृप्ति का स्वाभाविक परिणमन अलग होता है। बाह्य क्रिया के आधार से साधक का अन्तर नहीं पहिचाना जाता।।३७८।।

३७८। बड़ा (बोल है)। **जिसे स्वभाव की महिमा जागी है,...** जिसको भगवान आत्मा का स्वभाव, स्व-स्व-अपना भाव आनन्द, त्रिकाली आनन्द, त्रिकाली शान्ति, त्रिकाली प्रभुता, त्रिकाली स्वच्छता,.. आहाहा! जिसको स्वभाव की महिमा, वह स्वभाव। त्रिकाली स्वभाव सनातन अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु, उसकी—स्वभाव की महिमा जागी है, **ऐसे सच्चे आत्मार्थी को...** ऐसे सच्चे आत्मार्थी को, सच्चा आत्मार्थी। वह आत्मार्थी है। आहा..! **विषय-कषायों की महिमा टूटकर...** ऐसे गृहस्थाश्रम में भी विषय-कषायों की महिमा टूटकर **उनकी तुच्छता लगती है**। धर्मी जीव को अपने स्वभाव की महिमा के आगे, विषय-कषाय आ जाता है, परन्तु तुच्छता लगती है। आहाहा! अन्दर में आदर नहीं है। अन्दर में ज्ञानानन्द का आदर है। बाकी विषयवासना आ जाती है। चारित्रदोष (है)। भूमिका मुनि की है नहीं। मुनि की दशा में भी कभी दोष आ जाता है। पुरुषार्थ की मन्दता हो जाए तो। परन्तु उससे भी हटकर स्वभाव में रहने का प्रयत्न करते हैं।

उसे चैतन्यस्वभाव की समझ में निमित्तभूत... आहाहा! भगवान आत्मा अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का रत्न भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द का हीरा प्रभु, शरीर प्रमाण... हीरा का जैसे पासा होता है, वैसे प्रभु में अनन्त गुण का पासा है। आत्मा में अन्दर.. आहाहा! **चैतन्यस्वभाव की समझ में निमित्तभूत देव-शास्त्र-गुरु की महिमा आती है**। विकल्प आता है। आहाहा! शुभभाव धर्मी को भी अपने स्वरूप में स्थिर रह सके नहीं - उत्सर्ग में, तो अपवाद में आ जाते हैं। देव-गुरु-धर्म की महिमा.. आहाहा! उसके निमित्तभूत (हैं तो) आती है।

कोई भी कार्य करते हुए उसे निरन्तर शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का... आहाहा! कहते हैं कि 'चैतन्यस्वभाव की समझ में निमिततभूत देव-गुरु-शास्त्र की महिमा आती है।' फिर भी **कोई भी कार्य करते हुए...** उस कार्य में भी **उसे निरन्तर शुद्ध स्वभाव...** भगवान अतीन्द्रिय आनन्द, निर्मलानन्द प्रभु अन्दर वीतरागमूर्ति आत्मा.. आहाहा! साक्षात् सिद्ध समान। 'सर्व जीव छे सिद्धसम, जो समझे ते थाय।' श्रीमद् में है। 'सर्व जीव छे सिद्धसम'। सर्व जीव सिद्ध समान हैं। अभव्य या भव्य। आहाहा! शरीर से तो रहित है, यह तो मिट्टी है। कर्म जो धूल है उससे रहित है। परन्तु पुण्य और पाप का भाव, देव-गुरु-शास्त्र की महिमा का भाव पुण्य उससे भी रहित है। आहाहा!

महिमा आती है। कोई भी कार्य करते हुए... उस महिमा के काल में भी, देव-गुरु-शास्त्र की महिमा के काल में भी **निरन्तर शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का खटका लगा रहता है।** आहाहा! भले शुभभाव आता है, परन्तु अन्दर में खटका लगा ही रहता है। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसे जो पकड़ लिया है, उस ओर का झुकाव छूटता ही नहीं। भले रागादि आता है, फिर भी अन्तर का झुकाव दूर होता नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। कहाँ संसार में गले तक डूब गये हो। उसे ऐसी बातें (समझनी)। आहाहा!

फिर भी श्रेणिक राजा जैसे, भरत चक्रवर्ती छह खण्ड, ९६ हजार स्त्रियाँ, ९६ करोड़ सैनिक, फिर भी आत्मज्ञान था। आहाहा! वह चीज़ बाधक नहीं है, वह तो राग में राग है। अन्तर स्वरूप में रमणता वह भिन्न चीज़ है। आहाहा! ९६ हजार स्त्रियाँ, ९६ करोड़ सैनिक.. आहा..! फिर भी आत्मज्ञान पर लीनता चलती ही है। अन्तर में.. अन्तर में.. अन्तर में। आहाहा! जिसका भोजन.. आहाहा! ३६० तो अधिकारी हैं। जो ३६० अधिकारी हैं, उनमें एक अधिकारी को, बारह महीने में एक दिन आहार कैसा करना, उसकी व्यवस्था एक अधिकारी बारह महीने तक करता है। आहाहा! क्या कहा?

चक्रवर्ती समकिती है, आत्मज्ञानी है। उसके ३६० रसोईया नहीं है। रसोईया तो अलग। ३६०, रसोईया को एक दिन क्या करना, उसकी बारह महीने खोज करके, बारह महीने! आहाहा! लोगों को तो बैठना कठिन। आहाहा! बारह महीने तक एक दिन कैसा आहार करना, कैसी रोटी, कैसी दाल, कैसे चावल... आहाहा! हीरे की भस्म। करोड़ों रुपयों की हीरे की भस्म को घी में डालकर, उसमें गेहूँ डालकर, वह गेहूँ भस्मवाला घी पी जाए। उसकी बनाये रोटी। लेकिन वह सब कला, बारह महीने में एक अधिकारी सीखे, सब ख्याल में ले ले और फिर रसोईया को हुकम करे। आहाहा! आज यह बनाना। यह दाल, यह चावल, यह सब्जी, यह रोटी, यह हलवा... जो कुछ। आहाहा! ऐसे तो ३६० अधिकारी। रसोईया को कहनेवाले। फिर भी अन्तर में निरन्तर आनन्द की लहर वर्तती है। आहाहा! जिसका भोजन, एक बार का भोजन ३२ ग्रास बनाते हैं, एक ग्रास ९६ करोड़ सैनिक खा नहीं सकें। एक कवल ९६ करोड़ सैनिक पचा न सकें। ऐसे ३२ कवल को पचाते हैं। आहाहा! फिर भी अन्दर में भिन्न है। अरे..! यह नहीं, यह तो राग है। मेरी चीज़ तो वीतरागमूर्ति आनन्द है। उस आनन्द की प्रीति,प्रेम और आदर जो परिणति है,

वह परिणति हटती नहीं। आहाहा! लोगों को तो यह कठिन लगे। बाहर का थोड़ा त्याग देखे तो मानो... और इसे तो बत्तीस ग्रास का एक ग्रास ९६ करोड़ सैनिक पचा सके नहीं। ऐसे करोड़ों हीरे और माणिक की भस्म करके,... आहाहा! घी में डाले और उसमें डाले गेहूँ, वह गेहूँ सब भस्म पी जाए। उस गेहूँ की बनाये रोटी। दाल की जाति कोई अलग होगी। ऐसी अलौकिक सब बातें करे। फिर भी अन्दर में कुछ नहीं, रस बिल्कुल नहीं होता। आहाहा!

आत्मा का स्वभाव जहाँ ज्ञात हुआ है, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन जहाँ हुआ है.. वह तो आ गया था न? कल कहा था न? वेदन है, उसका आलम्बन नहीं; आलम्बन तो भगवान त्रिकाली का आलम्बन है। आलम्बन है, उसका वेदन नहीं और वेदन है, उसका आलम्बन नहीं। आहाहा! अरे रे..! ऐसी बातें कभी जिन्दगी में सुनने (नहीं मिले), उसमें भी परदेश में गये हो, उसे तो हो चुका... आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का है, भाई!

कहते हैं, उतना ३२ ग्रास का भोजन हमेशा ले तो भी उससे भिन्न रहते हैं। अन्दर अपने आनन्द को चूकते नहीं। अपने आनन्द की दशा पर जो दृष्टि हुई है और जो परिणमन हुआ है, परिणमन अर्थात् आनन्द की जो पर्याय प्रगट हुई है, उसमें ऐसी भोजन की दशा हो तो भी उसे वर्तमान आनन्द में कमी नहीं आती। आनन्द बढ़ता नहीं, परन्तु वर्तमान आनन्द में कमी नहीं आती। आहाहा! मार्ग प्रभु का अलग है, भाई! 'प्रभु नो मार्ग छे शूरानो, कायरना नहि काम'।'जिननो मार्ग छे शूरानो, कायरना काम नहि त्यां'। सुन सके नहीं ऐसी बात। आहाहा! ऐसा भोजन और समकिती! और एक बार भी खाये नहीं और एक-एक महीने का उपवास। द्रव्यलिंगी नग्न मुनि जंगल में बैसे, परन्तु आत्मज्ञान बिना का बिना अंक के शून्य। आहाहा! वह चार गति में भटकनेवाला।

यहाँ वह कहते हैं, **कोई भी कार्य करते हुए उसे निरन्तर...** निरन्तर है न? **शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का खटका लगा ही रहता है।** शुद्ध स्वभाव की वृद्धि करने का खटका लगा ही रहता है। आहाहा!

गृहस्थाश्रम में स्थित ज्ञानी को... गृहस्थाश्रम में स्थित ज्ञानी को **शुभाशुभभाव से भिन्न...** उसको भी शुभभाव और अशुभभाव भी आता है। गृहस्थाश्रम में समकिती है, आत्मज्ञानी, उसको भी शुभभाव और अशुभ दोनों आते हैं। आहाहा! रौद्रध्यान आता है,

पंचम गुणस्थान में। परन्तु अन्दर में भिन्न पड़ा है, उसमें से हटता नहीं। आहाहा! वह कहते हैं कि **गृहस्थाश्रम में स्थित ज्ञानी को शुभाशुभभाव...** अशुभभाव भी आते हैं और शुभभाव भी आते हैं। आहाहा! समकिती है, धन्धा भी करता है। श्रीमद् राजचन्द्र, लाखों का जवाहरात का धन्धा करते थे। फिर भी नारियल में जैसे गोला भिन्न होता है, ... वैसे यह नारियल का गोला यह शरीर-नारियल, उसमें भगवान गोला आनन्द का नाथ अन्दर भिन्न हो गया है। आहाहा! ऐसी बात है। लाखों का व्यापार करते थे।

एक बार तो एक माणेक या रत्न का व्यापार किया था, कोई जौहरी की दुकान में। उसने पुड़िया बना दी। जिसका सौदा था वह भूल गया, वह लेनेवाला। और ऊँची चीज़ की पुडिया, जिसमें लाखों रुपये मिलें ऐसी पुड़िया दे दी। जो सौदा था, वह साधारण हीरे का था और उस हीरे की कीमत का पार नहीं, उसकी पुड़िया बना दी। वह पुड़िया लेकर घर आये। आकर जहाँ खोलकर देखा... अरे रे! अरे..! बेचारा अभी आयेगा। यह चीज़ हमारी नहीं, हमने इसका सौदा नहीं किया है। लाखों की कमाई। उस पुड़िया में लाखों की कमाई थी। आहाहा! ऐसे ऊँचे हीरे। उसे खोलते थे, उतने में वह आया। भाई! हमने यह सौदा नहीं किया है। अरे..! भाई! प्रभु! यह रही चीज़, भाई! ले जा। तेरी चीज़ ले जा। हमने जो सौदा किया, वह चीज़ लाओ। उसे ऐसा लगा, यह है कौन? यह कोई दैवीय पुरुष है! जिसे मैंने पुड़िया बना दी, तो भी अभी खोलकर मुझे देता है। मेरी भूल हुई कि मेरे हाथ में यह आ गया। आहाहा! लौकिक में नैतिक जीवन धर्मी का ऐसा होता है। आहाहा! धर्मी जीव का नैतिकपना भी अलौकिक होता है। उस समय लाखों (मिलते थे)। उस समय। अभी तो कीमत कम हो गयी। उस समय का एक लाख और अभी के पच्चीस लाख। उस समय लाखों की कीमत की पुड़िया। खोलकर देखते हैं तो, अरे..! इसका सौदा मैंने नहीं किया है। अरे..! यह क्या आ गया? उतने में वह आया, उसे दे दिया। वह लेता है और खोलता है, ये दैवीय पुरुष है कौन? आहाहा! जिसे आत्मा की पड़ी है, उसे दुनिया की कोई चीज़ की दरकार नहीं। करोड़ों रुपया हो या न हो। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **गृहस्थाश्रम में स्थित...** समकिती धर्मी-आत्मा का भानवाला। ज्ञानी को **शुभाशुभभाव से...** शुभ और अशुभ दोनों भाव होते हैं। आहाहा! है? शुभभाव भी होता है और अशुभभाव भी होता है। आहाहा! **शुभाशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का**

अवलम्बन करनेवाली... ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा, ऐसा नित्यानन्द प्रभु, ज्ञान का हीरा पूरा भगवान आत्मा, उसकी जो अन्तर्दृष्टि, पकड़, अनुभव हुआ है, वह **ज्ञायक का अवलम्बन करनेवाली ज्ञानतृत्वधारा...** वर्तमान पर्याय। त्रिकाल ज्ञायक को पकड़नेवाली वर्तमान ज्ञातृधारा। ज्ञायक को पकड़नेवाली ज्ञायकधारा। ज्ञायक, वह द्रव्य त्रिकाली। उसको पकड़नेवाली-अनुभव करनेवाली धारा वह पर्याय है। आहाहा!

ज्ञायक का अवलम्बन करनेवाली... आहाहा! कौन? ज्ञातृधारा। **निरंतर वर्तती रहती है।** आहा..! ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा, जिसमें पुण्य-पाप तो है नहीं। शरीर, वाणी, मन तो है नहीं। दया, दान, काम, क्रोध है नहीं, परन्तु जिसमें अल्पता है नहीं। वह तो परिपूर्ण आनन्द और परिपूर्ण शक्ति से भरा पड़ा है। अशुद्धता तो है नहीं.. आहा..! परन्तु अपूर्णता है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अनजाने आदमी को तो ऐसा लगे कि यह क्या? उस रास्ते पर चला नहीं है। आहा..! वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वर का अन्तर मार्ग, वह पंथ सुना नहीं, उसे रास्ते पर चला नहीं। आहाहा! उसे तो भटकने का रास्ता (है)।

यहाँ कहते हैं, धर्मी को गृहस्थाश्रम में शुभ और अशुभभाव होने पर भी। शुभाशुभ भाव तो विकार है, फिर भी कमजोरी से होता है, परन्तु उससे भिन्न ज्ञायक का अवलम्बन करनेवाली ज्ञातृधारा। त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप, उसका अवलम्बन करनेवाली वर्तमान ज्ञान की पर्याय। आहाहा! ज्ञातृधारा **निरंतर वर्तती रहती है।** भाषा तो सादी है, प्रभु! माल तो जो है, सो है। आहाहा! माल, अकेला मक्खन है।

परन्तु पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण... यह क्या कहा परन्तु? कि ज्ञायकभाव जो त्रिकाल है, उसकी परिणति में ज्ञातृधारा तो बहती है। जानन, जानन-देखन, आनन्द की दशा तो वर्तती है। फिर भी, **परन्तु पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण अस्थिरतारूप विभाव परिणति बनी हुई है,...** आहाहा! गृहस्थाश्रम में भी बड़ी-बड़ी लड़ाई करते हैं। आहाहा! अरबों का व्यापार होता है। चक्रवर्ती का राज किसे कहें! जिसके बत्तीस ग्रास में से एक ग्रास ९६ करोड़ सैनिक न खा सके, वह ३२ ग्रास हमेशा खाये, फिर भी समकिती और दूसरा सूखी रोटी खाये, दूध और घी का त्याग करके। फिर भी उसे राग

का प्रेम है और आत्मा का प्रेम नहीं। अन्तर ज्ञायक की दृष्टि होकर ज्ञायक की धारा जागृत नहीं हुई है। वह अज्ञानी है।

मुमुक्षु :- ज्ञाताधारा में पूर्णता है या अपूर्णता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कायम-कायम चलती है। जितनी निर्मल खिली है, खिली है उतनी, खिली है उतनी। गृहस्थाश्रम में दो कषाय का अभाव। मिथ्यात्व का अभाव हुआ, उतनी खिली है। जितनी खिली है धारा वह चलती है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बातें। आहाहा!

विभाव परिणति बनी हुई है,... पुरुषार्थ की कमजोरी से धर्मी को भी शुभ-अशुभभाव आता है। आहाहा! बन्ध का कारण है, आता है। परन्तु वह अस्थिरता के कारण, निर्बलता के कारण। **इसलिए उनको गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं।** है ना ? शुभ-अशुभभाव। अशुभभाव भी होता है। आहाहा! पुत्री-पुत्री, स्त्री,पुत्र, कुटुम्ब। विकल्प उठता है, जानते हैं कि यह कोई मेरी चीज़ नहीं है। मैं किसी का नहीं हूँ, वह मेरे नहीं है। परन्तु अस्थिरता के कारण; स्वरूप की दृष्टि होने पर भी, उस भूमिका के प्रमाण में, उस दशा अनुसार ज्ञायक की ज्ञायकधारा निर्मल परिणति वर्तती होने पर भी ऐसे विभाव शुभाशुभभाव आता है। आहाहा! ऐसा धर्म। ऐसा कैसा ? दूसरों को ऐसा लगे, यह जैन धर्म होगा ? आहाहा! हम तो एकेन्द्रिय की दया पालो, व्रत करो, यह सुना था। वह बात तो इसमें कहीं नहीं आती। आहाहा! प्रभु! वह मार्ग कोई दूसरा है। आहाहा! बाह्य व्रत, तप और क्रियाकाण्ड.. अरे..! शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, प्रभु! वह भी धर्म नहीं। वह शुभभाव है। आहाहा!

ब्रह्म अर्थात् आत्मा ज्ञायक है, उसको पकड़ करके उसमें लीनता होती है और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। बात-बात में फर्क है, नाथ! तू बड़ा प्रभु है, भगवान! तेरी बात तूने सुनी नहीं। आहाहा! तू कितनी कीमत का और कितनी ऋद्धि से (भरा है), कितनी कीमत और तेरे अन्दर कितनी ऋद्धि भरी है। आहाहा! सिद्धसमान ऋद्धि सब पड़ी है तेरे में। आहाहा! भगवान! तूने नजर नहीं की। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि गृहस्थाश्रम में आत्मज्ञान होने पर भी, धर्मध्यान होने पर भी

विभाव परिणति आती है, शुभाशुभ परिणति होती है, स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता है। आहाहा! **स्वरूप में स्थिर नहीं रहा जाता, इसलिए वे विविध शुभभावों में युक्त होते हैं...** यह बात ली। पहले तो शुभाशुभ दोनों भाव लिये थे। फिर एक शुभ की ली। **विविध शुभभावों में युक्त होते हैं...** भक्ति, वाँचन, श्रवण, शास्त्र की चर्चा-वार्ता यह सब शुभभाव है। करते हैं। ओहोहो!

मुझे देव-गुरु की सदा समीपता हो,... आहा..! ऐसी भावना भी करते हैं। है शुभभाव, विकल्प। '**मुझे देव-गुरु की सदा समीपता हो, गुरु के चरणकमल की सेवा हो**' आहाहा! ऐसा विकल्प शुभभाव ज्ञातृधारा होने पर भी, जानन शक्ति की व्यक्तता प्रगट होने पर भी यह भाव आता है। क्योंकि पूर्ण शुद्धता प्रगट नहीं हुई है। **इत्यादि प्रकार से जिनेन्द्रभक्ति...** आहाहा! जिनेन्द्र भक्ति भी आती है। जानते हैं कि यह शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा! **स्तवन...** शुभभाव है। भगवान का स्तवन गाते हैं। कल भाई! एक लेख आया है। कोई आर्जिका ने... एक मासिक आता है, समयसार का गीत बहुत अच्छा बनाया है। समयसार की प्रशंसा की गीत बनाकर। उसे जो बैठा हो, वह अलग बात। परन्तु समयसार की ऐसी प्रशंसा की है, ऐसी प्रशंसा की है। आहा..! गीत बनाया है। समयसार अर्थात् क्या? चीज़! आहा..! इस भरतक्षेत्र की उग्र, उत्तम से उत्तम चीज़!! जगतचक्षु! आहाहा! समयसार अर्थात् आत्मा। आहाहा!

आत्मा की परिभाषा समयसार में कुन्दकुन्दाचार्य ने की है, वह बहिन कहती हैं। आहाहा! भक्ति आती है, स्तवन आता है, पूजन आती है **एवं गुरुसेवा के भाव होते हैं...** आहाहा! शुभभाव आता है। परन्तु धर्मी जानते हैं कि शुभभाव पुण्य है। मेरे आदर करने लायक नहीं है। आहाहा! फिर भी पुरुषार्थ की कमजोरी से आये बिना रहता नहीं। आहाहा! एक म्यान में दो तलवार? दो नहीं है। चैतन्य भगवान निर्मलानन्द वीतरागमूर्ति प्रभु, उसकी धारा निर्मल भी चलती है और साथ में राग भी चलता है। शुभ और अशुभ राग। साधक है, वहाँ बाधक तो होता ही है। मिथ्यादृष्टि को आंशिक धर्म भी नहीं है। अकेले शुभ और अशुभभाव (हैं)। भगवान को आंशिक भी दुःख नहीं है। अकेले शुद्ध स्वभाव का पूर्ण परिणमन (है)। साधक को जितना स्वभाव के आश्रय से शुद्धता (हुई, उतनी शुद्धता है)। जितना लक्ष्य पर ऊपर जाती है, उतनी अशुद्धता है। दोनों साथ में चलती है। आहाहा! दोनों साथ में चलती है।

एक श्लोक आता है न ? भाई ! जब तक कर्म की पूर्ण विरति न हो,.. श्लोक आता है। तब तक राग आये, आये, उससे विरोध नहीं है। विरोध अर्थात् वहाँ ज्ञातृपना न रह सके—राग आया, इसलिए ज्ञातृपना न रह सके, ऐसा भी नहीं। तथा राग आया, इसलिए धर्म है, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! श्लोक है न ? भाई ! यावत कर्म विरति। कर्म अर्थात् कार्य-राग। राग की पूर्ण निवृत्ति नहीं है, तब तक धर्मी-समकिती-आत्मज्ञानी को भी राग तो आता है। अशुभराग आता है। आहाहा ! लेकिन उसकी मिठास नहीं है। आहाहा ! उसका खेद, दु:ख, जहर जैसा जानते हैं। पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण.. आहाहा ! पहले शुभाशुभभाव कहा है, बाद में शुभभाव की बात की है।

गुरु की सेवा **तथा शास्त्रस्वाध्याय के,...** शास्त्रस्वाध्याय वह भी विकल्प है, शुभभाव है। धर्म नहीं। आहाहा ! शास्त्र कहना और सुनना, दोनों राग है। आहाहा ! आये बिना रहे नहीं। कमजोरी से आता है, परन्तु है नुकसानकारक। अरर..र.. ! समाधिशतक में तो वहाँ तक लिया है, मुनि कहते हैं कि हमको उपदेश का विकल्प आता है, शुभराग है, परन्तु वह पागलपन है। ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समाधिशतक। पूज्यपाद। उपदेश का शुभभाव आता है, वह पागलपन है। क्यों ?—कि हमारे राग से वह समझ नहीं जाएगा। उसकी पर्याय स्वतन्त्र है। उसकी पर्याय उसके कारण से स्वतन्त्र प्रगट होगी। आहाहा ! तो ऐसा राग आया है, वह निरर्थक है। आहाहा ! सुनने में भी राग आया, वह विकल्प राग है। गणधर भी भगवान की वाणी सुनते हैं, परन्तु है शुभराग; धर्म नहीं। आहाहा !

शास्त्र-स्वाध्याय के, ध्यान के,... अन्दर ध्यान करूँ, ऐसा विकल्प आता है। शुभ.. शुभ। **दान के,...** सच्चे मुनि, सन्त आदि को धर्मी को दानादि का भाव आता है, वह पुण्य शुभभाव है। पुण्य है। **भूमिकानुसार...** देखो ! **अणुव्रत एवं तपादि के शुभभाव उनके हठ बिना आते हैं।** भूमिका अनुसार अणुव्रत बारह व्रत होते हैं, तपादि होते हैं। वह **शुभभाव उनके हठ बिना आते हैं।** सहज आते हैं। उस काल में क्रमबद्ध में आनेवाला है तो आया है, ऐसा जानकर दूर रहते हैं। हठ बिना। आहाहा ! **इन सब भावों के बीच ज्ञातृत्व-परिणति की धारा तो सतत चलती ही रहती है।** मैं जाननेवाला हूँ, यह बात तो सदा चलती रहती है। उसमें विरह पड़ता नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - ३, शुक्रवार, तारीख १२-९-१९८०
वचनामृत -३७८ प्रवचन-३१

इसमें १६० पृष्ठ है। तीसरा पैराग्राफ है। **निजस्वरूपधाम में...** पहला आया। ३७८ का तीसरा पैराग्राफ। दो पैराग्राफ चले हैं। **निजस्वरूपधाम में...** अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान जिसकी सत्ता में है, मौजूदगीरूप वही है। अनन्त ज्ञान, ज्ञानस्वरूप है परन्तु वह ज्ञान अनन्त है। उसकी कोई मर्यादा नहीं है। ऐसा आनन्द। उसकी सत्ता क्षेत्र थोड़ा, असंख्य प्रदेश में परन्तु गुण अनन्त अपरिमित गुण जिसमें है, ऐसा निजस्वरूपधाम। निजस्वरूपधाम। आहा..! **रमनेवाले मुनिराज को भी पूर्ण वीतरागदशा का अभाव होने से विविध शुभभाव होते हैं...** उनको भी विविध शुभभाव तो होते हैं। आहाहा!

उनके महाव्रत,... यह शुभभाव। **अट्ठाईस मूलगुण,...** यह शुभभाव, **पंचाचार,...** व्यवहार। व्यवहार पंचाचार। बाकी निश्चय पंचाचार भी है। प्रवचनसार। पहले शुरुआत में निश्चय पंचाचार (आते हैं)। और यह व्यवहार पंचाचार शुभभाव। **स्वाध्याय,...** शास्त्र का स्वाध्याय करना, वह भी शुभभाव है। **ध्यान इत्यादि सम्बन्धी...** ध्यान अर्थात् आत्मा का विचार, विकल्प। ध्यान अर्थात् निर्विकल्प नहीं। परन्तु अन्दर मैं ध्यान करूँ। चैतन्य आनन्द स्वरूप है। ऐसी जो विकल्पदशा उसको यहाँ ध्यान कहते हैं। **इत्यादि सम्बन्धी शुभभाव आते हैं...** आहाहा! वेदन में भी शुभभाव है। वेदन में शुद्धभाव और शुभभाव का वेदन है। अशुभ का भी थोड़ा वेदन है। परन्तु वेदन का आलम्बन नहीं है। जिसका आलम्बन (है), उसका वेदन नहीं है। जिसका वेदन है, उसका आलम्बन नहीं है। आहाहा! शुद्धपर्याय, शुभभाव, अशुभ वेदन में है। शुद्ध वेदन भी है, अशुभ और शुभ का वेदन है। वेदन का अवलम्बन नहीं है, वेदन का आलम्बन नहीं है। वेदन का आलम्बन नहीं और जिसका आलम्बन है, उसका वेदन नहीं है। आहाहा! ध्रुवस्वरूप। स्वधाम कहा न? निजस्वरूपधाम में। रहना भले वहाँ रहे, उसका वेदन नहीं है। चन्दुभाई! वेदन पर्याय का है। **निजस्वरूपधाम में रमनेवाले...** ऐसा कहा न? मुनिराज को ऐसे शुभभाव आते हैं।

जिनेन्द्रभक्ति-श्रुतभक्ति-गुरुभक्ति के उल्लासमय भाव भी आते हैं। उल्लास, प्रेम और उल्लास दिखने में भी आते हैं।

हे जिनेन्द्र! पद्मनन्दी आचार्य कहते हैं। पद्मनन्दी मुनि। **आपके दर्शन होने से, आपके चरणकमल की प्राप्ति होने से, मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ ?** है तो पर। परन्तु ऐसा भी व्यवहार आता है। परन्तु वह व्यवहार अवलम्बन करने लायक नहीं है। आहाहा! अवलम्बन करने लायक तो एक निजधाम शुद्ध स्वरूप (है)। ऐसी चीज़ मुनि को भी आती है, ऐसा कहते हैं। हे नाथ! **मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ ?** यह तो व्यवहार आया। आपकी प्राप्ति हुई, प्रभु! **मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ ?** यह तो वेदन की, शुभभाव की वेदन की दशा की बात है। आहाहा! उस समय भी जिसका वेदन नहीं, उसका आलम्बन तो कायम रहता है। ध्रुव का आलम्बन तो कायम रहता है। भले वह वेदन में न आवे। वेदन में ध्रुव आता नहीं। आहाहा! और वेदन में पर्याय आती है, उसका आलम्बन नहीं।

यह शुभभाव आता है, हे प्रभु! **आपके दर्शन होने से, आपके चरणकमल की प्राप्ति होने से, मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ ?** ऐसा कहते हैं। क्या नहीं प्राप्त हुआ ? वह तो विकल्प है। वेदन में तो विकल्प है। समझ में आया ? परन्तु उस समय भी आलम्बन तो ध्रुव का है। आपके चरणकमल प्राप्त हुए। मुझे क्या नहीं प्राप्ति हुई ? यह तो एक शुभभाव का वेदन है तो वह बात आती है। परन्तु अन्तर में जो चीज़ है, जिसका वेदन नहीं, परन्तु जिसका आलम्बन एक क्षण हटता नहीं... आहाहा! जिसका आलम्बन एक समय हटता नहीं। जिसके वेदन में चाहे तो शुभ वेदन हो, शुद्ध का वेदन हो, अरे..! अशुभ का भी थोड़ा भाव आ जाए। मुनि को भी आर्तध्यान आ जाए। पंचम गुणस्थान में तो रौद्रध्यान भी आ जाए। वेदन है, आलम्बन नहीं। आहाहा!

आधार प्रभु एक समय में निज स्वरूपधाम, उसका अवलम्बन और आधार तो कायम एक ही रहता है। आहाहा! जैसी दशा में आते हैं। प्रभु! आपके दर्शन से मुझे क्या नहीं हुआ ? ऐसी भाषा भी आती है, विकल्प भी आता है। फिर भी उसका अवलम्बन नहीं। आहाहा! अवलम्बन में तो अन्दर प्रभु ज्ञायक वस्तु ज्ञायक की धारा चलती है, उसका वेदन है, आलम्बन ज्ञायक का है। शुभ-अशुभ का भी नहीं और शुद्ध का भी आलम्बन नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

आप मिलने से मुझे सब कुछ मिल गया।' ऐसे अनेक प्रकार से श्री पद्मनन्दी आदि मुनिवरों ने जिनेन्द्रभक्ति के स्रोत बहाये हैं। प्रवाह बहाया है। **ऐसे-ऐसे अनेक प्रकार के शुभभाव मुनिराज को भी हठ बिना आते हैं।** शुभ नहीं लाऊँगा तो मैं दुर्गति में जाऊँगा, ऐसी हठ नहीं, ऐसा लक्ष्य भी नहीं है। आहाहा! वह तो ऐसा सहज भाव, शुद्ध के अवलम्बन की पूर्णता नहीं होने से, शुद्ध की पूर्णता द्रव्य की नहीं होने से ऐसा भाव वेदन में आता है। फिर भी वेदन की मुख्यता नहीं (होती)। आहाहा! समझ में आया? मुख्यता तो भगवान द्रव्यस्वभाव, निज स्वरूपधाम (की है)। आहाहा! निज स्वरूपधाम। भले असंख्य प्रदेश हों, परन्तु असंख्य प्रदेश में भी अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण विराजते हैं। उसका एकरूप, अनन्त गुण का एकरूप, उसका आलम्बन ऐसी दशा में भी, शुभभाव की दशा में भी, अरे..! कभी अशुभ परिणाम आता है, मुनिराज को अशुभ तो गिनने में आया नहीं। उन्हें आर्तध्यान होता है, फिर भी गिनने में नहीं आया है। गृहस्थ को गिनने में आया है। परन्तु गृहस्थ को भी अशुभभाव के काल में भी वेदन भले उसका हो, वेदन में आलम्बन नहीं है। आहाहा! आलम्बन तो वेदन नहीं है, उस चीज़ का आलम्बन है। वेदन नहीं है, उस चीज़ का आलम्बन (होता है)। वेदन है, उस चीज़ का आलम्बन नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

द्रव्य और पर्याय, दो के बीच (बात है)। पर्याय का वेदन और द्रव्य का आलम्बन। वेदन का आलम्बन नहीं और द्रव्य का-ध्रुव का वेदन नहीं। आहाहा! दो चीज़ भिन्न है। पर से तो भिन्न है ही। प्रवचनसार की १०१ गाथा ली न? उत्पाद, ध्रुव के कारण नहीं। आहाहा! उत्पाद, ध्रुव के कारण नहीं और व्यय, उत्पाद के कारण नहीं, और उत्पाद, ध्रुव के कारण नहीं, परन्तु ध्रुव, उत्पाद के कारण नहीं। आहाहा! १०१ गाथा, प्रवचनसार। भगवान की दिव्यध्वनि का सार। आहाहा! उत्पाद-व्यय का परिणाम आता है। क्योंकि तीन मिलकर उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्, तीनों मिलकर सत् है। फिर भी उत्पाद-व्यय सत्, उसका आलम्बन नहीं। आहाहा! उसी की चीज़ में उत्पाद-व्यय का आलम्बन नहीं है। आलम्बन तो निज धाम का ही है। आहाहा!

यह कहते हैं, हठ बिना शुभभाव आ जाते हैं। आलम्बन तो ध्रुव शुद्ध का ही है। **साथ ही साथ ज्ञायक के...** देखा! आया। **साथ ही साथ ज्ञायक के उग्र आलम्बन से...**

आलम्बन तो उसका है। आहाहा! ऐसे भाव में भी साथ ही साथ, साथ ही साथ। आलम्बन पीछे और शुभभाव पहले, ऐसा भी नहीं। साथ ही साथ। शुभभाव के साथ में ही, आहाहा! **ज्ञायक के उग्र आलम्बन से मुनियोग्य उग्र ज्ञातृत्वधारा भी...** आहाहा! ज्ञायकस्वभाव की अवलम्बन दशा के कारण ज्ञातृधारा भी सतत चलती है, ऐसे शुभभाव के काल में भी (चलती है)। आहाहा! ज्ञातृधारा, यह परिणति है, पर्याय है, परन्तु शुभभाव के काल में भी ज्ञायक की ज्ञातृधारा चलती है। आहाहा! **सतत चलती ही रहती है।** आहाहा! निरन्तर शुभ-अशुभभाव के साथ में, साथ में, आगे-पीछे नहीं, साथ में मुनियोग्य ज्ञातृधारा (चलती ही रहती है)। आहाहा! आलम्बन तो ध्रुव (का है), परन्तु ज्ञातृधारा परिणति-पर्याय है। ज्ञातृधारा, वह उत्पाद-व्यय की पर्याय है। आहाहा! वह भी सतत चलती रहती है। आहाहा!

साधक को—मुनि को तथा सम्यग्दृष्टि श्रावक को... दोनों को। साधक अर्थात् दो-मुनि अथवा सम्यग्दृष्टि श्रावक। **जो शुभभाव आते हैं, वे ज्ञातृत्वपरिणति से विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण...** परिणति से विरुद्ध, हों। आलम्बन तो त्रिकाल ज्ञायक का है। उसके अवलम्बन से ज्ञातृधारा चली, निर्मल धारा चली, उसके साथ शुभभाव आदि भी है। **विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण...** दोनों का विरुद्ध स्वभाव है। आहाहा! पर्याय में, हों! त्रिकाली का अवलम्बन है, परन्तु परिणति में ज्ञातृधारा से विरुद्ध शुभभाव विरुद्ध भाव है। आहाहा! ज्ञातृधारा ज्ञायक की परिणति है - पर्याय है। उसके साथ शुभभाव है, परन्तु वह विरुद्ध है। आया न? **ज्ञातृत्वपरिणति से विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण उनका आकुलतारूप से—दुःखरूप से वेदन होता है,...** आहाहा! ज्ञायक के अवलम्बन से ज्ञायक परिणति जो पर्याय उत्पन्न हुई, उसका वेदन सुखरूप है और उसके साथ जो शुभभाव आया, उसका वेदन विरुद्ध आकुलता है। आहाहा! एक समय में दो (भाव)। एक समय में तीन। ज्ञायक का अवलम्बन, उस अवलम्बन की धारा, उससे शुभभाव विरुद्ध धारा। तीनों साथ में चलते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग।

उनका आकुलतारूप से—दुःखरूप से वेदन होता है,... ज्ञातृधारा की परिणति की अपेक्षा से, अवलम्बन तो ज्ञायक का है, उसका तो वेदन है नहीं, उसके आलम्बन से जो निर्मल ज्ञातृधारा शुद्ध परिणति-धर्मधारा जो प्रगट हुई, उससे शुभभाव विरुद्ध भाव है। आकुलतारूप से - दुःखरूप से वेदन होता है। आहाहा! शुभभाव आकुलता-दुःखरूप।

समयसार में आता है। समयसार में है न ? अध्यवसान आदि दु:खमय है। जितने अध्यवसाय विकल्प उठते हैं, उसे दु:ख में डाला है। आहाहा! वह प्रभु में है नहीं, उसकी शुद्ध परिणति में वह है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत, भाई! ज्ञायक त्रिकाल में तो है नहीं। परन्तु त्रिकाल की धारा से जो ज्ञातृधारा परिणति-पर्याय प्रगट होती है, वह ध्रुवधारा है। आहाहा!

चैतन्य त्रिकाली की धारा तो ध्रुवधारा है। उसके अवलम्बन से उत्पन्न हुई, वह अध्रुवधारा है। परन्तु वह आनन्द और सुखरूप है। उसके साथ शुभराग है, उसकी भी साथ में धारा है परन्तु वह दु:खरूप है। आहाहा! इसमें विरोध आता था न ? दीपचन्दजी सेठिया। ज्ञानी को दु:ख होता ही नहीं, (ऐसा मानते थे)। दु:ख वेदे, वह तीव्र कषायवाला अज्ञानी वेदे। दु:ख का वेदन नहीं होता, ऐसा कहते थे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जब तक वीतरागता न हो, तब तक तीन कायम चलते हैं। त्रिकाल का अवलम्बन, उसकी धारा परिणति निर्मल और शुभ या अशुभ में से कोई भी एक भाव। आहाहा! और उस शुभ-अशुभभाव का वेदन दु:ख। आत्मा ज्ञायक आनन्दमय है, तो आनन्दमय के अवलम्बन से उत्पन्न हुई, यहाँ ज्ञातृत्वधारा कहा, वह आनन्दधारा है। आहाहा! ज्ञायकभाव लिया न ? तो ज्ञायक के कारण ज्ञातृत्वधारा लिया। आनन्दस्वरूप लो तो वह आनन्दधारा है। ज्ञानस्वरूप लो तो ज्ञानधारा है। श्रद्धास्वरूप लो तो समकितधारा है। वीतरागस्वरूप लो तो वीतरागधारा है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात। पैसे में यह कब सुना है ? आहाहा! तीन लेंगे, नीचे तीन लेंगे।

हेयरूप ज्ञात होते हैं,... धर्मी को शुभभाव आता है, परन्तु हेयरूप भासता है, दु:खरूप भासता है। वेदन में दु:ख है। आहाहा! अकेला हेय है, ऐसा नहीं है। परन्तु साथ में वेदन भी नहीं है। अकेला वेदन भी नहीं, साथ में हेय भी है। वेदन तो निर्मल परिणति का भी है और यह मलिन परिणाम का भी वेदन है। परन्तु एक हेय है। आहाहा! परिणति है और वेदन है, इसलिए हेय है, ऐसा नहीं। परिणति तो निर्मल धारा भी है। आहाहा! शुद्ध चैतन्यवस्तु भगवान, उसके अवलम्बन से, उसके ध्येय से जो ध्यान की निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, वह पर्याय है। उसके साथ-साथ शुभराग होता है, पहले शुभ की बात ली है। पहले शुभाशुभ लिया। प्रथम पंक्ति, इस ओर। १६० पृष्ठ पहली लाईन **गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं।** प्रथम पंक्ति। १६० पृष्ठ पर प्रथम पंक्ति। **गृहस्थाश्रम**

सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं। फर्क है ? पृष्ठ में फर्क है। गुजराती है ? ठीक। यह हिन्दी है। पहले बात ली है। शुभाशुभभाव, शुभाशुभ परिणाम होते हैं। गृहस्थाश्रम में शुद्ध, शुभ और अशुभ तीनों होते हैं। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, **हेयरूप ज्ञात होते हैं, तथापि उस भूमिका में आये बिना नहीं रहते।** आहाहा ! भूमिका नीचे की दशा है। स्वामी कार्तिकेय में तो ऐसा आता है कि ऐसी शुद्ध परिणति हो, परन्तु केवलज्ञानी की परिणति जैसी नहीं है तो वहाँ ऐसा कहा है, हे प्रभु ! हम तो पामर हैं। वस्तु से प्रभु है, पर्याय से पामर है। ऐसा पाठ है। स्वामी कार्तिकेय। प्रभु ! कहाँ चारित्र की परिणति और कहाँ केवल (ज्ञान) की अवस्था ! सम्यग्दर्शन की परिणति तो पामर है। आहाहा ! मिथ्यादृष्टि की तो बात ही क्या करनी ? पामर के साथ, उत्कृष्ट पामर के साथ (क्या मिलान करना) उत्कृष्ट शक्ति प्रगट हुई हो उसके साथ मिलान करके कहना है। मिथ्यादृष्टि को किसके साथ मिलान करे ? आहाहा ! और वहाँ तक चला है न ? षट्खण्डागम में। सम्यक्धारा, त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप से सम्यग्ज्ञान धारा आयी, उसमें जो मतिज्ञान है, वह केवलज्ञान को बुलाता है। ऐसा पाठ है, षट्खण्डागम में। मतिज्ञान जो निर्मल प्रगट हुआ, त्रिकाली ज्ञायकभाव में तो ध्रुवता है। उसके अवलम्बन से जो मति-श्रुतज्ञान उत्पन्न हुआ, वह पर्याय-परिणति है। वह पर्याय ऐसा कहती है, केवलज्ञान को बुलाओ, केवलज्ञान आओ, केवलज्ञान आओ। आहाहा !

मुमुक्षु :- पामर पर्याय प्रभु को बुलाती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। पामर पर्याय .... को बुलाती है। हमें उत्कृष्ट ... लेना है। ऐसा कहते हैं, पामर पर्याय उत्कृष्ट ... वाली पर्याय को बुलाती है ? पामर ही बुलाती है। परम पुरुषार्थ बुलाये कहाँ से ? परम पुरुषार्थ तो पूर्ण हो गया। आहाहा ! केवलज्ञानी भगवान को तो परम पुरुषार्थ पूर्ण हो गया। आहाहा ! बुलाती हैं, उसका अर्थ ही यह हुआ कि हमारी परिणति बहुत छोटी है। हे नाथ ! आपकी परिणति बड़ी है। हमारी परिणति ज्ञान, सम्यग्दर्शन की परिणति आपकी परिणति के पास तो पामर है। आहाहा ! शुभभाव की तो बात ही क्या करनी ? आहाहा ! ऐसी बात है।

साधक की दशा... अब लेते हैं। **साधक की दशा...** सम्यग्दर्शन से साधक की दशा उत्पन्न होती है। फिर चौथे, पाँचवें, छठे आदि सब। अन्तर में निर्मलानन्द प्रभु शुद्ध

चैतन्यस्वरूप, उसके आश्रय से साधकपना जो प्रगट हुआ, वह साधकदशा **एकसाथ त्रिपुटी (-तीन विशेषताओंवाली) है...** आहाहा! क्या है ? साधक की दशा-धर्मी की दशा चौथे, पाँचवें, छठे आदि एकसाथ त्रिपटी - तीन विशेषताओंवाली है। **एक तो, उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है,...** आहाहा! ज्ञायक अकेला जानन स्वभाव जो अन्तर्मुख में पूर्ण है, पर्याय में बाहर में आया नहीं, ऐसा प्रभु अन्दर... आहाहा! **उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है,...** आहाहा! बड़े का आश्रय कभी छोड़ते नहीं। संसार में भी बड़े का आश्रय छोड़ता नहीं। आहाहा!

बड़ा प्रभु ध्रुव, उसका आश्रय कभी छूटता नहीं। **उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है,...** आहाहा! धर्मी की दृष्टि में जो ज्ञायक आया है। उसमें पर्याय में जोर द्रव्य की ओर निरन्तर वर्तता ही है। पर्याय का झुकाव द्रव्य की ओर ही वर्तता है। आहाहा! निर्मल पर्याय समीप में वर्तती है। राग असमीप-दूर वर्तता है। आहाहा! **ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर...** जोर अर्थात् पुरुषार्थ उस ओर गति करता ही है। करना पड़ता नहीं। भेदज्ञान हुआ तो पुरुषार्थ उस ओर चलता ही है। आहाहा!

जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा होती है;... निरन्तर जहाँ आत्मा के अवलम्बन में जोर वर्तता है, ध्रुवधाम में जहाँ जोर वर्तता है, वहाँ **अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा...** वहाँ तो अशुद्ध परिणाम जो शुभ-अशुभ, या शुद्ध परिणाम वीतरागी पर्याय की उपेक्षा होती है। अपने त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा से शुद्धता की भी उपेक्षा (वर्तती है), अपेक्षा नहीं है। अपेक्षा त्रिकाल की, उपेक्षा वर्तमान पर्याय की। आहाहा! सूक्ष्म बात है। चैतन्य त्रिकाली सनातन अस्तिवाला तत्त्व, उसकी ओर जोर तो कायम वर्तता ही है। आहाहा! और **जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा होती है;...** अशुद्ध—शुभाशुभराग, यहाँ शुभ विशेष है और शुद्ध पर्याय-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि निर्मल पर्याय जो उत्पन्न हुई, उसकी भी शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय से, जोर से उपेक्षा वर्तती है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म।

जहाँ शुभ की तो उपेक्षा है ही, परन्तु शुद्ध पर्याय की भी उपेक्षा है। त्रिकाली

भगवान ध्रुव स्वरूप की अपेक्षा जहाँ हुई, उसका आलम्बन हुआ, वहाँ शुभ-अशुभभाव की तो उपेक्षा ही है। आहाहा! वह पहले कहा कि आता है, होता है, कहते हैं—हे नाथ! मुझे आप मिले तो क्या नहीं मिला? भाषा में सब आता है, भाव भी शुभ ऐसा होता है। आहाहा! वह पहले आ गया है। परन्तु... आहा..! वेदन में अशुद्ध और शुद्धपर्याय की उपेक्षा रहती है। वेदन है, वेदन तो दोनों का है, शुद्ध और अशुद्ध दोनों का वेदन है। परन्तु द्रव्य की-ज्ञायक की दृष्टि के आलम्बन से शुद्ध और अशुद्धपर्याय दोनों की उपेक्षा (वर्तती है), अपेक्षा नहीं। थोड़े में बहुत भर दिया है। अपेक्षा एक त्रिकाल की। चिदानन्द भगवान अनन्त गुण का धाम, अनन्त शान्ति का स्थान, उसके अवलम्बन से शुद्धाशुद्ध पर्याय (की) उसके (ज्ञायक के) अवलम्बन के आगे उपेक्षा है। उसकी दरकार नहीं है। अपेक्षा नहीं, उपेक्षा है। आहाहा! बड़ी कठिन बात।

शुद्ध पर्याय की भी उपेक्षा होती है। दोनों। अशुद्ध की तो होती है। आहाहा! क्योंकि दृष्टि का विषय तो द्रव्यस्वभाव है। त्रिकाली द्रव्यस्वभाव... आहाहा! एक अकेली दृष्टि झुकी है, ऐसा नहीं, अनन्त पर्याय का अंश अन्दर झुका है। एक ही पर्याय अन्दर झुकी है, ऐसा नहीं। क्यों? कि जितने गुण हैं, उतनी प्रतीति करने में, अनुभव करने में अनन्त गुण है, उन सबका अंश प्रगट होता है। अनन्त जितने गुण हैं, उतने सब गुण का अंश प्रगट होता है। तो सम्यग्दर्शन की प्रगट होता है, द्रव्य के अवलम्बन से अकेली सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। धर्म की बात। शशीभाई! आहाहा!

दूसरा, शुद्ध पर्यायांश का सुखरूप से वेदन होता है;... उपेक्षा दोनों की (होती है)। शुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्याय दोनों की उपेक्षा। अपेक्षा एक की भी नहीं। परन्तु वेदन में अन्तर है। **शुद्ध पर्यायांश का सुखरूप से वेदन होता है;...** शुद्ध पर्याय जो उत्पन्न हुई, निर्मल धर्म समकितधारा, उसका सुखरूप से वेदन होता है। **और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश —जिसमें...** आहाहा! यहाँ तो अकेला शुभभाव लिया है। अशुद्ध पर्याय का अंश, **जिसमें व्रत,...** वह अशुद्ध है। **तप,...** विकल्प है, वह अशुद्ध है। **भक्ति...** अशुद्ध अंश है। **आदि शुभभावों का समावेश है...** इसमें अकेले शुभभाव लिये हैं। अशुभभाव गौण करके। आहाहा! एक पंक्ति समझनी कठिन पड़े। आहाहा!

अपेक्षा त्रिकाल की, उपेक्षा दो की-शुद्धपर्याय और अशुद्ध। वेदन में दोनों में अन्तर। शुद्धपर्याय का सुखवेदन, अशुद्ध की पर्याय का दु:खवेदन। है ? **और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत,...** उसका अशुद्ध वेदन है। आहाहा! **तप,...** अशुद्ध वेदन है। तप है, वह विकल्प है। निश्चयतप नहीं। व्यवहारतप-यह उपवास करना, परलक्ष्यी वह सब अशुद्ध पर्यायांश है। अशुद्ध दशा की वर्तमान अवस्था का अंश है। **भक्ति...** वह अशुद्ध पर्याय का अंश है। **आदि शुभभावों का समावेश है,...** आहाहा! **उसका—दु:खरूप से,...** आहाहा! व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावों का दु:खरूप से **उपाधिरूप से वेदन होता है**। आहाहा! अशुभ को नहीं लिया। शुभ लिया। समझ में आया? ऐसा वीतराग का मार्ग। वीतरागभावस्वरूप वीतरागभावस्वरूप प्रभु, उसमें से वीतरागभाव प्रगट होता है। अपूर्ण प्रगट होता है, वह साधक है; पूर्ण प्रगट होता है, वह साध्य है। तीनों वीतराग। आहाहा!

द्रव्य-वस्तु का पूर्ण स्वरूप अकेला बिल्कुल वीतरागस्वरूप है। जिसमें राग का सम्बन्ध कुछ भी नहीं है। और उसके आश्रय से प्रगट होनेवाली जो साधकदशा, वीतरागभाव का अंश है और पूर्ण केवलज्ञान हुआ, वहाँ पूर्ण वीतरागता है। तीनों में वीतरागता आती है, कहीं राग नहीं आता। आहाहा! समझ में आता है? भाषा तो सरल है, परन्तु भाव... आहा...! वीतराग प्रभु त्रिकाली वीतरागनाथ, उसके मार्ग में तीनों में वीतरागता आती है। वस्तु वीतरागस्वरूप, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट हो, वह वीतरागी समकित प्रगट होता है। सराग समकित नहीं।

इसका भी विवाद करते हैं। नीचे सराग समकित है, पीछे वीतराग समकित है (-ऐसा वे कहते हैं)। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का अंश वीतराग है। वीतराग त्रिकाली स्वरूप में से उसके अवलम्बन से प्रगट हुआ। है स्वतन्त्र। पर्याय को ध्रुव की भी अपेक्षा नहीं। ऐसा १०१ गाथा, प्रवचनसार में (आया)। उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहा! यहाँ लक्ष्य आश्रय लिया है, ... लक्ष्य भी कर्तापने स्वतन्त्रपने लक्ष्य लिया है। शुद्धपर्याय द्रव्य का आश्रय करती है, परन्तु वह पर्याय कर्तापने स्वतन्त्र कर्तापने लक्ष्य करती है। द्रव्य है, इसलिए निरालम्बन से, मैं निराधार हूँ, ऐसे नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

प्रत्येक द्रव्य में समय-समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव धारा तीनों वर्तती है। परन्तु

तीनों में किसी को किसी की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! उत्पाद को व्यय की अपेक्षा नहीं; व्यय को उत्पाद की अपेक्षा नहीं; उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं; ध्रुव को उत्पाद की अपेक्षा नहीं। ओहोहो! ऐसा स्वरूप पहले तो सुनना मुश्किल पड़े। सुनने मिलता नहीं। एकान्त है, एकान्त है, ऐसा कहकर (निकाल देते हैं)। बात सच्ची है, एकान्त ही है।

प्रमाण में नय जो निश्चय है, वह एकान्त ही है। एकान्त निश्चय न हो तो प्रमाण हो जाए। आहाहा! क्या कहा ? द्रव्य और पर्याय होकर प्रमाण है। नय सम्यक् एकान्त है। एक ओर पर्याय झुकी है, वह सम्यक् एकान्त ही है। आहा..! सम्यक् एकान्त में पर्याय आ जाए तो सम्यक् एकान्त रहता नहीं। आहाहा! सम्यक् एकान्त, निश्चय सम्यक् एकान्त ही है। व्यवहार पर्याय है, वह जाननेलायक है। व्यवहार से है। नहीं है, ऐसा नहीं। नय है, वह तो विषयी है। विषयी का विषय तो होता ही है। दोनों नय विषयी है अर्थात् विषय करनेवाला है। विषय करनेवाला है तो उसका विषय तो है ही। व्यवहारनय का विषय तो है, आदरणीय नहीं। आहाहा! बड़ा कठिन काम। यह पुस्तक तो बाहर आ गयी है। पूरी पढ़ी है न ? पूरी पढ़ी ? आहाहा!

साधक को वह **दुःखरूप से, उपाधिरूप से वेदन होता है**। आहाहा! व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभाव होते हैं, परन्तु वह उपाधिरूप, दुःखरूप, पराश्रय से; पर से नहीं। शास्त्र में ऐसा शब्द बहुत आता है कि निमित्तवश, पर के वश, ऐसा शब्द आता है। पर से नहीं। पर के वश। स्वयं स्वतन्त्र पर के वश होकर विकार करता है। निमित्त विकार करवाता है, वह बात है नहीं। शुभ-अशुभभाव कर्म से हुआ है, ऐसा है नहीं। समयसार में टीका में बहुत आता है। परवश, पर के वश, निमित्तवश, निमित्त के वश। निमित्त के वश का अर्थ (यह कि) अपनी पर्याय स्वतन्त्र निमित्त के वश होती है। निमित्त को छूती नहीं। निमित्त को छूती नहीं। निमित्त राग को छूता नहीं। परन्तु राग निमित्त के आश्रय से, लक्ष्य वहाँ चला जाता है। आहाहा! भले उसे छुए नहीं, छुए नहीं, स्पर्श करे नहीं, फिर भी लक्ष्य करता है। आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ वह कहा, आहा..! **साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वे भाव हठपूर्वक होते हैं**। आहा..! क्या कहा ? धर्मी को शुभभाव आते हैं तो वे उपाधिरूप लगते हैं तो हठ से आया है, (ऐसा नहीं है)। उपाधिरूप है न ?

दु:खरूप है न? तो जबरन हठ से आ गया है, ऐसा नहीं। आहाहा..! क्या कहा? **साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—इसका ऐसा अर्थ नहीं है...** उपाधिरूप लगते हैं, दु:खरूप लगते हैं, परन्तु उसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वह शुभभाव हठपूर्वक होते हैं। अपनी पर्याय में सहज पुरुषार्थ की कमजोरी से अपने में होता है। कोई कर्म के निमित्त से, कोई संयोग के हठ से (नहीं होता)। आहाहा!

नारकी जीव में भी इतनी ठण्डी और गमी है, ठण्डी-गर्मी के कारण उसको दु:ख नहीं है। उस ओर के झुकाव से उसको दु:ख है। ठण्डी और उष्णता तो आत्मा को छूते ही नहीं। आहाहा! फिर भी उसका ठण्डी-उष्णता का दु:ख है। उसका अर्थ क्या? आहाहा! भगवान आत्मा ठण्डी-गर्मी को छूता नहीं। परन्तु ठण्डी-गर्मी की ओर लक्ष्य करता है, अवलम्बन लेता है, वह दु:ख है। आहाहा! अग्नि यहाँ छूती है, उसका दु:ख नहीं है। अपनी पर्याय में अपने कारण से वहाँ परमाणु उष्ण होता है, वह दु:ख है। अपने कारण से। अग्नि का स्पर्श हुआ तो परमाणु उष्ण हुआ, ऐसा है नहीं। आहाहा! आया?

साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—इसका ऐसा अर्थ नहीं है... वह शुभभाव पर के कारण हठ से (होते हैं)। आहाहा! अपनी पर्याय में करना नहीं है, फिर भी निमित्त के आधीन होकर... निमित्त से होता है, ऐसा है नहीं। ऐसा अर्थ है नहीं।... सहज ही क्रमबद्ध में... आहाहा! क्रमबद्ध में वह परिणाम आने का काल है तो सहज आता है। आहाहा! विकार को सहज कहते हैं। उसका हेतु, कोई निमित्त के कारण से विकार हुआ, कर्म आता है, वहाँ प्रतिकूल संयोगपना है; इसलिए वहाँ दु:ख हुआ—ऐसा है नहीं। आहा..! क्योंकि एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय को छूती नहीं। आहाहा! नारकी में मारे-काटे, वह दु:ख लगे। वहँ दु:ख नहीं है। दु:ख की दशा पर ओर झुक जाती है और अशुद्धता उत्पन्न करता है, वह दु:ख है। आहाहा! हठ से होती है, ऐसा नहीं।

यों तो साधक के वे भाव हठरहित सहजदशा के हैं,... देखो! वह तो उस समय की पर्याय क्रमबद्ध में आती है, जानते हैं। कर्ता होते नहीं। दु:ख वेदते हैं। आहाहा! एक अपेक्षा से कर्ता होता नहीं, एक अपेक्षा से कर्ता है। ४७ नय, प्रवचनसार। समकिती कर्ता है। किस अपेक्षा से? परिणमन की अपेक्षा से कर्ता है। परिणमता है न? अपने कारण से परिणमता है, पर के कारण से नहीं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - ४, शनिवार, तारीख १३-९-१९८०
वचनामृत -३७८, ३८०, ३८२ प्रवचन-३२

वचनामृत में ३७८वें का अन्तिम। यह साधक है न? **साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं...** क्या कहते हैं? कि आत्मा निर्मल शुद्ध चैतन्य है, उसकी जहाँ दृष्टि हुई अर्थात् शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं। आहाहा! क्योंकि शुभभाव आकुलता है। शुभभाव, वह राग है। इसलिए उस साधक को शुभभाव उपाधि ज्ञात होती है। **इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वे भाव हठपूर्वक होते हैं।** हठपूर्वक नहीं होते। सहज उस समय क्रमबद्ध में वह आने का, होने का काल है, इसीलिए वह शुभभाव होता है। आहाहा! होने का वह काल है, इसलिए होता है। आहाहा! यह बात। **यों तो साधक के वे भाव हठरहित सहजदशा के हैं,...** यहाँ तक आया था।

अज्ञानी की भाँति 'ये भाव नहीं करूँगा तो परभव में दु:ख सहन करना पड़ेंगे' ऐसे भय से जबरन कष्टपूर्वक नहीं किये जाते;... एक तो यह कि ऐसे भय से करूँ, भय ज्ञानी को है ही नहीं। **भय से जबरन....** जबरदस्ती भी नहीं। वह तो उस काल में आने का काल है, भाव होने का वह जानने के लिये जानता है। आहाहा! ज्ञान पर जिसकी दृष्टि है, ज्ञायक पर जहाँ दृष्टि है, उसे उस काल में जब शुभ का समय है, वह आना होता है, वह आता है, उसे भय से नहीं, बलजोरी से नहीं, तथा दु:ख सहन करने पड़ेंगे, इसलिए शुभ करूँ - ऐसा भी नहीं। आहाहा! **ऐसे भय से जबरन कष्टपूर्वक नहीं किये जाते;...** दु:खपूर्वक करने में नहीं आते। शुभभाव आते हैं। शुद्ध का उपयोग अन्दर कहीं कायम नहीं रहता। साधकपना कायम रहता है। धर्मी को साधकपना कायम रहता है परन्तु उपयोग साधकपने का कायम नहीं रहता। आहाहा! अर्थात् उपयोग में तो शुभादि भाव आवे हैं, परन्तु सहजरूप से वे आते हैं। उनके कालक्रम में आने का काल हठ बिना आते हैं, उसे जानता है। आहाहा! ऐसी बात है।

तथापि वे सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते। कष्टपूर्वक नहीं किये जाते। **तथापि वे सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते।** आहाहा! दो बातें कही। एक तो यह कि कष्टपूर्वक नहीं किये जाते। वे तो आ जाते हैं। आहा..! **तथापि वे सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते।** धर्मी को शुभभाव सुखरूप ज्ञात नहीं होते। आहाहा! यहाँ तक जाना। बात चैतन्यस्वरूप शुद्ध ज्ञानघन आनन्दकन्द जहाँ दृष्टि में आया, उसे शुभभाव आते हैं परन्तु दुःखरूप लगते हैं। आहा...! **शुभभावों के साथ-साथ...** शुभभावों के साथ-साथ **वर्तती, ज्ञायक का अलम्बन लेनेवाली जो यथोचित निर्मल परिणति,...** जाननहार ज्ञायकप्रभु आत्मा को अवलम्बन करनेवाली परिणति। ज्ञायक को, जाननस्वभाव चैतन्यमूर्ति को अवलम्बन करनेवाली... आहा..! यथोचित—यथायोग्य **निर्मल परिणति, वही साधक को सुखरूप ज्ञात होती है।** आहाहा! जो आत्मा आनन्दस्वरूप, उसका भान हुआ, इसलिए उसे परिणति में सुखरूप परिणति भी है और शुभराग है, वह दुःखरूप भी है। तथापि उस साधक को निर्मल परिणति वह सुखरूप ज्ञात होती है। शुभभाव सुखरूप ज्ञात नहीं होता। आहाहा! कितनी शर्तें!

जिस प्रकार हाथी के बाहर के दाँत-दिखाने के दाँत अलग होते हैं... आहाहा! हाथी के बाहर के दाँत अलग होते हैं। **और भीतर के दाँत-चबाने के दाँत अलग होते हैं,...** आहाहा! **उसी प्रकार साधक को...** आहा..! आत्मा आनन्द और ज्ञायकस्वरूप है, ऐसी जो दृष्टि अन्दर परिणमित हुई, ऐसे धर्मी साधक को **बाह्य में उत्साह के कार्य—शुभ परिणाम दिखायी दें,...** हाथी के जो बाहर के दाँत दिखते हैं... आहाहा! ऐसे शुभभाव... आहाहा! **उत्साह के कार्य—शुभ परिणाम दिखायी दें, वे अलग होते हैं...** अन्तर की परिणति से वे अलग होते हैं। शुद्ध चैतन्यमूर्ति ऐसे आत्मा की दृष्टि के साधकपने में वे अत्यन्त भिन्न ही दिखायी देते हैं; एक नहीं। आहाहा! ऐसा धर्म।

शुद्धात्म परिणति-शुद्ध चैतन्य की परिणति / दशा, वह तो कायम होती है। तथापि उसमें जब शुभभाव आवे, वे हठपूर्वक नहीं आते। तथापि वे सुखरूप नहीं लगते। आहाहा! सुखरूप तो साधक परिणति ज्ञात होती है। आहाहा! यह बाहर की बात तो इसमें कहीं नहीं आयी। बाहर की आयी, परन्तु वह शुभभाव। आहा..! जैसे हाथी के अन्तर के दाँत अलग और बाहर के अलग, इसी प्रकार साधक की अन्तर की परिणति अलग और बाहर के उल्लासपूर्वक दिखायी देते शुभभाव, भले उल्लासपूर्वक दिखायी दें भक्ति आदि

में, तथापि वे बाहर के दाँत अलग हैं। बाहर के भाव भिन्न ज्ञात होते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

और अन्तर में आत्मशान्ति का—आत्मतृप्ति का स्वाभाविक परिणमन... आहा..! हाथी के दाँत की भाँति अन्तर के चबाने के अलग और दिखाने के अलग; इसी प्रकार शुभभाव उत्साहपूर्वक बाहर में दिखायी दे परन्तु वह दुःखरूप है। अन्तर में चैतन्य की शुद्ध परिणति है, वह सुखरूप है। आहाहा! **अन्तर में आत्मशान्ति का—आत्मतृप्ति का स्वाभाविक परिणमन...** धर्मी को अन्तर भगवान आत्मा शान्त और आनन्दरूप है। उसकी परिणति तो निरन्तर चलती ही है। आहा..! अधूरा है, इसलिए उसे बीच में शुभभाव आते हैं और उल्लासपूर्वक भी ज्ञात होते हैं, तथापि उन्हें सुखरूप नहीं मानता। आहाहा!

मुमुक्षु :- शुभभाव को लम्बाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आते हैं, आ जाते हैं। लम्बाता कुछ नहीं है। परिणति-प्रयत्न तो ध्रुव की ओर ही है। परन्तु उसका काल हो, तब शुभभाव आता है, आता है, लम्बाता नहीं है। आता है, जानता है। आहाहा! दृष्टि ज्ञायक पर होने पर भी ज्ञायक का शुद्ध परिणमन होने पर भी उसके काल के क्रम में वह परिणति शुभ की आये बिना नहीं रहती, उसे लम्बाता भी नहीं तथा उसकी हठ नहीं करता तथा उसे कष्टपूर्वक नहीं मानता। कष्टपूर्वक करना पड़ता है, ऐसा नहीं; आ जाते हैं। आहाहा! तथापि उन्हें दुःखरूप मानता है। कष्टपूर्वक करना पड़ता है, ऐसा नहीं। यह हठपूर्वक करना पड़ता है, ऐसा नहीं। आ जाते हैं, होते हैं, परन्तु हैं वे दुःखरूप। आहाहा!

अन्तर में आत्मशान्ति का—आत्मतृप्ति का स्वाभाविक परिणमन... आहाहा! **अलग होता है।** उस शुभभाव से अन्तर के आत्मतत्त्व के अन्तरात्मा की परिणति शुभभाव से अत्यन्त भिन्न होती है। आहाहा! अरे..! अशुभभाव भी आते हैं परन्तु उनसे परिणति तो अत्यन्त भिन्न रहती है। आहाहा! काम बहुत कठिन! अज्ञानी का शुभभाव तो अकेली दृष्टि वहाँ है, वह अधर्म ही है। ज्ञानी का अशुभभाव है दुःख, परन्तु उसे जाननेवाला भिन्न रहता है। दोनों बातें अलग रहती हैं। आहाहा! जाननेवाला वह मैं भिन्न हूँ और यह राग होता है, वह भिन्न चीज़ है। आहाहा! ऐसी बात है।

बाह्य क्रिया के आधार से साधक का अन्तर नहीं पहिचाना जाता। है ? आहा... ! बाह्य क्रिया के आधार से। आहाहा ! साधक का अन्तर नहीं पहिचाना जाता। बाह्य क्रिया तो अनेक प्रकार की, विविध प्रकार की शुभ-अशुभ की दिखायी देती है परन्तु अन्तर की जाति है, (उसका) अन्दर परिणमन अलग होता है। आहाहा ! **बाह्य क्रिया के आधार से साधक का अन्तर नहीं पहिचाना जाता।** यह तो अन्तर की दृष्टि से पहिचाना जाता है। आहाहा ! शब्द कैसे आये हैं, देखो न ! पश्चात् ३८०।

जिस प्रकार सुवर्ण को जंग नहीं लगती, अग्नि को दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभाव में आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती। तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नों की चमक प्रगट होगी ॥३८०॥

३८०। द्रव्य उसे कहते हैं कि अपने साधन के लिये बाह्य (साधन की) राह देखने की आवश्यकता न पड़े। एक यह तत्त्व आ गया। द्रव्य उसे कहते हैं, वस्तु आत्मा उसे कहते हैं कि अपने साधकभाव के लिये परद्रव्य के साधन की राह देखनी नहीं पड़ती। आहाहा ! अब ऐसा यह आया। यह सिद्धान्त।

जिस प्रकार सुवर्ण को जंग नहीं लगती,... आहाहा ! सोने को जंग नहीं होती। आहाहा ! हिन्दी भाषा में सोने को जंग नहीं होती। यह हिन्दी भाषा। आहाहा ! सोने को जंग नहीं लगती। आहाहा ! **अग्नि को दीमक नहीं लगती,...** हिन्दी भाषा में दूसरी भाषा होगी। उदई की जगह जीवडा (दीमक)। **अग्नि को दीमक नहीं लगती,...** आहाहा ! जहाँ अग्नि होती है, वहाँ दीमक नहीं होती। दीमक होती ही नहीं। आहाहा ! और होवे और कदाचित् कहीं बाँबी फटकर (बड़ी तादाद में बाहर आवे) तो जलकर राख हो जाए। आहाहा ! एक बार (संवत्) १९७५ में पालियाद में देखा था। अपवास करते न, आठम और ... और दोपहर बारह बजे, एक बजे धूप में दिशा को जाना पड़े। यह ७५ की बात है। बाहर बहुत तेज धूप में दिशा को गये, जहाँ दिशा (दस्त) के लिये बैठे, वहाँ दीमक ऐसे निकट में दिखती थी परन्तु दीमक उसके राफडा (बाँबी) में से निकले ऐसे, वहाँ धूप की इतनी गर्मी की तुरन्त मर जाए। जैसे धाणी (सिंक) जाए ऐसे धाणी हो जाए। आहाहा ! दीमक...

दीमक। उसे जीवडा कहते हैं। उसे दीमक नहीं होती। आहाहा! सोने का जंग नहीं होती। आहाहा! अग्नि में, अग्नि को दीमक नहीं लगती। आहाहा! दो (बातें)। यह तो दृष्टान्त हुआ।

उसी प्रकार ज्ञायकस्वभाव में आवरण,... भगवान ज्ञायकस्वभाव में आवरण नहीं होता। वह त्रिकाल निरावरण है। आहाहा! द्रव्यस्वभाव जो है, द्रव्यस्वभाव - वस्तु, वह तो त्रिकाल निरावरण है। यह समयसार की ३२० वीं गाथा में, जयसेनाचार्य की टीका में आता है। त्रिकाल निरावरण, आहाहा! वस्तु तो त्रिकाल निरावरण ही अन्दर स्थित है। आहाहा! यह तो पर्याय में एक समय की अवस्था में राग के सम्बन्ध से आवरण दिखता है। आहाहा! बाकी वस्तु में आवरण नहीं है। क्योंकि पर्याय में अशुद्धता आवे, तब तो शुद्धता ढँक जाती है, शुद्धता का नाश होता है। इसी प्रकार यदि द्रव्य में वस्तु को आवरण आवे तो अवस्तु हो जाए। आहाहा! वस्तु को आवरण आवे तो अवस्तु हो जाए। ऐसा कभी तीन काल में नहीं होता। इसीलिए वस्तु में तीनों काल में आवरण नहीं है। आहाहा!

इस ज्ञायकस्वभाव में आवरण नहीं है, हीनता नहीं है। आहाहा! न्यूनता नहीं है। यह तो परिपूर्ण वस्तु अन्दर है। आहाहा! वस्तु से द्रव्य जो हो, उसमें हीनता नहीं होती, न्यूनता नहीं होती, तथा आवरण तो होता ही नहीं तथा हीनता नहीं। हीनता - न्यूनता। त्रिकाली द्रव्य में कुछ कमी है, कुछ कमी है, ऐसा नहीं है। त्रिकाली द्रव्य में कमी नहीं है। आहाहा! तथा **अशुद्धि नहीं आती**। त्रिकाली द्रव्य में अशुद्धि नहीं है, अशुद्धि तो पर्याय में है। एक समय की पर्याय में अशुद्धता भासित होती है। वस्तु देखो, तब तो त्रिकाल (शुद्ध ही है)। आहाहा! शुद्धि में अशुद्धि जरा भी नहीं है। आहाहा! ऐसा कब ध्यान रखे?

अन्दर भगवान आत्मा देह के परमाणु से तो भिन्न, परन्तु अन्दर के दया, दान और भक्ति आदि के भाव, वह विकार है, उससे भी भिन्न है। आहाहा! कठिन लगे ऐसा है। उसमें अभी प्रचलित प्रवाह बाहर में सब मथकर पड़े हैं। मूल भगवान पड़ा रहा अन्दर। अन्दर चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु... आहाहा! अग्नि को... आहाहा! दीमक नहीं होती। सोने को जंग नहीं लगती, इसी प्रकार भगवान आत्मा को अन्दर वस्तु है, उसे आवरण नहीं होता, उस वस्तु में हीनता नहीं होती, न्यूनता नहीं होती तथा अशुद्धि नहीं होती। आहाहा!

अन्दर ऐसी चीज़ भगवान विराजमान है शरीर में। प्रत्येक-प्रत्येक के शरीर में परमात्मा विराजमान है। उसकी शक्ति की परमात्मस्वरूप है। परन्तु उस पर इतने अनन्त काल में कभी नजर नहीं की है। बाहर में और बाहर में पर्याय में और राग में अटक गया है। चीज़ रह गयी है अन्दर। आहाहा!

ज्ञायकस्वभाव में आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती। आहाहा! **तू उसे पहिचानकर....** ऐसा अन्दर भगवान विराजता है, चैतन्यमूर्ति ज्ञायक सच्चिदानन्द प्रभु, सत् कायम रहनेवाले ज्ञान और... चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द, कायम रहनेवाला प्रभु ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है अन्दर। आहाहा! उसे तू पहिचान। है न? **तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो...** पहिचाने बिना लीन नहीं हुआ जाता। वह चीज़ क्या है, यह ख्याल में आये बिना लीनता किसमें करना? जो चीज़ ख्याल में ही न आवे, उसमें लीनता / एकाग्रता, उस ओर का झुकाव कहाँ से बने? आहाहा!

अनन्त काल से भटक रहा, बिना भान भगवान,
सेवन नहीं गुरु सन्त का, छोड़ा नहीं अभिमान।

मैं जानता हूँ, मैं जानता हूँ, मुझे आता है। ऐसे के ऐसे... यह आगे आयेगा। आहाहा! यह तुरन्त ही आयेगा। आहाहा!

तू उसे पहिचानकर... अन्दर भगवान चैतन्य ज्ञायकस्वभाव सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का दल और कन्द है, उसे पहिचानकर उसमें लीन हो। यह करना है। जिसे जन्म-मरणरहित होना हो तो उपाय तो यह है। अभी तो दूसरे अनेक मार्गों में मनवा दिया है। कहीं दान में और दया में और व्रत में, अपवास में और भक्ति में पूजा में मनवा दिया है कि यह सब करो, जाओ! कल्याण होगा। अरे..! भाई! ये सब विकल्प हैं, राग है। आत्मा इनसे अत्यन्त निर्विकल्प भिन्न-भिन्न तत्त्व है। आहाहा! उसे पहिचानकर उसमें लीन हो। तू उसे पहिचान अर्थात् कि किसी दूसरे से नहीं। आहाहा! बराबर है? तू उसे पहिचान अर्थात् दूसरा कोई पहिचान करानेवाला मिल गया, ऐसा नहीं। आहाहा! यह दूसरा तो कहे, कहकर छूट जाए। वहाँ कोई उसके लक्ष्य से ज्ञात नहीं होता।

तू उसे पहिचानकर... आहाहा! **उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नों की चमक प्रगट होगी।** आहाहा! यह क्या कहा? उसे पहिचानकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुण जितने अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण है। भगवान आत्मा में संख्या से अनन्त-अनन्त गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रभुत्व, जीवत्व ऐसी अनन्त-अनन्त शक्तियों का वह पिण्ड है। आहाहा! परन्तु अरूपी है और जिसका स्वभाव है, उसे कोई क्षेत्र की विशालता की आवश्यकता नहीं है। उसके भाव के सामर्थ्य की आवश्यकता है। उसके भाव का सामर्थ्य अनन्त है। आहाहा! अब ऐसी बातें। ऐसे आत्मा को पहिचान, उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नों की... जितने गुण अनन्त हैं, उन सर्व गुणरत्नों की चमक प्रगट होगी। अर्थात् तेरी पर्याय में अनन्त गुण की पर्याय प्रगट होगी। आहाहा! तेरी वर्तमान दशा में यदि अन्तर को पहिचानकर अन्तर में जा, लीन हो तो तेरी वर्तमान दशा में अनन्त गुण का अंश प्रगट होगा। अनन्त गुणों की चमक बाहर आयेगी। उस चेतन के चमत्कार की दशा बाहर आयेगी। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

वस्तु तो यह है। लोग दूसरे रास्ते चढ़ गये। उन्हें ऐसा सुनते हुए ऐसा लगता है कि यह तो निश्चय... निश्चय। परन्तु हमारे व्यवहार कैसे करना, वह इसमें कहाँ आया? व्यवहार, व्यवहार है, वह राग है, वह तो दु:ख है। यह तो बात आ गयी। आहाहा! व्यवहार, वह दु:ख है और निश्चय, वह सुख है। व्यवहार परदिशा की ओर, निश्चय स्वदिशा की ओर है, दोनों की दशा की दिशा में अन्तर है। आहाहा! ओहोहो!

सर्व गुणरत्नों की... देखी भाषा! जितने गुण हैं... सर्व गुणांश, वह समकित, श्रीमद् ने कहा न? वह यह। सर्व गुण। योग नाम का जो गुण है - अकम्प,... आहाहा! आत्मा में एक अकम्प नाम का गुण है कि जो चौदहवें गुणस्थान में पूर्ण प्रगट होता है। उस गुण की भी चमक प्रगट होगी। आहाहा! आत्मा के स्वभाव की ओर ढलते हुए वह योग-कम्पन जो होता है, वह एक अंश रुक जाएगा और अकम्पपने का अंश, सर्व गुणांश में से इस गुण का भी अंश प्रगट होगा। आहाहा! गजब बात है! योग नाम का अन्दर गुण है, त्रिकाल। योग का गुण अर्थात् अकम्प गुण, हों! कम्प नहीं। अयोग गुण है वास्तव में। योग का अर्थ तो व्यापार इतना शब्द था मस्तिष्क में। परन्तु वास्तव में अयोग नाम का गुण आत्मा में है। आहाहा! जो चौदहवें गुणस्थान में पूर्ण प्रगट होता है। उसका अंश भी तेरे

स्वरूप की ओर लक्ष्य करने पर सर्व गुण में से उस गुण का भी अंश-चमक प्रगट होगी। उसकी चमक प्रगट होगी। आहाहा! ऐसा किस प्रकार का धर्म? वे तो मन्दिर कराना और भक्ति करना और पूजा करना और पूरे दिन टीला-टपका करना और... वह होता है। परन्तु वह सब बात शुभभाव में पुण्य में जाती है। वह कोई धर्म-बर्म नहीं है। और उससे कहीं जन्म-मरणरहित हो, वह पद्धति नहीं है। लोगों ने तो उसे वहाँ चढ़ा दिया है। यह धर्म और इससे तुम्हारा मोक्ष होगा। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, तेरे सर्व गुणों की, सर्व गुणरत्नों की, सर्व गुणरत्नों की-जितने गुण अनन्त हैं, अनन्तानन्त हैं, सबकी चमक प्रगट होगी। आहाहा! यह सर्व गुणांश, वह समकित। यह कहा वह। इस ओर दृष्टि होने पर जितने गुण हैं, उतने शक्तिरूप से, स्वभावरूप से सत्त्व ऐसा तत्त्व आत्मा, उसका सत्त्व भावरूप है, उस पर दृष्टि देने से सब गुणों का एक अंश भी वर्तमान पर्याय में प्रगट होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। सुना नहीं होगा यह। आहाहा! ३८० (पूरा हुआ)।

जीव भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ़ ले, वादविवाद करना जाने, प्रमाण-नय-निक्षेपादि से वस्तु की तर्कणा करे, धारणारूप ज्ञान को विचारों में विशेष-विशेष फेरे, किन्तु यदि ज्ञानस्वरूप आत्मा के अस्तित्व को न पकड़े और तद्रूप परिणमित न हो, तो वह ज्ञेय निमग्न रहता है, जो-जो बाहर का जाने, उसमें तल्लीन हो जाता है, मानों ज्ञान बाहर से आता हो, ऐसा भाव वेदता रहता है। सब पढ़ गया, अनेक युक्ति-न्याय जाने, अनेक विचार किये, परन्तु जाननेवाले को नहीं जाना, ज्ञान की असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई, तो वह सब जानने का फल क्या? शास्त्राभ्यासादि का प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानना है॥३८१॥

३८१। **जीव भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ़ ले,...** आहाहा! शास्त्र पढ़ा, इसलिए उसे आत्मज्ञान हो जाए, ऐसा नहीं है। आहाहा! शास्त्र ग्यारह अंग का ज्ञान अरबों श्लोकों का अनन्त बार किया है। परन्तु उसमें आत्मा नहीं है। वह तो परसन्मुख के झुकाववाली

भाव दशा है। अन्तर भगवान आत्मा शास्त्र के पठन से भी पार है। आहाहा! **जीव भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ़ ले,...** ऐसा कहा न? चाहे जितने। **जीव भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ़ ले, वादविवाद करना जाने,...** वाद-विवाद करके मानो कि ऐसा हो और ऐसा हो, ऐसा हो और ऐसा हो। बापू! यह तो सब विकल्प और राग है। आहाहा! **वादविवाद करना जाने, प्रमाण-नय-निक्षेपादि से वस्तु की तर्कणा करे,...** आहाहा! द्रव्य, वह नय का विषय है; पर्याय, व्यवहार का (विषय है), त्रिकाली द्रव्य निश्चय का विषय, पर्याय व्यवहार का विषय, पूरी चीज़ प्रमाण का विषय - ऐसे प्रमाण, नय, निक्षेप। निक्षेप—नाम निक्षेप, स्थापना, द्रव्य, भाव (निक्षेप)। आहाहा! ये ज्ञेय के भेद हैं। इसकी वस्तु की तर्कणा करे। आहाहा! प्रमाण, नय, निक्षेप का भी जानपना करे। १३वीं गाथा में आता है कि नय, निक्षेप, प्रमाण से पहिचाने, परन्तु वह अभूतार्थ है। वह चीज़ कहीं आत्मा के अनुभव में मदद करे, ऐसा नहीं है। आहाहा! उसका भी लक्ष्य छोड़कर आत्मा की ओर का लक्ष्य करे और अन्दर में जाए तो अनुभव होता है। नय, निक्षेप और प्रमाण भी विकल्पात्मक है। आहाहा!

चाहे जितने नय सीखे। यह भी समयसार में आया है न? प्रभु! यह तेरे नय तो इन्द्रजाल है। व्यवहार से आत्मा में राग है, ऐसा कहे; निश्चय से नहीं है, (ऐसा कहे)। पर्याय को व्यवहार कहे, त्रिकाल को निश्चय कहे। एक ओर पर्याय को निश्चय कहे, अपनी है इसलिए। दूसरी ओर पर्याय को द्रव्य की अपेक्षा से व्यवहार कहे। आहाहा! ऐसा इन्द्रजाल।

मुमुक्षु :- न समझे उसके लिये इन्द्रजाल है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसके लिये है न। आहाहा! सूझे उसे तो तुरन्त सूझ पड़ जाए। आहाहा! एक ओर ऐसा कहे... आहाहा! पर्याय, वह व्यवहार; द्रव्य, वह निश्चय। एक ओर ऐसा कहे कि राग, वह व्यवहार और पर्याय, वह निश्चय। क्या अपेक्षा है? यह तो राग की अपेक्षा से इसे निश्चय कहा। स्व की है, इसलिए निश्चय कहा। परन्तु है अंश-वर्तमान दशा। पर्यायमात्र व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! केवलज्ञान और सिद्धदशा भी व्यवहारनय का विषय है। क्योंकि वह अवस्था पर्याय है। आहाहा!

निश्चय से तो भगवान आत्मा अनादि-अनन्त सच्चिदानन्द प्रभु... आहाहा! वह मोक्ष और मोक्ष के कारण को करे नहीं। आहाहा! शोर मचा डाले ऐसा है। वह तो पर्याय में होता है। मोक्ष और मोक्ष का कारण, धर्म और धर्म का फल मोक्ष, वह पर्याय में है; द्रव्य में नहीं। द्रव्य वस्तु है, वह तो त्रिकाल एकरूप निरावरण वस्तु भगवान है। आहाहा! एक ओर पर्याय को व्यवहार कहना और एक ओर निश्चय मोक्षमार्ग हो, उसे निश्चय कहना। आहाहा! राग के भाव को व्यवहार कहना और निश्चय मोक्षमार्ग जो आत्मा के अवलम्बन से होता है, उसे निश्चय कहना। और एक ओर ऐसा कहना कि वह पर्याय है, इसलिए त्रिकाल की अपेक्षा से वह व्यवहार है। आहाहा! आहाहा!

ऐसे **प्रमाण-नय-निक्षेपादि से वस्तु की तर्कणा करे,...** वस्तु समझे नहीं। अन्दर वस्तु क्या है। आहाहा! **धारणारूप ज्ञान को विचारों में विशेष-विशेष फेरे,...** जानपना लक्ष्य में रखकर, आत्मा के भान बिना, जानपने की बातें धारणा में रखकर। आहाहा! **धारणारूप ज्ञान को विचारों में विशेष-विशेष फेरे,...** आहाहा! वह कोई चीज़ नहीं है। वह तो विकल्प है, राग है। आहाहा! कठिन अधिकार है। **किन्तु यदि ज्ञानस्वरूप आत्मा के...** ऐसा सब किया होने पर भी **किन्तु यदि ज्ञानस्वरूप आत्मा के...** वह तो प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप प्रभु है। आत्मा प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान और ब्रह्म अर्थात् आनन्द। प्रज्ञाब्रह्म आनन्दस्वरूप भगवान अन्दर है। आहाहा! ऐसा आत्मा **ज्ञानस्वरूप आत्मा के अस्तित्व को न पकड़े...** आहाहा! कठिन बात है।

चाहे जितने शास्त्र पढ़े, वाद-विवाद करना जाने, प्रमाण-नय-निक्षेपादि से वस्तु की तर्कणा करे, धारणारूप ज्ञान को विचारों में विशेष-विशेष पर्यटन करे परन्तु ऐसा करने पर भी यदि ज्ञानस्वरूपी भगवान प्रज्ञास्वरूप चैतन्यबिम्ब अन्दर भगवान ज्ञान चैतन्यचन्द्र, चैतन्यचन्द्र, वह ज्ञानचन्द्र ज्ञान की मूर्ति है। प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप आत्मा अन्दर पूरा है। आहाहा! ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा के अस्तित्व को पकड़े नहीं, उसकी अस्ति को पकड़े नहीं अर्थात् अनुभव नहीं करता। आहाहा! पूर्ण स्वरूप ऐसा जो भगवान आत्मा वस्तु है, पूर्ण स्वरूप है। उसे यदि पकड़े नहीं, उसकी अस्ति को और इस बाहर की अस्ति में रुक जाए। आहाहा! **और तद्रूप परिणमित न हो,...** पकड़े नहीं और उसरूप परिणमे नहीं। आहाहा!

आनन्द और ज्ञानरूप अवस्था होनी चाहिए, इसका नाम धर्म है। आनन्द और

ज्ञानस्वरूप प्रभु, त्रिकाली आत्मा आनन्दमूर्ति सच्चिदानन्द प्रभु के ज्ञान और आनन्द का जो स्वभाव, उसरूप अवस्था का होना, उसरूप पर्याय-परिणमन का होना... आहाहा! **तद्रूप परिणमित न हो, तो वह ज्ञेय निमग्न रहता है,...** भाषा देखो! अन्तर स्वरूप ज्ञानप्रभु को पकड़े नहीं तो यह सब बोल जो कहे, वे ज्ञेय निमग्न हैं। आहाहा! ऐसी बातें। ज्ञेय अर्थात् पर जाननेयोग्य वस्तु में निमग्न है। स्व जाननेयोग्य वस्तु में से दूर है। आहाहा! ऐसी बात लोगों को कठिन लगती है, इसलिए बाहर के लोगों को... बापू! मार्ग तो ऐसा है।

अन्यमत में - वैष्णव में नरसिंह मेहता कह गये हैं, 'ज्यां लगी आत्म तत्त्व चिह्नयो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' आत्मा का अनुभव नहीं, तब तक तेरी धारणा, भक्ति, पूजा, व्रत और तप सब एकरहित शून्य है। आहाहा! आहाहा! 'शुं कर्युं तीर्थ ने भक्ति करवा थकी?' ऐसे इस आत्मज्ञान के बिना ऐसी क्रिया में रुकने से उसे तद्रूप ज्ञान का भान नहीं होता। आहाहा! वह तो ज्ञेय निमग्न है। स्वज्ञेय निमग्न नहीं, परज्ञेय निमग्न। आहाहा! वह भी मग्न नहीं, निमग्न। पर में विशेष लीन हो गया है। अन्दर भगवान आत्मा भिन्न पड़ा है। चैतन्यानन्द चैतन्यस्वरूप भगवान अनादि-अनन्त—जिसकी उत्पत्ति नहीं, जिसका नाश नहीं। जो है, उसकी उत्पत्ति नहीं। जो है, उसकी उत्पत्ति नहीं; है, उसका नाश नहीं। ऐसा जो आत्मा, उसे यह जाने नहीं तो यह ज्ञेयनिमग्न रहता है। आहाहा!

जो-जो बाहर का जाने उसमें तल्लीन हो जाता है,... आहाहा! बाहर का जानने में आवे, उसमें एकाकार हो जाता है। अन्तर में जाने के लिये प्रयत्न नहीं करता। आहाहा! इस बाहर के जानपने में रुक गया। वह तो ज्ञेय अर्थात् परज्ञेय निमग्न (है)। आहाहा! **मानों ज्ञान बाहर से आता हो, ऐसा भाव वेदता रहता है।** आहाहा! जानने के भाव में अधिकता हो, जानने में वह ज्ञान मानो बाहर से आता हो, ऐसा मानता है। आहा...! जानने के भाव में, जानना अधिक हो तो वह बाहर का जानपना वह कहीं आत्मा का नहीं है और वह मानो बाहर से ज्ञान आता हो, ऐसा मानता है। आहाहा! **बाहर से आता हो, ऐसा भाव वेदता रहता है।**

सब पढ़ गया,... आहाहा! अनन्त बार अनन्त भव किये, अनादि का आत्मा, जिसकी आदि नहीं, अनन्त काल का उसमें अनन्त बार साधु हुआ, ग्यारह अंग पढ़ा परन्तु

आत्मा अन्तर्तत्त्व का अनुभव किया नहीं। आहाहा! बाहर से हजारों रानियाँ छोड़ी, राजपाट छोड़ा, ग्यारह अंग पढ़ा, इससे क्या? (समयसार) १४२ गाथा में आता है न? उससे क्या? अरे..! मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्प आया, उससे क्या? आहाहा! अकेला चैतन्यब्रह्म आत्मा आनन्द का नाथ, ऐसा एक विकल्प-राग आया कि मैं ऐसा हूँ। उससे क्या? वह भी राग है। आहाहा! बहुत कठिन काम। अनजाने लोगों को तो... व्यवहार के रसिकों को तो ऐसा लगता है कि यह तो अकेली निश्चय... निश्चय की बात है। साधन क्या? इसका उपाय क्या? वह तो आता नहीं। बापू! यह उपाय और साधन ही यह है। आहाहा! अन्तर स्वभाव में राग से भिन्न पड़कर जाना, वह साधक और उपाय है। राग और शास्त्र के जानपने में रुक जाना, वह कहीं साधक और उपाय नहीं है। अरे...! ऐसा...

सब पढ़ गया, अनेक युक्ति-न्याय जाने,... आहाहा! बहुत युक्ति और न्याय भी जाने, उससे क्या? **अनेक विचार किये,...** आहाहा! **परन्तु जाननेवाले को नहीं जाना,...** जिसकी सत्ता जानने की है, आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु ज्ञान का सागर है। वह तो ज्ञान की मूर्ति है। आहाहा! ज्ञातयोग्य वस्तु को जाना परन्तु जाननेवाले को नहीं जाना। आहाहा! जाननेवाले को नहीं जाना। आहाहा! आया न? **ज्ञान की असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई,...** जाननेवाले को नहीं जाना, इसकी विशेषता। **ज्ञान की असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई,...** ज्ञान की मूल भूमि आत्मा है। वह कहीं बाहर से जानपना है, वह कुछ वस्तु नहीं है। शास्त्र के पठन आदि या दुनिया को समझाना है, इसलिए यह ज्ञान, वह कुछ ज्ञान नहीं है। आहाहा! अन्तर में आत्मतत्त्व... आहाहा! ज्ञान की मूल भूमि नजर में आयी नहीं। आहाहा! ज्ञान की मूल भूमि अर्थात् आत्मा। आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है, प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप है। उसमें पुण्य और पाप, दया और दान रागादि उसमें है ही नहीं। आहाहा! ऐसा कठिन लगे।

बहिन को रात्रि में विचार करते हुए किसी ने पूछा, तब तो यह हुआ, वह सब लिखा गया। आहाहा! **ज्ञान की असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई, तो वह सब जानने का फल क्या?** आहाहा! ज्ञान की मूल भूमि तो प्रभु आत्मा है। वह ज्ञानस्वरूपी है। जैसे शक्कर मिठासस्वरूप है, जैसे नमक खारस्वरूप है; वैसे आत्मा ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! उस ज्ञानस्वरूप की भूमि हाथ न आयी। ज्ञान तो वह है। यह बाहर का जानना... जानना... यह कहीं ज्ञान नहीं है। आहाहा! **वह सब जानने का फल क्या?** आहाहा!

शास्त्राभ्यासादि का प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानना है। शास्त्र अभ्यास आदि। वांचन, श्रवण, मनन आदि का प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानना है। ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा को जानना, वह इस सब का परिणाम है। वह नहीं जाना तो कुछ नहीं किया। आहाहा! अरे..! ऐसे का ऐसा जीवन व्यर्थ चला गया। बाहर से क्रिया की, व्रत किये, तपस्यायें की और अपवास किये और भक्ति की, लाखों-करोड़ों रुपये मन्दिर में खर्च किये, इससे मानो कुछ धर्म हो जाएगा। इससे बिल्कुल धर्म नहीं है। आहाहा! धर्म तो आत्मा की अन्तर की चीज़ में ज्ञानभूमि, आनन्दभूमि, शान्ति की भूमि वह स्वयं है। बाहर से जानपना (किया), वह नहीं। आहाहा! कठिन बात है। शास्त्र अभ्यासादि। उसमें यह कहा है न सब? **शास्त्राभ्यासादि का प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानना...** आहाहा! यह ज्ञानस्वरूपी प्रभु है, उसका ज्ञान कहीं बाहर से लाना नहीं है, उसका ज्ञान बाहर से आता नहीं है। वह ज्ञानस्वभाव ... आहा..! वह ज्ञान-आत्मा को जाना वह ... है। आहा..! कठिन बातें हैं। **शास्त्राभ्यासादि का प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानना है।** आहा..! ३८१ (पूरा हुआ)।

आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है; वह नित्य रहकर पलटता है। उसका नित्यस्थायी स्वरूपी रीता नहीं, पूर्ण भरा हुआ है। उसमें अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं। उस अद्‌भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे तो तुझे सन्तोष होगा कि 'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'। उसमें स्थिर होने से तू पर्याय में कृतकृत्य हो जायेगा॥३८२॥

३८२। **आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है;...** आत्मा नयी अवस्था से उत्पन्न होता है, पुरानी अवस्था का अभाव होता है और ध्रुवरूप से कायम रहता है, नित्यरूप से कायम रहता है। उत्पाद-व्यय की अवस्था (होती है)। तो भी ध्रुवपना जाता नहीं और ध्रुव है तो भी उत्पाद-व्यय बिना रहता नहीं। तीन वस्तु होकर वस्तु है। तथापि उत्पाद, उत्पाद के कारण से है; व्यय, व्यय के कारण से है; ध्रुव, ध्रुव के कारण से है। आहाहा! **आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है; वह नित्य रहकर...** नित्य प्रभु है। अनन्त काल गया और

अनन्त काल जाता है, परन्तु वह तो नित्य वस्तु है, अनादि-अनन्त भगवान है। उसका कहीं अन्त नहीं। शुरुआत नहीं, अन्त नहीं। अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु है। आहाहा!

वह नित्य रहकर पलटता है। पलटता है, बदलता है। नित्य भी रहता है और पर्याय में-अवस्था में पलटता है। आहाहा! **उसका नित्यस्थायी स्वरूप रीता नहीं,...** आहाहा! अर्थात् यह क्या कहा? नयी अवस्था उत्पन्न होती है, पुरानी का व्यय होता है, तो भी ध्रुवस्वरूप है। वह ध्रुव कहीं खाली नहीं है। वह ध्रुव स्वभाव से भरपूर है। आहाहा! उसमें दूसरी हिन्दी भाषा है, रिक्त नहीं है, खाली नहीं है। रिक्त नहीं है। आहाहा! **वह नित्य रहकर पलटता है। उसका नित्यस्थायी स्वरूपी रीता नहीं,...** आत्मा नित्य / कायम रहता है। पर्याय से-अवस्था से बदलता है। अनेक प्रकार की अवस्थाएँ बदलती है परन्तु वस्तु है, वह कायम रहती है। वह कायम रहती है... आहाहा! वह कहीं खाली नहीं है। **पूर्ण भरा हुआ है।** ध्रुव है, वह तो भरपूर भरा हुआ तत्त्व है। आहाहा! पूर्ण स्वरूप अन्दर है। अरे..!

वर्तमान अवस्था जो बदलती है, पर्याय बदलती है, वह तो अवस्था है। परन्तु शाश्वत् चीज़ जो अन्दर है, वह तो नित्य रहनेवाली है। आहाहा! वह नित्य रहनेवाली जो है, वह गुण से भरपूर भरचक है। शक्ति से पूर्ण भरपूर है। **उसमें अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं।** आहाहा! ऐसा क्यों कहा? अनन्त गुण के कमरे। एक-एक गुण में भी अनन्त पर्याय होने की ताकत है। यह बहुत सूक्ष्म बात, बापू! अनन्त गुण के कमरे अन्दर प्रभु में हैं परन्तु कभी नजर नहीं की। उसका माहात्म्य नहीं आया, बाहर का माहात्म्य नहीं छोड़ा। आहा..! विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - ५, रविवार, तारीख १४-९-१९८०
वचनामृत -३८२, ३८४ प्रवचन-३३

आज क्षमा का दिन है। दस प्रकार का धर्म है न? वह चारित्र का धर्म है। और चारित्र है, वह सम्यग्दर्शन बिना होता नहीं। तो क्षमा भी सम्यग्दर्शन बिना होती नहीं। वह बात कहते हैं, देखो! (कार्तिकेयानुप्रेक्षा)।

कोहेण जो ण तप्पदि, सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउदे, तस्स खमा णिम्मला होदि॥३९४॥

बहिन का बाद में पढ़ेंगे, इसके बाद। पहले जो कोई आत्मा अन्तर में तो सहजात्म आनन्दस्वरूप निष्क्रिय परमब्रह्म आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा, उसका अनुभव हो, उसका अनुसरण करके आनन्द का अनुभव हो, उसका नाम तो प्रथम धर्म समकित कहते हैं। आहाहा! क्षमा तो बाद की बात है। पहले प्रभु देह—रजकण यह तो मिट्टी से तो भिन्न है। कर्म से भिन्न है, पुण्य-पाप से भिन्न है। उसमें जो ज्ञान और आनन्द भरा है, उस आनन्द का वेदन होना, वह प्रथम धर्म है। बाद में क्षमा होती है। सम्यग्दर्शन बिना क्षमा होती नहीं।

कहते हैं कि **जो मुनि, देव, मनुष्य, तिर्यंच आदि से रौद्र (भयानक घोर) उपसर्ग करने पर भी...** घोर उपसर्ग हो। परन्तु अन्तर में आनन्द में धर्मात्मा तो अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त है। आहाहा! जिसने पुण्य-पाप का विकल्प-राग, उसका भी जिसको स्पर्श नहीं है, छुआ नहीं,... आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा का अन्तर अनुभव करने पर, उपसर्ग करने पर भी **क्रोध से तप्तायमान नहीं होत है...** आहाहा! भगवान शान्ति का सागर, अकषाय स्वभाव कहो कि शान्ति कहो या वीतरागमूर्ति कहो। वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर है। उसकी दृष्टि और अनुभव होने के बाद परीषह और उपसर्ग आने पर भी क्रोध-अरुचि-क्रोध नहीं करना, उसका नाम प्रथम क्षमा, धर्म का नाम क्षमा है। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। क्षमा उसका नाम। हठ से क्षमा करना, आत्मा के भान बिना हठ की क्षमा करना। वह तो अनन्त बार की है। आहाहा!

भगवान सहजात्म स्वरूप अन्दर, जो निष्क्रिय राग, दया, दान, व्रत, राग की क्रिया भी जिसमें नहीं है, ऐसी चीज़ का अनुभव होने पर शान्तरस आने पर प्रतिकूल परीषह आने पर भी क्रोध करते नहीं। आहाहा! उसका नाम क्षमा, उसका नाम यह जो दस प्रकार का धर्म है, वह चारित्र का प्रकार है। चारित्र समकित बिना होता नहीं। आहाहा! और समकित अपना चैतन्यस्वरूप भगवान, उसके अवलम्बन बिना होता नहीं। आहाहा! उतनी क्षमा की बात कही।

अब बहिन के वचनामृत। ३८२ ? ३८२। बहिन के वचनामृत पढ़ते हैं न ? यह तो अलौकिक बात है। बहिन तो अन्तर में से रात्रि में थोड़ा-थोड़ा बोले होंगे और ६४ बाल ब्रह्मचारी बहनें हैं, उनमें से नौ बहनों ने लिख लिया। उसमें से बाहर आया। हिम्मतभाई ने बनाया। अपने पढ़ते हैं। ३८२। सूक्ष्म है, भगवान!

आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है;... आहाहा! यह देह तो भिन्न है, कर्म भिन्न है, पुण्य-पाप का विकल्प भी भिन्न है। अपना स्वरूप अपने से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है। आहाहा! उसमें थोड़ी सूक्ष्मता दिमाग में आयी थी। रात्रि को कहा था। उत्पाद जो आत्मा में होता धर्म का, उस उत्पाद को किसी की अपेक्षा नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! आत्मा में धर्म की जो उत्पत्ति होती है, शान्ति की अथवा अरे..! अज्ञान की, वह जो उत्पाद है, उसमें कोई पर की अपेक्षा नहीं है। निमित्त की अपेक्षा से यहाँ शुद्ध या अशुद्ध पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा है नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई!

१०२ गाथा, प्रवचनसार। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि आत्मा में जो अनन्त गुण हैं, उसमें जिस समय पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, उस समय वह होगी। उत्पाद को ध्रुव और व्यय की भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ सुने ? बाहर में यह करो, वह करो और वह करो। आहाहा! आत्मा में अनन्त-अनन्त गुण का भण्डार भगवान, उसकी शुद्ध पर्याय अपने लक्ष्य से हो तो उस उत्पाद को कोई अपेक्षा नहीं है। निमित्त अनुकूल है तो उत्पाद हुआ, अरे..! धर्म की-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय का उत्पाद, उसे अपने द्रव्य और गुण की अपेक्षा नहीं है। प्रभु! सूक्ष्म पड़ेगा। आहाहा! अरे..! बात भी सुनी नहीं।

अपना द्रव्य और गुण जो त्रिकाल है, उसमें जो उत्पाद होता है, उस उत्पाद को

निमित्त और संयोग की तो अपेक्षा नहीं है, परन्तु उस उत्पाद को द्रव्य की, गुण की, व्यय की अपेक्षा नहीं है। अरेरे..! ऐसी बात कभी सुनी न हो। उत्पाद, व्यय। पूर्व की अवस्था का व्यय होता है। उसको भी कोई अपेक्षा नहीं है। व्यय को भी किसी की अपेक्षा नहीं है। उत्पाद की अपेक्षा भी व्यय को नहीं है। और ध्रुव की भी अपेक्षा व्यय को नहीं है। व्यय स्वतन्त्र अपना (होता है)। क्योंकि उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीन सत् है। तीनों सत् है। तो सत् को पर की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। अनन्त काल व्यतीत हुआ। अनन्त-अनन्त चौबीस, अनन्त पुद्गल परावर्तन किये, परन्तु आत्मा आनन्दमूर्ति.. धर्म की उत्पत्ति की पर्याय की अपेक्षा में व्यवहाररत्नत्रय जो राग है, दया, दान, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, उसकी भी अपेक्षा नहीं है। अरे..! प्रभु! वह उत्पाद स्वतन्त्र सत् है। आहाहा! उस उत्पाद को अनन्त गुण की पर्याय का जो उत्साह होता है, एक समय में एक ही पर्याय नहीं उत्पन्न होती है, प्रत्येक द्रव्य में एक समय में अनन्त गुण की उत्पाद पर्याय उत्पन्न होती है। उस उत्पाद को किसी की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! निमित्त की अपेक्षा नहीं है कि निमित्त आवे तो यह होता है। ऐसी अपेक्षा है नहीं। उसकी तो नहीं, परन्तु उसका जो त्रिकाली द्रव्य-गुण ध्रुव है, ध्रुव की भी उत्पाद को अपेक्षा नहीं है। आहाहा! १०२ गाथा, प्रवचनसार, उसमें यह कहा है। सूक्ष्म बात, भाई! अभी तो क्रिया और प्रवृत्ति की बात, यह करो, वह करो, यह करो। मार्ग बहुत अलौकिक है।

उत्पाद-व्यय-ध्रुव। ध्रुव अर्थात् कायम रहनेवाला। वह भी निरपेक्ष है। उसको भी उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु, उसको उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत् तीनों होकर प्रमाण का विषय है। परन्तु ध्रुव को उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं, उत्पाद-व्यय को ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहा! **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है; वह नित्य रहकर पलटता है।** है? कायम रहकर पलटत है। नित्य-कायम अपने से स्वत: नित्य ध्रुव रहकर पलटता है अर्थात् पर्याय में-अवस्था में बदलता है। आहाहा! यह बहन की वाणी है। चम्पाबेन। वहाँ आयी है न? यह तो करीब ८०००० पुस्तक छप गये। तीन हजार तो अफ्रीका में गये। अफ्रीका। आहाहा!

मुमुक्षु :- अभी बीस हजार छपना बाकी है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह सब पूरी गिनती हो गयी। अफ्रीका में तीन हजार पुस्तक

और लोगों को प्रेम.. ओहोहो! हम अफ्रीका गये थे अभी। ४५० तो करोड़पति एक गाँव में है। ४५०। और १५ तो अरबपति हैं। पच्चीस लाख का मन्दिर बनाने का है। पन्द्रह लाख पहले किये थे, हमारे जाने के बाद दूसरे ४५ लाख किये। साठ लाख रुपया इकट्ठा हुआ है।

मुमुक्षु :- आपने वहाँ लकड़ी घुमायी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो उस समय... वह बात तो आयी न? जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी, होगी और होगी। किसी से नहीं। आहा..! सूक्ष्म बात है, भाई! ऐसे ही हम दिगम्बर है और हम जैन हैं, ऐसा तो अनन्त बार माना, उसमें कुछ है नहीं।

यहाँ कहते हैं, **नित्य रहकर...** वस्तु जो है आत्मा, वह नित्य रहकर-ध्रुव रहकर **पलटता है।** ध्रुव... कहा न? ध्रुव और उत्पाद-व्यय। उत्पाद-व्यय पलटता है और ध्रुव नित्य-कायम रहता है। वह नित्य रहकर पलटता है। आहाहा! पलटने में पर की कोई अपेक्षा नहीं। आहाहा! पाँच-पच्चीस लाख रुपया जाता है, तो देनेवाले का भाव हुआ तो जाता है, ऐसा नहीं। गजब बात है, प्रभु जड़ की पर्याय उत्पाद उस समय जानेवाला था तो वह उत्पाद हुआ है। उस उत्पाद का कारण देनेवाला तो है नहीं, परन्तु उस उत्पाद का कारण द्रव्य भी नहीं। ऐसा स्वतन्त्र उत्पाद है। आहाहा! कहाँ सुना है? वीतराग मार्ग... सेठ! आहाहा!

सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ सीमन्धरस्वामी भगवान तो विराजते हैं। आहाहा! उनकी यह वाणी आयी है। बहिन वहाँ थे न। सेठ के पुत्र थे। वहाँ से आये हैं। आहाहा!

यह कहते हैं, **नित्य रहकर पलटता है। उसका नित्यस्थायी स्वरूप...** आहाहा! आत्मा का कायम रहनेवाला स्वरूप। उत्पाद-व्यय पर्याय है। नित्य ध्रुव है। नित्यस्थायी कायम रहनेवाली चीज़ **रीता नहीं...** खाली नहीं है। आहाहा! क्या कहा? वह नित्य वस्तु जो अन्दर है - भगवान आत्मा, वह खाली नहीं है। अनन्त गुण से भरा है। आहाहा! अरे..! अनन्त चिन्तामणि रत्न, अनन्त गुण के कमरे भरे हैं। वह आ गया? अब आयेगा। **उसका नित्यस्थायी स्वरूप रीता नहीं...** भगवान आत्मा का नित्य स्वरूप जो ध्रुव है, वह खाली नहीं। अनन्त गुण से भरा है। आहाहा! **पूर्ण भरा हुआ है।** पूर्ण गुण से भरा हुआ है। आहाहा! एक-एक आत्मा सब भगवान (हैं)।

उसमें अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं। आहाहा! भगवान आत्मा में अनन्त गुण के कमरे। एक-एक गुण में अनन्त पर्याय होने की ताकत (है)। एक-एक गुण में अनन्त पर्याय-अवस्था होने की ताकत है। ऐसे अनन्त गुण के कमरे हैं। आहाहा! अरेरे..! प्रभु! तूने तेरी बात सुनी नहीं। तू कौन है? कहाँ हो? कितना हो? बाहर की बातों में हो.. हा.. हो.. हा। यह करो, व्रत करो, उपवास करो, गजरथ चलाओ, रथ करो, मन्दिर बनाओ,.. आहाहा! वह होती है क्रिया उसके कारण से। और करानेवाले का भाव हो, करा सकता नहीं। भाव शुभ है, पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वहाँ अफ्रीका में दो हजार साल में कोई (जिनमन्दिर) नहीं था। पहली बार दिगम्बर मन्दिर होगा, पच्चीस लाख का। साठ लाख इकट्ठे हुए हैं। बहुत पैसेवाले। साधारण लाख, दो लाखवाला तो गरीब कहलाता है। दस लाख, बीस लाख, पच्चीस लाख, करोड़... धूल है वह सब तो, कहा।

मुमुक्षु :- आपने छू मन्तर किया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं, वह तो बहुत प्रेम था तो गये थे। उनका बहुत प्रेम था, इसलिए गये थे। बाकी तो... ९१ साल हुए। ९१। ९० और १। वहाँ लोगों का बहुत प्रेम था, बहुत भाव। नहीं तो परदेश है, वहाँ सर्दी बहुत है। हम एक महीना वहाँ रहे - २६ दिन, यहाँ जैसा मौसम था। वे लोग भी चकित हो गये। आप यहाँ आये तो वहाँ का मौसम ही बदल गया। मौसम के कारण कोई नुकसान नहीं हुआ। नहीं तो शरीर कोमल। सर्दी लग जाए।

यहाँ तो कहते हैं कि, नित्यस्थायी प्रभु, आहाहा! उसमें अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं। आहाहा! एक आत्मा में अनन्त गुण के कमरे। एक-एक कमरे में अनन्त पर्याय होने की ताकत। आहाहा! कौन सुने और किसे दरकार है? ये बाहर की होली पैसा-लक्ष्मी करोड़, अरब धूल। उसमें पाँच-पचास लाख एक साल में मिले तो हो गया, उसमें घुस जाए। हमने किया, हमने किया, हमने किया। हमने बराबर व्यवस्था की तो व्यवस्थित हुआ, बिल्कुल मिथ्यात्व है। आहाहा!

वही यहाँ कहा न? वस्तु स्वयं उत्पादव्ययध्रुव स्वरूप है। उसे दूसरा कोई बदले,

पलटे.. आहाहा! तो उसका पलटन स्वभाव कहाँ गया? आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो पर्यूषण का प्रथम दिन है। आहा..! अरे..! उसने कभी अन्दर चैतन्य कौन है? (उसे जानने का प्रयत्न किया नहीं)। उसमें अनन्त गुणों के कमरे भरे हैं। एक-एक गुण में अनन्ती पर्याय-अवस्था होने की ताकत है। ऐसे अन्दर गुण हैं। आहाहा! फिर भी उस गुण के कारण से भी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। गुण तो ध्रुव है, पर्याय अध्रुव है। पर्याय क्रम से होती है, क्रमसर, क्रमबद्ध होती है। एक के बाद एक, जो होनेवाली है, वही होती है। उसको किसी की अपेक्षा नहीं है। आहाहा!

वह कहते हैं, **उसमें अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं। उस अद्भुत ऋद्धियुक्त...** अद्भुत ऋद्धियुक्त **नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे...** आहाहा! अन्तर अनन्त ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे। वहाँ दृष्टि दे तो सम्यग्दर्शन होगा। बाकी सब धूल है। जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा। चौरासी लाख के अवतार अनन्त बार किये। आहाहा!

आचार्य तो ऐसा भी कहते हैं... आहा..! क्या नाम? वादिराज। वादिराज ने स्तुति की। कोढ़ था न? फिर उन्होंने भगवान की स्तुति की। कोढ़ मिट गया सहज ही। मिटनेवाला था। परन्तु वे वादिराज ऐसा कहते थे कि, अरे..! प्रभु! मैं भूतकाल के दुःख को याद करता हूँ। नरक का, निगोद का, ढाई द्वीप के बाहर तिर्यंच में मारामारी, सिंह और बाघ खा जाए, प्रभु! ऐसे दुःख को याद करता हूँ तो आत्मा में घाव लगता है। मुनिराज ऐसा कहते हैं। वे तो आनन्द-आनन्द में हैं। जो भी थोड़ा संज्वलन का कषाय है, चौथा कषाय। तीन कषाय का अभाव है। चौथा संज्वलन का (कषाय) है। कहते हैं कि याद करता हूँ पूर्व के दुःखों को, तो घाव लगता है कि आहा..! अरेरे! ऐसे दुःख मैंने सहन किये। अब उस दुःख में-भव में जाना नहीं है। अब वह भव नहीं करना है। अब वह भव नहीं करने हैं। आहा..! क्योंकि भव का भाव और भव, इससे रहित ऐसा भगवान... आहाहा! क्या कहा?

भव और उसका भाव, दो से रहित आत्मा है। आहाहा! दो से रहित प्रभु आत्मा है। ऐसे आत्मा का अन्दर में ध्यान करने से और उसका अनुभव करने से भव का अन्त आ जाता है। इसके सिवा भव का अन्त कोई करोड़ों, अरबों रुपये खर्च कर दे... आहा..! या

व्रत, नियम और तप, बारह–बारह महीने के उपवास करे, अनन्त बार किया, उसमें कुछ आत्मा के भव का अभाव हो, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **अद्भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे...** आहाहा! अन्दर में नित्य स्वरूप भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द परमात्मस्वरूप से विराजमान शक्ति से है, वहाँ दृष्टि दे। भव का अन्त आयेगा। उसके बिना भव का अन्त कोई क्रियाकाण्ड से या बाहर में पैसा खर्च करने से, करोड़, अरब खर्च करने से (नहीं आयेगा)। राग की मन्दता की हो और उसमें भी वह पैसा मेरा, ऐसा माननेवाला अजीव को जीव माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह तो मिट्टी–धूल है। उसको अपना है, मेरा है.. आहाहा! वह धूल मेरी है, प्रभु चैतन्यमूर्ति (है), आहा..! वह धूल मेरी है, ऐसा माननेवाला... आहाहा! (उसे) अद्भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप की खबर नहीं।

अद्भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे... अन्दर दृष्टि दे। आहाहा! कहीं दृष्टि देने की जरूरत नहीं है। आहाहा! पर्याय पर भी दृष्टि मत दे। दृष्टि पर्याय है, परन्तु उस पर्याय की दृष्टि ध्रुव पर दे। आहाहा! है? **अद्भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे...** आहा..! माल है यह तो। मक्खन है। अरे..! पर की दया करने निकल पड़ा, परन्तु स्व की दया नहीं की। आहा..! मैं चार गति में भटकता हूँ। चौरासी के अवतार में कौआ, कुत्ता, भालू, शूकर, जैसे अवतार अनन्त–अनन्त किये और जब तक मिथ्यादृष्टि है, उसके पेट में अनन्त अवतार करने की ताकत है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अद्भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप...** प्रभु कायम त्रिकाली वहाँ दृष्टि दे **तो तुझे सन्तोष होगा...** आहाहा! वहाँ आनन्द और शान्ति अन्दर भरी है। वहाँ तुझे सन्तोष होगा। बाह्य में तो कहीं तू है ही नहीं। परन्तु एक समय की पर्याय में भी तू पूरा नहीं है। पूरा तो नित्य ध्रुव में है। वहाँ दृष्टि देने से तुझे सन्तोष होगा। आहाहा! '**मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ**'। आहाहा! मैं प्रभु! मैं तो कृतकृत्य ध्रुव हूँ। मुझे कुछ करना है, ऐसा मैं हूँ नहीं। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! है? '**मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ**'। भाषा तो सादी है, सेठ! भाषा तो सादी है। भाषा ऐसी कोई व्याकरण (जैसी नहीं है)। भाव... भाव गहरे हैं। आहाहा!

अरे..! अनन्त काल व्यतीत हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो।'

अनन्त बार मुनि दिगम्बर हुआ, अट्ठाईस मूलगुण पाले, पंच महाव्रत पाले। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आहाहा! अरे..! आत्मज्ञान बिना वह पंच महाव्रत भी दुःखरूप हैं। पंच महाव्रत और मुनि के अट्ठाईस मूलगुण राग है, दुःखरूप है, जहर है। अरर..र..! ऐसी बात! अमृत का सागर भगवान, उससे वह भाव विरुद्ध है। विकल्प है, राग है, वृत्ति है। आहा..! तो वहाँ स्थिति छोड़ दे। मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ। आहाहा! ध्रुव। मुझे कोई कार्य करना है, ऐसी मैं चीज़ नहीं हूँ। ऐसी पर्याय में दृष्टि द्रव्य पर दे। आहा..! द्रव्य तो ध्रुव है। ध्रुव पर दृष्टि देना, वह ध्रुव नहीं है। दृष्टि तो पर्याय है। पर्याय की दृष्टि ध्रुव पर दे। आहाहा!

उसमें स्थिर होने से... क्या कहते हैं? दो बात। मैं तो सदा कृतकृत्यु हूँ। वस्तु तो कृतकृत्य हूँ। ध्रुव जो है वस्तु तो कृतकृत्य हूँ। कृतकृत्य अर्थात् कुछ करना ऐसा मेरी चीज़ में है नहीं। मैं कृतकृत्य ही हूँ। परन्तु **उसमें स्थिर होने से तू पर्याय में कृतकृत्य हो जायेगा**। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, प्रभु! आहा..! सब भगवान हैं। देह को मत देख, वाणी को मत देख तो अन्तर तो सब भगवान ही हैं। आहाहा!

कहते हैं, वस्तु आत्मा जो नित्य वस्तु, वह तो कृतकृत्य ही है। नित्य को कुछ करना है, वह तो है नहीं। है? **'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'**। आहाहा! **उसमें स्थिर होने से... उसमें स्थिर होने से तू पर्याय में कृतकृत्य हो जायेगा**। आहाहा! भाषा देखो! नित्यानन्द प्रभु ध्रुव वस्तु नित्य जो कायम रहनेवाली चीज़ है, वह तो कृतकृत्य ही है। उसमें कुछ करना है, ऐसा है नहीं। परन्तु कृतकृत्य वस्तु पर दृष्टि देने से... आहाहा! उसमें स्थिर होने से पर्याय में कृतकृत्य हो जाएगा। पर्याय में भी तुझे कुछ करना है, वह बाकी नहीं रहेगा। पूर्णानन्द की दशा तुझे प्रगट हो जाएगी। कृतकृत्य – सब कार्य पूरे हो गये। पूरा कार्य है, ऐसा भगवान नित्य है। उसमें स्थिर होने से... आहाहा! पर्याय में कृतकृत्य हो जाएगा। पर्याय में पीछे कुछ करना बाकी नहीं रहेगा। आहाहा!

प्राप्त की प्राप्ति है। अन्दर में भरा है, वह पर्याय में आयेगा, यदि स्थिर हुआ तो। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! बाहर की बातों में सन्तोष और बाहर की बातों में महत्ता और महिमा। आहाहा! भगवान अन्तर महा आनन्द महिमा का धनी, जिसकी महिमा का पार नहीं, वह महिमावन्त कृतकृत्य वस्तु है। कार्य कोई करना, वह तो वस्तु में

हे नहीं। वस्तु तो पूर्णानन्द है। उसमें स्थिर होने से पर्याय में कृतकृत्य हो जाएगा। पर्याय में भी नया काम करना, ऐसा नहीं नहीं रहेगा। तू स्थिर हो जा, केवलज्ञान हो जाएगा। आहाहा! उपाय यह। बाह्य क्रियाकाण्ड और प्रवृत्ति कोई उपाय नहीं है। आहाहा! लाईनें तो बहुत कम थी। चार और दो, सवा छह पंक्ति थी। अब, ३८३ ? ३८४ ?

तेरे आत्मा में निधान ठसाठस भरे हैं। अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है, असंख्यात प्रदेशों के क्षेत्र में ही अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं, तुझमें ऐसे निधान हैं, तो फिर तू बाहर क्यों जाता है ? तुझमें है, उसे देख न! तुझमें क्या कमी है ? तुझमें पूर्ण सुख है, पूर्ण ज्ञान है, सब कुछ है। सुख और ज्ञान तो क्या परन्तु कोई भी वस्तु बाहर लेने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर, सब अन्तर में है। अन्तर में गहरे उतरने पर, सम्यग्दर्शन होने पर, तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे और उन सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर तू तृप्त हो जायेगा। पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना, जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर तू सदाकाल परम तृप्त-तृप्त रहेगा॥३८४॥

३८४ है। यहाँ लिखा है। ३८४। ३८३ बीच में छोड़ देना। **तेरे आत्मा में निधान ठसाठस भरे हैं।** आहाहा! किसे पड़ी है? चौरासी (लाख) अवतार में भटकते हुए अनन्त बार अरबोंपति राजा हुआ, अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक का अहमिन्द्र हुआ, आहाहा! अनन्त बार सातवीं नरक का नारकी हुआ और अनन्त बार निगोद में रहा। आहाहा! परन्तु कभी उसने अपनी ऋद्धि अन्दर में क्या है, उस ओर दृष्टि दी ही नहीं। पहले तो यह बात सुनने मिलना मुश्किल है। आहा..! सुनने मिले तो रुचि होती नहीं। आहाहा! रुचि होने के बाद उसमें स्थिरता होती है, तब कृतकृत्य हो जाता है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! सूक्ष्म लगे। बाहर में यह करूँ, यह करूँ... यह करूँ। बाहर की कर्ताबुद्धि तो मिथ्यात्वबुद्धि है। आहाहा!

अपने आत्मा में दया, दान के भाव का कर्तापना, वह भी मिथ्यात्व है। आहाहा! पर

की दया तो पाल सकता नहीं, पर की दया मैं पाल सकता हूँ। वह मिथ्यात्व भाव है। परन्तु पर की दया का भाव आया, वह राग और हिंसा है। क्योंकि भगवान आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा ज्ञान से भरा पड़ा प्रभु है। आहाहा! उसमें पर की दया पाल तो सकता नहीं, आहाहा! परन्तु भाव आया कि मैं पर की दया पालूँ, वह राग है, हिंसा है। तेरी चीज़ की हिंसा है, प्रभु! क्यों? **तेरे आत्मा में निधान ठसाठस भरे हैं।** तेरी चीज़ प्रगट करने में पर का सहारा, पर निमित्त का सहारा नहीं लेना पड़ता। आहाहा! ऐसी बात।

तेरे आत्मा में निधान... अनन्त गुण का शान्ति, आनन्द का निधान ठसाठस भरपूर भरा है। **अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये...** क्या कहते हैं अब? **अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है,...** क्या कहा यह? अनन्त गुण हे तो रहने के लिये अनन्त क्षेत्र चाहिए, ऐसा है नहीं। आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, उसमें अनन्त गुण रहते हैं। शरीरप्रमाण असंख्य प्रदेश भिन्न हैं। गुण अनन्त हैं, प्रदेश असंख्य हैं। तो अनन्त गुण को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र नहीं चाहिए। आहाहा! है? **अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है,...** आहाहा! अरे..! उसने निज निधान की बातें सुनी नहीं है। करने का तो करे कहाँ से? अरेरे! जिन्दगी चली जाती है। जो-जो दिन, महीने जाते हैं, वह मृत्यु के समीप जाते हैं। क्योंकि मृत्यु तो निश्चित है। समय, क्षेत्र, काल जिस स्थान में देह छूटनेवाला है, वह नक्की-निश्चित है। आहाहा! उसकी पर्याय में भी निश्चित है और भगवान ज्ञान में देखते हैं कि इस स्थान में यह देह छूटेगा। आहाहा! तो जितने महीने और दिन जाते हैं, वह देह छूटने के मृत्यु के समीप जाते हैं। आहाहा! शोभालालजी चले गये, देखो! कैसा शरीर था, कैसा प्रेम था बेचारे को। यहाँ आते थे। बहुत प्रेम। आहाहा! हम तो उस दिन पहली बार सुना। नहीं तो उसका शरीर तो कैसा था। सेठ का शरीर तो लोहवाला दुर्बल था। लेकिन शरीर क्या करे? जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह हुए बिना तीन काल में नहीं रहती। आहाहा! निरोग शरीर है तो उसे मृत्यु के लिये देर लगेगी, ऐसा है नहीं। भाई! आहाहा!

यहाँ एक दस साल का लड़का था। कोई रोग नहीं, शरीर में रोग नहीं, निरोग। मुझे यहाँ कुछ होता है, बस! इतना किया, दस मिनिट में देह छूट गया। हम पहले जिस मकान में ठहरे थे न? हीराभाई का मकान। उनके लड़के का लड़का। उनके लड़के का लड़का,

दस साल की उम्र। कोई रोग नहीं, ऐसे बैठा था। यहाँ कुछ होता है, डॉक्टर कुछ कहते हैं, डिप्थेरिया कहते हैं। दस मिनिट रहा, बस, देह छूट गया। वह तो उसी समय छूटने का काल था। उसमें कुछ आगे-पीछे ऐसा किया, ध्यान रखा होता तो ऐसा होता... आहाहा! वह अज्ञानी की कल्पनाएँ हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है, असंख्यात प्रदेशों के क्षेत्र में ही अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं,...** आहाहा! है ? असंख्य प्रदेश। जैसे माला में मणका होता है, ऐसे आत्मा में असंख्य प्रदेश है। प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुण भरे हैं। पूरा नहीं, पूरा गुण तो पूरे असंख्य प्रदेश में है। उसका अंश। एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण का अनन्त अंश। आहाहा! अरे..! घर की ऋद्धि का देखा नहीं, सुना नहीं, उसकी महिमा की नहीं। पर की महिमा छोड़ी नहीं। पर की महिमा कभी छोड़ी नहीं, अपनी महिमा की नहीं। आहाहा!

यह कहा, **असंख्यात प्रदेशों के क्षेत्र में ही अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं, तुझमें ऐसे निधान हैं, तो फिर तू बाहर क्यों जाता है ?** आहाहा! है ? **तुझमें ऐसे निधान हैं,...** चौथी पंक्ति है। **तो फिर तू बाहर क्यों जाता है ?** आहा..! **तुझमें है, उसे देख न!** आहाहा! तेरे में है, उसको देख न। तेरे में नहीं है, उसे देखने-जानने में तेरा काल चला गया। आहाहा! तेरे में जो चीज़ नहीं है, उसे देखने-जानने में काल चला गया। आहाहा! परन्तु तुझमें है, उसे देख। आहाहा! प्रभु अन्दर अनन्त गुण का भरा प्रभु, करना तो यह है। सब क्रियाकाण्ड और बाहर की बातें व्यवहार की है। पुण्यबन्ध का कारण है। जन्म-मरण उसमें खड़े हैं। आहाहा!

तुझमें क्या कमी है ? आहाहा! उसमें आता है न ? भजन आया न ?

प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा, प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा।
पर की आश कहाँ करे प्रीतम, प्रभु मेरे तू सब बाते पूरा।
पर की आश कहाँ करे प्रीतम, तू किण बाते अधूरा ?

कब है तू अधूरा ? आहाहा! ऐसी बातें। यहाँ तो एक थोड़ा मान मिले तो, बस! जहाँ पाँच-पचास लाख, दो करोड़ मिले वहाँ... मानो.. ओहो..! अपने बढ़ गये। आहाहा!

तुझमें है, उसे देख न! तुझमें क्या कमी है ? तुझमें पूर्ण सुख है,... आहा..! पूर्ण आनन्द है। तू सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा! सत् रहनेवाला। सत् अर्थात् रहनेवाला। चिद् और ज्ञान। चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द। आहाहा! तेरे में तो सच्चिदानन्द प्रभु भरा है। आहाहा! अरेरे! **तुझमें पूर्ण सुख है,...** आहाहा! **पूर्ण ज्ञान है,...** तेरे स्वभाव में पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द है। आहाहा! **सब कुछ है।** जो कुछ तू कहता है, वह सब अन्दर में है। अनन्त पुरुषार्थ, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता.. आहाहा! सब कुछ है। आहाहा! बाहर की महिमा और अन्दर की बात सुननी भी मुश्किल पड़े। आहाहा!

सुख और ज्ञान तो क्या परन्तु कोई भी वस्तु बाहर लेने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! सुख और ज्ञान तो तेरी चीज़ है ही, परन्तु कोई भी वस्तु... आहाहा! **बाहर लेने जाना पड़े, ऐसा नहीं है।** आहाहा! एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर। आहा..! आनन्द का घर प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द को धारण करनेवाला परमात्मा स्वयं, अप्पा सो परमप्पा, वही परमात्मा है। आहाहा! उसमें प्रवेश कर। **एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर,...** आहाहा! बाहर तो अनन्त बार गया। आहाहा!

एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर, सब अन्तर में है। आहाहा! शान्ति, सुख, स्वच्छता, प्रभुता, ईश्वरता, सब तेरी शक्ति में पड़ा है। आहाहा! बात लगे रूखी, माल तो यह है। बाकी दुनिया को प्रसन्न करने के लिये, यह करो, वह करो, यह करो, वह करो। करना है, वहाँ मरना है। कर्ता होना, एक राग का विकल्प का भी कर्ता होना, वहाँ आत्मा को मरणतुल्य कर दिया। आहाहा! क्योंकि आत्मा जो ज्ञाता-दृष्टा है, तो कर्ता हुआ तो उसको ना कही कि नहीं, तू ऐसा नहीं है। अर्थात् उसका निषेध किया। निषेध किया, वह मरणतुल्य किया। कलशटीका में आता है कि आत्मा को मरणतुल्य कर दिया है। आहाहा! नाश तो होता नहीं, नित्य है तो नाश तो होता नहीं। परन्तु अपनी पर्याय में पर का आदर करता है और अपना अनादर कर दिया। आहाहा!

एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर, सब अन्तर में है। अन्तर में गहरे उतरने पर,.. आहा..! आत्मा में गहरे उतरने पर, **सम्यग्दर्शन होने पर,...** आहाहा! **सम्यग्दर्शन होने पर, तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे...** आहाहा! तेरे निधान.. आहाहा! तुझे दिखायी देंगे। तेरा

निधान तुझे दिखायी देगा। आहाहा! **और उन सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर...** निधान तो पूर्ण है, ऐसा प्रतीत में आया, देखने में आया। परन्तु **सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर...** आहाहा! वेदने में, त्रिकाली निधान ध्रुव वेदने में नहीं आता। क्या कहा? त्रिकाली ध्रुव जो अनन्त गुण हैं, वह वेदने में नहीं आते। वेदने में तो उस ओर की प्रतीति, ज्ञान और रमणता की पर्याय वेदने में आती है। पर्याय का वेदन होता है, ध्रुव का वेदन होता नहीं। आहाहा!

वह अपने पहले आ गया। वेदन पर्याय का होता है, ध्रुव का वेदन नहीं। ध्रुव तो शाश्वत चीज़ पड़ी है। अनन्त-अनन्त दर्शन, ज्ञान, चारित्र का भण्डार। परन्तु उस ओर झुकाव करके जो स्थिरता होती है, श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता होती है, वह वेदन (है)। आहाहा! परन्तु वेदन का अवलम्बन नहीं है। आहाहा! और ध्रुव का वेदन नहीं है। आहाहा! क्या कहा? ध्रुव चीज़ है, उसका वेदन नहीं। वह तो नित्य ध्रुव है। उस ओर लक्ष्य करके जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय निर्मल प्रगट होती है, उसका वेदन। तो पर्याय का वेदन है, उसका आलम्बन नहीं; आलम्बन ध्रुव का, वेदन पर्याय का। पर्याय का आलम्बन नहीं, ध्रुव का वेदन नहीं। आहाहा! ऐसी बात।

उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत्, वह वस्तु। परन्तु जो पर्याय है, उसका वेदन है। ध्रुव का वेदन नहीं होता, ध्रुव तो नित्य है। आलम्बन नित्य का है, वेदन का आलम्बन नहीं है। आहाहा! त्रिकाली भगवान का आलम्बन और वेदन पर्याय का। आलम्बन पर्याय का नहीं, ध्रुव का वेदन नहीं। आहाहा! अरेरे..! ऐसी चीज़ अलौकिक चीज़ रह गयी। उसकी दरकार नहीं की। बाहर की प्रवृत्ति में जिन्दगी व्यतीत करके अरे..! आत्मा चला जाता है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - ६, सोमवार, तारीख १५-९-१९८०
वचनामृत -३८४, ३८७, ३९० प्रवचन-३४

आज पर्यूषण का दूसरा दिन है। मार्दव-निर्मानता। मार्दव नाम का धर्म है। वह होता है तो चारित्र का भेद और चारित्र, सम्यग्दर्शनपूर्वक होता है। जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं है... सूक्ष्म बात है। अन्तर आत्मा आनन्दकन्द चिद्घन, उसके अनुभव में चीज़ आयी, उस चीज़ की माहात्म्य की कीमत से उसको मार्दव अर्थात् निर्मानता रहती है। किसी भी चीज़ के कारण उसको मान नहीं आता। वह कहते हैं।

उत्तमणाणपहाणो, उत्तमतवयरणकरणसीलो वि।
अप्पाणं जो हीलदि, मद्दवरयणं भवे तस्स ॥३९५॥

अन्वयार्थ :- जो मुनि उत्तम ज्ञान से तो प्रधान हो... चार-चार ज्ञान प्रगट हुआ हो, आहाहा! बारह अंग का ज्ञान प्रगट हुआ हो, तो भी निर्मानता है। क्योंकि मेरी पर्याय पामर है। बारह अंग का ज्ञान, वह भी पामरता है। स्वामी कार्तिकेय में ३१३ गाथा में कहा है, ३१३ गाथा में। धर्मी जीव अपने को ज्ञान का भान है और अपनी दशा में अल्पज्ञता है, वस्तु पूर्ण भरी है। परन्तु पर्याय में अभी पामरता है। क्योंकि कहाँ केवलज्ञानादि, उसके समक्ष अपनी पर्याय पामर है। आहाहा! ऐसे अपने को पामर मानते हैं।

सम्यग्दृष्टि, साधु सन्त सच्चे भावलिंगी अपना पूर्ण प्रभु भगवान आत्मा को तो भगवान मानते हैं, परन्तु पर्याय में पामरता मानते हैं। आहाहा! कहाँ केवलज्ञान, कहाँ केवलदर्शन और कहाँ मेरी दशा! ऐसे अपने को पामरता, निर्मानता, मार्दवता प्रगट होती है। आहाहा! बारह अंग का ज्ञान हो। चार ज्ञान प्रगट हुआ हो तो भी कहते हैं, **अप्पाणं हीलदि** आत्मा को निन्दे। आहाहा! अभिमान न हो जाए, थोड़ा जानपना किया कि बाहर प्रसिद्धि में आये... आहाहा! **अप्पाणं हीलदि** पाठ है।

मद्दवरयणं भवे तस्स। आत्मा को चाहे जितना शास्त्रज्ञान हो या चारित्र की क्रिया

हो, परन्तु पूर्ण सर्वज्ञ के समक्ष अपनी पर्याय को पामरता जानकर मान होता नहीं। निर्मान और मार्दव गुण होता है। मार्दव गुण आज पर्यूषण का दिन है। मार्दव आदि चारित्र का भेद है। चारित्र, सम्यग्दर्शनसहित होता है। उसमें यह चारित्र का भेद तो सम्यग्दर्शन (में) अपनी ऋद्धि जिसने देखी, अन्तर में ज्ञानादि अनन्त ऋद्धि जिसने श्रद्धा करके मानी, उसकी पर्याय में चाहे जितना विकास हो तो भी केवलज्ञान के समक्ष वे अपने को पामर मानते हैं। ऐसे निर्मानता, मार्दवता, नरमाई प्रगट होती है।

चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना गौतमस्वामी गणधर अन्तर्मुहूर्त में रचना करे। वह भी अपनी पर्याय में सर्वज्ञ भगवान के समक्ष पामर मानते हैं। आहाहा! तो किसका मद करना? किसका मान करना? ऐसा निर्मान। अपनी आत्मा को **हीलदि** लिखा है यहाँ। चाहे जितनी दशा हो, पूर्ण सर्वज्ञ नहीं। जब तक पूर्ण केवलज्ञान नहीं है, तब तक अपने को निन्दते हैं-निन्दा करते हैं। अरे..! आत्मा! कहाँ तेरी ऋद्धि! तेरी ऋद्धि का पार नहीं अन्दर भगवान! और तेरी पर्याय में तो पामरता है। ऐसे अपने के निन्दते हैं और अपनी पर्याय में निर्मानता से पामरता मानते हैं। आहाहा! उसका नाम निर्मान गुण है।

अपने यहाँ ३८४, वह चलता है न? बाकी है। आहाहा! **सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर...** आहाहा! कहते हैं, प्रभु! तेरे में तो अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति भरी है न, नाथ! उसमें से थोड़ा एक अंश तो वेदन कर। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! क्रियाकाण्ड से यह चीज़ मिलती नहीं। आहाहा! अन्तर में **सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर...** अन्त में है, अन्त में। **तू तृप्त हो जायेगा। पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना,...** आहाहा! अन्तर स्वरूप का भान हुआ कि मैं तो आनन्द का निधान, आनन्द का खजाना। मेरी चीज़ तो अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना-निधान है। तो जब तक पूर्ण आनन्द प्रगट न हो, तब तक पुरुषार्थ करते ही रहना। आहाहा! अन्तर में पुरुषार्थ करते ही रहना, जब तक पूर्ण स्वभाव न प्रगट हो।

जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर... आहाहा! है? **पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना, जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर...** आया है? माणिकचन्दजी! अन्तिम पंक्ति है। आहाहा! **पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना,...** आत्मा का भान हुआ, निधान अन्दर भरा है, तो भी पुरुषार्थ तो अन्दर में करते ही रहना। **जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर...**

पूर्ण निधान का पर्याय में-अवस्था में भोक्ता होकर **तू सदाकाल परम तृप्त-तृप्त रहेगा।** आहाहा! वह तृप्ति कहीं बाहर से आती नहीं। तृप्ति कहीं बाहर से होती नहीं। तृप्ति तो अन्दर में आनन्द, आनन्द जो पूर्णानन्द प्रभु, उसका पुरुषार्थ स्वभाव में करते-करते जहाँ पूर्ण दशा प्रगट हुई, तृप्त-तृप्त हुआ, वह कृतकृत्य हुआ। आत्मा तो कृतकृत्य तो था ही, पर्याय में कृतकृत्य हो गया। आहाहा! ३८४ (पूरा हुआ)। अब, ३८७।

आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है। उसमें अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं। देखने जैसा सब कुछ, आश्चर्यकारी ऐसा सब कुछ, तेरे अपने अजायबघर में ही है, बाह्य में कुछ नहीं है। तू उसी का अवलोकन कर न! उसके भीतर एक बार झाँकने से भी तुझे अपूर्व आनन्द होगा। वहाँ से बाहर निकलना तुझे सुहायेगा ही नहीं। बाहर की सर्व वस्तुओं के प्रति तेरा आश्चर्य टूट जाएगा। तू पर से विरक्त हो जाएगा॥३८७॥

३८७। नीचे है। **आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है।** है? ३८७। है? निकला? ३८७। आत्मा... ३८६ के नीचे। आत्मा अजायबघर है। आहाहा! जिसमें चमत्कारिक चीज़ें पड़ी हैं। अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त.. अनन्त.. अनन्त अजायबघर है। **उसमें अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं।** आहाहा! तेरे में प्रभु..! आहाहा! आचार्य तो प्रभु कहकर बुलाते हैं। समयसार की ७२ गाथा में आत्मा को भगवान.. ऐसा कहा। आहाहा! समयसार -७२ गाथा। प्रभु! तेरी पर्याय में जो पुण्य और पाप का भाव होता है, वह तो मलिन है। शुभ-अशुभभाव तो मलिन है। तू तो भगवान है न! ऐसा कहा है। यहाँ भी वह कहा कि, **उसमें अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं।** आहाहा!

देखने जैसा सब कुछ,... वह ना? **देखने जैसा सब कुछ, आश्चर्यकारी ऐसा सब कुछ,...** देखने जैसा सब कुछ और आश्चर्यकारी सब कुछ। आहाहा! **तेरे अपने अजायबघर में ही है,...** आहाहा! यह तो अलौकिक बात है। रात को बहिन थोड़ा-थोड़ा बोले थे। उसमें बहिनों ने गुप्तता से लिख लिया। उनको तो मालूम भी नहीं था। आहाहा! क्या कहा? **देखने जैसा सब कुछ,...** जो चीज़ है और **आश्चर्यकारी ऐसा सब कुछ, तेरे**

अपने अजायबघर में ही है,... आहाहा! तेरे अन्तर में आनन्दघर, अनन्त गुणरत्न से भरा पड़ा है, प्रभु! आहाहा! तुझे तेरी महिमा आयी नहीं। और पर की महिमा अन्तर में से छूटी नहीं। तो पर की महिमा छूटे बिना अन्तर में महिमा आती नहीं। आहाहा! यह तो मूल चीज़ है। यह कोई ऊपर-ऊपर की चीज़ नहीं है।

बाह्य में कुछ नहीं है। आहाहा! तेरी चीज़ में सब है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त प्रभुता—ऐसी-ऐसी अनन्त शक्ति का भण्डार भगवान आत्मा है। जो सब कुछ देखने लायक और आश्चर्य करने लायक हो, वह सब कुछ तेरे में है। आहाहा! बाहर में कुछ देखने लायक या आश्चर्यकारी कोई वस्तु है नहीं। आहाहा! **तू उसी का अवलोकन कर न!** प्रभु! आहाहा! तेरे में अनन्त-अनन्त गुणरत्न का भण्डार-खजाना भरा है। वह तूने कभी देखा नहीं, कभी नजर की नहीं, कभी अवलोकन किया नहीं और बाहर में भटकता रहता है। एक बार अवलोकन तो कर। आहाहा! यह करने की चीज़ है। लगे दु:खी। यहाँ तो वीतरागभाव है। आहाहा!

क्योंकि आत्मा वीतरागभाव से भरा पड़ा है। वीतरागभाव का पिण्ड आत्मा है। आहाहा! कभी सुना नहीं, कभी नजर की नहीं। क्रियाकाण्ड के कारण, बाह्य प्रवृत्ति के कारण अन्दर चीज़ क्या है, वर्तमान में तो सुनना मिलना मुश्किल हो गया है। अन्तर अजायबघर। आहाहा! उसी का अवलोकन (कर), **बाह्य में कुछ नहीं है। तू उसी का अवलोकन कर न! उसके भीतर एक बार झाँकने से...** आहाहा! प्रभु! तेरी चीज़ ऐसी कोई है कि क्रियाकाण्ड तो तुच्छ है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि सब ... है, राग है। वह सब तो जहर है। आत्मा अमृत का सागर प्रभु, उससे विरुद्ध भाव है। आहाहा! अरे! कभी विचार भी किया नहीं। कभी अन्तर में क्या चीज़ है, सुना भी नहीं और बाहर भटकता रहता है। वस्तु अन्दर है और खोजने बाहर जाता है। बाह्य क्रियाकाण्ड से अन्दर मिले (ऐसा माना)। ऐसा अनन्त-अनन्त काल गया, प्रभु! आहाहा!

भीतर एक बार झाँकने से भी तुझे अपूर्व आनन्द होगा। आहाहा! तू एक बार अन्दर में देख। भाई! यह तो अलौकिक बातें हैं! आहाहा! एक बार भी अनन्त काल में एक बार तू देख तो सही, प्रभु! बाहर तो देख-देखकर जिन्दगी व्यतीत की, अनन्त जिन्दगी गयी। एक बार... आहाहा! **झाँकने से भी तुझे अपूर्व आनन्द होगा।** आहा..!

वहाँ से बाहर निकलना तुझे सुहायेगा ही नहीं। ऐसी चीज है प्रभु तेरी। आहाहा! तेरी चीज़ ऐसी अन्दर है कि उस पर झुकने से बाहर निकलना तुझे रुचेगा ही नहीं। आहा..! आनन्द का नाथ! बाहर निकलने से तो राग होता है और राग तो जहर है। चाहे तो शुभराग हो, दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि है तो राग और जहर। आहाहा! क्यों? कि भगवान आत्मा तो अमृतस्वयप अमृतसागर है। उससे यह परिणाम विरुद्ध है। तो अमृत से विरुद्ध है, वह जहर है। आहा..! और उससे लाभ होगा, ऐसा मानता है। वह तो मिथ्यात्व भाव है। आहाहा! बाह्य क्रियाकाण्ड से अन्दर में कुछ लाभ होगा, वह तो मिथ्यादृष्टि (है), जैन नहीं। उसको जैन की खबर नहीं।

जैन उसको कहते हैं... आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन।'

घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन।
मत मदिरा के पान सो मतवाला समझै न।

बाहर के अभिमानी, बाह्य चीज़ में अधिकपना माननेवाला, अन्तर की चीज़ को अधिकपने देखने का अवसर लेते नहीं। आहाहा! सेठ! ऐसी बात है, प्रभु! यहाँ तो ऐसी बात है। माणिकचन्दजी! वहाँ सागर में मिले ऐसा नहीं है वहाँ कहीं। आहाहा! ओहो..!

वहाँ से बाहर निकलना तुझे सुहायेगा ही नहीं। बाहर की सर्व वस्तुओं के प्रति तेरा आश्चर्य टूट जाएगा। आहाहा! तेरी चीज़ में अन्तर दृष्टि देखने से बाहर की चीज़ की विस्मयता, आश्चर्यता टूट जाएगी। आहाहा! अरबों रुपये और चक्रवर्ती का पद हो, इन्द्र का पद हो परन्तु अन्तरदृष्टि देखने से सम्यग्दर्शन में तुझे उस चीज़ का आश्चर्य नहीं लगेगा। आहाहा! तेरी चीज़ ही आश्चर्यकारी है। अलौकिक अद्भुत निधान है। उसके समक्ष तुझे कोई चीज में विस्मयता आयेगी, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसी विस्मयकारी चीज़ है। आहाहा! यह तो अभी प्रथम बात है, यह तो सम्यग्दर्शन की बात है। चारित्र तो सम्यग्दर्शन के बाद। सम्यग्दर्शन न हो, वहाँ चारित्र कहाँ है? आहा..! सम्यग्दर्शन होने के बाद अन्दर चारित्र (होता है)। चारित्र-चरना, चरना अर्थात् रमना। परन्तु किसमें? जो चीज़ देखी है उसमें। परन्तु जो चीज़ देखी नहीं, उसमें रमना कहाँ आया? आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी आनन्द का पिण्ड प्रभु, जिसने उसको देखा ही नहीं, वह उसमें रमे कहाँ से? चारित्र कहाँ से होगा? आहाहा! ऐसी चीज़ है।

बाहर की सर्व वस्तुओं के प्रति तेरा आश्चर्य टूट जाएगा। तू पर से विरक्त हो जाएगा। आहाहा! भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का स्वामी। उसके अनन्त गुण को रहने के लिये कहीं अनन्त प्रदेश नहीं चाहिए। आहाहा! असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण भरे हैं। अरूपी स्वभाव तेरी नजर गयी नहीं, इसलिए तेरे निधान की महिमा, निधान की कीमत आयी नहीं। और उस निधान की कीमत आये बिना पर की कीमत हटेगी नहीं। आहाहा! पर की कीमत, बहुमान अन्तर की चीज़ का बहुमान आने से बाह्य चीज़ की विस्मयता हट जाएगी। आहाहा!

मुमुक्षु :- जब तक अपनी आत्मा में न आये, तब तक बाहर की महिमा दिखेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- महिमा अन्दर, अनन्त काल हुआ, उसे यह चीज़ क्या है, क्रियाकाण्ड की महिमा भी (है), उसको इस चीज़ की महिमा नहीं आती है, जब तक आती है। राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा वह सब विकल्प राग है। अपनी चीज़ की महिमा न आवे, तब तक उस राग की महिमा नहीं जाती। आहाहा! ऐसी चीज़ है, प्रभु! दुनिया से तो अन्तर है। मार्ग तो यह है परमसत्य। आहाहा!

तू पर से विरक्त हो जायेगा। आहाहा! ३८७ (पूरा) हुआ। उसके बाद ३८८ न?

मुनिराज को शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है। सारा ब्रह्माण्ड पलट जाये, तथापि मुनिराज की यह दृढ़ संयमपरिणति नहीं पलट सकती। बाहर से देखने पर तो मुनिराज आत्मसाधना के हेतु वन में अकेले बसते हैं, परन्तु अन्तर में देखें तो अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर में उनका निवास है। बाहर से देखने पर भले ही वे क्षुधावन्त हों, तृषावन्त हों, उपवासी हों, परन्तु अन्तर में देखा जाये तो वे आत्मा के मधुर रस का आस्वादन कर रहे हैं! बाहर से देखने पर भले ही उनके चारों ओर घनघोर अन्धेरा व्याप्त हो, परन्तु अन्तर में देखो तो मुनिराज के आत्मा में आत्मज्ञान का उजाला फैल रहा है। बाहर से देखने पर भले ही मुनिराज सूर्य के प्रखर ताप में ध्यान करते हों, परन्तु अन्तर में वे संयमरूपी कल्पवृक्ष की शीतल छाया

में विराजमान हैं। उपसर्ग का प्रसंग आये, तब मुनिराज को ऐसा लगता है कि—'अपनी स्वरूपस्थिरता के प्रयोग का मुझे अवसर मिला है; इसलिए उपसर्ग मेरा मित्र है।' अन्तरंग मुनिदशा अद्भुत है; वहाँ देह में भी उपशमरस के ढाले ढल गये होते हैं॥३८८॥

३८८ है। ३८८-३८९। किसी ने लिखा है कि यह पढ़ना। **मुनिराज को... ३८८। शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा...** उसको मुनिराज कहते हैं। आहाहा! है? **मुनिराज को शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा...** आहाहा! शुद्धात्मतत्त्व निर्मलानन्द प्रभु, उसका उग्र अवलम्बन चलता है। उसका नाम मुनिपना है। कोई पंच महाव्रत या अट्ठाईस मूलगुण पाले, वह तो अनन्त बार अभव्य ने भी पाले और भव्य ने भी पाले। वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा! **शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है।** आहाहा! देखो! कुछ बाहर से नहीं आया है। शुद्धात्मतत्त्व का भान तो पहले हुआ है, सम्यग्दर्शन; बाद में उग्र अवलम्बन (लिया है), भगवान पूर्णानन्द का वज्र बिम्ब ध्रुव, आहाहा! अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके अवलम्बन द्वारा **आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है।** संयम की व्याख्या। संयम कोई जीवदया पाले और नग्न हो जाए, पंच महाव्रत ले, वह कोई संयम नहीं है। आहाहा!

संयम तो यह है। **शुद्धात्मतत्त्व के...** तो पहले शुद्धात्मतत्त्व क्या है, उसका भान होना (चाहिए)। भान होने के बाद शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है। संयम-चारित्र ऐसे प्रगट होता है। चारित्र कोई बाह्य क्रिया नहीं है। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, वह कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! अरे..! अनन्त-अनन्त काल व्यतीत हुआ, अनन्त काल चला गया, कभी उसने अपने निज तत्त्व की क्या चीज़ है, उस पर दृष्टि, महिमा आयी नहीं। बाहर की महिमा गयी नहीं और यहाँ की महिमा आयी नहीं। आहाहा! और बाहर में पैसे कुछ पाँच, पच्चीस करोड़ हो, उसमें करोड़, दो करोड़ का खर्च करे तो उसमें ऐसा हो जाए कि हमने कुछ धर्म किया। कुछ किया। कुछ किया नहीं, पाप किया। पैसा मेरा है और मेरा मानकर खर्च किया तो अजीव जड़ को अपना माना, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है?

जड़ चीज़ को अपनी माना, जो अपन से त्रिकाल भिन्न है.. आहाहा! जिसका द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् उसकी शक्ति, पर्याय अर्थात् अवस्था। अपने से जड़ के द्रव्य-गुण-पर्याय, लक्ष्मी आदि शरीरादि तीनों काल भिन्न है। आहाहा!

मुमुक्षु :- पैसे से काम चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- धूल भी चलता नहीं है। आहा..! अज्ञानी मानता है। वह तो बात चलती है। तीसरी गाथा में तो ऐसा भी कहा, समयसार में, कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। आहाहा! समयसार, तीसरी गाथा। '**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे**' एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कभी छुआ नहीं। आहाहा! आत्मा ने लक्ष्मी को कभी स्पर्श नहीं किया, छुआ नहीं। अरर..र..! यह मान्यता। समयसार, तीसरी गाथा है। समझ में आया? आहा..! तीसरी गाथा है न?

देखो! **धर्म,...** छह पदार्थ है न? **अधर्म-आकाश-काल-पुद्गल-जीवद्रव्यस्वरूप लोक में सर्वत्र जो कुछ जितने-जितने पदार्थ हैं, सभी निश्चय से (वास्तव में) एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को प्राप्त होते हैं, क्योंकि...** आहा..! **अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं,...** प्रत्येक पदार्थ अपने में रही शक्ति और पर्याय, उसको चुम्बन अर्थात् स्पर्श करते हैं, स्पर्श करते हैं। **तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते,...** आहाहा! तीसरी गाथा। लक्ष्मी को छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। शरीर को आत्मा छूता नहीं।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह होती ही नहीं। कभी सुना नहीं, जैन धर्म क्या है? आहाहा! जैन धर्म क्या है? ओहोहो!

अनन्त परमाणु का पिण्ड अँगुली है। उसमें एक परमाणु दूसरे परमाणु को छुआ नहीं। क्योंकि एक परमाणु में अपने में अस्ति है और पर से नास्ति है। आहाहा! तो पर से नास्ति है तो पर को छुए कहाँ से? आहाहा! अरे..! यहाँ तो कहा, सब आत्मा दूसरे को स्पर्श नहीं करते। आहाहा! अपनी पर्याय और अपनी शक्ति अर्थात् गुण, उसको प्रत्येक पदार्थ स्पर्श, चुम्बन करते हैं। आहाहा! **तथापि वे परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं**

करते,... संस्कृत टीका है। कुन्दकुन्दाचार्य के वचन हैं, भगवान की वाणी है, कुन्दकुन्दाचार्य के वचन हैं, उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य करते हैं। आहाहा! कौन माने? पागल ही कहे न! यह एक अँगुली दूसरी अँगुली को छूती नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- कुन्दकुन्द भगवान कह गये हैं, परन्तु उसका रहस्य तो आपने खोला है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसमें है या नहीं? आहाहा! हम तो वहाँ भी थे न! आहाहा! हम भी महाविदेह में थे, परन्तु अन्त में परिणाम ऐसे हो गये तो यहाँ काठियावाड़ में आ गये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूए नहीं, स्पर्शे नहीं। अरेरे..! कौन माने? आहाहा! दाल, चावल, सब्जी को दाढ़ छूती नहीं। दाढ़ को आत्मा छूता नहीं। दाढ़ को आत्मा हिलाता नहीं। रोटी को आत्मा छूता नहीं। अरर..र..! यह सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी है।

यहाँ कहते हैं, मुनिराज को शुद्धात्मतत्त्व... शुद्धात्मतत्त्व अन्दर वस्तु, (उसके) **उग्र अवलम्बन द्वारा...** अन्दर में उसका उग्र अवलम्बन लेते हैं। व्यवहार का अवलम्बन नहीं। आहाहा! रागादि व्यवहाररत्नत्रय आते हैं, परन्तु अवलम्बन नहीं। जानने-देखने लायक चीज़ है। यहाँ तो **शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है। सारा ब्रह्माण्ड पलट जाये,...** आहाहा! सारा जगत पलट जाए, **तथापि मुनिराज की यह दृढ़ संयमपरिणति नहीं पलट सकती।** क्योंकि संयम परिणति अन्तर शुद्धात्मतत्त्व में अन्तर में से, अवलम्बन में से प्रगट हुई है। आहाहा! उसका नाम संयम और चारित्र है। अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत कोई चारित्र-संयम नहीं है। आहाहा! **मुनिराज की यह दृढ़ संयमपरिणति नहीं पलट सकती।** सारा ब्रह्माण्ड पलट जाए... आहाहा! ध्रुव भगवान आत्मा, उसके अवलम्बन से,... सारी दुनिया पलट जाए परन्तु उससे पलटते नहीं। आहाहा!

बाहर से देखने पर तो मुनिराज आत्मसाधना के हेतु वन में अकेले बसते हैं,... है? वन में अकेले रहते हैं। आहाहा! चक्रवर्ती राजा हो, तीर्थंकर हो, अकेले वन में चले जाते हैं। आहाहा! अन्दर कुछ देखा है, उसका साधन करने को निकलते हैं। महा अचिंत्य

पदार्थ! दुनिया में दूसरा है नहीं। ऐसी चीज़ को अन्दर में देखी, जानी, अनुभवी। आहाहा! उसका साधन करने को वन में अकेले चले जाते हैं। आहाहा! है? **परन्तु अन्तर में देखें तो अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर में...** आहाहा! ऐसे बाहर में वन में हैं, अन्दर में स्वरूपनगर में हैं। स्वरूपनगर-आत्मा। अन्तर... अन्तर... अन्तर अनन्त ऋद्धि भरी है। आनन्द, शान्ति आदि स्वभाव की ऋद्धि अनन्त-अनन्त भरी है। आहाहा! **अन्तर में देखें तो अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर में उनका निवास है।** ऐसे देखो तो वन में हैं। वैसे देखो तो अन्दर में हैं। आहाहा! अरेरे..! ऐसी बातें।

यह तो जन्म-मरण रहित होने की बात है, भैया! बाकी चार गति पुण्यादि करे, वह चार गति में भटकेगा। आहाहा! सूकर में अवतार लेकर विष्टा खाये। आहाहा! सूकर-सूकर। जैसे अवतार अनन्त बार बार किये, प्रभु! अरबोंपति, करोड़ोंपति अनन्त बार हुआ। देव अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक में हुआ। परन्तु आत्मऋद्धि की दृष्टि कभी मानी नहीं, जानी नहीं। आहा..!

स्वरूपनगर... आहाहा! बाहर तो ऐसा दिखे के अकेले वन में हैं। **अन्तर में देखें तो अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर में उनका निवास है।** आहाहा! ऐसा मुनिपना है, सेठ! मुनिपना अकेली बाह्य क्रिया (करे) और नग्न हो जाए, जय नारायण करे, ऐसी यह चीज़ नहीं है। आहाहा! आहाहा! **स्वरूपनगर में उनका निवास है।**

बाहर से देखने पर भले ही वे क्षुधावन्त हों,... क्षुधावन्त दिखे। शरीर में **तृषावन्त हों, उपवासी हों, परन्तु अन्तर में देखा जाये तो वे आत्मा के मधुर रस का आस्वादन कर रहे हैं!** आहाहा! बाहर में शरीर में क्षुधा लगी हो, तृषा लगी हो। आहाहा! उपवासी हों, **परन्तु अन्तर में देखा जाये तो वे आत्मा के मधुर रस का आस्वादन कर रहे हैं!** अन्तर अमृत के स्वाद का अनुभव कर रहे हैं। आहाहा! अरे..! ऐसी आत्मा की बात सुनी नहीं। सुनने में आती नहीं। बाह्य प्रवृत्ति की बातें। यह करो, वह करो, यह बनाया, वह बनाया। आहाहा!

बाहर से देखने पर भले ही उनके चारों ओर घनघोर अन्धेरा व्याप्त हो,... आहाहा! बाहर से वन में... तीन बात ली। एक तो बाहर से वन में हैं, अन्दर में स्वरूपनगरी में हैं।

आहाहा! बाहर में क्षुधा-तृषा है, अन्दर में आत्मा का अन्तर आनन्द का मधुर रस लेते हैं। आहाहा! और तीसरा। तीसरा बोल। **उनके चारों ओर घनघोर अन्धेरा व्याप्त हो, परन्तु अन्तर में देखो तो...** आहाहा! **मुनिराज के आत्मा में आत्मज्ञान का उजाला फैल रहा है।** आहाहा! बाहर में अन्धेरा है, अन्तर में आत्मा का उजाला है। यह चीज़! परन्तु वह आत्मा कौन है (वह मालूम नहीं)। यह शरीरादि, बाहर के कारण अन्दर चीज़ कौन है, उसमें पैसा पाँच-पच्चीस करोड़, या दो-पाँच अरब मिले तो हो गया..! मानों हम बड़े हो गये। आहाहा!

मुमुक्षु :- पैसेवाले ऐसा कहते हैं कि हम कर्मयोगी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कर्मयोगी-पापयोगी हैं। वह बात तो रात को सेठ को कही थी। दसलक्षणी पर्व में सब आये थे न? हुकमचन्दजी। दसलक्षणी धर्म पुस्तक है। आया है? उसमें तो ऐसा लिखा है कि पैसा पुण्य से मिलता है परन्तु पैसा, वह पाप है तो पैसेवाला पापी है। आहाहा! अरर..र..! उस पुस्तक में है, सेठ! उस पुस्तक में। क्यों? कि परमात्मा ने चौबीस प्रकार का परिग्रह कहा है। चौदह प्रकार का अन्तरंग-मिथ्यात्व, राग-द्वेष, अज्ञान अन्दर और दस प्रकार का बाह्य। धन, धान्य, लक्ष्मी, क्षेत्र आदि। चौदह प्रकार का अन्दर और दस प्रकार का बाह्य। चौबीस को भगवान ने परिग्रह कहा है और परिग्रह पाप है। आहाहा! मिला पुण्य से, परन्तु वर्तमान पाप है। आहाहा! और पाप का धनी होता है, वह पापी है। दुनिया कहती है कि, पुण्यवन्त है और भगवान कहते हैं, पापी है। आहाहा! दुनिया से बात अलग है, भाई! आहाहा! ऐसी बात उसने लिखी है। हुकमचन्दजी ने। दसलक्षणी पर्व और क्रमबद्ध, दोनों आ गये हैं। क्रमबद्ध छपा है। ज्ञानचन्दजी! आया है? क्रमबद्ध पुस्तक बहुत अच्छा (है), बहुत अच्छा है। वह भी पहले यहाँ से निकला है - क्रमबद्ध।

प्रत्येक द्रव्य में एक के बाद एक पर्याय होगी। फेरफार कोई करनेवाला है नहीं। आहाहा! जैसे नम्बर से एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ नम्बर (होते हैं), वैसे प्रत्येक द्रव्य में पहले नम्बर में जो पर्याय होती है, वह वहाँ होती है। दूसरे में दूसरी, तीसरी, चौथी, जहाँ होनेवाली है, वहाँ होती है। उसमें फेरफार करने को कोई इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र

समर्थ नहीं है। स्वामी कार्तिकेय में कहा है। स्वामी कार्तिकेय मुनि हुए हैं। बहुत पुराना दिगम्बर ग्रन्थ है। २२०० साल पहले। उन्होंने कहा है... आहाहा! भगवान तीर्थंकर भी ऐसे बाहर में चले गये। क्या कहते थे? स्वामी कार्तिकेय में।

मुमुक्षु :- पर्याय जिस काल में होनेवाली है...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, वह। स्वामी कार्तिकेय ने ऐसा लिखा है कि जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, उसको इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र... ऐसा स्वामी कार्तिकेय में है। आहाहा! अभी पढ़ते हैं न। आहाहा! फेरने को कोई समर्थ नहीं है। आहाहा! प्रभु! तेरी नजर बदल दे। उसके बिना कुछ नहीं है, व्यर्थ है। नजर अन्दर में दिये बिना बाहर की नजर की महिमा टूटेगी नहीं और बाहर की महिमा टूटे बिना अन्दर की महिमा आयेगी नहीं। आहाहा! पैसा हो, इज्जत हो, पुत्र हो, पाँच-पच्चीस लड़के ऊँचे नम्बर के... आहाहा!

वहाँ कहा न? नैरोबी में। पन्द्रह लोग तो अरबपति हैं। अभी। पन्द्रह। श्वेताम्बर में अरबपति। आहाहा! साठ घर मुमुक्षु के हैं। उसमें आठ तो करोड़पति हैं। आठ तो करोड़पति। अकेला पैसा... पैसा... पैसा दिखे। अरे..! धूल में (क्या है)? पैसा इतना कि जहाँ साधारण लाख, दो लाख तो पड़े हो, साधारण घर में। आहाहा! शिलिंग उनमें कहते हैं। उन लोगों में शिलिंग पड़ी हो। एक रुपये की एक शिलिंग। आहाहा! धूल है, कहा। भाई! हम २६ दिन रहे, पैंतालीस लाख इकट्ठा किया और पन्द्रह लाख पहले किये थे। साठ... लाख किया। उसमें है क्या? कहा। साठ लाख का क्या अरब कर न। वह तो जड़ परवस्तु है। परवस्तु अपनी है? और परवस्तु अपने से चलती है जाती है कि मैं दे सकूँ और ले सकूँ। आहाहा! बहुत कठिन बात। पैसा या शरीर या लक्ष्मी या इज्जत या कीर्ति, मैं लूँ या दूँ, वह चीज़ है ही नहीं। परद्रव्य को कभी छूता ही नहीं। आहाहा!

अभी आ गया न? तीसरी गाथा में कहा न? एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कभी छुआ ही नहीं। आहाहा! कभी सुना ही नहीं। आहाहा! एक तो एक तत्त्व दूसरे को छूता नहीं। यह अंगुली इसको छूती नहीं। यह कौन माने? और एक क्रमबद्ध। एक के बाद एक क्रमपर्याय होनेवाली होती है। आगे-पीछे इन्द्र करने को समर्थ नहीं। आहाहा! और

उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तो प्रत्येक द्रव्य में जो उत्पाद पर्याय उस समय होती है, जिस पर्याय को अपने ध्रुव और व्यय का भी आश्रय नहीं है। तीनों समय में स्वतन्त्र हैं। पर की आशा तो नहीं, परन्तु अपने में भी जो उत्पाद होता है, उसको व्यय का आश्रय नहीं है, उसको ध्रुव का आश्रय नहीं है। और पूर्व की पर्याय व्यय होती है, उसको उत्पाद और ध्रुव का आश्रय नहीं है। कौन माने? कौन समझे? आहाहा! समझ में आया? प्रवचनसार, १०२ गाथा। उसमें आया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, कहाँ आया? **आत्मज्ञान का उजाला फैल रहा है।** एक ओर मुनि को देखो तो अन्धेरे में बैठे हों। अन्दर में देखो तो उजाला (है)। चैतन्यप्रकाश नूर का पूर। आहाहा! **बाहर से देखने पर भले ही मुनिराज सूर्य के प्रखर ताप में ध्यान करते हों,...** बाहर से तो प्रखर सूर्य के ताप में ध्यान (करते हो)। **परन्तु अन्तर में वे संयमरूपी कल्पवृक्ष की शीतल छाया में विराजमान हैं।** अन्तर में शान्तरस में, शान्तरस... आहाहा! शान्ति.. शन्ति.. शान्ति। शान्तरस का भण्डार भगवान आत्मा। शान्तरस का अर्थ अकषायभाव, चारित्रभाव, विकाररहित भाव। ऐसे शान्तरस से तो भरपूर भरा है भगवान आत्मा। आहा..! बाहर से देखो तो सूर्य के ताप में वे खड़े हैं। अन्दर से देखो तो शान्तरस में स्थिर हो गये हैं। आहाहा! अरे..! ऐसी बातें।

उपसर्ग का प्रसंग आये,... मुनिराज को। बाह्य में कोई सिंह, बाघ, सर्प ऐसा उपसर्ग (आये) **तब मुनिराज को ऐसा लगता है कि—'अपनी स्वरूपस्थिरता के प्रयोग का मुझे अवसर मिला है;...** आहाहा!

एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां, गुजराती है।
वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो,
अडोल आसन ने मनमां नहि क्षोभता,

— ऐसी भावना अन्तर आनन्द में... आनन्द में... आनन्द में... आनन्द में। ऐसा आसन तो अडोल परन्तु मन में क्षोभ नहीं। और सिंह एवं बाघ शरीर लेने को आया।

परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो।

यह शरीर मुझे रखना नहीं है और वह ले जाता है। तो वह मित्र है। आहाहा! यह मुनि की दशा!

उपसर्ग का प्रसंग आये, तब मुनिराज को ऐसा लगता है कि—'अपनी स्वरूपस्थिरता के प्रयोग का... अन्दर में लीन होने का प्रसंग मिला मुझे। आहाहा! उपसर्ग और परीषह पर उनका लक्ष्य नहीं है। आहाहा! आगे आयेगा। **अपनी स्वरूपस्थिरता के प्रयोग का मुझे अवसर मिला है;...** है? **इसलिए उपसर्ग मेरा मित्र है।** आहा..! श्रीमद् में आया न? 'परम मित्रनो जाणे पाम्या योग'। ध्यान में बैठै और सिंह-बाघ आया तो मित्र आया। मुझे शरीर रखना नहीं है, उसको लेना है, तो ले जाओ। मेरी चीज़ में वह नहीं है। आहाहा! ऐसा कठिन धर्म..! आहाहा! कायर सुनकर काँप जाए, ऐसा धर्म! वीतराग का ऐसा धर्म? बापू! मार्ग तो ऐसा है। दुनिया चाहे किसी भी दूसरे प्रकार से उसे बताये, कहे, माल तो दूसरा होता नहीं। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' आहाहा!

वह कहते हैं, **अन्तरंग मुनिदशा अद्भुत है;...** है अन्दर? **वहाँ देह में भी उपशमरस के ढाले ढल गये होते हैं।** आहाहा! देह में भी उपशमरस। ...

जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है, उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है, शरीरादि कुछ भासित नहीं होता। भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है। दिन को जागृतदशा में तो ज्ञायक निराला रहता है परन्तु रात को नींद में भी आत्मा निराला ही रहता है। निराला तो है ही परन्तु प्रगट निराला हो जाता है।

उसको भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है परन्तु चाहे जिस संयोग में उसकी ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है। मैं तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही हूँ, निःशंक ज्ञायक हूँ; विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए; ज्ञायक पृथक् ही है, सारा ब्रह्माण्ड पलट जाय, तथापि पृथक ही है।—ऐसा अचल निर्णय होता है। स्वरूप-अनुभव में अत्यन्त निःशंकता वर्तती है। ज्ञायक ऊपर चढ़कर—ऊर्ध्वरूप से विराजता है, दूसरा सब नीचे रह जाता है।।३८९।।

जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है,... क्या कहा? द्रव्य अर्थात् वस्तु भगवान। उसकी—द्रव्य की दृष्टि। दृष्टि अर्थात् यह पैसा नहीं। द्रव्य अर्थात् वस्तु आत्मा त्रिकाली।

द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है, उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है,... आहाहा! अन्तर की दृष्टि हुई आत्मा की तो ज्ञायक आत्मा अकेला भासता है। आहा..! मैं तो जानन-देखनवाला त्रिकाल (हूँ)। किसी का कर्ता-हर्ता, भोक्ता हूँ ही नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का सुनने मिले नहीं, वह प्रयोग कब करे? उसका ज्ञान कब करे? आहा..! दुनिया अनन्त काल से चार गति में भटक रही है।

यहाँ कहते हैं कि **जिसको द्रव्यदृष्टि...** द्रव्य अर्थात् वस्तु भगवान। त्रिकाली चीज़ सच्चिदानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि **यथार्थ प्रगट होती है, उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है,...** आहाहा! चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य भासता है। **शरीरादि कुछ भासित नहीं होता।** आहाहा! भासित नहीं होता है अर्थात् उसका तो ज्ञान होता है। वह तो अपने ज्ञान में शरीर जानने में आता है। आहा..! शरीर मेरा है, ऐसी बात तो है ही नहीं। परन्तु जहाँ अन्तर में सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ, सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ तो ज्ञान में शरीर सम्बन्धी ज्ञान अपने में अपने से होता है। आहाहा! अरेरे..! ऐसी बात। **अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है, शरीरादि कुछ भासित नहीं होता।**

भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है... आहाहा! पर से भेदज्ञान। राग का विकल्प दया, दान, भगवान की भक्ति, भगवान का दर्शन और शास्त्र का दर्शन, सब राग। राग से भिन्न। आहाहा! है? **भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है।** आहाहा! स्वप्न में भी शरीर से प्रभु भगवान भिन्न है। आहाहा! ऐसी दृष्टि हो गयी है। ऐसी दृष्टि का नाम सम्यग्दर्शन है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - ७, मंगलवार, तारीख १६-९-१९८०
वचनामृत -३८९, ३९० प्रवचन-३५

आज दसलक्षणी पर्व में तीसरा प्रकार है। उत्तम आर्जव धर्म।... आज आर्जव धर्म। यह सब चारित्र के भेद हैं। चारित्रवन्त हो, उसको यह होता है। सम्यग्दृष्टि या श्रावक पंचम गुणस्थान में हो, उसमें अंश है। मूल चारित्रधर्म की व्याख्या है। सरलपना कितना होना चाहिए। धर्मी को आर्जव-सरलपना कैसा होना चाहिए?

जो चिंतेइ ण वंकं, कुणदि ण वंकं ण जंपदे वंकं।
ण य गोवदि णियदोसं, अज्जवधम्मो हवे तस्स॥३९६॥

जो कोई प्राणी मन में हो, उसे छिपाये नहीं। आहाहा! **मन में वक्रतारूप चिन्तवन नहीं करे,...** सरल। सरलता के तो दो प्रकार है। एक सरलता पुण्यबन्ध का कारण है। वह यह नहीं। सरलता-मनसरलता, वचनसरलता, कायसरलता। अविसंवाद जोगेण अर्थात् झगड़ा नहीं। ये चार बोल से पुण्यबन्ध होता है। नामकर्म बँधता है। वह यह नहीं। वह बड़ी चर्चा हुई थी, (संवत्) १९८२ का वर्ष। जामनगर। वे तो साधु को धर्म पढ़ाते थे। आर्जवादि धर्म... देखो! आपका ज्ञानार्णव... कौन-सा? ज्ञानसागर। वहाँ का बनाया है। उसमें मनसरलता, वचनसरलता, कायसरलता शुभ पुण्यबन्ध का कारण है। वह विकल्प और राग है। यह नहीं।

यह तो एकदम सरलता, आत्मा के भानसहित। आहाहा! वह बड़ी चर्चा हुई थी। उसने कहा, इसमें धर्म है न? मन से सरलता। कहा, मन से सरलता धर्म नहीं है। १९८२ के वर्ष की बात (है)। ८२। ताराचन्द वारिया थे, साधु को पढ़ाते थे। स्थानकवासी साधु को पढ़ाते थे। सरलता धर्म है न? कहा, सरलता के दो प्रकार है। मन से राग की सरलता, वह पुण्यबन्ध का कारण है। और मन से अन्तर में शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवन्त, उस पर

दृष्टि रखकर वक्रता न करना, सरलता करना, उसको आर्जव धर्म कहते हैं। उसको धर्म कहते हैं। हमारे साथ तो बहुत चर्चा पहले से (चलती है)। सम्प्रदाय में बहुत फेरफार था।

यह आर्जव धर्म तो कोई अलग चीज़ है। मन से मात्र वक्रता न करे और सम्यग्दर्शन न हो। आत्मज्ञान शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवन्त, सच्चिदानन्द प्रभु उसका ज्ञान, प्रतीत और अनुभव न हो, तब तो आर्जव धर्म होता नहीं। जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं है, वहाँ मुनिपना कहाँ से आया? यह तो मुनिपना का एक भेद है। आहाहा! इतना सब विचार (कब किया है?)

यहाँ यह कहते हैं, मन से वक्रता, वचन से वक्रता छोड़ दे। काया से वक्रता छोड़ दे। **अपने दोषों को नहीं छिपावे...** आहाहा! अपने में कोई दोष हो, आत्मज्ञानसहित मुनिपना में भी कोई रागादि आ जाए, ऐसा दोष हो तो दोष को छिपावे नहीं, ढके नहीं। खुले करके गुरु के पास बता दे कि मेरे में ऐसा दोष लगा है तो आप प्रायश्चित्त दीजिए। ऐसी सरलता, उसे यहाँ भगवान उत्तम धर्म कहते हैं। परन्तु वह आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप ज्ञान का पिण्ड प्रभु, उसका जिसको अनुभव हुआ हो, उसको आगे बढ़ने पर बहुत पुरुषार्थ करके सरलता प्रगट करता है, उसको यहाँ आर्जव-सरल धर्म कहने में आता है। आहाहा! इतनी सब शर्तें।

भाई! धर्म कोई साधारण चीज़ नहीं है। धर्म तो कोई अलौकिक चीज़ है। वह अकेली बाह्य की सरलता नहीं है। अन्दर ज्ञायकस्वरूप में बिल्कुल वक्रता का अंश नहीं है। चिदानन्द वीतरागमूर्ति की दृष्टि करके, दृष्टि बनकर राग और वक्रता छोड़कर सरलता करना, उसे प्रभु आर्जव धर्म, तीसरे धर्म का प्रकार कहने में आता है।

३८९। आज तो किसी का लिखा हुआ है। सब था, ऐसा मीठा, बहिन के वचन... किसी ने लिखा है, वैसे पढ़ते हैं। ३८९। तीन पंक्ति चली है। फिर से। आहाहा! **जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है,...** द्रव्यदृष्टि। द्रव्य अर्थात् आत्मा। उसकी दृष्टि अन्दर प्रगट हुई हो, आहाहा! सर्व प्रथम यही करना है। सम्यग्दर्शन के बाद बाकी सब बात। चारित्र की, पच्चखाण आदि की बाद में। परन्तु प्रथम जिसको द्रव्यदृष्टि (होती है)। द्रव्य अर्थात् वस्तु। चैतन्य भगवान त्रिकाली आनन्दनाथ, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु शुद्ध घन, उसकी दृष्टि

यथार्थ प्रगट होती है। उसकी दृष्टि परन्तु यथार्थ – जैसा द्रव्य है, ऐसी दृष्टि होती है, **उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही...** आहाहा! मैं तो चैतन्य ज्ञायक हूँ। ज्ञायक तो जानने-देखनेवाला मैं हूँ। ऐसे **भासता है,...** आहाहा!

धर्म अलौकिक चीज़ है। वर्तमान में उसमें गड़बड़ कर दी। धर्म अनन्त कल में अनन्त भव में एक सेकेण्ड भी नहीं हुआ, प्रभु! वह धर्म कैसा होगा? अनन्त बार जैनदर्शन में आया, अनन्त बार समवसरण में गया तो भी आत्मज्ञान क्या चीज़ है, सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी उसने दरकार की नहीं। आहाहा!

वह कहते हैं... आहाहा! **जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है,...** यथार्थ। **उसे दृष्टि के जोर में...** अन्दर ज्ञायक अकेला चैतन्यस्वरूप, जिसमें दया, दान के विकल्प का भी अभाव है, ऐसी चीज़ को देखने से-दृष्टि होने से, उसकी दृष्टि करने से, उसके जोर में **अकेला ज्ञायक ही...** आहाहा! **चैतन्य ही भासता है,...** मूल बात है, प्रभु! ऊपर की बातें तो लोग सब करते हैं, परन्तु मूल बात-जिससे जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसा सम्यग्दर्शन, उसका ध्येय द्रव्य अपना पूर्णानन्द नाथ, वह सम्यग्दर्शन का ध्येय, सम्यग्दर्शन का लक्ष्य वह है। उसकी बात तो पड़ी रही, ऊपर से बात (चलने लगी)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही...** आहाहा! मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ। ऐसा ही **भासता है,..** है? **ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है,...** आहाहा! **शरीरादि कुछ भासित नहीं होता...** मेरेपने शरीरादि भासित नहीं होता। ज्ञान होता है, परन्तु शरीर, वाणी, मन और दया, दान का विकल्प, भक्ति का विकल्प अपनापने भासित नहीं होता। आहाहा! आदि है न? शरीर आदि। अर्थात् शरीर, वाणी, मन, दया, दान, भक्ति का परिणाम कुछ अपना भासित नहीं होता। आहाहा! ऐसा धर्म है, भाई! वहाँ तक कल आया था। कल वहाँ तक (आया था)।

भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है... धर्म करनेवाली प्राणी को राग और पर से आत्मा भिन्न है, ऐसे भेदज्ञान की परिणति अर्थात् दशा.. आहाहा! दया, दान का विकल्प आदि और शरीर, वाणी, मन आदि सब उससे भिन्न भेदज्ञान की दशा ऐसी दृढ़ हो जाती है समकिती को। प्रथम नम्बर का धर्म। धर्म की पहली सीढ़ी। धर्म का प्रथम

सोपान। आहाहा! उसी में भेदज्ञान की अवस्था, परिणति अर्थात् दशा, **ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा...** आहाहा! स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है। आहाहा! यह प्रथम सम्यग्दर्शन की दशा। प्रथम धर्म की सीढ़ी। आहाहा! इसको छोड़कर सब बात शून्य हैं। एक बिना के शून्य। क्या कहते हैं? एक बिना के शून्य। आहाहा! अरेरे..!

ऐसा मनुष्यपना अनन्त बार मिला है और अनन्त बार जैनधर्म में जन्म भी हुआ है और अनन्त बार अरबोंपति भी हो गया है। उसमें कोई नवीन चीज़ नहीं है। आहा..! अरे..! अनन्त बार पंच महाव्रत भी धारण कर लिया है। वह कोई नयी चीज़ नहीं है। आहाहा! परन्तु अन्दर राग के विकल्प से भिन्न आत्मा, **भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है।** मुद्दे की रकम की बात है, भैया! आहाहा! ऊपर की बातों में कोई माल नहीं है। शरीर चला जाएगा, आत्मा तो सत्ता-अस्ति है, अनादि-अनन्त है, शरीर छूटेगा। चौरासी वन में कहाँ चले जाएगा। ओहोहो! चौरासी के अवतार, चौरासी लाख योनि। एक-एक योनि में... योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान। चौरासी लाख। एक-एक उत्पत्ति स्थान में अनन्त बार उत्पन्न हुआ। परन्तु कभी उसने सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान क्या है, उसकी दरकार की ही नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है।** आहाहा! जिसको भेदज्ञान करना है,... भेदज्ञान का अर्थ—शरीर, वाणी, मन और पुण्य-पाप के भाव, उससे भिन्न ऐसा आत्मा, उसका नाम भेदज्ञान। आहाहा! **दिन को जागृतदशा में तो ज्ञायक निराला रहता है...** आहाहा! धर्मी को... धर्म बापू! अलौकिक है, प्रभु! आहाहा! अन्तर की दृष्टि राग का विकल्प, दया, दान, भक्ति से भी भिन्न ऐसी चीज़ की भेदज्ञान दृष्टि हुई तो **दिन को जागृतदशा में तो ज्ञायक निराला रहता है...** आहाहा! जागृतदशा में ज्ञायक समकिती को निराला रहता है। आहाहा! **परन्तु रात को नींद में भी...** आहाहा! रात्रि में नींद में भी **आत्मा निराला ही रहता है।** आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन। उसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी, पहली श्रेणी, पहला सोपान-पहली सीढ़ी। इसकी खबर नहीं और दुनिया कहीं-कहीं चलकर रुक गयी, जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! बहिन को तो रात्रि को किसी ने प्रश्न (किया होगा), बहनें बैठी हो, उनसे यह बोला गया है। अन्तर से। आहा..!

रात को नींद में भी आत्मा निराला ही रहता है। आहाहा! अरे..! **निराला तो है**

ही... अब क्या कहते हैं ? अन्तर वस्तु चैतन्यस्वरूप की सत्ता अभी भी निराली ही है। राग से, शरीर से भिन्न ही है। **निराला तो है ही परन्तु प्रगट निराला हो जाता है।** आहाहा! द्रव्य अपेक्षा से वस्तु निराली है – भिन्न है। वस्तु अपेक्षा से। परन्तु पर्याय में निराला हो जाता है। आहाहा! क्या कहते हैं ? वस्तु चीज़ जो है अस्तिपना, सच्चिदानन्द प्रभु द्रव्य चैतन्य, वह तो त्रिकाल वस्तु निरावरण ही है। परन्तु जब भेदज्ञान होता है और सम्यग्दर्शन होता है, तब पर्याय में प्रगट होता है। है ?

निराला तो है ही परन्तु प्रगट निराला हो जाता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात। इसलिए इन लोगों ने सूक्ष्म बात निकाल दी और मोटी-मोटी बातें सुनाने (लगे)। लोगों को ठीक पड़े, प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए और जिन्दगी चली जाए। आहाहा! अनन्त भव हो गये, बापू! अनन्त-अनन्त अवतार किये। यह कोई नयी चीज़ नहीं है। अनन्त बार मनुष्यपना (मिला), जैन में जन्म (हुआ), जैन में साधु, जैन का साधु व्यवहारी आत्मज्ञान बिना का... आहाहा! आत्मज्ञान क्या चीज़ है, उसकी खबर बिना वस्तु तो निराली पड़ी ही है, कहते हैं। परन्तु सम्यग्दर्शन होता है और राग से भिन्न भेदज्ञान होता है, परन्तु प्रगट निराला होता है, पर्याय में निराला होता है। वस्तु तो निराली ही अन्दर पड़ी है, परन्तु भान होने से उसकी पर्याय में निराला-भिन्न भान होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

उसको भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है... सम्यग्दृष्टि को निराला आत्मा का भान होने पर भी भूमिका-अपनी दशा अनुसार बाह्य वर्तन होता है। **परन्तु चाहे जिस संयोग में उसकी ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है।** आहाहा! बाह्य वर्तन में तो गृहस्थी है, जब तक मुनि... अन्तर में मुनिदशा प्रगट नहीं हुई, तब तक गृहस्थाश्रम में समकिती बाह्य वर्तन में दिखता है, परन्तु उस बाह्य वर्तन में भी उस संयोग में उसको **ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है।** आहाहा! मैं तो आत्मा ज्ञायक हूँ। विकल्प राग उठता है, वह भी मेरी चीज़ नहीं, भिन्न हूँ। ऐसा वैराग्य और ऐसा ज्ञान, ऐसा ज्ञान और ऐसा वैराग्य, आहा..! **कोई और ही रहती है।** अजब शक्ति है, कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान में अन्तर आत्मा भिन्न भासता है, तब ज्ञान-वैराग्यशक्ति हमेशा रहती है। आहा..!

ज्ञान-वैराग्य का अर्थ (यह कि) अपना चैतन्यस्वरूप का ज्ञान और वैराग्य अर्थात् पुण्य और पाप दोनों भाव से विरक्त। पुण्य-पाप अधिकार में वैराग्य का अधिकार लिया

है। समयसार में। शुभ और अशुभ दोनों भाव। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि भाव और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग भाव। दोनों भाव से जो अनादि से रक्त है, ज्ञानी उससे विरक्त है। आहाहा! धर्मी उससे विरक्त है। तो दो आया। एक तो जो चीज़ है, उसका ज्ञान और पुण्य-पाप के भाव से विरक्तता, वह वैराग्य। ऐसी चीज़ है, सेठ!

मुमुक्षु :- ऐसा मानने से काम हो जाएगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह मानने से काम हो जाएगा। जन्म-मरण मिट जाएगा। आहाहा! यह आचरण है। अन्तर सम्यग्दर्शन, ज्ञान का आचरण यह है। इसके बिना चारित्र का आचरण चारित्र-फारित्र होता नहीं। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! आहाहा!

श्रेणिक राजा, क्षायिक समकिती। पहले तो उसे नरक का आयुष्य बँध गया। श्रेणिक राजा। एक मुनि थे। ध्यान में बैठे थे। सच्चे मुनि थे। एक मरा हुआ सर्प उनके गले में डाल दिया। श्रेणिक राजा पहले तो बौद्धमति था। डाला तो लाखों चींटियाँ (हो गयीं)। राजा घर पर आया। चेलना उसकी स्त्री समकिती (थी)। चेलना स्त्री आत्मज्ञानी (थी)। उसने कहा, तेरे गुरु पर मैंने सर्प डाला है। उसे निकाल देगा। उपसर्ग निकाल देंगे। यह बौद्धधर्मी था। रानी ने कहा, अन्नदाता! हमारे गुरु ऐसे नहीं होते। उपसर्ग आये, उसे उठाते नहीं। उग्र पुरुषार्थ करके अन्दर जाते हैं। चल, देखते हैं, पति-पत्नी दोनों गये। मुनि ध्यान में बैठे हैं। गले में मरा हुआ सर्प था और चींटियाँ, लाखों चींटियाँ। चेलना ने चींटियाँ हटा दी। देखो! मुनि तो ध्यान में हैं। इतना कहा तो ध्यान छूट गया। ध्यान छूट गया... श्रेणिक राजा को आश्चर्य हुआ कि ओहो..! ऐसे उपसर्ग के काल में भी ध्यान में रहते हैं! प्रभु! मुझे धर्म समझाईये। बौद्धधर्मी था। चेलना उसकी स्त्री समकिती ज्ञानी थी। जैन थी। जैन अर्थात् सम्प्रदाय नहीं। अन्तर अन्तर जैन, आत्मज्ञान था। आहाहा! राजा को आश्चर्य हो गया। आहाहा! यह दशा! प्रभु! मुझे धर्म समझाईये। वहाँ समकित प्राप्त हुआ। श्रेणिक राजा ने वहाँ समकित प्राप्त किया। आहाहा! आत्मज्ञान पाया। हजारों रानियाँ, हजारों राजा चंवर ढाले, ऐसी बाह्य प्रवृत्ति थी। परन्तु अन्दर में दृष्टि और ज्ञान में भिन्न थे। आहा..!

राजा को नरक का आयुष्य बँध गया था। मुनि के गले में सर्प डाला था न। सातवीं

नरक का आयुष्य बँध गया था। तैतीस सागर का। परन्तु समकित पाया तो तैतीस सागर तोड़कर चौरासी हजार वर्ष रह गये। आहाहा! अभी नरक में हैं। आयुष्य बँधा, वह छूटता नहीं। लड्डू बन गया, घी, शक्कर या आटे का लड्डू हुआ, उसमें से घी निकाल पूड़ी नहीं बनती। उसे तो खाने पर ही छुटकारा है। लड्डू को थोड़े दिन सुखाये तो भले थोड़ा हो, अथवा उस लड्डू में थोड़ा घी हो, परन्तु लड्डू को खाये बिना छुटकारा नहीं है। उसमें से कोई घी निकालकर या आटा निकालकर रोटी बना दे, ऐसा नहीं है।

वैसे आयुष्य बँध गया... आहाहा! पर भाव का आयुष्य बँध गया, उसे तो भोग बिना छुटकारा नहीं है। घट जाए, आत्मधर्म प्राप्त करे तो घट जाए। तैतीस सागर का आयुष्य बँध गया था। सातवीं नरक। आहाहा! उसका चौरासी हजार वर्ष रह गये। अभी नरक में है। और समकित प्राप्त करने के बाद भगवान के पास गये। महावीर परमात्मा के पास गये। समकित तो मुनि के पास प्राप्त किया। फिर भगवान के पास गये, वहाँ तीर्थंकर गोत्र बाँधा। आगामी चौबीसी में इस भरत में प्रथम तीर्थंकर होंगे। आहाहा! चारित्र-बारित्र नहीं था। सम्यग्दर्शन-क्षायिक समकित (था)। हजारों रानियाँ और हजारों राजा चंवर ढालते थे। परन्तु आयुष्य बँध गया, तो आयुष्य लम्बा था, जहाँ आत्मज्ञान प्राप्त किया तो आयुष्य टूट गया। तैतीस सागर छूटकर चौरासी हजार वर्ष रहे। अभी पहली नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में है।

नीचे सात नरक है। आहाहा! नीचे सात नारकी हैं। माँस, दारू, अण्डे खाये, वह महापाप। वह मरकर नरक में जाते हैं। आयुष्य बँध गया था। इसलिए चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में अभी नरक में है। वहाँ भी तीर्थंकर गोत्र बाँधते हैं। संयोग प्रतिकूल है। जितना राग, कषाय है, उतना दु:ख भी है। आनन्द भी है। वहाँ से निकलकर श्रेणिक राजा आगामी चौबीसी में यहाँ प्रथम तीर्थंकर होंगे। आहाहा! कहो, सेठ! इतने मात्र से? इतने मात्र से। आहाहा! इतना मात्र अर्थात्? अन्दर चैतन्यप्रभु, अनन्त गुण का धाम, अनन्त गुण का स्थान, उसका अनुभव हुआ, उसके सन्मुख होकर (तो) अनन्त भव का नाश हो गया। एक-दो भव है। अभी नरक में है, वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी तीर्थंकर होंगे। आगामी चौबीसी में इस भरतक्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर होंगे और मोक्ष जाएँगे। आहाहा! यह क्रिया। अरे..! आहा..! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? और सम्यग्ज्ञान क्या चीज़ है? सम्यग्ज्ञान।

शास्त्र की पढ़ाई वह कोई ज्ञान-सम्यग्ज्ञान नहीं है। आहा..! अन्तर ज्ञानमूर्ति आत्मा, ज्ञानस्वरूपी प्रभु, ज्ञान का ज्ञान और उस ज्ञान की अनुभव की प्रतीति, यह चीज़ हुई, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। उसके भव का छेद हो गया। आहाहा! यहाँ वह कहते हैं।

ज्ञानी को **भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है परन्तु चाहे जिस संयोग में उसकी ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है**। है? आहाहा! माता, जिसके पेट में सवा नव महीना रहा, उस जनेता को कहीं भी देखे, माता की दृष्टि से ही देखता है। आहा..! उसकी दृष्टि दूसरी होती नहीं। ऐसे आत्मा का, राग से भिन्न आत्मा का भान होने से चाहे किसी भी क्षेत्र में, काल, वर्तन में हो परन्तु अपने स्वरूप का भान भूलते नहीं। आहाहा! ऐसी बात मिली नहीं, करे कहाँ से? अरेरे..! जिन्दगी चली जाती है।

मैं तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही हूँ,... है? धर्मीजीव को तो कोई भी प्रसंग में, स्त्री का प्रसंग भी न हो,... आहाहा! समकिती शादी भी करे। भरत चक्रवर्ती समकिती, ९६ हजार स्त्रियाँ। आहा..! अन्दर में तो उस ओर लक्ष्य जाता है, वह जहर है। आहाहा! अन्तर में तो ज्ञान और वैराग्य तो हमेशा-निरन्तर वर्तते हैं। अपना ज्ञान और पुण्य-पाप के भाव से विरक्त-वैराग्य, वह वैराग्य (है)। पुण्य-पाप भाव होता है, उससे विरक्त और अपना ज्ञान। ज्ञान और वैराग्य तो समकिती को हमेशा चाहे किसी भी क्षेत्र में भी वर्तता है। आहाहा! है? **मैं तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही हूँ, निःशंक ज्ञायक हूँ;...** आहाहा! निःसन्देह जाननशरीर पिण्ड, वह मैं हूँ। दूसरी कोई चीज़ मैं नहीं हूँ। आहाहा! ऐसी अन्तर में प्रतीति होनी, वह अलौकिक चीज़ है। आहाहा! और करना हो तो प्रथम यह करना है। चारित्र और पच्चखाण की बात बाद में है। आहा..! यह बात नहीं है तो बाकी सब निरर्थक है। करोड़ शून्य, एक अंक के बिना सब शून्य है। एक अंक लगाये तो दस हो जाए। और एक के बिना करोड़ शून्य, शून्य है।

ऐसे अपना... आहाहा! अपनी चैतन्यशक्ति के भान बिना, उसके अनुभव और प्रतीति बिना सब शून्य है। बाह्य त्याग हो या नग्न मुनि हो गया, सब बिना एक के शून्य हैं। आहाहा! क्यों? मैं तो ज्ञायक ही हूँ। **निःशंक ज्ञायक हूँ; विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए;...** आहाहा! विभाव का विकल्प राग, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो, वह राग विभाव है। आहाहा! विकार है। **विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए;...** ऐसा

समकिती को–धर्मी को होता है। यह करना है। आहाहा! **ज्ञायक पृथक् ही है,...** जाननस्वरूप भगवान आत्मा पूरी चीज़ रागादि विकल्प से बिल्कुल भिन्न है। बाह्य चीज़ की तो बात ही क्या करना? बाह्य चीज़ शरीरादि तो बिल्कुल भिन्न है। परन्तु पुण्य और पाप का भाव भी मेरे में नहीं है, मेरे से भिन्न है। आहाहा! किसे ऐसी पड़ी है? देह छूटकर मैं कहाँ जाऊँगा? मेरी सत्ता तो अनादि–अनन्त है। इस देह का नाश होगा तो अपनी सत्ता का नाश नहीं होगा। वह सत्ता कहीं चली जाएगी। आहाहा!

सारा ब्रह्माण्ड पलट जाय, तथापि पृथक ही है। समकिती को, सारा ब्रह्माण्ड पलट जाए, (तथापि) ज्ञानस्वरूप मैं हूँ, वह तो पृथक् ही है। पृथक् के साथ कभी एकत्व होता नहीं। आहाहा! **ऐसा अचल निर्णय होता है।** ऐसा चलायमान न हो, ऐसा निर्णय होता है। आहाहा! मूल पहली चीज़ यह है। पहली का ठिकाना नहीं और ऊपर की बात। भक्ति, पूजा, दया और दान। आहा..! **स्वरूप-अनुभव में...** अपना स्वरूप जो ज्ञानानन्द चैतन्य स्वरूप, उसके अनुभव में **अत्यन्त नि:शंकता वर्तती है।** अत्यन्त नि:शंकता वर्तती है। आहाहा! **ज्ञायक ऊपर चढ़कर—ऊर्ध्वरूप से विराजता है,...** आहाहा! क्या कहते हैं? ज्ञायक। मैं तो एक जानन–देखनस्वरूप चैतन्यसूर्य, ज्ञायक ज्ञायकचन्द्र, शीतलस्वरूप ज्ञायकचनद्र पर दृष्टि रखकर, **ऊपर चढ़कर—ऊर्ध्वरूप से विराजता है,...** विकल्प से लेकर सब राग से भिन्न ऊर्ध्व अर्थात् ऊँचा रहता है। आहाहा!

दूसरा सब नीचे रह जाता है। आहाहा! ऐसी बात है, शान्तिभाई! दुनिया कुछ भी मानो। चीज़ तो भगवान अनन्त तीर्थंकरों... सीमन्धर भगवान तो विराजते हैं। वे वहाँ कहते हैं, वहाँ से आयी हुई बात है। बहिन वहाँ थे। समवसरण में जाते थे। आहाहा! अन्तिम में परिणाम में अन्तर पड़ गया तो यहाँ स्त्रीपने आ गये हैं। आहाहा! बाद में यह भान हुआ और यह बात लिखते हैं। आहाहा! **ऊर्ध्वरूप से विराजता है,...** मैं तो सबसे, अरे..! जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे उस भाव से मैं ऊँचा–ऊर्ध्व हूँ। वह चीज़ तो नीचे रह गयी। आहाहा! उसका आदर भी नहीं है। आहाहा! ऐसा उपदेश। बहिन रात को बोले होंगे, वह लिखा था। रात को। उन्हें पता नहीं था कि कौन लिख रहा है। ६४ बाल ब्रह्मचारी बहनें हैं न। ६४ लड़कियाँ बाल ब्रह्मचारी हैं। ग्रेज्युऐट है, कुछ तो लाखोंपति की लड़की है, बहिन के नीचे। उसमें नौ बहिनों ने लिख लिया, इसलिए बाहर आ गया, नहीं तो बाहर नहीं आता।

आहाहा! आज किसी का लिखा हुआ आया है कि यह (पुस्तक) पूरी पढ़नी। आहाहा! **दूसरा सब नीचे रह जाता है।** ३८९ पूरा हुआ। ३९० है न? ३९० है।

मुनिराज समाधिपरिणत हैं। वे ज्ञायक का अवलम्बन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्रगट करने को उत्सुक हैं। मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि मुनि 'सकल विमल केवलज्ञानदर्शन के लोलुप' हैं। 'स्वरूप में कब ऐसी स्थिरता होगी, जब श्रेणी लगकर वीतरागदशा प्रगट होगी? कब ऐसा अवसर आयेगा, जब स्वरूप में उग्र रमणता होगी और आत्मा का परिपूर्ण स्वभाव ज्ञान-केवलज्ञान प्रगट होगा? कब ऐसा परम ध्यान जमेगा कि आत्मा शाश्वतरूप से आत्मस्वभाव में ही रह जाएगा?' ऐसी भावना मुनिराज को वर्तती है। आत्मा के आश्रय से एकाग्रता करते-करते वे केवलज्ञान के समीप जा रहे हैं। प्रचुर शान्ति का वेदन होता है। कषाय बहुत मन्द हो गये हैं। कदाचित् कुछ ऋद्धियाँ—चमत्कार भी प्रगट होते जाते हैं; परन्तु उनका उनके प्रति दुर्लक्ष है। 'हमें ये चमत्कार नहीं चाहिए। हमें तो पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिए। उसके साधनरूप, ऐसा ध्यान—ऐसी निर्विकल्पता—ऐसी समाधि चाहिए कि जिसके परिणाम से असंख्य प्रदेशों में प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्याय से प्रगट हो, चैतन्य का पूर्ण विलास प्रगट हो।' इस भावना को मुनिराज आत्मा में अत्यन्त लीनता द्वारा सफल करते हैं॥३९०॥

३९० है। **मुनिराज...** आहाहा! समकिती की तो बात क्या करना, परन्तु अब मुनिराज क्या है? जो अन्तर में **समाधिपरिणत हैं।** समाधि (अर्थात्) दूसरे साधु समाधि लगाये वह नहीं। समाधि का अर्थ—आधि, व्याधि, उपाधि तीन से रहित समाधि। अब तीन का अर्थ। आहाहा! आधि, व्याधि, उपाधि तीन से रहित समाधि। आधि का अर्थ संकल्प-विकल्प। आहाहा! अन्दर में पुण्य और पाप का विकल्प वह आधि। उससे रहित समाधि। व्याधि-शरीर में रोग। उपाधि - ये स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, व्यापार-धन्धा, वह उपाधि। उपाधि, व्याधि, आधि तीन से रहित। अरे..! भगवान! आहाहा!

लोगस्स में आता है। श्वेताम्बर में लोगस्स आता है। अपने दिगम्बर में लोगस्स

आता है, परन्तु वह बाह्य में प्रसिद्ध नहीं है। स्थानकवासी और श्वेताम्बर में बाहर प्रसिद्ध है। बाहर की मानी हुई सामायिक करे न ? अपने सामायिक में लोगस्स आता है। लोगस्स में ऐसा आता है। समाहिवर मुत्तम दिंतु। ऐसा अपने में श्लोक आता है। समाहिवर। हे नाथ! मुझे तो समाधि चाहिए। समाहिवर उत्तम। परन्तु वह समाधि कौन-सी ? यह। आधि-व्याधि-उपाधि रहित समाधि। आहाहा! आधि अर्थात् पुण्य-पाप का विकल्प जो उठता है, दया, दान, काम, क्रोध का, वह सब आधि है, विकार है। शरीर में व्याधि, वह रोग है और लक्ष्मी, मकान, स्त्री, कुटुम्ब, इज्जत, धूल, वह उपाधि है। आहाहा! भगवान को पैसा उपाधि है। आहाहा! भगवान आत्मा को स्त्री उपाधि है। क्यों माने ?

मुमुक्षु :- पुत्र उपाधि है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- पुत्र भी उपाधि है। उनका एक पुत्र है न। आठ हजार का एक महीने का वेतन है। अभी आया था न। इनके जन्मदिवस पर। भाद्र शुक्ल चतुर्थी। ९८ वर्ष हुए। ९८। सौ में दो कम। तो आया था। वहाँ मुम्बई में है। छह हजार का वेतन है और दो हजार रहने का मकान का, सब मिलाकर आठ हजार एक महीने का है। आया था। वह सब उपाधि है। आहाहा!

भगवान! तुझे कठिन पड़े, प्रभु! क्या करें ? सन्त कहते हैं कि क्या कहें ? हमें आश्चर्य और खेद होता है। हमें भी राग है, हम वीतराग नहीं हुए हैं, हमको भी आश्चर्य और खेद होता है, प्रभु! तू क्या करता है ? अरे..! अन्तर की चीज़ अन्दर भगवान आत्मा विराजता है। उसको छोड़कर परचीज़ जो तेरे में नहीं है, उसे अपना मानकर तेरी जिन्दगी वहाँ चली जाती है। प्रभु! अब वह मनुष्यपना कब मिलेगा ? तुझे अनन्त भव में कब मिलेगा ? आहाहा!

वह कहते हैं, **मुनिराज समाधिपरिणत हैं**। समाधि समझे ? शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. वीतरागता। अन्तर में वीतरागता परिणत। उसका नाम मुनिराज है। महाव्रत और पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, वह मुनिपना नहीं है। आहाहा! ये सेठ बाहर से देखे क्रियाकाण्ड, नग्नपना देखे, क्रिया निर्दोष... जय प्रभु! सेठ! यह तो दृष्टान्त है। सबका ऐसा है न। सबको लागू पड़ता है। बहुत अरबपति देखे। करोड़ोंपति तो बहुत, परन्तु

अरबोंपति धूल में... हमने कहा, भिखारी है। भिखारी-भिखारी है। लाओ, लाओ, लाओ, लाओ... यहाँ तो मुझे कुछ नहीं चाहिए, मेरा आत्मा चाहिए। आहाहा!

मुमुक्षु :- भक्ति करते-करते मिल जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री :- विकल्प करते-करते पुण्यबन्ध होगा, संसार बढ़ेगा। भक्ति के राग को नियमसार में पद्मप्रभमलाारिदेव ने शुभभाव को घोर संसार कहा है। अपने आ गया है। घोर संसार। राग चाहे तो भक्ति का राग हो, आता है। पूर्ण वीतराग न हो, तब राग होता है। मन्दिर की भक्ति परमात्मा की, परन्तु वह सब शुभभाव है। वह क्रिया तो स्वतन्त्र जड़ की है, परन्तु अन्दर में जो भक्ति आदि का भाव है, वह शुभभाव है। आहाहा! वह शुभभाव अनन्त बार किया है। परन्तु शुभ से रहित मेरी चीज़ (है)।

ज्ञायक का अवलम्बन लेकर... देखो! आहा..! दूसरी लाईन मुनि तो ऐसे हैं, **वे ज्ञायक का अवलम्बन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्रगट करने को उत्सुक हैं।** आहाहा! अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द विशेष प्रगट करने को उत्सुक है। आहाहा! फर्क है? गुजराती है, ठीक। यह हिन्दी है। **मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं...** मुनि। **मुनि 'सकल विमल केवलज्ञानदर्शन के लोलुप' हैं।** प्रभु! मैं तो केवलज्ञान का लोलुपी हूँ। आहाहा! जगत पैसा, स्त्री और इज्जत का लालुपी है। आहाहा! तो मुनिराज कहते हैं, पद्मप्रभमलधारि मुनि, ये कुन्दकुन्दाचार्य (हैं), वह अमृतचन्द्राचार्य। नियमसार के टीका करनेवाले मुनि थे। और कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य दोनों आचार्य थे। ये मुनि थे। मुनि ऐसा कहते हैं... सच्चे मुनि थे, हों! सच्चे भावलिंगी। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि **मुनि 'सकल विमल केवलज्ञानदर्शन के लोलुप' हैं।** पूर्ण केवलज्ञान प्रगट करने में तो लोलुपी हैं। उसमें वे लोलुप हैं। आहाहा! दूसरी कोई चीज़ में उनकी लोलुपता नहीं है। शास्त्र में तो.. एक षट्खण्डागम है, बड़ा पुस्तक है। चालीस पुस्तक है। एक-एक पुस्तक दस-बारह रुपये का, ऐसे चालीस पुस्तक हैं। षट्खण्डागम। वीतराग की पुरानी वाणी। उसमें तो ऐसा लिखा है कि सम्यग्दर्शन, मतिज्ञान जब होता है, आत्मा का ज्ञान होता है, आनन्द का भान और जब मतिज्ञान होता है, तो वह मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। आहाहा! यह बात... बुलाता है अर्थात्? पाठ ऐसा है। मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। अर्थात् मतिज्ञान केवलज्ञन को (कहता है), जल्दी आओ, जल्दी आओ। आहाहा! कहीं

जाना हो तो बुलाते हैं न ? ऐ.. भैया ! सिद्धपुर जाने का रास्ता कौन-सा है ? यहाँ तो सिद्धपुर जाने का रास्ता (पूछते हैं) । वैसे यह केवलज्ञान को बुलाता है । सम्यग्ज्ञान हुआ, आत्मा राग से भिन्न ज्ञायक.. देखो ! आहाहा !

मुनि **'सकल विमल केवलज्ञानदर्शन के लोलुप' हैं।** आहाहा ! पूर्ण ज्ञान और पूर्ण दर्शन। ऐसा केवलज्ञान और केवलदर्शन। उसका लोलुप हैं। आहाहा ! मुनि तो उसके लोलुपी हैं। एकदम सकल केवलज्ञान और केवलदर्शन हो जाओ। कोई दूसरी चीज़, महाव्रतादि के विकल्प में रुकने में उनकी रुचि नहीं है, दु:ख लगता है। महाव्रत का परिणाम दु:ख लगता है। अरेरे ! आहा.. ! क्योंकि राग है, आस्रव है, दु:ख है। आहाहा ! दु:ख से रहित आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु पूर्णानन्द की पर्याय मुझे कब होगी ? ऐसे लोलुपी, केवलज्ञान, केवलदर्शन के लोलुपी हैं। आहाहा !

'स्वरूप में कब ऐसी स्थिरता होगी, जब श्रेणी लगकर वीतरागदशा प्रगट होगी ? ऐसी भावना है। आहाहा ! दुनिया की इज्जत-कीर्ति का ख्याल नहीं है। **'स्वरूप में कब ऐसी स्थिरता होगी, जब श्रेणी लगकर वीतरागदशा प्रगट होगी ? कब ऐसा अवसर आयेगा, जब स्वरूप में उग्र रमणता होगी...** आहाहा ! अन्दर स्वरूप जो चैतन्य भगवान ज्ञान, उसमें पूर्ण रमणता कब होगी, ऐसी भावना है। धर्मी की मुनि की तो यह भावना होती है। आहाहा ! है ? **और आत्मा का परिपूर्ण स्वभाव ज्ञान-केवलज्ञान प्रगट होगा ?** आहाहा ! कब ऐसा अवसर आयेगा ? है न ? कब ऐसा अवसर आयेगा, जब स्वरूप में **स्वभाव ज्ञान-केवलज्ञान प्रगट होगा ?** आहाहा ! यह मुनि की भावना है। पंच महाव्रत का परिणाम होता है, परन्तु वह तो विकल्प है, राग है। आहाहा !

कब ऐसा परम ध्यान जमेगा... आहाहा ! मुनि तो यह भावना करते हैं, कहते हैं... **कब ऐसा परम ध्यान जमेगा कि आत्मा शाश्वतरूप से आत्मस्वभाव में ही रह जाएगा ?'** आहाहा ! ये मुनिदशा, बापू ! वह तो अलौकिक बातें हैं ! आहाहा ! कब **आत्मा शाश्वतरूप से आत्मस्वभाव में ही रह जाएगा ?' ऐसी भावना मुनिराज को वर्तती है।** लो। ऐसी भावना मुनिराज को हमेशा वर्तती है। **आत्मा के आश्रय से एकाग्रता करते-करते...** क्या कहते हैं ? आत्मा के आश्रय से—भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप उसके आश्रय से; पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत का आश्रय नहीं,... आहाहा ! सूक्ष्म बात तो है, भाई !

यह तो बहिन अन्दर से बोले थे, बहनों ने लिख लिया था। आहा..! बाहर आया। अभी करीब अस्सी हजार पुस्तक प्रकाशित हो गये हैं। एक लाख प्रकाशित होंगे। आया था तभी रामजीभाई को कहा था, एक लाख (छपवाओ)। इतने छपे, उसमें कभी किसी को कुछ नहीं कहा। पैसा यहाँ रखो, दो, ऐसा कभी किसी को नहीं कहा है। करोड़ों रुपयों का खर्च हुआ है, कभी किसी को कहा नहीं कि ऐसा करो। परन्तु यह देखकर ऐसा हो गया कि ओहोहो! यह एक लाख पुस्तक छपवाओ। बहुत (छप) गये हैं।

एकाग्रता करते-करते वे केवलज्ञान के समीप जा रहे हैं। हैं? आहाहा! अपने ज्ञान में... ज्ञानस्वरूप ज्ञान, हों! शास्त्र का ज्ञान नहीं। ज्ञानस्वरूप जो भगवान आत्मा, उसमें **समीप जा रहे हैं।** आहाहा! **प्रचुर शान्ति का वेदन होता है।** आहा..! अन्दर विशेष जाते हैं (तो) प्रचुर शान्ति का वेदन होता है। **कषाय बहुत मन्द हो गये हैं। कदाचित् कुछ ऋद्धियाँ—चमत्कार भी प्रगट होते जाते हैं; परन्तु उनका उनके प्रति दुर्लक्ष है।** चमत्कार पर भी लक्ष्य नहीं है। **'हमें ये चमत्कार नहीं चाहिए। हमें तो पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिए।** आहाहा! पूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन चमत्कार। **उसके साधनरूप, ऐसा ध्यान—ऐसी निर्विकल्पता—ऐसी समाधि चाहिए कि जिसके परिणाम से असंख्य प्रदेशों में प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्याय से प्रगट हो, चैतन्य का पूर्ण विलास प्रगट हो।' इस भावना को मुनिराज आत्मा में अत्यन्त लीनता द्वारा सफल करते हैं।** सफल करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - ८, बुधवार, तारीख १७-९-१९८०
वचनामृत -३९१, ३९३ प्रवचन-३६

आज चौथा दिन है। वैसे तो दसलक्षणी धर्म मुख्यरूप से मुनि के हैं। दसलक्षणी है न? वह तो मुनिपना ही है। और मुनिपना तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों सहित होता है। यहाँ दस प्रकार में दस दिन में एक-एक भिन्न-भिन्न की व्याख्या करते हैं। आज चौथा दिन है - (शौच)। पहले दिन में क्रोध से विरुद्ध क्षमा था। दूसरे दिन मान से विरुद्ध निर्मानता। अर्थात् मार्दव कहो कि निर्मानता कहो। तीसरा दिन-माया से विरुद्ध सरलता। आज चौथे दिन में लोभ से विरुद्ध शौचता-निर्लोभता। आज चौथा दिन है। आहाहा! क्या है? देखो!

अब उत्तम शौचधर्म को कहते हैं।

समसंतोषजलेणंय, जो धोवदि तिव्वलोहमलपुंजं।
भोयणगिद्धिविहीणो, तस्स सउच्चं हवे विमलं॥३९७॥

अन्वयार्थ :- जो मुनि समभाव (राग-द्वेष रहित परिणाम)... पूरी दुनिया कुछ भी हो, परन्तु अन्दर में वीतरागभाव-समभाव, वह शौच-पवित्रता है। वह निर्लोभता है। कोई भी चीज़ की इच्छा नहीं, लोभ नहीं। और अपने स्वभाव में **सन्तोषरूपी जल से तीव्र तृष्णा और लोभरूपी मल के समूह को...** धोते हैं। तृष्णा उसे कहते हैं, भविष्य की इच्छा, भविष्य की कोई भी पदार्थ की इच्छा को तृष्णा कहते हैं। और लोभ वर्तमान प्राप्त चीज़ में गृद्धि और लोभ, उसको लोभ कहते हैं। तृष्णा और लोभ, दोनों का अर्थ भिन्न है। आहाहा!

आज निर्लोभता की बात है न? शौच की। तृष्णा-भविष्य की तृष्णा भी नहीं। आहाहा! भविष्य की किसी भी प्रकार की तृष्णा नहीं। आहाहा! और वर्तमान प्राप्त पदार्थ में कहीं लोभ नहीं। भूतकाल तो चला गया है। अभी तो है नहीं। वर्तमान और भविष्य दो है। तो वर्तमान में निर्लोभता से वर्तमान पदार्थ में अपनापना, लोभ का त्याग करते हैं और

भविष्य की इच्छा, भविष्य का कोई भी पदार्थ अनुकूल हो या अनुकूल मिले, ऐसी तृष्णा का अभाव, उसका नाम शौचधर्म, निर्लोभ धर्म (है)। आहाहा! ऐसी बात है।

शौच अर्थात् पवित्रता। शौच अर्थात् निर्लोभता। निर्लोभता के दो प्रकार। एक - भविष्य की तृष्णा और एक - वर्तमान में प्राप्त पदार्थ में लोभ। दो का त्याग का नाम शौच है। आहा..! अपना ज्ञायकस्वभाव अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति से भरा हुआ, ऐसी दृष्टि, अनुभव और चारित्र जिसको है, उसको ऐसा लोभ, प्राप्त वस्तु में लोभ नहीं, नहीं प्राप्त हुई, उसकी तृष्णा नहीं, आहाहा! उसको यहाँ तृष्णा, लोभरहित शौचधर्म-पवित्र धर्म कहने में आता है। वह चौथे धर्म की व्याख्या हुई। अपने कहाँ चलता है? ३९० चला न?

अज्ञानी ने अनादि काल से अनन्त ज्ञान-आनन्दादि समृद्धि से भरे हुए निज चैतन्यमहल को ताले लगा दिये हैं और स्वयं बाहर भटकता रहता है। ज्ञान बाहर से ढूँढ़ता है, आनन्द बाहर से ढूँढ़ता है, सब कुछ बाहर से ढूँढ़ता है। स्वयं भगवान होने पर भी भीख माँगता रहता है।

ज्ञानी ने चैतन्यमहल के ताले खोल दिये हैं। अन्तर में ज्ञान-आनन्दादि की अखूट समृद्धि देखकर, और थोड़ी भोगकर, पहले कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ था, ऐसी विश्रान्ति उसे हो गयी है॥३९१॥

३९१। **अज्ञानी ने अनादि काल से अनन्त ज्ञान-आनन्दादि समृद्धि से भरे हुए निज चैतन्यमहल को ताले लगा दिये हैं...** आहाहा! ऊपर-ऊपर की तो सब बातें करते हैं, परन्तु यह अन्तर की बातें (हैं)। **अज्ञानी ने अनादि काल से अनन्त ज्ञान...** और अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त सुख, प्रभुता ऐसा अन्तर में भरा है। ऐसी **समृद्धि से भरे हुए निज चैतन्यमहल को...** चैतन्यरूपी महल-मकान-महल है। आहाहा! उसमें ऐसी समृद्धि अन्दर पड़ी है। उसको **ताले लगा दिये हैं...** आहाहा! राग की एकताबुद्धि में राग का अंश पतला, छोटा हो, उसकी भी अपने में एकता मानकर, सारी समृद्धि से भरा प्रभु, उसको ताला लगाया है। आहाहा! बहुत कठिन बात। ऊपर-ऊपर से मिलता हो वह तो... आहा..!

अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्दादि। अनन्त क्यों कहा ? कि जिसका स्वभाव है, अपना स्व-अपना स्व-भाव, अपना स्वभाव है तो उसकी अनंतता (है), हद नहीं है। अनन्त है। आहाहा! ऐसा अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि अनन्त-अनन्त समृद्धि अन्दर चैतन्यमहल में भरी है। परन्तु उसको राग, सूक्ष्म में सूक्ष्म लोभ का राग, उसके साथ एकताबुद्धि से पूरे चैतन्यमहल में ताला लगा दिया है। आहाहा! है ?

और स्वयं बाहर भटकता रहता है। समृद्धि अन्दर है, उसमें दृष्टि देता नहीं। उस ओर झुकाव का भाव करने लायक है, ऐसा भी मानता नहीं। आहाहा! अपनी चीज़ से बाहर भटक रहा है। चौरासी लाख योनि में। आहाहा! ऐसे सूक्ष्म बात लगे, वस्तु तो ऐसी है। जगत माने, न माने, सत् की संख्या कम-ज्यादा हो, उसके साथ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! इसने तो ताला लगा दिया है **और स्वयं बाहर भटकता रहता है।** अन्तर में समृद्धि है तो उसको ताला लगा दिया। ताला लगा दिया अर्थात् उस ओर का तो लक्ष्य ही नहीं है और बाहर की ओर सब पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार आदि बाह्य चीज़ में भटक रहा है। आहाहा!

ज्ञान बाहर से ढूँढ़ता है,... मानो ज्ञान बाहर से आता है। परन्तु ज्ञान तो अपना स्वरूप है। चैतन्यब्रह्म भगवान आनन्द और चैतन्य तो उसका स्वरूप है। तो वह ज्ञान कहीं बाहर से आता नहीं। वाँचन से.. आहाहा! निश्चय से वाँचन से और श्रवण से भी ज्ञान आता नहीं। कठिन पड़े, प्रभु! अनन्त काल का मार्ग इसने जाना नहीं। ओहोहो! **ज्ञान बाहर से ढूँढ़ता है,...** मानो सुनने से ज्ञान मिल जाएगा, पढ़ने से मिल जाएगा, बहुत शास्त्र के पन्ने पढ़ूँ तो उसमें से ज्ञान मिल जाएगा। वहाँ कहाँ ज्ञान है ? ज्ञान तो यहाँ है। आहाहा! ज्ञानस्वरूप भगवान ही आत्मा है। चैतन्य का पुंज, चैतन्यचन्द्र, चैतन्यप्रकाश शीतल चन्द, शान्तरस का सागर। आहाहा! उस ओर नजर नहीं करके, बाहर में भटक रहा है और वह ज्ञान मानों बाहर से आता है, (ऐसा मानता है)। आहाहा! मानो भगवान के दर्शन करने से ज्ञान आता है। शास्त्र सुनने से ज्ञान आता है। ज्ञान तो यहाँ है। आहाहा! बाहर से आता है, ऐसी मान्यता में अन्तर ओर का झुकाव अनन्त काल से छोड़ दिया है। आहाहा! ऐसी बात सुनने मिलनी मुश्किल। आहाहा! सत्य तो यह है।

आनन्द बाहर से ढूँढ़ता है,... ज्ञान भी बाहर से ढूँढ़ता है, ऐसे आनन्द भी बाहर से-

पैसे से, स्त्री से, कुटुम्ब से, परिवार से, इज्जत से, शरीर की अनुकूलता से, निरोगता से— ऐसे बाहर से सुख ढूँढ़ता है। सुख बाहर है नहीं। आहाहा! मृग की नाभि में कस्तूरी। हिरन-मृग, मृग की नाभि में कस्तूरी (है), उसकी गन्ध बाहर वन में ढूँढ़ता है। परन्तु मेरे में कस्तूरी अन्दर है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान ज्ञान और आनन्द यहाँ है। मृग जैसा प्राणी, वह ज्ञान और आनन्द को बाहर से ढूँढ़ता है। कहो, सेठ! भाषा तो सादी है।

मुमुक्षु :- समझ में आये ऐसी भाषा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- समझ में आये ऐसी भाषा। चार कक्षा पढ़ा हो, तो भी समझ में आये ऐसी भाषा है। वस्तु तो वस्तु है, प्रभु! आहाहा! यह तो बहिन की भाषा बिल्कुल सादी और अन्तर की बात (है)। वे बोले थे, उसे लिख लिया। नहीं तो बाहर आये ही कहाँ? आहाहा!

कहते हैं है, ज्ञान और आनन्द तो प्रभु! यहाँ है न! ज्ञान की शक्ति का भण्डार है और आनन्द का तो खजाना है। आहाहा! वहाँ देखता नहीं (और) ज्ञान मानो बाहर से आता हो तो बाहर का लक्ष्य छोड़ता नहीं। जो बाहर से मानता है कि वाँचन से, श्रवण से (ज्ञान होता है, तो) वह वाँचन, श्रवण छोड़ता नहीं, वहाँ लगा रहता है। और पर में जहाँ आनन्द मानता है, आहा..! खाने-पीने की अनुकूलता, लड्डू हो, हलवा हो, वह खाते-खाते मुझे मजा आती है। परन्तु खाये कौन? प्रभु! वह क्रिया जड़ की है। आत्मा डाढ़ को हिला सकता नहीं। प्रभु! आहाहा! वह हलुवा हाथ में ले सकता नहीं। जड़ पदार्थ है। जड़ की पर्याय का उत्पाद आत्मा से कभी होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात!

सब कुछ बाहर से ढूँढ़ता है। दो बोल लिये - ज्ञान और आनन्द। फिर (कहा) बाहर से ढूँढ़ता है। बाहर से मिलेगा। आहाहा! वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ। शरीर में अनुकूलता हो तो मुझे पुरुषार्थ मिलेगा, वीर्य मिलेगा। आहा..! प्रभुता अन्दर भरी है। उसके बजाय मुझे बाहर अधिकारी, अधिकार, सेठाई से मुझे प्रभुता मिलेगी। यहाँ मिलता नहीं (तो) बाहर ढूँढ़ता है। स्वच्छता। अपने में भरी है स्वच्छता। ४७ गुण है, समयसार में पीछे। उसमें स्वच्छता नाम का गुण है। आहाहा!

अरे..! ४७ गुण में तो भगवान ने ऐसा कहा है कि एक भाव नाम का गुण अन्दर

है, तो अपने जो कुछ चाहिए, वह सब पर्याय उसमें से प्रगट होती ही है। भाव नाम के गुण से, जिसने भावगुण के धरनेवाले आत्मा को पकड़ लिया, अकेले गुण को नहीं, भावगुण को धरनेवाला भगवान आत्मा को जिसने पकड़ लिया, उसकी पर्याय में इस भावगुण के कारण सबकी, शान्ति आदि, स्वच्छता आदि, सुख, ज्ञान, आनन्द, श्रद्धा सबकी पर्याय प्रगट होती ही है। बाहर ढूँढ़ने जाना नहीं पड़ता। आहाहा! कठिन बात है, भाई! सूक्ष्म बात है।

यहाँ वह कहते हैं, **सब कुछ बाहर से ढूँढ़ता है**। सब कुछ अन्दर है। सब कुछ अन्दर है, उसका तो लक्ष्य करता नहीं और बाहर से ढूँढ़ता है। **स्वयं भगवान होने पर भी...** आहाहा! **स्वयं भगवान होने पर भी भीख माँगता रहता है**। आहाहा! यहाँ तो सब भगवान है, बापू! आहाहा! देह-स्त्री का, पुरुष का देह तो मिट्टी-धूल का है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, **स्वयं भगवान होने पर भी...** आहाहा! स्वयं भगवान है। आहाहा! जीव भीख माँगता फिरता है। भगवान भीख माँगता है।

दरबार आये थे, भावनगर। करोड़ रुपया। एक करोड़ का तालुका है। एक करोड़ की कमाई है, पूरे साल की। यहाँ आते हैं, यहाँ तो राजा भी आवे और सेठ भी आवे। एक बार राजा आये, दो-तीन बार आये थे। मानस्तम्भ (प्रतिष्ठा के समय) आये थे। एक बार कहा, दरबार! जो कोई महीने में एक लाख या पाँच लाख माँगे, वह छोटा भिखारी है और विशेष माँगे, करोड़ माँगे वह बड़ा भिखारी है। बड़ा भिखारी... भिखारी। माँगण-भिखारी। लाओ, लाओ, लाओ.. अरे..! प्रभु! तेरे में कहाँ नहीं तो कि तू बाहर से ढूँढ़ता है। दरबार नरम थे। भावनगर दरबार। चल बसे। यहाँ आये थे। दो-तीन बार आये थे। मानस्तम्भ के समय आये थे। आहाहा!

बाहर से ढूँढ़ता है, भीख माँगता है, ऐसा कहते हैं। अन्दर में समृद्धि भरी है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, ईश्वरता, परमेश्वरता। आहाहा! सब समृद्धि आत्मा में भरी है। वह सब कुछ बाहर ढूँढ़ता है। **स्वयं भगवान होने पर भी भीख माँगता रहता है**। आहाहा!

ज्ञानी ने चैतन्यमहल के ताले खोल दिये हैं। पहले में अज्ञानी ने ताले लगा दिये थे न? **ज्ञानी ने चैतन्यमहल के ताले खोल दिये हैं**। मैं तो चैतन्य ज्ञायकस्वरूप तीनों काल

में मेरे ज्ञायकभाव में कभी कमी आयी नहीं, कभी विरुद्धता हुई नहीं। आहाहा! कभी पर का आवरण मेरी चीज़ में त्रिकाली में आया नहीं। आहाहा! मैं एक चैतन्य ज्ञायकस्वरूप हूँ और राग की एकता तोड़कर, राग का सूक्ष्म भाव, उसकी भी एकता तोड़कर मैं आनन्द का घर हूँ। आहाहा! ऐसे आत्मा के महल का ताला तोड़ दिया है। आहा..! ऐसी बात है। क्या करना, इसमें सूझता नहीं। अन्दर करना है, भाई! बाहर में तो बाहर की क्रिया तो स्वतन्त्र जड़ की होती है। अपने से हाथ भी हिलता नहीं। यह भाषा भी अपने से होती नहीं। आहाहा! और अपने में अन्दर रागादि विकल्प होते हैं, वह भी अपनी चीज़ नहीं। पुण्य और पाप, दया और दानादि का विकल्प उठता है, वह भी विकार और दुःख है। प्रभु अविकारी और सुख है। अन्दर आत्मा अविकारी और आनन्द है। उस ओर का ताला ज्ञानी ने खोल दिया है। आहाहा! है?

ज्ञानी ने चैतन्यमहल के ताले खोल दिये हैं। सेठ! है? आपके पैसे का खोल दिया, ऐसा नहीं। चैतन्यमहल का ताला खोल दिया। आहाहा! चैतन्यरूपी महल प्रभु अन्दर, महल अर्थात् बड़ा मकान होता है न? महल। मुम्बई में ३०-३०, ३२-३२ मंजिल का महल होता है। अमेरिका में तो बहुत ऊँचा होता है। करोड़ों रुपये का।

मुमुक्षु :- १०५ मंजिलें।

पूज्य गुरुदेवश्री :- १०५ मंजिले। कहो! १०५। आहाहा! उसमें धूल में भी है नहीं।

यहाँ तो चैतन्यमहल के ताले खोल दिये हैं। शरीरप्रमाण भगवान विराजता है। उसमें विकल्प जो राग का उठता है, अरे..! दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, लक्ष्मी देने का भाव आदि भाव सब राग है। वह राग और भगवान आत्मा दोनों भिन्न है। दो भिन्न का ताला एकता करके अनादि से (लगाया है); उसे तोड़ दिया।

अन्तर में ज्ञान-आनन्दादि की अखूट समृद्धि देखकर,... आहाहा! यहाँ तो आत्मा की बात है, प्रभु! आहाहा! बाहर की बात में तो लूखा लगे। अन्तर में.. आहाहा! **ज्ञान-आनन्दादि की अखूट समृद्धि देखकर,...** किसको? ज्ञानी। अपनी चीज़ में नजर करने से जो निधान अपना देखा, उसमें अखूट खजाना भरा है। राग की एकता तोड़कर जो

स्वभाव की समृद्धि का भान हुआ, आहाहा! उसे देखकर, **थोड़ी भोगकर,...** अखूट समृद्धि को देखकर। अन्दर है तो अखूट समृद्धि है। परन्तु उसका भोग-अनुभव एक समय में नहीं होता। आहाहा! उस ओर जितना लक्ष्य गया, उतनी पर्याय का वेदन, पर्याय में सुख का-आनन्द का होता है। ध्रुव का वेदन नहीं होता। ध्रुव जो त्रिकाली भगवान है, उसमें अनन्ती समृद्धि पड़ी है। उस अनन्ती का वेदन एक समय में नहीं होता। आहाहा! उसका भान हुआ तो अनन्तवें भाग में पर्याय में.. ऐसा कहा है न? पर्याय में **थोड़ी भोगकर,...** पर्याय में भोगना है। द्रव्य में भोगना नहीं है।

द्रव्य क्या? द्रव्य पैसा है? द्रव्य-वस्तु, वस्तु। त्रिकाली चीज़। भगवान अन्दर द्रव्य त्रिकाली चीज़ वह द्रव्य। द्रव्य में.. आहाह! **थोड़ी भोगकर,...** द्रव्य में दृष्टि हुई है। पर्याय में तो थोड़ा आनन्द, थोड़ी शान्ति और थोड़ा सन्तोष.. अरे..! अनन्त गुण का एक अंश व्यक्त प्रगट हुआ, उसे **थोड़ी भोगकर,...** आहा..! अन्तर की बात है। अन्तर स्वरूप तो पूर्ण भरा है। परन्तु द्रव्य का अनुभव-वेदन नहीं होता। वेदन तो उस ओर का जितना लक्ष्य करके शक्ति में से व्यक्तता प्रगट होती है, उतना वेदन होता है। आहाहा! अरेरे..! सब अनजानी चीज़। दुनिया की परिचयवाली चीज़ से (भिन्न) चीज़ ही दूसरी है। आहा..!

कहते हैं, ताला खोल दिया तो देखा क्या? **ज्ञान-आनन्दादि की अखूट समृद्धि देखकर,...** आहा..! चैतन्यमूर्ति, आनन्दमूर्ति, स्वच्छमूर्ति, प्रभुमूर्ति ऐसे अनन्त गुण को देखकर उसकी पर्याय में अल्प भोग आता है। ध्रुव का भोग आता नहीं। समझ में आया? ध्रुव चीज़ त्रिकाली है, उसका अनुभव होता नहीं। ध्रुव, वर्तमान ध्रुव की ओर, ध्रुव की ओर का जितना झुकाव है, उतनी पर्याय में उसका अनुभव-भोगना होता है। आहाहा! अरेरे..! कभी जिन्दगी में सत्य क्या है, यह सुना ही नहीं। तो सत्य के पंथ पर कहाँ जाएगा? आहाहा! अनन्त काल से चार गति।

मुमुक्षु :- बिना भान भगवान।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा! 'अनन्त कालथी आथड्यो विना भान भगवान, सेव्या नहि गुरु संतने..' गुरु-सन्त क्या कहते हैं, उसकी खबर नहीं की। सेवा करने का अर्थ पैर दबाना नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ओहोहो! अनन्त समृद्धि द्रव्य में-वस्तु में पड़ी है, उस समृद्धि को देखकर देखने में पूर्ण है, परन्तु वेदन में थोड़ी भोगता है। पर्याय में भोगना है। आहाहा! भाषा सादी है, प्रभु! परन्तु कहीं चलता नहीं हो, इसलिए यह नया लगे। आहाहा! ये दुनिया की धूल-पैसा, इज्जत, स्त्री,पुत्र, महल और मकान। अरेरे! प्रभु! तू कहाँ रुक गया? कहाँ तू है और कहाँ तेरी दृष्टि रुक गयी? कहाँ तेरी समृद्धि हैऔर कहाँ तेरी चीज़ नहीं है, वहाँ तू रुक गया। तेरे में नहीं है, वहाँ रुक गया और तेरे में है, वहाँ आया नहीं। आहाहा! भाषा तो सेठ! सादी है, सरल है।

मुमुक्षु :- दो शब्द का ज्ञान न हो, वह भी समझ सके।

पूज्य गुरुदेवश्री :- चार कक्षा पढ़ा हुआ, हमारे धर्मचन्दजी कहते हैं, चार कक्षा पढ़ा हो तो भी ख्याल में आये। बहुत पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। संस्कृत, व्याकरण, ऐसा-वैसा... आहाहा! इसमें ख्याल में आये न पहले, प्रभु! कि यह चीज़ है। आहाहा!

अनन्त **अखूट समृद्धि देखकर,...** अखूट है, देखो! खत्म न हो ऐसी समृद्धि अन्दर है। आत्मा नित्यानन्द प्रभु अनादि-अनन्त (है), ऐसी अनादि-अनन्त शक्ति है। जैसे आत्मा अनादि-अनन्त है, वैसे गुण, गुण अनन्त है, वह भी अनादि-अनन्त है। आहाहा! **अखूट समृद्धि देखकर, और थोड़ी भोगकर,...** पूरा द्रव्य नहीं भोगा जाता। द्रव्य तो ध्रुव है। ध्रुव का अनुभव नहीं होता। अनुभव-वेदन पर्याय का होता है। अरेरे..! यह क्या है? ऐसी चीज़ क्या है? अनुभव ध्रुव का नहीं होता। वेदन-अनुभव में, संसार में दुःख का वेदन है और धर्मी को सुख का पर्याय में वेदन है, ध्रुव का वेदन है नहीं। आहाहा! पर्याय का ही वेदन है।

१७२ गाथा, प्रवचनसार। उसका २०वाँ बोल। २०वें बोल में ऐसा लिया है, प्रत्यभिज्ञान (का विषय) ऐसा जो द्रव्य-वस्तु, जो कल था, वह आज है, आज है, वह कल रहेगा, अनन्त काल है, वह यह है और अनन्त काल रहेगा, ऐसा प्रत्यभिज्ञान (का विषय) जो द्रव्य-वस्तु है,... आहाहा! उसको तो स्पर्शता नहीं, उसको तो छूता नहीं और अपनी पर्याय में सब वेदन है। २०वें बोल में है। प्रवचनसार-१७२ गाथा। गजब बात है! भाई! मूल बात बहुत गजब है!!

अखूट खजाना द्रव्य है, परन्तु वहाँ तो ऐसा कहा है, मैं तो द्रव्य में एकाग्र होकर जितना आनन्द और शान्ति आदि अनन्त गुण की प्रगट पर्याय हुई, वह मैं। आहाहा! १७२ गाथा, प्रवचनसार। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान की वाणी। उसकी १७२ गाथा में अलिंगग्रहण में २० बोल है। एक-अलिंशगग्रहण (शब्द के) छह अक्षर का बीस (बोल का) बड़ा पाठ है। उसमें २०वें बोल में यह है। अलिंगग्रहण, प्रवचनसार। आहाहा! क्या?

मैं प्रत्यभिज्ञान अर्थात् त्रिकाली हूँ। परन्तु मेरा वेदन नहीं (होता), वेदन तो पर्याय का आता है। आहाहा! ये सुना ही नहीं। अनुभव जो वेदन होता है... यह संसार में जो वेदन होता है, वह भी पर्याय का वेदन है। द्रव्य तो ध्रुव त्रिकाल पड़ा है। संसार में कल्पना मानता है, यह सुखी और दु:खी, वह सब वेदन पर्याय, पर्याय है मिथ्या। आहाहा! अपना आनन्दस्वरूप भगवान, उसका पर्याय में वेदन आता है। वह यहाँ लिया, थोड़ी भोगकर। आहाहा!

पहले कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ था,... आहाहा! २०वें बोल में तो वहाँ प्रवचनसार में ऐसा कहा, मैं तो चैतन्यस्वरूप त्रिकाल हूँ, परन्तु वह मैं नहीं। मुझे तो अन्तर में से जो आनन्द और शान्ति, अनन्त गुण की शक्ति जो पड़ी है, उसमें जो व्यक्तता एकाग्र होकर जितनी बाहर आती है, वह मैं आत्मा। आहाहा! समझ में आया? पैसा आत्मा नहीं, पैसे की ममता आत्मा नहीं, पैसे में सुख नहीं, पैसे की ममता में सुख नहीं, दु:ख (है)। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि आत्मा का भी वेदन नहीं। त्रिकाली जो ध्रुव है, उसका वेदन नहीं होता। यह क्या है? क्या चीज़ है? आहाहा! वेदन अनुभव, यह अवस्था में होता है। अरे! कभी सुना नहीं। क्या चीज़ है? अनन्त-अनन्त समृद्धि से भरा हुआ आत्मा, परन्तु वेदन तो पर्याय में होता है। अपनी पर्याय में जितनी द्रव्य में एकाग्रता हुई, उतनी प्रगट व्यक्तता हुई। अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु, उसमें एकाग्र होकर जितनी अनन्त शक्ति में से अनन्त शक्ति की व्यक्तता प्रगट पर्याय में हुई, उसका अनुभव है। आहाहा!

पर्याय न हो तो वेदन ही नहीं है। आहाहा! परन्तु पर्याय का बिना का कोई द्रव्य है ही नहीं। तीन काल में पर्याय बिना का कोई द्रव्य है नहीं। संसार में दु:ख का-आकुलता का वेदन पर्याय में (है)। साधक में-सम्यग्दृष्टि आदि साधक में शान्ति का, आनन्द का,

स्वच्छता आदि अनन्त गुण का अंश का वेदन है। परमात्मा को सम्पूर्ण अंश का वेदन है। वेदन है पर्याय का, द्रव्य का नहीं। यह क्या ? आहा.. !

(समयसार) ७४वीं गाथा में कहा है। ७४। आस्रव अध्रुव (है)। ७४वीं गाथा है न ? भाई ! कर्ताकर्म (अधिकार)। पुण्य और पाप का भाव वेदन में आता है। वह आस्रव दुःख है। आहाहा ! वह अध्रुव है। भगवान ध्रुव है। आहाहा ! ७४ गाथा में है। अध्रुव और ध्रुव। भगवान आत्मा तो ध्रुव है, परन्तु उसमें अज्ञानी को अनादि से पुण्य और पाप जो अध्रुव है, उसका उसको अनुभव और वेदन है। ज्ञानी को उसमें से थोड़ा भी अन्तर की शान्ति का और आनन्द का थोड़ा भी पर्याय में वेदन है। ध्रुव में वेदन नहीं है। यह क्या कहते हैं ? अरेरे.. ! अन्दर जो ध्रुव चीज़ है, ध्रुव नित्य, उसमें परिणमन तो है नहीं। परिणमन पर्याय में है। तो पर्याय में अनुभव और भोगना पर्याय का है। संसार में भी कल्पना करता है, वह पर्याय में कल्पना करता है कि मैं सुखी हूँ। है दुःखी। आहा.. ! ऐसे धर्मी में पर्याय में सुख का वेदन आता है। ध्रुव का नहीं। ध्रुव तो त्रिकाली चीज़ पड़ी है। अरेरे.. ! ऐसा सुनने मिले नहीं। यह मनुष्यपना.. आहाहा ! यह बात ही अभी सब फेरफार हो गयी।

वह कहा, मैं तो अखूट खजाना हूँ। देखा अखूट खजाना। वेदन में आया थोड़ा। है ? **ज्ञान-आनन्दादि की अखूट समृद्धि देखकर, और थोड़ी भोगकर, पहले कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ था,...** आहाहा ! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. काल में चौरासी लाख योनि में भटकते हुए कभी पर्याय में शान्ति का वेदन नहीं था। वह पर्याय अर्थात् अवस्था में शान्ति का वेदन हुआ। **ऐसी विश्रान्ति उसे हो गयी है।** जिसका अनुभव अनन्त काल में नहीं हुआ था, ऐसी विश्रान्ति उसे हो गयी। विश्रान्ति हो गयी अन्दर में। आहाहा ! मार्ग ऐसा (है)। इसमें पकड़ना मुश्किल पड़े। मिले नहीं, सुनने मिले नहीं, बेचारे क्या करे ? भटकते (रहता है)। मरकर चौरासी के अवतार में वापस जाएँगे। अरेरे.. !

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! एक बार सुन तो सही। तेरी ध्रुव चीज़ है और आस्रव है, वह अध्रुव है। ७४ गाथा। आस्रव अर्थात् पुण्य-पाप, वह अध्रुव है और दुःखरूप है और आत्मा दुःख का कारण नहीं, आत्मा तो आनन्द का कारण है। ऐसे जब आनन्द का कारण है, ऐसी त्रिकाली चीज़, उसकी समृद्धि जब प्रतीत में और अनुभव में आयी तो थोड़ा

भोगना पर्याय में हुआ। त्रिकाल तो वैसा का वैसा रह गया। आहाहा! समझ में आता है? है सूक्ष्म, प्रभु! परन्तु मार्ग तो यह है। अभी तो सब बदल गया, सब बात बदल गयी। आहाहा! ३९१ (पूरा) हुआ। ३९३ ? लिख लिया है। ३९३, बाद में ३९४। ठीक, उसमें लिखा है। कल तो एक पत्र आया है कि पूरा पढ़ना। परन्तु अभी तो इसमें से पढ़ते हैं, फिर बाकी के बाद में पढ़ेंगे।

जिसे भवभ्रमण से सचमुच छूटना हो, उसे अपने को परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके, अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर, सम्यग्दर्शन प्रगट करने का प्रयास करना चाहिए। यदि ध्रुव ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो तो जीव साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा? ज्ञायक की ध्रुव भूमि में दृष्टि जमने पर, उसमें एकाग्रतारूप प्रयत्न करते-करते, निर्मलता प्रगट होती जाती है।

साधक जीव की दृष्टि निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य पर होती है, तथापि साधक जानता है सबको;—वह शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों को जानता है और उन्हें जानते हुए उनके स्वभाव-विभावपने का, उनके सुख-दुःखरूप वेदन का, उनके साधक-बाधकपने का इत्यादि का विवेक वर्तता है। साधकदशा में साधक के योग्य अनेक परिणाम वर्तते रहते हैं परन्तु 'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है। पुरुषार्थरूप क्रिया अपनी पर्याय में होती है और साधक उसे जानता है, तथापि दृष्टि के विषयभूत ऐसा जो निष्क्रिय द्रव्य वह अधिक का अधिक रहता है।—ऐसी साधक-परिणति की अटपटी रीति को ज्ञानी बराबर समझते हैं, दूसरों को समझना कठिन होता है॥३९३॥

३९३। नीचे ३९२ छोड़कर। नीचे, नीचे। **जिसे भवभ्रमण से सचमुच छूटना हो,...** जिसको अथवा जिसे। **भवभ्रमण से सचमुच छूटना हो,...** सचमुच छूटना हो। मात्र बात करता है, ऐसे नहीं। अन्तर में छूटने का भाव हो... आहाहा! **जिसे भवभ्रमण से सचमुच छूटना हो, उसे अपने को परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके,...** आहाहा! अपने को परद्रव्य से-परपदार्थ से, राग से लेकर पूरी दुनिया। आहाहा! विकल्प राग दया, दान से लेकर राग से (लेकर) पूरी दुनिया, देव, गुरु और शास्त्र भी परद्रव्य है। **अपने को**

परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके,... आहाहा! है? **अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर,...** आहाहा! **अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव...** कायम रहनेवाला ज्ञायकस्वभाव। अनादि-अनन्त (अर्थात्) जिसकी शुरुआत नहीं, जिसका अन्त नहीं, ऐसा भगवान आत्मा ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की। परन्तु ध्रुव है क्या? ध्रुव तो परमाणु भी ध्रुव है। दूसरे छहों द्रव्य ध्रुव है। परन्तु यह तो ज्ञायकस्वभाव की ध्रुवता। आहाहा!

अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव... अपने। पर भी ध्रुव तो है। परन्तु **अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर,...** आहाहा! अन्दर में जाननस्वभाव-ज्ञानस्वभाव भगवान आत्मा त्रिकाली चैतन्य, उसकी महिमा लाकर **सम्यग्दर्शन प्रगट करने...** आहाहा! **प्रगट करने का प्रयास करना चाहिए।** वह आया न? सम्यग्दर्शन प्रगट करने का प्रयत्न करना चाहिए। पहले यह करना चाहिए। आहाहा! दूसरी सब बात बाद में। भक्ति का राग आता है, वह बाद में। परन्तु पहले यह करना चाहिए। इसके बिना तो सब बिना एक के शून्य हैं। आहाहा! सुनने में भी कठिन लगे। बात कभी सुनी न हो। आहाहा! बाहर ही बाहर भटक रहा है। आहाहा! अन्दर में सम्यग्दर्शन प्रगट करने का प्रयास प्रथम में प्रथम करना चाहिए। आहा..! आया न?

अपने **ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर,...** अन्दर ज्ञायकभाव है, जाननस्वभाव है, उसकी महिमा लाकर। दूसरी सब महिमा छोड़कर। आहाहा! भक्ति, दया, दान, भक्ति आदि के परिणाम की महिमा छोड़कर। उससे मिलता नहीं। लोग तो ऐसा कहते हैं, वह करते-करते होगा। व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। आहाहा! लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी। ऐसा अज्ञानी कहते हैं। ऐसा करो, ऐसा करो, भक्ति करो, व्रत करो, तप करो, उपवास करो, भगवान की यात्रा करो, उससे कल्याण होगा। प्रभु! कल्याण नहीं है, हाँ! वह एक शुभभाव है। आता है। शुभभाव धर्मी को भी अशुभ से बचने को आता है परन्तु वह धर्म नहीं है। वह पुण्य शुभभाव बन्ध का कारण है। आहाहा! मन्दिर आदि होते हैं। अनादि मन्दिर हैं। स्वर्ग में है, आठवें द्वीप में नन्दीश्वर द्वीप में बावन जिनालय हैं। एक-एक जिनालय में १०८ जिनकी रत्न की प्रतिमा हैं। परन्तु उसकी भक्ति, एकावतारी इन्द्र भी भक्ति करते हैं। एक भव के बाद मोक्ष जानेवाला इन्द्र है, भक्ति करता है, परन्तु जानत है कि, यह शुभभाव है, पुण्य है। पाप से बचने को पुण्य है। धर्म नहीं। आहाहा! कठिन काम पड़े।

अपने को परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके, अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर, सम्यग्दर्शन प्रगट करने का प्रयास करना चाहिए। आहाहा! है ? **यदि ध्रुव ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो...** आहाहा! अकेले रत्न भरे हैं! अन्यमति पढ़ते हैं तो (उन्हें भी लगता है कि), यह है क्या ? आहा..! एक-एक शब्द में कितना भरा है! बहुत संक्षिप्त भाषा। **यदि ध्रुव ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो...** क्या कहते हैं ? ज्ञायकस्वभाव ध्रुव चैतन्य त्रिकाली का पर्याय में अवलम्बन न हो, ध्रुव ज्ञायकभूमिका आश्रय न हो। किसको आश्रय ? पर्याय में। पर्याय अर्थात् अवस्था। अवस्था में यदि ध्रुव का आश्रय न हो **तो जीव साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा ?** आहाहा! बहुत सादी भाषा। आहा..! क्या कहा ?

यदि ध्रुव ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो... त्रिकाली। **तो जीव साधना का बल...** क्योंकि साधना का बल तो पर्याय को ध्रुव के अवलम्बन से होता है। वर्तमान पर्याय जो चलती है, उसका अवलम्बन तो ध्रुव है। उस ध्रुव का अवलम्बन ले तो साधना चलती है। तो साधन-धर्म का साधन प्रगट होता है। आहाहा! शब्द बहुत थोड़े, सादी भाषा। परन्तु बहुत सूक्ष्म बात, भाई! पद्मनन्दी पंचविंशति में लिया है। पद्मनन्दी पंचविंशति। पद्मनन्दी आचार्य हुए हैं। महासमर्थ! दिगमबर सन्तों की बात क्या करनी! ब्रह्मचर्य की बात की। ब्रह्मचर्य की बात की उसमें... नाम तो पंचविंशति है, परन्तु है छब्बीस अधिकार। छब्बीसवें अधिकार में ब्रह्मचर्य की व्याख्या (की है)। शरीर से तुम ब्रह्मचर्य पालते हो, वह ब्रह्मचर्य नहीं है, ऐसा कहा। बाल ब्रह्मचारी रहकर स्त्री के साथ विवाह नहीं किया, भोग लिया नहीं, इसलिए ब्रह्मचर्य। वह ब्रह्मचर्य नहीं है। वह तो शरीर की क्रिया नहीं हुई। शुभभाव है। वह ब्रह्मचर्य नहीं। ब्रह्मचर्य तो ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें चरना अर्थात् रमना, वह ब्रह्मचर्य है।

यहाँ तो दूसरा कहना है कि आचार्य ने ब्रह्मचर्य का बहुत वर्णन किया। शरीर से ब्रह्मचर्य पाला, मन से पाला, वचन से पाला, वह तो शुभभाव है। वह ब्रह्मचर्य नहीं। काया से जिन्दगी में स्त्री का विषय नहीं लिया, तो भी वह कोई धर्म नहीं है। वह ब्रह्मचर्य नहीं है। वह तो शुभभाव है। ब्रह्मचर्य तो ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द, उसमें रमना, वह ब्रह्मचर्य है। मुझे दूसरा कहना है, ऐसा कहकर विस्तार करके (कहते हैं), हे युवाओ! तुमको यह मेरी बात रुचे नहीं, मैं यह ब्रह्मचर्य की व्याख्या करता हूँ, यह तुम्हें न रुचे तो माफ करना,

प्रभु ! मेरे पास (यह है), क्या करना ? सेठ ! मुनि (कहते हैं) माफ करना, भाई ! मेरे पास दूसरी किस चीज़ की आशा रखेगा ? तुझे रुचे, वैसी आशा मेरे पास तो है नहीं। आहाहा ! गाथा थोड़ी है, परन्तु सूक्ष्म बहुत कहा है।

काया से आजीवन ब्रह्मचर्य पाले, वह भी नहीं। वह तो शरीर अटका है। ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द का नाथ, उसमें चरना अर्थात् रमना, ऐसी व्याख्या करने के बाद कहा, हे श्रोताओ ! हे युवाओ ! तुम्हें बाहर के प्रेम के कारण मेरी बात न रुचे, न सुहाये तो प्रभु ! क्षमा करना। ऐसा कहा है। सेठ ! आहाहा ! मेरे पास क्या आशा रखेगा ? मेरे पास तो जो है, वह तुमको कहूँगा। आहाहा ! तुम्हें न रुचे और न सुहाये तो प्रभु ! अरुचि मत करना। आहाहा !

यहाँ वह कहते हैं कि **ध्रुव ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो...** क्या कहते हैं ? त्रिकाली द्रव्य का यदि आश्रय न हो **तो जीव साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा ?** आहाहा ! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो साधना; यदि आत्मा के आश्रय से न हो तो किसके आश्रय से प्रगट करेगा ? आहाहा ! भाषा.. है ? बहिन की भाषा है। इसे पत्थर में उत्कीर्ण करनेवाले हैं। जन्म दिवस था न ? ढाई लाख तो उस दिन आये। एक लाख से तो बहिन का सम्मान किया। एक लाख रुपया सम्मान का आया। यह दूज, सावन कृष्ण-दूज। और एक लाख (वचनामृत) उत्कीर्ण करने के आये। दो लाख। और पचास हजार, जमशेदपुर का नरभेराम सेठ का लड़का आया था। उसकी माता को बहुत प्रेम था। उसकी माता ने यहाँ मकान लिया था। उसने पचास हजार दिया। यह दूज, सावन कृष्णा दूज।* आज सप्तमी हुई। यहाँ हुआ था। बहिन का ६७वाँ (जन्म जयन्ति) दिन। सावन कृष्णा-दूज। आहा.. ! उसका (मन्दिर) बनायेंगे। बात यह है कि, यह मकान...

यदि जीव को यहाँ का आश्रय नहीं है तो किसके बल से पर्याय में आश्रय करेगा ? पर्याय में आश्रय, पर्याय के आश्रय से नहीं होगा। पर्याय में तो द्रव्य के-ध्रुव के आश्रय से होगा। आहा.. ! विशेष कहेंगे... (*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव !)

---

* **हिन्दी तिथि के अनुसार भाद्रपद कृष्ण दूज**

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - ९, गुरुवार, तारीख १८-९-१९८०
वचनामृत -३९३ प्रवचन-३७

आज पाँचवाँ धर्म। पाँचवाँ दिन है न? सत्य धर्म। उत्तम सत्य धर्म का पाँचवाँ दिन है।

णिवयणमेव भासदि, तं पालेदुं असक्कमाणो वि।
ववहारेण वि अलियं, ण वददि जो सच्चवाई सो॥३६८॥

जिनवचन में जो कहा है, उसे बराबर मानना, जानना। अपने से पल सके नहीं तो उस दोष को दोष जानना। है न? **तं पालेदुं असक्कमाणो** आचार आदि पालना अशक्य हो। सेठ नहीं आये हैं? समझ में आया? अपनी शक्ति अनुसार पाले। परन्तु अशक्ति हो तो छिपाये नहीं कि हमारा दोष नहीं है। दोष को दोष बराबर जाने। और दोष को दोष बराबर कहे। शास्त्र में लेख है, अष्टपाहुड़ में, कि चरित्रभट्टा सिझंती, दंसणभट्टा न सिझंति। चारित्रदोष है, अन्दर लगता हो... आये, सेठ आये। चारित्रदोष लगता हो तो वह तो सिझंति। मुक्ति में जाएगा। क्योंकि ख्याल में है। वह दोष ख्याल में है। परन्तु दंसणभट्टा- जो श्रद्धा से भ्रष्ट है, वास्तविक वीतरागतत्त्व, परमात्मा ने कहे तत्त्व से विरुद्ध कुछ भी हो तो वह तो संसार मे भटकेगा। क्या कहा, समझ में आया?

जिनवचन में जो कहे **उसमें जो आचार आदि कहा गया है, उसका पालन करने में असमर्थ हो...** पालन करने की शक्ति न हो तो उसे छिपाये नहीं। सत्यवादी है न। अपना दोष लगा हो, उसे छिपाये नहीं। क्योंकि ऐसा सिद्धान्त है कि चरित्तभट्टा सिझंति। अष्टपाहुड़ में पहले दर्शनपाहुड़ में है कि कदाचित् कोई चारित्रभ्रष्ट हो, चारित्र में दोष हो तो वह तो सिझंति। क्योंकि उसके ख्याल में है कि यह दोष है। परन्तु दंसणभट्टा न सिझंति। आहाहा! जो श्रद्धा-भ्रष्ट है, श्रद्धा की मूल में भूल है, उसकी कभी मुक्ति होगी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सिद्धान्त में ऐसा लेख है। दर्शनपाहुड़, अष्टपाहुड़, कुन्दकुन्दाचार्य। चरित्तभट्टा सिझंति। चारित्र में दोष लगा हो तो उसे ख्याल में है तो वह तो छोड़कर मुक्ति होगी। परन्तु दंसणभट्टा न सिझंति। परन्तु श्रद्धा भ्रष्ट है उसकी मुक्ति कभी नहीं होती। दंसणभट्टा, भट्टा ज्ञानभट्टा, चरित्तभट्टा। दर्शनभ्रष्ट है (अर्थात्) वास्तविक तत्त्व की स्थिति से वह तो दर्शन से भ्रष्ट है, ज्ञान से भ्रष्ट है, चारित्र से भ्रष्ट है। ऐसा पाठ है। आहाहा! उसकी तो लोगों को दरकार नहीं है कि दर्शन क्या (है)? क्रिया पर लक्ष्य। बाहर की यह क्रिया, बाहर की वह क्रिया, बाहर की यह क्रिया। यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य दर्शनपाहुड़ में तो यह स्पष्ट बात करते हैं। मुनिव्रत धारण (किया है) और मुनि ऐसा कहे कि चरित्तभट्टा सिझंति। सम्यग्दर्शन है। अपना अनुभव आत्मा का भान है मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, फिर भी पर्याय में चारित्र का दोष लगता है। विषय की वासना, क्रोध, मान, लड़ाई का भाव ऐसा समकिती को भी आता है। आहाहा! तो भी ऐसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, वह दोष है, फिर भी चरित्तभट्टा सिझंति। क्योंकि उसके ख्याल में है। ज्ञान में है कि यह दोष है, वह आदरणीय नहीं है। कर्म के निमित्त की प्रेरणा से अपने में अपने अपराध से विकार हो गया। ऐसा ज्ञानी को ख्याल में है। आहा..! विकार हुआ है फिर भी, चारित्रदोष है, फिर भी कुन्दकुन्दाचार्य दर्शनपाहुड़ में कहते हैं कि चरित्तभट्टा सिझंति। वह दोष उसके ख्याल में है कि मेरे में यह दोष है, वासना उठी है, इस प्रकार का राग है। दंसणभट्टा न सिझंति। आहाहा! सत्य यह है, सत्य धर्म यह है। आहाहा!

ऐसा भगवान ने कहा उससे कुछ भी किंचित् भी फेरफार, एक अक्षर का भी फेरफार हो तो वह मिथ्यादृष्टि है। आहा..! अष्टपाहुड़ में लिखा है, भाई! अष्टपाहुड़ में सूत्रपाहुड़ है न? वहाँ विस्तार किया है। विस्तार से लिखा है और मूल पाठ में है। सिद्धान्त जो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा, उसमें एक अक्षर भी मान्यता में फेरफार है, सत्य से विरुद्ध (मान्यता है).. आहाहा! तो वह भ्रष्ट है, श्रद्धा से भ्रष्ट है। परन्तु चारित्रभ्रष्ट में अपने में ख्याल में है कि यह दोष है। अपने में क्रोध आता है, थोड़ा राग आता है, विषयवासना भी समकिती को आ जाती है। आहाहा! खबर है, ख्याल है। शास्त्र कहते हैं कि चरित्तभट्टा सिझंति। सेठ! उसके ख्याल में है, उसकी श्रद्धा में है कि मेरे में चारित्रदोष में फेरफार हो गया। फिर भी उसकी मुक्ति होगी। क्योंकि उसके ख्याल में है तो वह छोड़ देगा। परन्तु

जिसको श्रद्धा का ख्याल ही नहीं है कि क्या चीज़ है और एक अक्षर भी विपरीत हो, ऐसा पाठ है। आहाहा! सिद्धान्त में जो कहा.. सूत्रपाहुड़ में पाठ है। अष्टपाहुड़ है, उसमें दूसरा सूत्रपाहुड़ है। उसमें एक अक्षर भी जो भगवान ने कहा, उसमें फेरफार माने.. आहा..! तो असत्य माननेवाला श्रद्धा से भ्रष्ट है तो उसकी कभी मुक्ति होगी नहीं। वह सत्य धर्म है। जैसा सत्य है, ऐसी श्रद्धा करता है। परन्तु चारित्र में दोष हो तो भी छोड़ेगा और क्रमश: (मुक्ति में जाएगा)।

श्रेणिक राजा। क्षायिक समकिती। हजारों रानियाँ। हजारों राजा चँवर ढाले। फिर भी समकिती (है)। आहाहा! फिर भी समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। क्या कहा? ओहोहो! ऐसे राग में पड़े हैं, स्त्री आदि में विषय में पड़े हैं, फिर भी समय-समय में क्षायिक समकिती आत्मज्ञानी यथार्थ है तो समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। ऐसे दोष के काल में भी तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। आहाहा! क्योंकि सत्य ख्याल में है। सत्य की यथार्थ प्रतीति का अनुभव है। तो दोष है, वह उसके ख्याल में है। वह दोष छोड़ेगा और चारित्र निर्मल करेगा और मोक्ष होगा। परन्तु श्रद्धा में थोड़ा भी फेरफार हो... आहाहा! जो भगवान ने कहा, उससे कुछ भी दूसरा माने तो उसको धर्म होता नहीं, मोक्ष होता नहीं। यह सत्य धर्म है।

वचनामृत-३९३। ३९३ न? ३९३ है। फिर से लेते हैं, फिर से पहले से। ३९३। **जिसे भवभ्रमण से सचमुच छूटना हो,...** ३९३। प्रथम पंक्ति। **जिसे भवभ्रमण से सचमुच...** सचमुच, हों! ऐसे कहे कि हमें भवभ्रमण नहीं करना है और हमें जन्म-मरण से (छूटना है), ऐसा तो बोले। उसमें कथन में क्या? **जिसे भवभ्रमण से सचमुच छूटना हो,...** यथार्थपने उसे भव लेना ही नहीं है, भव करना ही नहीं है। ऐसी अन्तर दृष्टि में जिसकी दृष्टि है, **उसे अपने को परद्रव्य से भिन्न...** आहाहा! शरीर, वाणी, कर्म से तो भिन्न, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत, मकान, व्यापार-धन्धे से समकिती तो भिन्न है। आहाहा! व्यापार होता है परन्तु अन्दर में स्वामीपना नहीं होता। अज्ञानी को तो स्वामीपना होता है। हम करते हैं, हम करते हैं, हमारा है। हमारा आचरण है, हमारा धन्धा है, हमारा व्यापार है। हम व्यवस्थापक, हम बराबर व्यवस्था करते हैं। वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। वह जैन नहीं। उसे जैन की श्रद्धा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

वह कहते हैं कि **अपने को परद्रव्य से...** परद्रव्य में तो स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी... अरे..! देव, गुरु और शास्त्र भी परद्रव्य में आये। **परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके,...** परपदार्थ से, मैं बिल्कुल भिन्न हूँ। मेरे में राग, शरीर, कुटुम्ब, धन्धा, व्यापार, पैसा का कोई सम्बन्ध नहीं है। वह चीज़ बिल्कुल भिन्न है, मैं बिल्कुल भिन्न हूँ। ऐसा निश्चित करके **अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर,...** आहाहा! बहुत अच्छी बात है। **अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर,...** पर्याय है। परन्तु वह पर्याय ध्रुव का निर्णय करती है। आहा..! ध्रुव ज्ञायकभाव की महिमा। महिमा करनेवाली पर्याय है। महिमा करना है ध्रुव की। आहाहा! क्या? त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप भगवान चैतन्यमूर्ति आनन्दकन्द प्रभु, उसका श्रद्धान करना है, उसकी महिमा लाकर। महिमा करता है पर्याय में, महिमा करता है पर्याय-अवस्था में, परन्तु महिमा करता है ध्रुव की। आहाहा! सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। तब उसको सम्यग्दर्शन प्रगट (होता है)। अभी तो धर्म की प्रथम सीढ़ी। आहाहा! है न? **सम्यग्दर्शन प्रगट करने का प्रयास करना चाहिए।** आहाहा!

यदि ध्रुव ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो... आहाहा! मुद्दे का माल है। यदि ध्रुव त्रिकाली भगवान नित्यानन्द अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसका—ज्ञायक भूमि का आश्रय न हो, उसका जिसको आलम्बन नहीं, अन्तर का आश्रय नहीं, त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवान आत्मा, उसका जिसको अवलम्बन नहीं-आश्रय नहीं, उस ओर झुकना नहीं है, समीपता नहीं है, आहाहा! वह **जीव साधना का बल...** वह जीव साधना का साधन, मोक्ष का साधन, वह **साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा?** आहाहा!

मुमुक्षु :- अनुभव की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- मुद्दे की रकम है। आहाहा! बहिन बोले थे। आहा!

क्या कहते हैं? अपना ध्रुव त्रिकालीस्वभाव वर्तमान पर्याय है। वह पर्याय त्रिकाल का निर्णय करती है, अनुभव करती है। त्रिकाली जो ध्रुव स्वभाव, उसका पर्याय निर्णय करती है। और **यदि ध्रुव ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो...** ऐसा त्रिकाली भगवान आत्मा ध्रुव ज्ञायकस्वरूप, उसका आश्रय न हो तो जीव साधना का बल-धर्म का साधना का बल, मोक्षमार्ग की साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा? आहाहा! समझ में आया?

मुद्दे की रकम है। दरकार कहाँ दुनिया को पड़ी है। अरेरे..! अनन्त-अनन्त भव कर-करके मर गया। और अभी जिसको अनन्त भव करने हैं,... भवभ्रमण से सचमुच छूटने का भाव हो, उसकी बात है। आहा..!

यहाँ कहते हैं, अन्तर में ध्रुव स्वरूप भगवान, उसका—ज्ञायक-भूमि का आश्रय न हो... आहाहा! नित्यानन्द प्रभु का अवलम्बन न हो, नित्य ध्रुवस्वरूप का आधार-आश्रय-अवलम्बन... आहाहा! न हो तो जीव साधन का बल, अपने मोक्षमार्ग की साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा? प्रगट तो जो ध्रुव है, उसको दृष्टि में लेगा तो मोक्षमार्ग प्रगट होगा। ध्रुव लक्ष्य में लेकर प्रगट मोक्षमार्ग होगा। पर्याय, राग, दया, दान लक्ष्य में रहेगा तो संसार भटकने में है। आहाहा! मुद्दे की रकम है। आहाहा! क्या कहा?

अपनी चीज़ जो त्रिकाली ध्रुव है, उसका यदि आश्रय न हो तो जीव मोक्षमार्ग का साधन किसके आश्रय से करेगा? आहाहा! है? **बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा?** क्या? साधना का बल। बहुत संक्षेप में शब्द हैं। साधना का बल का अर्थ?-स्वरूप शुद्ध चैतन्य ज्ञायक, उसकी दृष्टि करके पर्याय में जो बल उत्पन्न हुआ - मोक्ष का मार्ग; तो यदि ध्रुव का आश्रय है नहीं, ध्रुव का अवलम्बन है नहीं, वह किसके आश्रय से साधना का बल, मोक्षमार्गरूपी साधन। मोक्षमार्ग का साधन किसके आश्रय से करेगा? किसके आश्रय से प्रगट मोक्षमार्ग करेगा? आहाहा! ऐसी बात। पूरी दुनिया भटकने में पड़ी है। अरेरे..!

यहाँ तो कहते हैं, अन्दर भगवान ध्रुव.. आहा..! नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि प्रगट करके समकित प्रगट करना। यदि ऐसे ध्रुव ज्ञायकभाव का आश्रय न हो तो आत्मा साधना का बल, मोक्षमार्ग की साधना का बल किसके आश्रय से प्रगट करेगा? किसके अवलम्बन से प्रगट करेगा? किसके आधार से पर्याय में उत्पन्न होगा? आहाहा! लोगों ने दरकार की नहीं। जहाँ-तहाँ मिला उसमें (घुस गये)। उसमें पैसे दो, पाँच, दस करोड़ मिले.. मर गया, वहीं अटक गया। आहाहा! और इज्जत-कीर्ति धूल.. धूल। आहाहा!

क्या कहते हैं? बहुत ही संक्षिप्त शब्दों में (कहते हैं), आत्मा सचमुच भवभ्रमण से रहित होने का भाव हो तो एक त्रिकाली ध्रुव का अवलम्बन लाकर सम्यग्दर्शन प्रगट करना और उस ध्रुव ज्ञायकभाव के आश्रय बिना मोक्षमार्ग का बल, सम्यग्दर्शन-ज्ञान का बल है,

वह किसके आश्रय से प्रगट करेगा? ध्रुव के अवलम्बन बिना किसके आश्रय से प्रगट करेगा? सेठ! भाषा संक्षेप में है, परन्तु माल। आहा..! प्रभु! तेरी अन्दर प्रभुता पूर्ण पड़ी है। एक समय की पर्याय उस प्रभुता का आश्रय न ले.. आहाहा! एक समय की वर्तमान दशा त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव का आश्रय न ले, प्रभु! किसके आश्रय से वह साधन का बल प्रगट होगा? ध्रुव के आश्रय बिना तो साधन का बल प्रगट होगा नहीं। आहाहा! समझने में, सुनने में कठिन लगे। आहाहा! समझ में आया?

पर्याय और राग-द्वेष के आश्रयसे तो धर्म होता नहीं। शरीर के आश्रय से तो होता नहीं, ये तो परद्रव्य है। वह तो पहले कहा। कहा न? **अपने को परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके,...** यह पहले कहा। आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, लक्ष्मी, शरीर-मिट्टी-धूल, वाणी सब परद्रव्य है। **परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके,...** दूसरी पंक्ति है न? **अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर,...** आहाहा! अपना नित्यानन्द प्रभु ज्ञायकभाव, उसकी महिमा लाकर **सम्यग्दर्शन प्रगट करने का प्रयास करना चाहिए।** आहाहा! मुद्दे की रकम है। आज सत्य धर्म का दिन है। पाँचवाँ दिन। पाँचवाँ है न आज? सत्य धर्म। आहाहा!

कहते हैं कि सत्य धर्म सत्य ध्रुव के अवलम्बन बिना किसके अवलम्बन से प्रगट करेगा? आहाहा! पर्याय में सत्य धर्म-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्ष का मार्ग, वह शुद्ध ध्रुव ज्ञायकभाव के अवलम्बन बिना किसके आश्रय से साधना का बल प्रगट करेगा? आहाहा! भाषा बहुत संक्षेप में है, भाव बहुत गम्भीर है। आहा..! इसको पढ़कर तो अन्यमति वैष्णव लोग पढ़कर... आहाहा! कल दोपहर को ऐसा सपना आ गया कि एक साधु आया और एक आदमी आया। तो साधु ऐसा बोला कि यह वचनामृत क्या चीज़ है! आहाहा! सपने में। कल दोपहर में थोड़ी झपकी आ गयी। कल दोपहर को। वह साधु ऐसा बोला, गोपनाथ में बोला न? तो वह अन्दर से आ गया। वह वचनामृत क्या है! आहा..!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तुझे भवभ्रमण से सचमुच छूटने का भाव हो, भवभ्रमण से छूटने का सचमुच भाव हो तो ज्ञायकस्वभाव ऐसा त्रिकाली ध्रुव, उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन प्रगट होगा। आहाहा! और उसके अवलम्बन बिना, प्रभु! अनन्त का नाथ प्रभु अन्दर ध्रुव, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द सर्वांग अतीन्द्रिय आनन्द से भरा

पड़ा प्रभु, उसका अवलम्बन बिना किसके बल से तू मोक्ष के मार्ग का साधन करेगा? आहाहा! यह बड़ी बात है, छोटाभाई! आहाहा! प्रभु! तू छोटा नहीं है, नाथ! बड़ा है प्रभु अन्दर। आहाहा! अरे..! तू उस बड़े का आश्रय न ले, अरे..! अकाल पड़ता है न? अकाल। तो बड़े का आश्रय लिये बिना गरीब आदमी बारह महीने निर्वाह कैसे करेगा? पाठ है न शास्त्र में। अकाल पड़ता है न? अकाल। पैसा नहीं, कमाई नहीं, फसल नहीं (होती)। तो बड़े गृहस्थ का आश्रय बिना बारह महीने का निर्वाह कैसे करेगा? आहाहा! ऐसे बड़ा ध्रुव भगवान आत्मा, तेरी पर्याय में अकाल पड़ा है, प्रभु! आहाहा! अरे..! तुझे तेरी खबर नहीं है, प्रभु! तेरी पर्याय में अकाल है। आहाहा! उस अकाल का नाश करने का और सम्यग्दर्शन आदि मोक्षमार्ग प्रगट करने का सुकाल ध्रुव का आश्रय बिना किसके आश्रय से करेगा? आहाहा..! है तो पर्याय (आश्रय) करती है। क्या कहते हैं? अवलम्बन तो पर्याय करती है। ध्रुव अवलम्बन नहीं लेता। ध्रुव तो ध्रुव है, कायम है। आहाहा! अरे.. पर्याय क्या और ध्रुव क्या? पर्याय बिना का द्रव्य तो कभी तीन काल में एक समय होता नहीं। आहाहा! वह तो कल आ गया – सामान्य-विशेष स्वरूप। विशेष बिना तो सामान्य त्रिकाल द्रव्य कभी होता नहीं। कभी होगा नहीं। विशेष जो पर्याय है... आहाहा! वह यदि ध्रुव द्रव्य का अवलम्बन न ले तो किसके आश्रय से तुझे धर्म का बल प्रगट होगा? धर्म का बल तो ध्रुव के आश्रय से ही प्रगट होगा। आहाहा!

मुमुक्षु :- गुरु के उपदेश से नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री :- उपदेश अनन्त बार सुना। शास्त्र भी अनन्त बार पढ़ा। शास्त्र के अनन्त बार पैर छूए, जय भगवान, जय भगवान! सब राग है। अरे..! साक्षात् तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में विराजते हैं। वहाँ इन्द्र आते हैं। वहाँ तू अनन्त बार गया था। अनन्त बार सुना है। परन्तु ध्रुव के अवलम्बन बिना प्रगट होगा कहाँ से? आहाहा! पर के आलम्बन से तो प्रगट नहीं होगा। वह तो पहले कहा न? **अपने को परद्रव्य से भिन्न पदार्थ निश्चित करके,...** आहाहा! **अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर, सम्यग्दर्शन प्रगट करने का प्रयास करना चाहिए।** यह प्रयास करना चाहिए। आहा..! मूल वस्तु को छोड़कर... मूलं नास्ति कुतो शाखा। मूल ही नहीं है, वहाँ फिर शाखा, फल, फूल कहाँ से आयेगा? आहाहा!

यहाँ वह कहते हैं, इस शब्द में तो बहुत पड़ा है। **यदि ध्रुव ज्ञायक-भूमि का...** ध्रुव ज्ञायकभूमि-नित्य ज्ञायकभूमि-त्रिकाली जिसकी सत्ता है। ऐसी सत्ता का आश्रय न हो.. आहाहा! त्रिकाली भगवान का आश्रय न हो तो **जीव साधना का बल...** मोक्ष की साधना का बल, धर्म की साधना का बल, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र **किसके आश्रय से प्रगट करेगा ?** आहाहा! ऐसे ही पढ़ ले तो (समझ में आये, ऐसा नहीं है)। उसमें माल भरा है। अन्यमति भी एक बार पढ़कर ऐसा हो जाए.. आहाहा! क्या है यह चीज़! जैन में किसी को खबर नहीं, पढ़े तो कुछ खबर पड़े नहीं। व्यर्थ।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं, प्रभु एक बार सुन! तेरी चीज़ में दो चीज़ है। एक ध्रुव है, एक पर्याय है। वर्तमान अवस्था और एक त्रिकाली ध्रुव है। अब, यदि तुझे सचमुच भव से रहित होना हो तो पर्याय में ध्रुव के अवलम्बन बिना सम्यग्दर्शन प्रगट होगा नहीं। धर्म की पहली सीढ़ी.. आहाहा! धर्म की पहली भूमिका पर्याय में-अवस्था में ध्रुव के अवलम्बन बिना किसके बल से तू मोक्षमार्ग प्रगट करेगा ? मोक्षमार्ग प्रगट करने में तो ध्रुव का अवलम्बन है। आहाहा! 'थोड़ा लिखा, बहुत जानना।' आहा..!

ज्ञायक की ध्रुव भूमि में... दूसरा शब्द। ज्ञायक भगवान अन्दर चैतन्यमूर्ति प्रभु सच्चिदानन्द अनादि-अनन्त, ऐसे **ज्ञायक की ध्रुव भूमि में...** ध्रुव भूमि-ध्रुव स्थल-ध्रुव धाम। ध्रुवधाम में **दृष्टि जमने पर,...** आहाहा! ध्रुव भूमि में दृष्टि जमने पर। आहाहा! **उसमें एकाग्रतारूप प्रयत्न करते-करते,... उसमें एकाग्रतारूप प्रयत्न करते-करते, निर्मलता प्रगट होती जाती है।** दूसरा कोई उपाय है नहीं कि इतनी लक्ष्मी का खर्च किया और इतने मन्दिर बनाये और इतनी दया पाली, भगवान की इतनी माला गिनी। सब संसार (है)। राग है, सब विकल्प है। आहाहा! अरे..! यहाँ तो पुस्तक प्रकाशित हो गयी है। करीब ८०००० तो प्रकाशित हो गये हैं। यह बात कोई भी मध्यस्थ होकर पढ़े तो उसे खबर पड़े कि मार्ग तो यह है। आहाहा!

ज्ञायक की... ज्ञायक अर्थात् जाननेवाला-जानन-जाननस्वभाव। भगवन आत्मा ज्ञायक स्वभाव है। सब परवस्तु, राग भी पर, दया, दान का भाव, भक्ति का भाव भी पर (है)। एक **ज्ञायक की ध्रुव भूमि में दृष्टि जमने पर, उसमें एकाग्रतारूप प्रयत्न करते-**

करते,... आहाहा! ज्ञायकभाव में एकाग्रता करते-करते **निर्मलता प्रगट होती जाती है।** आहाहा !थोड़ी कठिन सूक्ष्म बात है, प्रभु! परन्तु मार्ग यह है। दुनिया ने ... दिया है, बेचारे को मार दिया है। यह करो, वह करो, यह करो, वह करो.. तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। मार डाला है। शास्त्र में लेख है। मरणतुल्य कर दिया है। उसमें है, यह शास्त्र है। कौन-सी गाथा है ? २८ है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य का श्लोक है। आहाहा! भगवान आत्मा कर्मसंयोग से ढका होने से राग और द्वेष, पुण्य और पाप के भाव के अस्तित्व में रमणता करने से, तू वहाँ रहने से मरण को प्राप्त हो रहा है। मरण को प्राप्त हो गया है। मानों जीव है ही नहीं। यह राग ही मैं हूँ और यही मैं हूँ। आहाहा! पुण्य और पाप, और उसका फल वही मैं हूँ, ऐसा करके... आहाहा! मरण को प्राप्त हो रहा है। भगवान आत्मा तो मरण-मानो कोई है ही नहीं। महाप्रभु है, वह तो कुछ है ही नहीं। और इस धूल में राग, पुण्य और पाप के फल में अपना मरण कर दिया। तू नहीं है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ सुनने मिले ? अथवा सेठ लोगों को मक्खन लगाये तो पैसे खर्च करे। इसलिए मानो आहा..! पैसा खर्च करे तो मानो लाभ हुआ। धूल भी नहीं है। क्यों, कपूरचन्दभाई! यह सब सेठ है। आहा..! कहीं पाँच-पच्चीस हजार खर्च करे और ऐसा कुछ बनाये-जीवदया मण्डल, उसके प्रमुख हो। जीवदया मण्डल का प्रमुख, पचास-सौ लोगों का। हर जगह काम ले तो बहुत काम किया। प्रभु कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही, नाथ! तेरी राग की क्रिया का अस्तित्व में तेरा अस्तित्व (मानकर) तूने तेरा मरण किया है। आहाहा! तेरी अस्ति-सत्ता पुण्य और पाप की सत्ता के उल्लास में... आहाहा! शुभ और अशुभभाव और उसका फल जो धूल-लक्ष्मी आदि, उसके उमंग में तेरी चीज़ का तूने अनादर कर दिया। आहाहा! तेरी चीज़ का मरण कर दिया। आहाहा!

वह भ्रान्ति परमगुरु श्री तीर्थंकर का उपदेश.. आहा! तीन लोक के नाथ का उपदेश सुनने पर प्रगट होता है। धर्म तब प्रगट होगा। कलश टीका है। कलश है न ? अमृतचन्द्राचार्य मुनि भावलिंगी सन्त हैं। अमृत के घर में चले गये हैं। अमृत का... आहाहा! खजाना! उसमें घुस गये हैं। वे बात करते हैं। प्रभु! तेरी अस्ति तो बड़ी अन्दर है। परन्तु तूने अभी तक तो ऐसा किया कि उसमें जो है नहीं, ऐसा पुण्य-पाप का भाव शुभ-अशुभ और उसके फल में तू कृतकृत्य हो गया, तुझे सन्तोष हो गया, तेरे आत्मा का तूने मरण कर दिया, मानो

कोई चीज़ है ही नहीं। आहाहा! इस चीज़ के आगे कोई चीज़ है नहीं। यहीं कहते हैं कि इस चीज़ के आगे दूसरी कोई चीज़ नहीं है। आहाहा!

साधक जीव की दृष्टि निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य पर होती है,... है? साधकजीव की-धर्मी की दृष्टि... आहाहा! जिसको मोक्ष का मार्ग साधना है, ऐसे धर्मी की दृष्टि **निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य पर होती है,...** आहाहा! दृष्टि में तो शुद्धात्मद्रव्य ही विराजता है, दृष्टि में उसका ही उसका आदर है। आहाहा!

मुमुक्षु :- ध्रुव का आश्रय।

पूज्य गुरुदेवश्री :- ध्रुव त्रिकाली भगवान का ही अवलम्बन है, बस। आहाहा! वही पूरे आत्मा का जीवन जैसा है, वैसा मानने का सम्यग्दर्शन प्रगट होगा। आहाहा! अरेरे..!

साधक जीव की दृष्टि निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य पर होती है, तथापि साधक जानता है सबको;... अब क्या कहते हैं? दृष्टि द्रव्य पर-ज्ञायक पर निरन्तर है, फिर भी वह **शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों को जानता है...** जाने सबको। शुद्ध पर्याय धर्म की प्रगट हुई, उसको भी जाने और अशुद्ध पर्याय होती है-शुभाशुभभाव राग... आहाहा! है अशुद्ध। अशुद्ध शुभाशुभराग और शुद्ध, वह मोक्ष का मार्ग, शुद्ध पर्याय। त्रिकाल के अवलम्बन से प्रगट हुई शुद्ध पर्याय। उसको भी ज्ञान जाने-पर्याय को, भले वह दृष्टि का विषय नहीं है, दृष्टि का विषय ध्रुव है, परन्तु साथ में जो ज्ञान उत्पन्न हुआ, वह अपनी वर्तमान शुद्धपर्याय को भी जानता है और वर्तमान अशुद्धपर्याय को भी जानता है। आहाहा! अशुद्धपर्याय भी धर्मी की होती है। आहाहा! अशुद्ध का दो प्रकार - शुभ और अशुभ। शुभभाव-दया, दान, भक्ति, व्रत, तप आदि। यह शुभ है, वह अशुद्ध है। और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, वह अशुभ भी अशुद्ध। अशुभ और शुभ दोनों अशुद्ध है। आहाहा!

दृष्टि तो निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य पर होती है। धर्मी की दृष्टि तो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि रहती है। **तथापि साधक जानता है...** धर्मी जानता है। भले गृहस्थाश्रम में हो, **वह शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों को जानता है...** शुद्ध को भी जानता है और अशुद्ध आ गयी, (उसे भी जानता है)। आता है, विषयवासना, स्त्री भोग.. आहा..! अरे..! लड़ाई का भाव आया।

भरत और बाहुबली। दो भाई समकिती ज्ञानी लड़ाई में आ गये। जानते हैं कि यह पर्याय आ गयी है, वह मेरी नहीं है, परन्तु मेरी कमजोरी से आ गयी है। आहाहा!

और उन्हें जानते हुए उनके स्वभाव-विभावपने का,... जो आत्मा के अवलम्बन से निर्मल सम्यग्दर्शन हो, वह स्वभाव है और पुण्य-पाप का भाव है, वह विभाव है। आहाहा! धर्मी जीव समकिती धर्म की पहली सीढ़ीवाला ध्रुव के अवलम्बन जो सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसके साथ ज्ञान हुआ, वह शुद्ध-अशुद्ध पर्याय को जानता है। **जानते हुए उनके स्वभाव-विभावपने का,...** आहाहा! **सुख-दुःखरूप वेदन का,...** साधक को आत्मा का सुख थोड़ा है और कल्पना का शुभभाव में सुख अस्थिरता का आ जाता है और अशुभ में दुःख है। शुभ में भी दुःख है और अशुभ में भी दुःख है। आहाहा! और सुख अपने में आत्मा के आश्रय से (है)। जो सुख अपना त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवन्तस्वरूप, उसके अवलम्बन से जो दशा प्रगट हुई, वह सुख है, वह आनन्द है। बाकी सब दुःख है। पुण्य और पाप का चाहे जैसा भाव (हो), सब दुःख है। उस **सुख-दुःखरूप वेदन का,...** आहा..! उसका विवेक है, ऐसा कहते हैं। समकिती को उसका विवेक है। आहाहा! अपने स्वरूप का भी भान है और ऐसा विकारादि है, उसका भी भान है। आहाहा! **सुख-दुःखरूप वेदन का,...** देखो! यहाँ तो दुःखरूप वेदन आत्मा करता है, समकिती!

मुमुक्षु :- साधकपना है, वहाँ साधकपना होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- है, साधक है। अभी पूर्ण आनन्द नहीं है। पूर्ण दुःख मिथ्यादृष्टि में; पूर्ण आनन्द केवली में और साधक में थोड़ा आनन्द और थोड़ा दुःख, दोनों हैं। आहाहा!

उनके साधक-बाधकपने का इत्यादि का विवेक वर्तता है। आहाहा! अन्तर में धर्मी को साधक की धर्म की पर्याय आत्मा के अवलम्बन से जो उत्पन्न हुई हो और बाधकपर्याय पुण्य-पाप का भाव, सुख-दुःख का वेदन.. आहाहा! **इत्यादि का विवेक वर्तता है।** ज्ञान में यह सब जानने में आता है। दृष्टि में अकेला ध्रुव है। सम्यग्दर्शन में-धर्म की प्रथम सीढ़ी में तो दृष्टि तो ध्रुव पर है। आहाहा! ध्रुव से दृष्टि कभी हटती नहीं और साथ में जो ज्ञान है, वह ज्ञान सबको जानता है। सबका विवेक करता है। है? दुःख को दुःख जानता है, सुख को सुख जानता है, विकार को विकार जानता है, अविकार को अविकार

जानता है। आहाहा! धर्मी का सच्चा दर्शनपूर्वक जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान दु:ख को दु:खरूप जानता है, राग को रागरूप जानता है, सुख को सुखरूप जानता है। सुख अर्थात् अपने आत्मा का सुख, हों! दुनिया में सुख कहीं नहीं है। वह सब दु:खी प्राणी है। आहाहा! **इत्यादि का विवेक वर्तता है।**

साधकदशा में साधक के योग्य अनेक परिणाम वर्तते रहते हैं... साधकदशा धर्मी की - समकिती है, आहाहा! वह **साधक के योग्य...** साधक के योग्य-लायक **अनेक परिणाम वर्तते रहते हैं परन्तु 'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है।** आहाहा! क्या कहते हैं? साधकदशा धर्मी की दशा में समकिती को **साधक के योग्य अनेक परिणाम वर्तते रहते हैं परन्तु 'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है।** मैं वस्तु तो परिपूर्ण हूँ। आहाहा! ध्रुव, जानते हैं पर्याय में। समझ में आया? ध्रुव जानता नहीं। जानते हैं पर्याय में, परन्तु पर्याय में जानते हैं किसको? ध्रुव को। नित्य रहनेवाली चीज़ को पर्याय जानती है। आहाहा! **साधकदशा में साधक के योग्य अनेक परिणाम वर्तते रहते हैं परन्तु 'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है।**

पुरुषार्थरूप क्रिया अपनी पर्याय में होती है... आहाहा! क्या कहते हैं? अपने शुद्ध ध्रुवस्वरूप की ओर जो पुरुषार्थ आया, वह पर्याय है। वह ध्रुव नहीं है। ध्रुव पर से जो पुरुषार्थ उत्पन्न हुआ, वह तो पर्याय है। आहाहा! **पुरुषार्थरूप क्रिया अपनी पर्याय में होती है...** आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा परिपूर्ण परमात्मस्वरूप... आहाहा! 'अप्पा सो परमप्पा', ऐसा तारणस्वामी में आता है। 'अप्पा सो परमप्पा' - आत्मा परमात्मा ही है। आहा..! कहाँ किसको पड़ी है। आहा..!

यहाँ कहते हैं, **पुरुषार्थरूप क्रिया अपनी पर्याय में होती है...** स्वभाव-सन्मुख का पुरुषार्थ त्रिकाली ध्रुव ओर का पुरुषार्थ, वह क्रिया पर्याय में होती है। ध्रुव में नहीं होती। आहा..! क्या कहा? अरेरे..! पुरुषार्थ जो त्रिकाली का श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वह पर्याय में होता है। ध्रुव तो त्रिकाली एकरूप है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वह पर्याय में होता है। आहाहा! और पर्याय बिना का कभी अकेला सामान्य होता नहीं। ऐसा हो तो मोक्षमार्ग बिना अकेल आत्मा रह जाए। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश। ऐसे पर्यूषण, उसमें ऐसा उपदेश। बाहर की बातें, यह करना, उपवास करना, आठ दिन-दस दिन के बिना पानी के

करो। ऐसा दसलक्षणी पर्व का उत्सव करो, महोत्सव करो। आहाहा! अरे..! प्रभु! उसमें क्या है? उसमें राग की मन्दता हो तो कदाचित् पुण्य बँधेगा, बाकी आत्मा को कुछ लाभ बिल्कुल नहीं है, नुकसान है। आहाहा!

ऐसा सतत साथ ही साथ रहत है। **पुरुषार्थरूप क्रिया...** यह क्या कहते हैं? भाई! आत्मा जो ध्रुव है, उसमें पुरुषार्थ जो प्रगट सम्यग्दर्शन होता है तो वह पुरुषार्थ पर्याय में है, त्रिकाल में नहीं। त्रिकाल तो एकरूप है। ध्रुव तो त्रिकाल एकरूप है। पुरुषार्थ हुआ है, वह तो पर्याय में हुआ है। आहाहा! अरेरे..! ऐसी बात सुनने मिले नहीं और मनुष्यभव पशु की भाँति चला जाता है। पशु और मनुष्य में कोई अन्तर नहीं है। वह आगे कहेंगे। दोपहर को आयेगा। जो एकान्त मानता है, द्रव्य ही मानता है, पर्याय को नहीं मानता है, वह पशु है। पशु अर्थात् बध्यति इति पशु। संसार से मिथ्यात्व से बँधता है। आहाहा! और पर्याय को मानते हैं और ध्रुव को नहीं मानते हैं, वे भी पशु हैं। आहा..! वह भी पशुतुल्य एकान्त में, जैसे पशु को मात्र घास खाने की आदत है, घास के अन्दर चूरमा डालो तो भी वह घास के साथ चूरमा खाता है। चूरमा को अलग नहीं खाता। ऐसे पशु की भाँति आत्मा, तिर्यंच की भाँति राग और पुण्य को अपना आत्मा के सथ मिलाकर भोगता है। आहाहा! अरे..! कौन कहे? त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर इन्द्र के समक्ष यह बात करते हैं। अभी वहाँ परमेश्वर विराजते हैं। बाघ और सिंह और रीछ जंगल में से सुनने चले आते हैं। यह बात सुनने को। साधारण बात और कथा तो घर-घर में है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **पुरुषार्थरूप क्रिया अपनी पर्याय में होती है और साधक उसे जानता है,...** वीर्य को जानता है। बस! हो गया? **तथापि दृष्टि के विषयभूत ऐसा जो निष्क्रिय द्रव्य...** जो द्रव्य है न? वह निष्क्रिय है - परिणमन बिना का। **वह अधिक का अधिक रहता है।** दृष्टि में। **ऐसी साधक-परिणति की अटपटी रीति को ज्ञानी बराबर समझते हैं, दूसरों को समझना कठिन होता है।** (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - १०, शुक्रवार, तारीख १९-९-१९८०
वचनामृत - ३९३, ३९४, ३९६ प्रवचन-३८

आज दसलक्षणी धर्म में से छट्ठा बोल है, छट्ठा दिन है न? संयम.. संयम। उत्तम संयम का दिन है।

जो जीवरक्खणपरो, गमणागमणादिसव्वकज्जेसु।
तणछेदं पि ण इच्छदि, संजमधम्मो हवे तस्स॥३९९॥

आहाहा! पहले बात जाननी तो पड़ेगी न? भले संयम पाल न सके। और संयम भी समकित बिना होता नहीं। पहले आत्मदर्शन होता है, बाद में संयम होता है। उसे संयम में ऐसा है कि छह काय के जीव की रक्षा में तत्पर, ऐसा पाठ है। उसका अर्थ कि कोई प्राणी को मारने का भाव नहीं है। रक्षा का अर्थ ऐसा नहीं है कि रक्षा कर सकते हैं। परजीव की रक्षा कर सकते हैं, ऐसी बात है नहीं। यहाँ वह शब्द पड़ा है। **रक्षा में तत्पर...** अर्थात् कोई भी प्राणी को थोड़ा भी दु:ख हो, ऐसा न करे। और एक तृण का / तिनके का छेद भी न करे। आहाहा! संयम है, किसको कहते हैं? एक तो आत्मज्ञान अन्तर आनन्द पूर्णानन्द स्वरूप, उसमें दृष्टि घुस गयी। बाद में संयम अन्दर स्वरूप में विशेष रमणता करना, वह संयम है। यहाँ संयम में तो वहाँ तक कहा कि एक तिनके का छेद करना, वह भी इच्छता नहीं। तिनके का छेद कर सकता है, ऐसा प्रश्न नहीं है।

यहाँ दो प्रश्न है – एक तो जीव की रक्षा, ऐसा शब्द है। उसका अर्थ जीव की रक्षा कर सकता है, ऐसा नहीं। जीव को नहीं मारने का भाव और अन्तर में रमने का भाव, वह जीव की रक्षा अर्थात् जीव को दु:ख न देने का भाव। आहाहा! दूसरी बात—तिनका। एक तिनके का तो दो छेद न करे। उसका अर्थ तिनके का छेद कर सकता है, ऐसा नहीं।

श्रीमद् राजचन्द्र ने भी एक पत्र में ऐसा लिखा है। श्रीमद् राजचन्द्र। हमारे में एक

तृण हमारी गुजराती भाषा है – तृण, तिनके का दो टुकड़ा करने की हमारी शक्ति नहीं है। एक तिनके का दो टुकड़ा करना, यह हमारी शक्ति नहीं। अर्थात् आत्मा परद्रव्य का कुछ कर सकता नहीं। अरे.. ! यह बात। एक तिनका, छिलका.. छिलका, उसका दो टुकड़ा कर सकता नहीं। परन्तु दो टुकड़े होते हैं तो मैं हूँ तो ठीक हुआ, ऐसा भी है नहीं। आहाहा! ऐसी बात। सूक्ष्म बात, प्रभु! उसका नाम संयम है। संयम ऐसे पंच महाव्रत अथवा बाह्य क्रिया, वह संयम है—ऐसा नहीं। अन्तर में एक अपना द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता भी नहीं और दूसरे द्रव्य का दो टुकड़ा करना या रक्षा करना या मारना, वह आत्मा तो कर सकता ही नहीं। आहा.. ! मात्र पर ओर से लक्ष्य छोड़कर अपना आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें रमणता करता है, उसका नाम संयम कहने में आता है। आहाहा!

उसका यहाँ दो अर्थ लिया है। जीव की रक्षा करते हैं। **जीवों की रक्षा में तत्पर होता हुआ गमन-आगमन आदि सब कार्यों में...** गमन-आगमन करते हैं, उन सब कार्य में **तृण का छेदमात्र भी नहीं चाहता है,...** आहाहा! यह स्वामी कार्तिकेय। कुन्दकुन्दाचार्य पहले हो गये। २२०० वर्ष हो गये। पहले यह बनाया है, कार्तिकेयानुप्रेक्षा। आहाहा! वे कहते हैं कि एक तिनके का छेद करना, वह भी आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। आहाहा! तो इस दुनिया की कैसे रचना की होगी? आहाहा!

अपनी चीज़ का पहले तो भान हुआ। ज्ञाता-दृष्टा आनन्द हूँ। मैं पर का स्वामी नहीं हूँ। परचीज़ मेरी है, ऐसा मेरा कोई असंख्य प्रदेश में है नहीं। परन्तु मेरे से तिनके का टुकड़ा भी हो, वह नहीं है। और मेरे से कोई प्राणी को थोड़ा भी दु:ख हो, (ऐसा नहीं है)। सब सुखी होओ। आहा.. ! मुझे प्रतिकूलता देकर भी यदि तुम सुखी होते हो तो भले तुम सुखी होओ, परन्तु दु:खी कोई न हो। और किसी को दु:खी करने का ज्ञानी का, संयमी का भाव होता नहीं। उसका नाम संयम है। आहाहा! अब अपना चलता अधिकर। ३९३ अन्तिम पंक्ति बाकी है। ३९३।

ऐसी साधक... वहाँ से है न? ३९३ की अन्तिम की तीन पंक्ति है, ढाई पंक्ति है। **ऐसी साधक परिणति की अटपटी रीति को...** क्या कहते हैं? आहाहा! दृष्टि का विषयभूत ऐसा जो निष्क्रिय द्रव्य। सम्यग्दर्शन,प्रथम में प्रथम उसका विषय / ध्येय तो

अकेला द्रव्य है। सम्यग्दर्शन का विषय कोई पर्याय, गुणभेद, पर की रक्षा करना, नहीं मारना, वह कुछ है नहीं। समकित का पहला विषय त्रिकाली चीज़ भगवान आत्मा... वह आया? **निष्क्रिय द्रव्य, वह अधिक का अधिक (ज्ञानी को) रहता है।** आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात। धर्मी जीव को सम्यग्दृष्टि या मुनि को क्षण-क्षण में अपना निष्क्रिय द्रव्य (अधिक का अधिक रहता है)। निष्क्रिय द्रव्य अर्थात् जिसमें राग की और पर्याय की क्रिया नहीं है, ऐसी त्रिकाली चीज़। आहाहा! पर्याय में निर्णय करता है। पर्याय में आनन्दादि का अनुभव करता है, परन्तु पर्याय सक्रिय है। वह त्रिकाली में है नहीं। आहाहा! ऐसा **निष्क्रिय द्रव्य अधिक का अधिक रहता है।** आहाहा! ऐसी बातें।

ऐसी साधक परिणति की... धर्मीजीव के साधन की दशा, ऐसी अटपटी रीति को, **ऐसी अटपटी रीति को ज्ञानी बराबर समझते हैं,...** आहाहा! क्या समझ में आया? द्रव्य तो निष्क्रिय ही है। द्रव्य में तो पर्याय का परिणमन जो होता है, वह द्रव्य में नहीं, अन्दर में नहीं है। आहाहा! फिर भी बाह्य की क्रिया दिखती है, चलना-फिरना, गमन (करना), वह सब क्रिया जड़ की है। उसे ज्ञान जानता है कि यह क्रिया होती है। परन्तु वह मेरी नहीं। मैं तो निष्क्रिय द्रव्य चैतन्य हूँ। ऐसी धर्मी की कोई भी क्षण द्रव्यदृष्टि से हटती नहीं। आहाहा!

दूसरों को समझना कठिन होता है। है? ऐसी साधकपरिणति की अटपटी रीति। एक ओर द्रव्य निष्क्रिय और एक ओर पर्याय में दया, दान, व्रत का भाव भी आता है और पर्याय में निर्मलता भी प्रगट हुई है। आहाहा! धर्मी को पर्याय में वस्तु निष्क्रिय है त्रिकाली। परन्तु उसकी दृष्टि करने से पर्याय में निर्मलता प्रगट होती है। वह निर्मलता है और साथ में कमजोरी के कारण राग, दया, दान का भाव भी होता है। परन्तु उसको जानते हैं कि वह मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! **ऐसी साधक परिणति की अटपटी रीति को ज्ञानी बराबर समझते हैं, दूसरों को समझना कठिन होता है।** कठिन। अशक्य नहीं। समझ सके नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा!

जिसकी दरकार ही नहीं, जिसको अपना स्वभाव और विभाव का भेदज्ञान ही नहीं है और भेदज्ञान करने का प्रयत्न और प्रयास भी नहीं है, उसको तो यह बात बहुत कठिन लगे। कठिन लगे, परन्तु अशक्य नहीं है। समझ में न आवे, ऐसी बात है नहीं। ध्यान रखे,

समझ करे, रस चढ़े, दुनिया का रस कम करे तो आत्मा का रस चढ़ता है। परन्तु बहुत कठिन बात (है), अटपटी बात है। अब, ३९४।

मुनिराज के हृदय में एक आत्मा ही विराजता है। उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है। आत्मा के आश्रय से बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है। घोर जंगल हो, घनी झाड़ी हो, सिंह-व्याघ्र दहाड़ते हों, मेघाच्छन्न डरावनी रात हो, चारों ओर अंधकार व्याप्त हो, वहाँ गिरिगुफा में मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही मस्त होकर निवास करते हैं। आत्मा में से बाहर आयें तो श्रुतादि के चिन्तवन में चित्त लगता है और फिर अन्तर में चले जाते हैं। स्वरूप के झूले में झूलते हैं। मुनिराज को एक आत्मलीनता का ही काम है। अद्भुत दशा है॥३९४॥

३९४। **मुनिराज के हृदय में...** आहाहा! मुनि किसको कहते हैं? **मुनिराज के हृदय में एक आत्मा ही विराजता है।** आहाहा! चैतन्य सहजात्मस्वरूप सहजस्वरूप। वह श्रीमद् का वाक्य है। श्रीमद् का अगास है न? उसका यह मन्त्र है। सहजात्मस्वरूप। कोई भी आये, उसे मन्त्र देता है। सहजात्मस्वरूप। सहज आत्म-स्वाभाविक आत्मस्वरूप। **मुनिराज के हृदय में एक आत्मा ही विराजता है।** आहाहा! बाहर की चीज़ तो बाहर में रहती है। आहाहा! **उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है।** आत्मामय ही है। भाषा देखो! आहाहा! यह दसलक्षणी धर्म है। संयम की यह चीज़ है। **उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है।** आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप (है)। तो मुनिराज का सर्व वर्तन ज्ञानमय ही है। जानना-देखनामय ही उसकी क्रिया है।

आत्मा के आश्रय से बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है। आहाहा! मैं आत्मा शाश्वत् सत्ता, उसको कोई स्पर्श कर सके नहीं तो उसको कोई मार सके, ऐसी चीज़ है नहीं। धर्मी की यह दृष्टि है। आहाहा! मेरा आत्मा, उसके आश्रय से.. आश्रय लिया त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप का। सूक्ष्म बात है, भाई! अभी तो बाहर में स्थूलता चलती है, इसलिए यह बात समझने में कठिन पड़े, परन्तु अशक्य नहीं है। सन्तों ने पंचम काल के जीवों के लिये यह कहा है। पंचम काल के साधु, पंचम काल के श्रोता के लिये कहा है। आहाहा! ऐसा नहीं समझना कि यह तो चौथे काल की बात है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य,

पद्मप्रभमलधारिदेव सब पंचम काल के साधु थे और पंचम काल के श्रोता को समझाते हैं। ऐसा नहीं है कि पंचम काल के प्राणी को यह बात समझ में न आवे। आहा..! उसके लिये तो शास्त्र बनाया। आहाहा! पंचम काल के...

समयसार ३८वीं गाथा में है, अप्रतिबुद्ध था। अनादि से अप्रतिबुद्ध था, उसको गुरु ने समझाया। पंचम काल का प्राणी। आहाहा! समझ में आया? पंचम काल का अबुध प्राणी, आहाहा! अप्रतिबुद्ध-भान बिना के प्राणी को... ३८ गाथा में है, समयसार। उसको गुरु ने समझाया। शास्त्र में ३८ (गाथा में) तो ऐसा लेख है कि समझाया तो वह समझ गया। ओहो..! मैं तो आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ। समझ तो गया, परन्तु उसको ऐसा निर्णय हो गया, पंचम काल के प्राणी को, उसकी बात करते हैं। पंचम काल के प्राणी को (समझाया)। साधु थे, वे पंचम कला के थे और श्रोता भी पंचम काल का है। पंचम काल का श्रोता अप्रतिबुद्ध था, बिल्कुल अज्ञानी (था)। परन्तु गुरु ने समझाया (तो) ऐसा समझ गया.. आहाहा! संस्कृत टीका में पाठ ऐसा है कि ऐसा समझ गया कि अब मैं मेरी चीज़ से कभी छुटूँगा नहीं। मेरा समकित अब गिरेगा नहीं। सेठ! पाँचवे काल का (शिष्य कहता है)।

मुमुक्षु :- कोई-कोई समझे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- भले कोई समझे। परन्तु यहाँ तो यह कहना है कि वह ऐसा समझा, सम्यग्दर्शन ऐसा प्राप्त किया, ज्ञान-चारित्र भी प्राप्त किया और कहे कि मैं उससे-सम्यग्दर्शन से कभी गिरूँगा नहीं। नि:शंक हूँ। पंचम काल में अप्रतिबुद्ध था, मुझे गुरु ने समझाया और मैं अपना स्वरूप समझा तो मैं कहता हूँ कि मैं सम्यग्दर्शन से.. भगवान का विरह है, केवली का विरह है, परन्तु मैं कहता हूँ मेरे आत्मा की साक्षी से। ऐसा कहता है। ३८ वीं गाथा में है। मैं नहीं गिरूँगा। आहाहा! मैं सम्यग्दर्शन से, भले पंचम काल में आया, परन्तु मैं नहीं गिरूँगा। नि:शंक ऐसा कहता है। भगवान का विरह है, भगवान है नहीं। आत्मा है न! आहाहा! अरे..! ऐसी बातें हैं।

यहाँ वह कहते हैं, **बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है**। आहाहा! कोई भय ही नहीं है। पक्के किले में जैसे किसी का भय नहीं हो। पक्का किला हो, किला। अरे..! वज्र का

किला हो तो किसी का भय नहीं (होता)। उसी प्रकार भगवान आत्मा शाश्वत् सनातन चैतन्य प्रभु, उसकी जहाँ दृष्टि और भान हुआ तो निर्भयता प्रगट हुई है। **बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है।** आहाहा! मुनि की गजब बात करते हैं।

घोर जंगल हो, घनी झाड़ी हो, सिंह-व्याघ्र दहाड़ते हों,... सिंह और बाघ दहाड़ते हों अर्थात् पुकार करते हों। पुकार करते हैं। सिंह और बाघ की आवाज जंगल में से आती हो, फिर भी मुनि अन्दर ध्यान में आनन्द में रहते हैं। आहाहा! यह आत्मा की चीज़ है। आहाहा! कहते हैं, सिंह और बाघ दहाड़ते हों, अर्थात् आवाज-पुकार करते हो। आहाहा! परन्तु मुनि को भय नहीं है। अन्तर में आनन्द में रहते हैं। आहाहा! है? **मेघाच्छन्न डरावनी रात हो,...** ऐसे काले बादल आ गये और डरावनी रात हो। **चारों ओर अंधकार व्याप्त हो, वहाँ गिरिगुफा में मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही मस्त होकर...** आहाहा!

वैसे तो चैतन्य के सिवा बाहर कहाँ जा सकते हैं। कल्पना कर सकता है कि मैं ऐसा करूँ, मैं ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, ऐसी कल्पना करते हैं। बाकी बाहर को तो छूता भी नहीं। परद्रव्य को तो आत्मा कभी तीन काल में छूता नहीं। ऐसा समयसार की तीसरी गाथा में आया है। एक द्रव्य-तत्त्व दूसरे तत्त्व को कभी छूता नहीं। आहाहा! कैसे बैठे? पूरा दिन शरीर से काम लेता है, दिखता है, वाणी से काम लेता है, दिखता है। आहा..! नौकर चाकर से काम लेते हैं, उसे देखते हैं और उसको कहना कि वह कुछ करता नहीं। क्या करता है? वह तो अन्दर अभिमान करता है, उतना करता है, बस! वह क्रिया नहीं कर सकता है। आहाहा! यह बात अन्दर में बैठना.. वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर... उसकी ऐसी पर्याय हो गयी है। द्रव्य तो त्रिकाली ध्रुव है। परन्तु पर्याय ऐसी हो गयी। पर्याय समझे? अवस्था।

गिरिगुफा में मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही मस्त... यह पर्याय। चैतन्य में मस्त रहते हैं, वह पर्याय है। आहा..! पर्याय अर्थात् अवस्था। आहाहा! त्रिकाली ध्रुव चैतन्य भगवान, उसमें पर्याय में मस्त रहते हैं। अन्दर में पर्याय ध्रुव सन्मुख एकाकार कर लेते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! कठिन लगे, क्या करे? भगवान का विरह पड़ा। आहा..! दूसरा मार्ग हो जाता है? जयपुर में मनोहरलालजी आये थे। मनोहरलालजी। सेठ! वणीजी के शिष्य मनोहरलालजी। मनोहरलालजी चल बसे। किसी ने मार डाला। वहाँ जयपुर

आये थे। और प्रश्न किया था। दो प्रश्न किये। एक तो - महाराज! राग और द्वेष, पुण्य और पाप को भगवान ने पुद्गल कहा, ऐसा क्यों? मनोहरलालजी ने प्रश्न किया।

मुमुक्षु :- हम साथ में थे। उन्होंने कहा कि आप बाहर जाईये, मुझे महाराज से पूछना है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा! वह बात ऐसी पूछी कि, महाराज! भगवान ने ऐसा क्यों कहा? दया का भाव, सत्य का भाव, भक्ति का भाव, वह पुद्गल? कहा, भाई! वह चीज़ निकल जाती है। अपनी चीज़ हो तो निकले नहीं। अपने में है, वह निकले नहीं और निकले, वह अपनी नहीं। सिद्ध में राग-द्वेष रहते नहीं। यदि अपनी चीज़ हो तो सिद्ध में भी होनी चाहिए। आहाहा! एक प्रश्न यह था।

दूसरा प्रश्न यह था। आप उद्देशिक का स्पष्टीकरण कीजिए तो बहुत (लाभ होगा)। क्या स्पष्टीकरण? (उनको ऐसा कहना था कि), गृहस्थ बनाते हैं। करने को कहते नहीं कि मेरे लिये बनाओ। तो उसके लिये बनाया और लेते हैं तो उसमें क्या है? उसमें उद्देशिक दोष क्या आया? ऐसा प्रश्न किया। भाई! मैं तो ऐसा कहता हूँ, अरे..! भगवान विरह पड़ा। त्रिलोकनाथ के विरह में ऐसा अर्थ करना कि उसके लिये बनाया हुआ आहार उद्देशिक लेते हैं, उसे उद्देशिक नहीं कहते। प्रभु का विरह पड़ा है। हम ऐसा नहीं कहेंगे। आहाहा! उसके लिये बनाते हैं, वह लेते हैं, वह उद्देशिक नहीं, क्योंकि वह करते नहीं हैं, करवाते नहीं हैं। वे तो मात्र बनाया हुआ लेते हैं। तो वह उद्देशिक नहीं, ऐसा कुछ कहो तो बहुत सम्प हो जाए, अरे..! भाई! भगवान का विरह पड़ा, प्रभु के पीछे ऐसा अर्थ करना,..? आहाहा! मैंने तो थोड़ा शान्ति से ऐसा भी कहा,.. उनके मकान में थे न? गोदिका के मकान में, ऊपर की मंजिल पर।

मैं तो भैया! ऐसा मानता हूँ कि वर्तमान में जो दिखते हैं, वह द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी नहीं है। शान्ति से कहा। कोई अपमान, अनादर करने का अपना भाव नहीं था। मात्र सत्य क्या है? भगवान त्रिलोकनाथ का विरह पड़ा, उनके पीछे उसका अर्थ विपरीत करना, प्रभु! ऐसा अभी नहीं हो सकता। क्योंकि आहार उसके लिये बनाते हैं और वह लेते हैं तो वह अनुमोदन है। मन-वचन-काया, करना-करवाना-अनुमोदन इन नव कोटि में

अनुमोदन है। अनुमोदन है तो नव कोटि टूट जाती है। आहा..! समझ में आया? थोड़ा उनको ऐसा लगा। मैंने तो कहा, मुझे तो कोई द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी दिखते नहीं। क्योंकि उसके लिये बनाते हैं और लेते हैं। दूसरा तो कोई उपाय नहीं है। काल ऐसा है। ऐसे कोई तैयार है नहीं, धर्मी तैयार है नहीं, और ऐसा घर में तैयार माल है नहीं। साधु को ध्यान में रखकर उसके लिये पानी बनाये, आमरस बनाये, मोसम्बी का पानी बनाये और बाद में देवे हैं। वह सब प्रभु का मार्ग नहीं है, भाई!

यहाँ तो कहते हैं, आहाहा! गिरिगुफा में मुनिराज चले जाते हैं। जिन्हें दुनिया की कोई दरकार नहीं है। **मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही मस्त होकर निवास करते हैं।** चैतन्य में मस्त होकर निवास करते हैं। आहा..! बाहर में दिखता है, मानो यह करते हैं, चलते हैं, फिरते हैं, वह सब क्रिया के कर्ता वे हैं नहीं। आहाहा! अन्तर चैतन्य में रागादि दया, दान महाव्रत का आता है। उसके भी वे कर्ता नहीं। आहाहा! वे तो चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा में मस्त हैं। है? **अकेले चैतन्य में ही मस्त होकर...** अकेले भाषा है। **मुनिराज बस अकेले चैतन्य में ही मस्त होकर निवास करते हैं**। आहाहा!

आत्मा में से बाहर आयें तो श्रुतादि के चिन्तवन में चित्त लगता है... अन्तर में से बाहर आयें तो शास्त्र स्वाध्याय करते हैं। **और फिर अन्तर में चले जाते हैं**। आहाहा! यह संयम। आज संयम का दिन है। सुगन्ध दशमी। दशमी है न? सुगन्ध दशमी। सुगन्ध कौन-सी? यह सुगन्ध। आत्मा की सुगन्ध। आहाहा! आत्मा में से अतीन्द्रिय आनन्द आता है, वह आत्मा में सुगन्ध है। आहाहा! प्रत्येक बात ही अलग है। आहा..!

यहाँ कहते हैं, धर्मात्मा मुनिराज तो अपने चैतन्य में ही मस्त रहते हैं। कभी अन्दर नहीं रह सके तो शास्त्र वाँचन में आ जाएँ। फिर अन्तर में चले जाते हैं। छठे-सातवें गुणस्थान में रहते हैं। मुनि को छठा-सातवाँ गुणस्थान एक क्षण में दो बार आता है। छठे आते हैं, क्षण में सप्तम में विकल्प छूटकर निर्विकल्प आनन्द में आ जाते हैं। खाते हैं, पीते हैं, बोलते है, चलते हैं, परन्तु छठे-सातवें में आ जाते हैं। आहाहा! अरेरे..! इसकी भी खबर नहीं होती।

स्वरूप के झूले में झूलते हैं। आहा..! झूला जैसे झूलता है, वैसे मुनिराज तो

स्वरूप के झूले में झूलते हैं। उसको संयम कहते हैं। आहाहा! अन्तर स्वरूप आत्मा का चैतन्य, राग के विकल्प से भिन्न चीज़, उसके अनुभव में वे झूलते हैं। आहाहा! **मुनिराज को एक आत्मलीनता का ही काम है।** है तो यह एक ही काम है। उपदेश करना, दुनिया में पुस्तक बनाना, यह करना, वह करना, वह कुछ उनका काम नहीं है। वह तो बन जाओ तो बन जाओ, उसके कारण से। यह टीका अमृतचन्द्राचार्य ने बनायी। टीका करते हुए अन्त में ऐसा कहा, मैंने टीका नहीं बनायी है, वह तो शब्द से बन गयी है। मैं तो मेरे ज्ञानस्वरूप में गुप्त हूँ। मैं विकल्प में आया नहीं। टीका मेरे से बनी है, ऐसे मानना नहीं। आहाहा! गजब बात! समयसार की टीका है न! अभी भरतक्षेत्र में ऐसी टीका है ही नहीं। ऐसी टीका। एक-एक शब्द में गम्भीरता का पार नहीं। ओहो..! गूढ़ भाषा। ऐसी टीका बनाकर कहते हैं कि मैंने बनायी नहीं है, हों! भाई! वह जड़ की पर्याय से बन गयी है। मैं तो मेरे ज्ञानस्वरूप में गुप्त हूँ। आहाहा! यह मुनिराज। है?

मुनिराज को एक आत्मलीनता का ही काम है। अद्‌भुत दशा है। वह कोई अलौकिक दशा है, बापू! आहाहा! ३९४ हुआ न? फिर? ३९६? लिख लिया है?

तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है, उसकी महिमा तुझे क्यों नहीं आती? आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है, अपने में ही सब भरा है। आत्मा सारे विश्व का ज्ञाता-दृष्टा एवं अनन्त शक्ति का धारक है। उसमें क्या कम है? सर्व ऋद्धि उसी में है। तो फिर बाह्य ऋद्धि का क्या काम है? जिसे बाह्य पदार्थों में कौतूहल है उसे अन्तर की रुचि नहीं है। अन्तर की रुचि के बिना अन्तर में नहीं पहुँचा जाता, सुख प्रगट नहीं होता॥३९६॥

३९६। **तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है,...** आहाहा! प्रथम पंक्ति। आहाहा! **तीन लोक को जाननेवाला...** क्या कहते हैं? तीन लोक में अपनी कोई चीज़ है, ऐसा माननेवाला आत्मा नहीं है। अपने सिवा / अलावा सब चीज़, विकल्प से लेकर कोई चीज़ मेरी है, ऐसा मुनि, समकिती मानते नहीं। आहाहा! ऐसा **तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है...** जाननेवाला तत्त्व है। तीन लोक में कोई चीज़ को करे, बनावे, रचे, व्यवस्था

करे व्यवस्थापक होकर, (ऐसा तत्त्व नहीं है)। सेठ ने कहा था न? व्यवस्थापक। प्रश्न किया था। किसी की व्यवस्था करनेवाला व्यवस्थापक। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि तेरा तत्त्व तो तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है। आहा..! एक दया, भक्ति के राग से लेकर पूरी दुनिया को जानने का आत्मा का स्वभाव है। राग का करना, वह भी आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहाहा! अरे..! कब बैठे? **उसकी महिमा तुझे क्यों नहीं आती?** आहाहा! तीन लोक को जाननेवाला तेरा तत्त्व है, उसकी महिमा तुझे क्यों नहीं आती है? आहाहा! **आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है,...** आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है। ज्ञान वह, आनन्द वह, वीर्य वह, शान्ति वह, पुरुषार्थ वह, वही सब है। अन्दर में सब भरा है। आहाहा! **आत्मा स्वयं ही सर्वस्व...** कोई भी अल्पता उसमें है नहीं। पूर्णानन्द का नाथ, एक-एक गुण पूर्ण ऐसे अनन्त गुण का पूर्ण नाथ आत्मा है अन्दर। अरेरे..! उसके सामने कभी देखा नहीं और उसका अनादर करके, जगत का आदर करके (भटका)। जिसका आदर किया, उसको संयोग मिले बिना रहे नहीं। तो परिभ्रमण में भटकेगा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है, अपने में ही सब भरा है।** है? अपने में ही। अपनी चीज़ में ही सब भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द भरा है, अतीन्द्रिय शान्ति भरी है, अनन्त ज्ञान है, अनन्त दर्शन है, अनन्त वीर्य है... ओहो..! अनन्त दर्शन उपयोग है, अनन्त प्रभुता है, अनन्त परमेश्वरता है। ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का तो भण्डार तेरा है। आहाहा! मौजूदगी रखनेवाली चीज़ है, उसकी नजर न करे और मौजूद नहीं है, अनित्य है, (उस पर नजर करता है)। क्योंकि अपना स्वभाव ध्रुव है, नित्य है—ऐसा परिणाम जानता है। ध्रुव को ध्रुवपने नहीं जाना तो दूसरी चीज़ को ध्रुव करने की इच्छा है। दूसरी चीज़ हमेशा रहे, ऐसी भावना है। मेरी चीज़ कायम रहे, ऐसी भावना छोड़कर, यह चीज़ कायम रहे, (ऐसी भावना भाता है)। आहाहा! समझ में आया?

ध्रुव तो यह आत्मा भगवान है। ऐसा पर्याय जानती है। वह पर्याय ध्रुव को नहीं जानती है, तब पर को कायम रखने का भाव (करती है)। जैसे कायम स्वयं रहता है, अपनी खबर नहीं तो दूसरी चीज़ कायम रहे - स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत, मकान.. आहाहा! जो नाशवान, क्षण में नाशवान (है)। आहाहा! अपनी ध्रुवता, अपनी

नित्यता कायम रहने की भावना नहीं है। है कायम रहनेवाली चीज़, उसकी दृष्टि नहीं है तो पर को कायम रखने का भाव है। आहाहा! ऐसी बात है। पुस्तक में माल-माल आ गया है। आहाहा!

कल तो एक वैष्णव का.. कौन वह? मकोडी डॉक्टर। डॉक्टर? राजकोट। व्याख्यान में हमेशा आते थे। वैष्णव अन्यमति। उसने लिखा है, मासिक। बहिन के जन्मदिन का लेख। वह गया और पढ़कर... कल पत्र आया है। आहाहा! इसमें क्या-क्या नहीं है? इसमें सब भरा है। आहाहा! इस पुस्तक को तो.. क्या कहा? म्यूजियम में (रखना चाहिए)। संग्रहालय। ऐसा बोला। चन्दुभाई पढ़कर सुनाते थे। यह राजकोट से आया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अपने में ही सब भरा है। आत्मा सारे विश्व का ज्ञाता-दृष्टा...** आहाहा! भगवान आत्मा सारे विश्व का। सारे अर्थात् पूरा विश्व। विश्व अर्थात् समस्त पदार्थ। देव, गुरु, शास्त्र या स्त्री, कुटुम्ब, परिवार और यह शरीर, वाणी और मन। **सारे विश्व का ज्ञाता-दृष्टा...** है। जाननेवाला और दृष्टा-देखनेवाला है। **एवं अनन्त शक्ति का धारक है।** ऐसी तो अनन्त शक्ति। ज्ञाता-दृष्टा तो है, उसके सिवा अनन्त शक्ति का धारक है। आहाहा! जीवत्व शक्ति, चिति, दर्शि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व—ऐसी अनन्त शक्ति को धारण करनेवाला है। आत्मा को समझने का प्रयत्न नहीं और दूसरी चीज़ में पूरी जिन्दगी निकाल दे। आहाहा! उससे परिभ्रमण में जाए। जाए कहाँ का कहाँ भव करे.. आहाहा! अनन्त काल में मनुष्यपना मिलना मुश्किल पड़े। आहाहा!

उसमें क्या कम है? है? उसमें क्या कमी है? भजन में नहीं आया था? बोले थे।

'प्रभु मेरे तू सब बाते पूरा, प्रभु मेरे तू सब बाते पूरा।

पर की आश कहाँ प्रीतम', हे प्रिय आत्मा! अपने को छोड़कर 'पर की आश कहाँ करे प्रीतम, किण खाते तू अधूरा?' तू किस बात से अधूरा है? प्रभु! आहाहा! भक्ति आती है, भजन आता है। हिम्मतभाई एक बार बोले थे। आहाहा!

उसमें क्या कम है? तेरे में क्या कमी है? प्रभु! अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता-परमेश्वरता (भरी है)। तुम परमेश्वर हो, भगवान हो। आहाहा! ऐसी शक्ति और स्वभाव तेरा अन्दर में पड़ा है। **सर्व ऋद्धि उसी में**

है। आनन्द की, ज्ञान की, शान्ति की ऋद्धि आत्मा की सब ऋद्धि तेरे में है। **तो फिर बाह्य ऋद्धि का क्या काम है ?** आहाहा! तो फिर बाह्य ऋद्धि का क्या काम है ? तेरे में अन्दर अनन्त शान्ति आदि समृद्धि की ऋद्धि भरी है। अनन्त! तो फिर तुझे बाह्य का क्या काम है ? प्रभु! आहाहा! कठिन बात। क्रियाकाण्ड करे तो उसे सूझ पड़े। व्रत करे, तपस्या करे, आहाहा! वह तो राग की मन्दता है, कोई धर्म तो है नहीं। आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं, **जिसे बाह्य पदार्थों में कौतूहल है...** जिसको बाह्य पदार्थ में.. आहाहा! अपने सिवा कोई भी चीज़ में विस्मयता है, कौतूहल है, ठीक है, आश्चर्य है—ऐसा है, उसको आत्मा का अनादर है। **उसे अन्तर की रुचि नहीं है।** है ? आहाहा! **जिसे बाह्य पदार्थों में कौतूहल है...** कौतूहल अर्थात् विस्मयता, अधिकता, आश्चर्यता, विशेषता, अपने सिवा बाह्य पदार्थ में कुछ भी विशेष, विस्मय, आश्चर्य लगे,... आहाहा! उसे अन्तर की रुचि नहीं। आहाहा! उसे अन्तर में आत्मा अनन्त ऋद्धि का धनी है उसकी रुचि नहीं है।

अन्तर की रुचि के बिना अन्तर में नहीं पहुँचा जाता,... आहाहा! अन्तर स्वभाव चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसकी रुचि बिना... क्योंकि रुचि अनुयायी वीर्य। जहाँ रुचि है, वहाँ वीर्य काम करता है। जिस ओर की रुचि है, वहाँ पुरुषार्थ काम करता है। जो आत्मा की रुचि हो तो पुरुषार्थ वहाँ काम करे। बाह्य में रुचि है तो पुरुषार्थ बाह्य में काम करता है। भाव में। काम कर नहीं सकता। आहाहा! अकेले हीरे भरे हैं!! आहा..! हीरे का.. धन्धा.. मकोड़ी कहा न ? डॉक्टर, वैष्णव। राजकोट में नवरंगभाई के यहाँ आये। उसका पत्र आया, इस बार मासिक पत्र पढ़कर। अपना मासिक है न ? आत्मधर्म। बहिन के जन्म दिवस का पढ़कर प्रसन्न हो गया। आहाहा! इसमें क्या है! बहिन के वचनामृत में क्या बाकी है ? ओहो..! वैष्णव। मध्यस्थ आदमी हो, कुछ सत्य की जिज्ञासा करने की रुचि हो, कुछ रुचि हो तो उसको महिमा आये बिना रहे नहीं। आहाहा! यह चीज़!

अन्तर की रुचि के बिना अन्तर में नहीं पहुँचा जाता,... आहाहा! बाहर की रुचि में बाहर ही रुक जाता है। अन्तर की रुचि बिना अन्तर में जा सकता नहीं। आहाहा! ज्ञान का सूक्ष्म उपयोग करके अन्दर में पकड़ना, वह रुचि बिना हो सकता नहीं। आहाहा! रुचि कहीं रुक गयी है। जो अन्तर में पकड़ने की शक्ति नहीं है, तो रुचि कहीं न कहीं अटक

गयी है। आहाहा! उसको छोड़कर अन्दर में जाता नहीं। आहाहा! **उसे अन्तर की रुचि नहीं है। अन्तर की रुचि के बिना अन्तर में नहीं पहुँचा जाता, सुख प्रगट नहीं होता।** अन्तर में गये बिना आनन्द नहीं आता। आहाहा!

मुमुक्षु :- हमारा क्या दोष? काललब्धि नहीं पकी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं, नहीं, नहीं। काललब्धि का तो प्रश्न पहले हमारे पास आता था। मैं तो उसको ऐसा जवाब देता था कि काललब्धि तुमने भाषा सुन ली है न? काललब्धि का यथार्थ ज्ञान किया है? यदि काललब्धि का ज्ञान कर ले तो दृष्टि अन्दर में गयी, उसको काललब्धि का ज्ञान होता है। यह (चर्चा) तो हमारे साथ (संवत) १९९० की साल से राजकोट में सम्प्रदाय में चलती थी। काललब्धि होगी तब चले। अरे..! सम्प्रदाय में पहले चलती थी न। (संवत्) १९७२ की साल, ७२ की साल। कितने साल हुए? ६४। साठ और चार। हमारे गुरुभाई बारम्बार ऐसा कहते थे कि भगवान केवली ने देखा होगा, तब पुरुषार्थ होगा। अपने क्या करें? ऐसा कहते थे। यह तो ७२ की साल। सेठ! आहाहा! हम तो सुनते थे। दो साल की दीक्षा (थी)। १९७० में दीक्षा (ली)। १९७२ तक दो साल सुना। भगवान ने देखा होगा, वैसा होगा, अपने क्या करे? अरे..! मैंने कहा, सुनो! दो साल सुना। अब मुझसे रहा नहीं जाता।

भगवान केवलज्ञानी जगत में हैं, एक ज्ञानगुण की एक पर्याय में तीन काल-तीन लोक जानते हैं, ऐसी पर्याय की सत्ता जगत में है—ऐसा स्वीकार किये बिना केवली ने देखा वैसा होगा, ऐसा कहाँ से आया? सेठ! केवली ने देखा, तो केवलज्ञानी है—ऐसी प्रतीति है? प्रतीति के बिना तू ऐसे ही बात करता है। आहाहा! किसे पड़ी है? बहुत चली थी। हमारे गुरु तो बेचारे भद्रिक थे। बहुत गम्भीर थे। उन्हें यह बात मालूम नहीं थी। आहाहा!

भगवान ने देखा वैसा होगा। बात तो ऐसी ही है। स्वामी कार्तिकेय में लिखा है। स्वामी कार्तिकेय। ऐसा भगवान ने देखा, जिस समय, जिस काल में जहाँ होगा, वह होगा। उसमें शंका करे, वह मिथ्यादृष्टि है। परन्तु उसकी दृष्टि है कहाँ? आहाहा! भगवान ने देखा तो भगवान की दृष्टि, भगवान का जो ज्ञान है, उस ज्ञान की जिसको प्रतीति हुई,.. आहाहा! ऐसे ही बात करे.. काललब्धि आता है उसमें-कलशटीका में। दूसरी जगह काललब्धि आदि आता है। काललब्धि आदि। यहाँ अकेली काललब्धि ली है। परन्तु काललब्धि..

बापू! संसार के कोई काम में तू कभी ऐसा विचार करता है कि काललब्धि पकी नहीं, इसलिए काम नहीं हुआ। वहाँ तू ऐसा विचार करता है ? और आत्मा के धर्म का विचार करता है, तब काललब्धि पकेगी, तब धर्म होगा। तो तुझे आत्मा की रुचि नहीं है। आहाहा! संसार का काम करने में कभी विचार करता है ? कि काललब्धि होगी, तब मिलेगा, पैसा मिलेगा, स्त्री मिलेगी, इज्जत मिलेगी, ऐसा विचार करता है ? वहाँ तो कहता है, मैं पुरुषार्थ करूँगा तो मिलेगा। आहाहा! तेरा पागलपन तो देख। यह पागलपना! पर की चीज़ में तुझे काल की दरकार नहीं और तेरी चीज़ में काल की दरकार! और तेरा पुरुषार्थ जब अन्दर में जाएगा, तेरी काललब्धि पक जाएगी।

टोडरमलजी तो वहाँ तक कहते हैं, मोक्षमार्गप्रकाशक में। आहाहा! काललब्धि और भवितव्यता कोई वस्तु नहीं है, ऐसा लिखा है। जिस समय तू काम करेगा, वह काललब्धि और उस समय भाव आया, वह भवितव्यता। मोक्षमार्गप्रकाशक। टोडरमल। ओहोहो! हजारों बोल का स्पष्टीकरण किया है। ऐसा स्पष्टीकरण करते-करते ब्राह्मण में विरोध हो गया। ब्राह्मण में विरोध हो गया तो ब्राह्मण ने ऐसा किया कि उसकी.. क्या कहते हैं ? जेब में शंकर की मूर्ति रख दी। गुप्तता से। और रात को राजा को कहा, प्रभु! यह शंकर की मूर्ति का अनादर करते हैं। कौन जाने कैसा काल! आहाहा! राजा ने हुकुम किया, हाथी के पैरों तले कुचल दो। अरर..र..! मोक्षमार्गप्रकाशक बनानेवाले। राजा ने हुकुम कर दिया, हमारे परमेश्वर का अनादर करते हो, मूर्ति जेब में रखते हो ? गुंजा.. गुंजा समझे ? जेब। आहाहा!

हाथी को कहा, इसे मार दे। हाथी मारता नहीं था। हाथी डरता था बेचारा। अरेरे..! इस मनुष्य को कुचल दूँ ? टोडरमलजी बोले, अरे..! हाथी! राजा को दरकार नहीं है तो तुझे क्यों दरकार होती है ? पैर रख दे। पैर मेरे पर रख। पैर रखा, कुचल दिया। देह छूट गया। आहाहा! ऐसा काल। उस समय कोई जैन होगा, नहीं होगा, क्या (होगा) ? जैन बिना की नगरी तो होगी नहीं। परन्तु राजा का हुकुम हुआ वहाँ...

इसलिए वे कहते हैं, वहाँ काललब्धि नहीं देखता। आत्मा में पुरुषार्थ करना है, वहाँ काललब्धि देखे तो उसको आत्मा की दरकार, रुचि है नहीं। आहा..! वह कहाँ, देखो! **अन्तर की रुचि के बिना अन्तर में नहीं पहुँचा जाता, सुख प्रगट नहीं होता।** ३९६ हुआ न ? विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - ११, शनिवार, तारीख २०-९-१९८०
वचनामृत -३९७, ३९८ प्रवचन-३९

आज सातवाँ दिन है। तप, तप। पहले नवकार लेना है न? णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं ऐसा बोले। ऐसा पाठ है। षट्खण्डागम में ऐसा पाठ है कि णमो लोए सव्व साहूणं जो कहते हैं, वह पाँचों में लागू पड़ता है। इसके अतिरिक्त त्रिकालवर्ती को भी (ले सकते हैं)। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। ऐसा पाठ है। आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं। ऐसा पाठ है। वह तो पाठ को छोटा करके ऐसा बोलने में आया। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं, णलो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। त्रिकालवर्ती। आहाहा! तीन काल में वर्तनेवाले पंच परमेष्ठी। अभी कोई तो नरक में पड़ा हो। परन्तु हम तो त्रिकालवर्ती पंच परमेष्ठी को नमस्कार करते हैं। आहाहा!

आज सातवाँ दिवस है। तप.. तप। तप किसको कहते हैं? कठिन बात है, भाई!

इहपरलोयसुहाणं, णिरवेक्खो जो करेदि समभावो।
विविहं कायकिलेसं, तवधम्मो णिम्मलो तस्स॥४००॥

अन्वयार्थ :- जो मुनि इस लोक परलोक सुख की अपेक्षा से रहित... आहाहा! **सुख-दुःख, शत्रु-मित्र, तृण-कंचन, निन्दा-प्रशंसा आदि में राग-द्वेषरहित समभावी होता हुआ...** आहाहा! अपने में चारित्र का उद्यम और उपयोग करता है, वह तप है। सूक्ष्म बात है, भाई! जिसको सम्यग्दर्शन हुआ हो, उसको चारित्र हुआ हो अन्तर में, उस चारित्र में **चारित्र के लिये जो उद्यम और उपयोग करता है, सो तप कहा है**। यह कभी सुना नहीं होगा। सेठ है, प्रमुख है। पाठ है। **चारित्र के लिये...** अन्दर आत्मदर्शन हुआ हो, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तदुपरांत स्वरूप की रमणता चारित्र, नग्नदशा दिगम्बरदशा और अन्तर में दिगम्बर विकल्परहित दशा, उस **चारित्र के लिये जो उद्यम और उपयोग करता है सो तप**

कहा है। आहाहा! यह उपवासादि करना, वह तो साधारण राग की मन्दता कदाचित् हो तो शुभ-पुण्य है। धर्म-बर्म है नहीं।

मुमुक्षु :- धर्म मानकर तो करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- भ्रमणा है न।

यहाँ तो आचार्य यह कहते हैं। चारित्र के लिये जो उद्यम और उपयोग करता है, वह तप है। **इसलिए आत्मा की विभावपरिणति के संस्कार को मिटाने के लिये उद्यम करता है। अपने शुद्धस्वरूप उपयोग को चारित्र में रोकता है,..** गजब बात है! अपने शुद्धात्म उपयोग को... दया, दान, व्रत, तप, भक्ति शुभभाव, उपवासादि शुभभाव, वह कोई तप नहीं है। आहाहा! तप तो सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ उसको कहते हैं, अपने शुद्धस्वरूप उपयोग को चारित्र में रोकता है। आहाहा! क्या कहा? अपना शुद्धस्वरूप उपयोग। पुण्य-पाप, शुभ-अशुभराग विकल्प नहीं। मैं उपवास करूँ, यह करूँ—ऐसा जो विकल्प है, वह भी नहीं। उप-वास। उप अर्थात् आत्मा में समीप में बसना। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा.. आहाहा! उसमें शुद्धस्वरूप उपयोग को। शुभ नहीं। दया, दान, व्रत, तप का विकल्प है, वह शुभराग है। वह तप नहीं है। तप तो उसको यहाँ कहा (कि) अपने शुद्धस्वरूप उपयोग को चारित्र में रोकना। आहाहा! अपना स्वरूप शुद्ध, सम्यग्दर्शन होता है, उससे अतिरिक्त स्वरूप की रमणता का चारित्र होता है, उसमें उपयोग को रोकना, वह तप है। आहाहा! पूरी व्याख्या ही अलग है। है? मूल पाठ है।

दो बात (कही)। एक तो यह आया कि चारित्र के लिये जो उद्यम और उपयोग करता है, वह तप है। परन्तु अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं है, (तो) चारित्र तो है कहाँ? आहाहा! यहाँ सम्यग्दर्शनसहित चारित्र—अन्दर की रमणता, आनन्द में रमणता, उस चारित्र के लिये जो उद्यम और उपयोग करता है, उसे तप कहा है। आहाहा! रामजीभाई! कभी सुना नहीं है। दूसरी बातें सुनकर चल दिये।

दो बात (कही)। एक तो अपने चारित्र के लिये उद्यम और उपयोग (करे), वह तप। दूसरा अपने शुद्धात्म-उपयोग को चारित्र में रोकना। आहाहा! आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु अनन्त सर्वांग अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान से भरा पड़ा है। उसका भान अनुभव करके

स्वरूप में रमना चारित्र है। उस चारित्र के लिये विशेष उद्यम करना, **शुद्धस्वरूप उपयोग को चारित्र में रोकता है, बलपूर्वक रोकता है, ऐसा बल करना ही तप है।** स्वामी कार्तिकेय में (है)। पुरानी पुस्तक है। समयसार से भी २०० वर्ष पहले की पुस्तक है। आहाहा! उसका नाम तप धर्म है। दसलक्षणी धर्म में सातवाँ तप धर्म चारित्र में उद्यम करना। अन्दर में चारित्र तो है, उसकी बात है। जिसको चारित्र नहीं है, दर्शन नहीं है, सम्यग्दर्शन नहीं है, उसकी बात नहीं है। आहाहा!

अन्तर में सम्यग्दर्शन-आत्मा के दर्शनपूर्वक जो स्वरूप में चारित्र-रमणता दशा है, उसमें शुद्ध उपयोग को रोकना। शुभ और अशुभभाव में जाने नहीं देना, उसका नाम यहाँ तप कहते हैं। इस तप को सातवाँ धर्म कहने में आया है। कठिन व्याख्या। तप की व्याख्या कठिन (है)। एक उपवास कर दिया या दस उपवास किये या रस छोड़ दिया, रस खाया नहीं तो हो गया तप। प्रभु! सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में चारित्र में जो उद्यम, उत्तम उद्यम, चारित्र में उत्तम उद्यम (करता है), उसका नाम भगवान तप कहते हैं। आहाहा! सेठ ने कभी सुना नहीं है। है तो प्रमुख।

मुमुक्षु :- कोई सुनानेवाला...

पूज्य गुरुदेवश्री :- आये हैं न, अभी आते हैं। बात बहुत कठिन है, सेठ! मार्ग बहुत अलग जाति का है। आहाहा! दुनिया कहीं चलती है, मार्ग कहीं पड़ा है। आहाहा! तप की व्याख्या यह। सेठ! मक्खनलालजी! कभी सुना ही नहीं वहाँ।

मुमुक्षु :- पूरी मान्यता..

पूज्य गुरुदेवश्री :- पूरी अलग है, बात सच्ची। पूरी मान्यता अलग है, प्रभु! सबका कल्याण होओ! मार्ग तो कोई दूसरी चीज है, भाई! आहा..! कल्याण ऐसे होता नहीं। अपना स्वरूप शुद्धस्वरूप, पुण्य-पाप के विकल्प से-भाव से रहित, ऐसी दृष्टि होकर उसमें चारित्र अर्थात् रमणता करना, उस रमणता में उद्यम विशेष करना, उसका नाम तप कहते हैं। कभी सुना भी नहीं होगा। ... सेठ! बात तो है, भगवान! आहाहा! अरेरे..!

तीन लोक के नाथ,.. यह मुनिराज कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य को दो हजार साल हुए। उसके २०० साल पहले स्वामी कार्तिकेय हुए। मुनि हुए। स्वामी कार्तिकेय। बहुत

उपद्रव था, उसमें देह छूट गया। स्वामी कार्तिकेय ने यह बनाया है। उसमें यह व्याख्या की है। आहाहा! अब अपने बहिन के वचनामृत-३९७। ३९६ हो गया।

चैतन्य मेरा देव है; उसी को मैं देखता हूँ। दूसरा कुछ मुझे दिखता ही नहीं है न!—ऐसा द्रव्य पर जोर आये, द्रव्य की ही अधिकता रहे, तो सब निर्मल होता जाता है। स्वयं अपने में गया, एकत्वबुद्धि टूट गयी, वहाँ सब रस ढीले हो गये। स्वरूप का रस प्रगट होने पर अन्य रस में अनन्त फीकापन आ गया। न्यारा, सबसे न्यारा हो जाने से संसार का रस घटकर अनन्तवाँ भाग रह गया। सारी दशा पलट गयी॥३९७॥

३९७। आहाहा! **चैतन्य मेरा देव है;...** आहाहा! धर्मी जीव ऐसा मानते हैं कि चैतन्य मेरा देव है। अरिहन्त देव तो व्यवहार देव है। आहाहा! है? यह बहिन के शब्द हैं। अरेरे! सत्य बात सुनने मिले नहीं। प्रभु! देह चला जाता है। कितनों का सुनते हैं, आज इसका देह छूटा, आज ये मर गया.. आहाहा! कल नहीं (सुना)? चिमनभाई का ऐसा शरीर था। चुन्नीलाल के पुत्र। शरीर देखो तो हाथी जैसा शरीर। मजबूत। ६१ वर्ष दिखे नहीं, मानो ३५-४० वर्ष हुए हो। एक मिनिट में (छूट गया)। स्त्री को ऐसा कहा कि चाय बनाओ। ऐसा कहा और वह चाय बनाने गयी, वापस आती है तो कुछ नहीं। आहाहा! यह देह की स्थिति। उस देह को अपना मानकर जिन्दगी निकालना। आहा..!

यहाँ कहते हैं कि अरिहन्त देव हैं, वे तो व्यवहार है। पुण्य, शुभभाव है। **चैतन्य मेरा देव है;...** आहाहा! श्लोक में आता है। स्वयं देव। कलश में, समयसार के कलश में आता है। **उसी को मैं देखता हूँ।** आहाहा! **चैतन्य मेरा देव है;...** जाननशक्ति-स्वभाव, जो जानना.. जानना.. जानना. ऐसा उपयोग अथवा स्वरूप चैतन्यद्रव्य वस्तु है, वह पुण्य-पाप के राग से भिन्न है। वही मेरा देव है, ऐसा धर्मी मानते हैं। आहाहा! उसी में मैं देखता हूँ। **उसी को मैं देखता हूँ।** आहाहा! चैतन्य मेरा देव है, उसी को मैं देखता हूँ। पर को नहीं। आहाहा! ऐसी बात, बहिन की वाणी (है)। अन्यमति पढ़ते हैं तो भी उनको ऐसा हो जाता है, यह क्या! अमृत भरा है! आहाहा!

दूसरा कुछ मुझे दिखता ही नहीं है न! आहाहा! चैतन्य मेरा भगवान शुद्ध चैतन्यप्रभु पुण्य और पाप, शुभाशुभभाव से रहित चीज़, वह मेरा देव है। **दूसरा कुछ मुझे दिखता ही नहीं है न!** आहाहा! मेरे को तो यह दिखता है। दूसरी चीज़ दिखती नहीं। दूसरी चीज़ तो अपनी देखने की शक्ति में दिखती है। दूसरी चीज़ अपनी देखने की शक्ति में दिखती है। वह तो अपनी शक्ति है। पर से नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहा..! **दूसरा कुछ मुझे दिखता ही नहीं है न! —ऐसा द्रव्य पर...** द्रव्य अर्थात् वस्तु। त्रिकाली सच्चिदानन्द प्रभु चैतन्यदेव अप्पा। तारणस्वामी ने कहा है, '**अप्पा सो परमप्पा**'। उसकी भी कहाँ खबर है सुननेवालों को। सेठ बराबर.. उसमें शब्द है। '**अप्पा सो परमप्पा**'। आत्मा, सो परमात्मा है। ऐसा बहुत आता है। ज्ञानसमुच्चयसार। अपने व्याख्यान हो गये हैं। आहाहा! यह तो अलौकिक बातें हैं, भाई! जन्म-मरण रहित होने की बात है, यहाँ तो दूसरी बात है नहीं। जिसमें जन्म-मरण एक भी भव करने का भाव (है), उसको अनन्त भव करने का भाव है। आहाहा! जिसको अपने चैतन्य के सिवा, कहीं पर भी प्रेम रह गया अन्दर में और आत्मा रह गया (तो) परिभ्रमण करेगा।

यहाँ तो कहते हैं, **ऐसा द्रव्य पर जोर आये,...** द्रव्य अपनी चीज़ पर, मैं ही मेरा देव हूँ और मैं मुझे देखता हूँ, **ऐसा द्रव्य पर जोर आये,...** द्रव्य अर्थात् वस्तु। त्रिकाली तत्त्व, उस पर जोर आये। **द्रव्य की ही अधिकता रहे,...** सर्व स्थान में कहीं भी हो, परन्तु अपने द्रव्य की अधिकता रहे। गुणभेद की अधिकता भी न रहे। तो राग की, दया, दान की और पर की अधिकता रहे, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! गजब बात है! **ऐसा द्रव्य पर जोर आये, द्रव्य की ही अधिकता रहे, तो सब निर्मल होता जाता है।** तो आत्मा के जो अनन्त गुण हैं, वह पर्याय में-अवस्था में निर्मल होते जाते हैं। आहाहा! बहुत माल-माल भरा है।

मुमुक्षु :- दृष्टि का जोर है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- दृष्टि का जोर, वही चीज़ और वही द्रव्य। दृष्टि का जोर है, परन्तु दृष्टि कहाँ है? द्रव्य (पर है)।

त्रिकाली वस्तु अखण्डानन्द प्रभु ज्ञायकभाव त्रिकाली सत्ता सनातन प्रभु, उसकी दृष्टि (हुई तो) **सब निर्मल होता जाता है। स्वयं अपने में गया,...** आहाहा! पुण्य-पाप,

शुभाशुभराग से भी रहित **स्वयं अपने में गया,...** आहाहा! स्वयं, किसी की मदद बिना। देव, गुरु और शास्त्र की मदद बिना। आहाहा!... आना पड़े, परन्तु यहाँ तो यह बात है। नहीं तो ऐसे पर्यूषण में तो उपवास की बात करते हो, यह करना, वह करो, यह करो, वह करो.. फिर उसका महोत्सव करो। अरे..! प्रभु! वह सब बाह्य की क्रिया अपनी है नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, **स्वयं अपने में गया,...** अपने में अपने से अन्तर में गया। आहाहा! बहुत सूक्ष्म शब्द है। स्वयं अर्थात् आत्मा। अपने में अर्थात् शुद्ध चैतन्य में अन्दर दृष्टि गयी, उसमें किसी का सहारा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसे उत्कीर्ण करनेवाले हैं। सब शब्द उत्कीर्ण करनेवाले हैं। आहाहा! लोग कहते थे, सुनना है। हमने कहा नहीं। कभी कुछ कहा नहीं, एक पुस्तक बनाने को कहा, यह पुस्तक बहिन का। एक लाख पुस्तक बनाओ, कहा। ओहोहो! यह चीज़ बाहर आ गयी। आहाहा! उसे कोई गिने नहीं, जाने नहीं और वस्तु बाहर आ गयी। आहाहा!

स्वयं अपने में गया,... क्या कहा? आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप, वह स्वयं अपने से विकल्प शुभराग का भी सहारा नहीं, देव-गुरु-शास्त्र तो पर रह गये, उनका तो सहारा नहीं (है)। **स्वयं अपने में गया, एकत्वबुद्धि टूट गयी,...** आहाहा! राग, शुभराग हो या अशुभ, उससे एकत्वपना टूट गया। आहाहा! ऐसी बात।

वह भाई कहते थे न? देवीलालजी, देवीलालजी। एक-दो पैराग्राफ है, उसे सौ बार पढ़ा। सौ बार। देवीलालजी कहते थे। ऐसे दो बार पढ़ा। पोपटभाई ने चार बार पढ़ा। पोपटभाई का यहाँ अभी कोई नहीं है न? पोपटभाई को छह पुत्र। और कोई तो ऐसा कहता था, एक-एक पुत्र के पास एक-एक करोड़ है। छह पुत्र के पास छह करोड़ हैं। अभी प्रवीणभाई आये थे न? वह तो बड़ा करोड़पति है। आहाहा! पाँच-पाँच लाख का तो रहने का मकान। सबके अलग-अलग है। पाँच-पाँच लाख का एक। उसके पिताजी चल बसे, वह अलग। आहाहा! उसने यह पुस्तक चार बार पढ़ा। सेठ! करोड़पति छह-छह पुत्र बड़े। १५ लाख की बड़ी दुकान है, कारखाना है। उसके सिवा दूसरे कारखाने भी बहुत हैं। आहाहा! इसे चार बार पढ़ा। चल बसे। पोपटभाई करोड़पति चल बसे। यहाँ आते थे, हमेशा बैठते थे। यहाँ मकान है। दूसरा एक मकान लिया है। जमीन ली है। ढाई लाख की। आहाहा!

स्वयं अपने में गया,... आत्मा ज्ञानानन्द सहजानन्दस्वरूप, वह स्वयं अपने में गया तो **एकत्वबुद्धि टूट गयी,...** राग दया, दान, चाहे तो भक्ति भगवान की (करे), वह राग है। राग से एकत्वबुद्धि टूट गयी। राग मेरी चीज़ ही नहीं है। आहाहा! वह तो पुद्गल व्यापक होकर बना है। आहाहा! ऐसा समयसार में आता है। जैसे कुम्हार घड़ा बनाता नहीं। घड़ा तो मिट्टी से बनता है। घड़ी मिट्टी से बनता है। कुम्हार से नहीं। इसी तरह राग अपने से नहीं, पुद्गल से होता है। मैं तो उसका जानने-देखनेवाला हूँ। आहाहा! अरे..! ऐसी बात!

शरीर निरोगी हो, पैसा कुछ ठीक हो, अनुकूल कुटुम्ब हो तो कुछ सूझे नहीं, दूसरा विचार आये नहीं। अरे..! मैं कहाँ जाऊँगा? देह छूटेगा। आत्मा अनादि सनातन सत्य वस्तु, उसका कभी नाश नहीं होता। कहाँ रहेगा? वह कहते हैं, **एकत्वबुद्धि टूट गयी, वहाँ सब रस ढीले हो गये।** आहाहा! आत्मा आनन्दमूर्ति और राग विकल्प, दो का जहाँ भेदज्ञान हो गया तो सब रस ढीले हो गये। **स्वरूप का रस प्रगट होने पर...** स्वरूप का रस आनन्दरस। आहाहा! आनन्द का रस प्रगट होने पर **अन्य रस में अनन्त फीकापन आ गया।** आहाहा! जहाँ प्रभु का आनन्द का अतीन्द्रिय का रस आया, वहाँ दूसरी सब चीज़ का रस फीका हो गया। आहाहा! एक म्यान में दो तलवार रह सकती नहीं। आहाहा! वैसे अपने रस में पर का रस और पर के रस में अपना रस, ऐसे नहीं रह सकता। जिसको अपना रस लगा, उसको पर का रस टूट गया। जिसको पर का रस है, उसको अपना रस है नहीं। आहाहा! अकेले सिद्धांत भरे हैं। वीतराग की अमृत वाणी यह है। अरेरे..!

स्वरूप का रस प्रगट होने पर अन्य रस में अनन्त फीकापन आ गया। न्यारा, सबसे न्यारा हो जाने से... आहाहा! सबसे न्यारा। देव-गुरु-शास्त्र से भी न्यारा। उनकी भक्ति का भाव राग, उससे भी मैं न्यारा। अरेरे..! कभी अपनी चीज़ क्या है और कैसे प्राप्त हो, सुनने मिले नहीं, उसका भव का अभाव कब हो? भव का अभाव। यहाँ कहते हैं, **न्यारा, सबसे न्यारा हो जाने से संसार का रस घटकर अनन्तवाँ भाग रह गया।** थोड़ा रहता है। जब तक वीतराग न हो, केवलज्ञान न हो, तब आत्मा का रस हुआ, थोड़ा रागादि रहता है, शुभ-अशुभराग। अशुभराग भी ज्ञानी को आ जाता है, परन्तु वह अनन्तवें भाग में रह गया। आहाहा! है? **सबसे न्यारा हो जाने से संसार का रस घटकर अनन्तवाँ भाग**

रह गया। अभी केवलज्ञानी परमात्मा हुआ नहीं, तब तक थोड़ा राग आता है, परन्तु रस टूट गया। वह राग मेरा है, ऐसी बुद्धि टूट गयी। **रस घटकर अनन्तवाँ भाग रह गया।** आहाहा! थोड़ा राग है। जब तक वीतराग न हो तो थोड़ा भी (राग है)। परन्तु राग का राग नहीं है। राग से लाभ मानता नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़।

सारी दशा पलट गयी। आहाहा! जो पर ओर की दिशा की दशा थी, दशा अपनी, अपनी जो दशा पर ओर की दिशावाली थी, वह अपनी दशा अन्तर स्वदिशा की ओर हो गयी। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! परन्तु धीरे-धीरे समझना चाहिए। अरे..! ऐसा अवसर कब मिलेगा? आहाहा! दुनिया को खबर नहीं है कि यह क्या चीज़ है। यह मनुष्यपना मिला, वाणी वीतराग की मिली, सब कब मिलेगा? आहा..! अभी तो गड़बड़ बहुत चली है, धर्म के नाम पर।

यहाँ कहते हैं, आत्मा का आनन्द का रस जहाँ समकित का रस आया, वहाँ अनन्तवें भाग में बाहर का रस रह गया। अभी पूर्ण वीतराग नहीं हुआ तो थोड़ा राग रह गया है। भक्ति आदि का, पूजा का, दया-दान का राग थोड़ा आ जाता है। परन्तु उसके लाभ मानते नहीं। आहाहा! उसको जाननेवाले रहते हैं। ३९७ हुआ न? उसके बाद? ३९८।

मैंने अपने परमभाव को ग्रहण किया, उस परमभाव के सामने तीन लोक का वैभव तुच्छ है। और तो क्या परन्तु मेरी स्वाभाविक पर्याय— निर्मल पर्याय प्रगट हुई वह भी, मैं द्रव्यदृष्टि के बल से कहता हूँ कि, मेरी नहीं है। मेरा द्रव्यस्वभाव अगाध है, अमाप है। निर्मल पर्याय का वेदन भले हो परन्तु द्रव्यस्वभाव के आगे उसकी विशेषता नहीं है।—ऐसी द्रव्यदृष्टि कब प्रगट होती है कि जब चैतन्य की महिमा लाकर, सबसे विमुख होकर, जीव अपनी ओर झुके तब॥३९८॥

३९८। कहते हैं, ध्याता पुरुष-आत्मा का अन्दर ध्यान करनेवाला समकिती जीव ऐसा भाता है कि सकल निरावरण त्रिकाल निरावरण भगवान आत्मा अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण। शुद्ध त्रिकाली सहज स्वभावलक्षण

निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। यह संस्कृत की टीका है। जयसेनाचार्य, समयसार। समयसार की टीका दो है। एक-अमृतचन्द्राचार्य, एक जयसेनाचार्य। जयसेनाचार्य की टीका में यह है। आहाहा!

मैं तो एक निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ। भावना / पर्याय ऐसा कहती है। पर्याय ऐसा नहीं कहती है कि मैं हूँ। पर्याय-अवस्था ऐसा कहती है कि मैं यह हूँ। आहाहा! वही, निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ। आहाहा! अपनी मोक्षमार्ग की निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह पर्यायऐसा कहती है कि मैं यह हूँ। मैं तो त्रिकाली द्रव्य हूँ। आहाहा! बड़ा लेख है। यह तो अन्त का संस्कृत में है। संस्कृत में से गुजराती बनाया है।

अविनश्वर सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, मेरे ज्ञान में प्रत्यक्ष जानने में आये ऐसा मैं; अविनश्वर-कभी नाश नहीं हो, ऐसा शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण। शुद्ध स्वभाव सहज त्रिकाली परम स्वभाव लक्षण जिसका, ऐसा निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। आहाहा! निज परमात्मद्रव्य। भगवान भी नहीं। आहाहा! निज परमात्मद्रव्य। मेरा परमात्मद्रव्य मैं त्रिकाली। आहाहा! संस्कृत टीका है, जयसेनाचार्य की।

परन्तु ऐसा भाता नहीं कि खण्ड ज्ञानरूप मैं हूँ। वर्तमान पर्याय खण्ड ज्ञान है, वह मैं हूँ, ऐसी भावना नहीं करते। आहाहा! पुण्य-पाप की भावना तो नहीं, निमित्त की, संयोग की बात तो है नहीं, परन्तु निर्मल पर्याय प्रगट हो, त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से, वह पर्याय ऐसा जानती है, मैं तो त्रिकाली निरावरण आत्मद्रव्य हूँ। आहाहा! लेख है। आहाहा! क्या कहते हैं?

यहाँ बहिन कहते हैं, और तो क्या (कहना)? दूसरी बात तो क्या करना? स्त्री, पुरुष, ये पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, मकान, वह चीज़ तो दूर रह गयी, तेरे में तो ही नहीं। परन्तु राग और द्वेष भी मैं नहीं। वह तो ठीक, वह भी कुछ नहीं। आहाहा! **परन्तु मेरी स्वाभाविक पर्याय—निर्मल पर्याय...** आहा..! अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान के आश्रय से उत्पन्न हुई मोक्षमार्ग की निर्मल पर्याय, मोक्ष के मार्ग की पर्याय। आहा..! **मैं द्रव्यदृष्टि के बल से कहता हूँ...** मैं त्रिकाली द्रव्य। त्रिकाली द्रव्य की दृष्टि से मैं कहता हूँ कि वह मेरी पर्याय नहीं। आहाहा! गजब बात है! आहाहा! यह कभी सुना नहीं, सेठ! कान में पड़ी नहीं। भाग्यशाली है तो बराबर समय पर आ गये।

मुमुक्षु :- जिस पर लकड़ी फिर जाए, वह सुनने आये।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ बराबर पर्यूषण के समय आ गये। ऐसा लेख है। आहाहा!

भगवान ऐसा कहते हैं, यहाँ बहिन ऐसा कहते हैं, परन्तु वह परमात्मा की वाणी है। आहाहा! **और तो क्या...** दूसरी कोई चीज़ तो मेरी है नहीं। दया, दान, भक्ति तो मेरे में है ही नहीं, मेरी है नहीं। आहाहा! अरे..! शिष्य भी मेरा नहीं। अरे..! गुरु पर है, वे भी मेरे नहीं और अरिहंतादि देव भी मेरे नहीं। आहाहा!

परन्तु मेरी स्वाभाविक पर्याय... निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट हुई अर्थात् निर्मल पर्याय प्रगट हुई, **वह भी, मैं...** आहाहा! **द्रव्यदृष्टि के बल से कहता हूँ...** मैं द्रव्य अर्थात् वस्तु त्रिकाली। उसकी दृष्टि के बल से कहता हूँ कि वह **मेरी नहीं है।** मैं तो त्रिकाली हूँ। आहाहा! पर्याय पर नजर रहे तो भी बुद्धि मिथ्या हो जाए। आहा..! ऐसी बात, भगवान! दिगम्बर मुनियों-सन्तों तो केवली के मार्गानुसारी हैं। केवलज्ञानी परमात्मा, उसके पगडण्डी पर चलकर केवलज्ञान लेंगे। आहाहा! यह भाषा। दूसरी चीज़ तो मेरी नहीं है, परन्तु मेरी द्रव्यदृष्टि से मैं कहता हूँ, द्रव्य-वस्तु त्रिकाल सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप, नित्य स्वरूप की दृष्टि के बल से मैं कहता हूँ कि वह पर्याय मेरे में नहीं है। आहाहा! वह पर्याय मेरे में नहीं है, ऐसा भी नहीं लिया है। वह मेरी पर्याय ही नहीं है। आहा..! पर्याय ऐसा कहती है कि मैं पर्याय ही नहीं हूँ। मैं तो द्रव्य हूँ। आहाहा! ऐसा उपदेश। पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार लोग (इकट्ठे हो), बाहर में यह करो, इसका वैसा करो, दूसरे को मदद करनी, संगठन करना, दूसरों के सबके साथ संगठन (एकता) रखना। यहाँ कहते हैं कि पर्याय के साथ भी संप नहीं है, तो पर के साथ कहाँ है? आहाहा! निर्मल पर्याय !आहाहा! किसके साथ तुझे सम्बन्ध रखना है? आहाहा! किसके संग में तुझे रहना है? आहाहा! यहाँ तो निर्मल पर्याय भी ऐसा कहती है, कहती तो वह है न! आहा..! **मैं द्रव्यदृष्टि के बल से कहता हूँ कि, मेरी नहीं है।** मैं तो त्रिकाली हूँ। आहा..! एक समय की पर्याय जो है, वह दूसरे समय रहती नहीं। आहा..! पहले समय उत्पन्न हुई, दूसरे समय नाश होती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मैं द्रव्यदृष्टि के बल से कहता हूँ... आहाहा! द्रव्य जो त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप मैं हूँ, उसके बल से मैं कहता हूँ। आहाहा! है? वह **मेरी नहीं है। मेरा द्रव्यस्वभाव अगाध है...** पर्याय तो एक समय की है। आहाहा! और **मेरा द्रव्यस्वभाव अगाध है...** महा खजाना गम्भीर।

स्वयंभूरमण समुद्र जैसे असंख्य योजन में गम्भीर (पड़ा है)। स्वयंभूरमण समुद्र में नीचे रेत नहीं है। रत्न भरे हैं। अन्तिम समुद्र है, उसमें नीचे अकेले रत्न भरे हैं। रेत के बदले। रेत-बालु। आहाहा! वैसे मैं स्वयंभू भगवान आत्मा, मेरे में अनन्त गुणरूपी रत्न भरे हैं। आहाहा! अरे..! स्वयंभूरमण का तो दृष्टान्त दिया है। आहाहा! मेरी चीज़ तो यह है। आहाहा!

द्रव्यस्वभाव तो अगाध है। आहाहा! **अमाप है**। उसका माप नहीं है। **निर्मल पर्याय का वेदन भले हो...** आहाहा! गजब अधिकार आ गया है! निर्मल पर्याय। वेदन तो पर्याय का है। वेदन द्रव्य का नहीं (होता)। द्रव्य तो ध्रुव त्रिकाल है। वेदन में-अनुभव में तो पर्याय है। तो कहते हैं, **पर्याय का वेदन भले हो परन्तु द्रव्यस्वभाव के आगे उसकी विशेषता नहीं है**। आहाहा! माल-माल आ गया है। आहाहा! जगत का भी पुण्य है कि बराबर (बाहर आ गया है) और हमारे सेठ यहाँ आये और ठीक मौके पर ऐसा आया। गजब बात है, सेठ!

धर्मी तो उसे कहते हैं... आहाहा! कि अपनी पर्याय में निर्मल दशा मोक्ष के मार्ग की, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः, यह पर्याय प्रगट हो तो भी मैं द्रव्यदृष्टि के बल से कहता हूँ कि वह मेरी नहीं है। वह मेरी नहीं। आहाहा! गजब है! यहाँ तो अभी बाहर की पूजा, भक्ति, दया, दान, व्रत करते-करते कल्याण हो जाएगा, (ऐसा मानते हैं)। अरे..! प्रभु! आहाहा! बहुत अलौकिक बात आ गयी है! आहा..! यहाँ सेठ की मौजूदगी में सहज आ गया। आहाहा! आज यह आयेगा, ऐसा तो मुझे भी मालूम नहीं था। आहा..!

मेरा द्रव्यस्वभाव-वस्तुस्वभाव ज्ञायकभाव त्रिकाली द्रव्यभाव अगाध है। उसके आगे पर्याय की क्या कीमत? अमाप है। पर्याय में तो माप (है)। एक समय की पर्याय माप आ गया। मेरा वस्तु का स्वभाव तो अमाप है। आहाहा! गजब बात है! ३९८। आहाहा! गजब बात आयी है! **निर्मल पर्याय का वेदन भले हो...** अनुभव तो पर्याय का होता है, द्रव्य का अनुभव होता नहीं। आहाहा! वेदन में धर्म होता है। मोक्ष के मार्ग की पर्याय का वेदन है। वेदन द्रव्य का नहीं है। द्रव्य तो ध्रुव है। **परन्तु...** आहा..! वेदन पर्याय का भले हो, **परन्तु द्रव्यस्वभाव के आगे उसकी विशेषता नहीं है**। त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा से पर्याय की विशेषता नहीं है। आहाहा! विशेष है, वह पर्याय विशेष है। वेदन पर्याय में है, अनुभव पर्याय में है। वेदन-भोगना पर्याय में ही है।

(प्रवचनसार) १७२ गाथा में तो ऐसा भी कहा कि मैं तो जितना वेदन में आता हूँ, वही मैं आत्मा हूँ। आहाहा! प्रवचनसार। वह आया न? २०वां बोल। २० बोल है, अलिंगग्रहण। २० बोल। सब व्याख्यान हो गये हैं। मुम्बई से पुस्तक छपेगी। दो पुस्तकें आयी हैं। सात लाख की पुस्तकें छपेंगी। आहाहा! क्या कहते हैं? कि मेरे आत्मा में जो पर्याय है, वह वेदन में आती है। वहाँ १७२ गाथा में ऐसा कहा कि वेदन में आया वही मैं हूँ। ध्रुव तो वेदन में आता नहीं। फिर भी दृष्टि ध्रुव पर है। समझ में आया? वेदन में पर्याय है, वही मैं हूँ—ऐसा संस्कृत पाठ है। आचार्य अमृतचन्द्राचार्य। मुनि प्रवचनसार की टीका करनेवाले। वेदन में मुझे आनन्द आता है, वही मैं हूँ। राग तो मैं नहीं, परन्तु द्रव्य भी मैं नहीं। आहाहा!

यहाँ उससे दूसरी बात करते हैं। **पर्याय का वेदन भले हो परन्तु द्रव्यस्वभाव के आगे उसकी विशेषता नहीं है।—ऐसी द्रव्यदृष्टि कब प्रगट होती है...** ऐसी द्रव्यदृष्टि.. आहाहा! त्रिकाल ज्ञायकभाव, ज्ञायक त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, उसकी दृष्टि कब होती है? **कि जब चैतन्य की महिमा लाकर,...** आहाहा! ऐसी दृष्टि कब होती है? आहा..! **जब चैतन्य की महिमा लाकर, सबसे विमुख होकर, जीव अपनी ओर झुके तब।** जीव अपनी ओर झुके। आहाहा! गजब बात है! ३९८। वह द्रव्यदृष्टि कब प्रगट होती है? **जब चैतन्य की महिमा लाकर, सबसे विमुख होकर, जीव अपनी ओर झुके तब।** आहाहा! जब, तब। जब चैतन्य की महिमा लाकर, सबसे विमुख होकर, स्वरूप के सन्मुख होकर **जीव अपनी ओर झुके तब।** आहाहा! थोड़ी-थोड़ी भाषा में गम्भीरता बहुत है। आहाहा! ३९८ बहुत सूक्ष्म आ गया। आहाहा!

मेरी द्रव्यदृष्टि, द्रव्य की अपेक्षा से रागादि, पुण्यादि, दया, दान, व्रतादि के विकल्प की महिमा तो है नहीं, पर की महिमा भी है नहीं, परन्तु अपने द्रव्य की महिमा के आगे उसकी पर्याय की महिमा नहीं है। उसकी विशेषता नहीं है। आहाहा! है? **चैतन्य की महिमा लाकर, सबसे विमुख होकर, जीव अपनी ओर झुके तब।** तब ऐसी दशा होती है। समझ में आया? कब होती है ऐसी महिमा? पर्याय द्रव्य की ओर झुके तब। अपनी वर्तमान निर्मल पर्याय को द्रव्य की ओर झुकने से यह महिमा आती है। उसके पहले महिमा आती नहीं। आहाहा! विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - १२, रविवार, तारीख २१-९-१९८०
वचनामृत -४०१, ४०३ प्रवचन-४०

आज पर्यूषण का आठवाँ दिन है। त्याग धर्म, त्याग धर्म। त्याग धर्म किसको कहते हैं? आठवाँ बोल है।

जो चयदि मिट्ठभोज्जं, उवयरणं रायदोससंजणयं।
वसदिं ममत्तहेदुं, चायगुणो सो हवे तस्स॥४०१॥

यह मुनि की बात है न? मुनि है, वे प्रथम तो विरक्त (होते हैं)। अन्दर में आत्मज्ञान सहित, पुण्य-पाप के भाव से विरक्त (हों), वे मुनि (हैं)। अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का झरना बहे और पुण्य एवं पाप के भाव के साथ विरक्त (हों), वे मुनि हैं। इष्ट भोजन का... भोजन में इष्टपना छोड़ देना। यह बात। बाकी तो अन्दर आनन्दस्वरूप में मुनि हैं। सम्यग्दर्शनसहित पुण्य-पाप के भाव से विरक्तिसहित अपने स्वरूप में रमणता करते हैं। उनका आहार, बस्ती और उपकरण, तीन के साथ संसर्ग रहता है, तो तीनों में राग-द्वेष नहीं करना। बस्ती में, आहार में और जिसका संग होता है, उसमें। समझ में आया? आहा..! उपकरण में। अपने उपकरण में राग का त्याग और वैराग्य। अन्दर में आनन्दस्वरूप, उसमें राग का अभावस्वरूप स्थिरता-अन्दर में रमणता, उसका नाम त्याग धर्म कहने में आता है। यह है।

मुमुक्षु :- वह तो मुनियों का त्याग हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ तो मुनि की ही बात है। ये दस प्रकार के धर्म मुनि के ही हैं।

मुमुक्षु :- हमें कोई त्याग नहीं करने का है न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसे सम्यग्दर्शन प्रथम करना, वह है। वह तो यहाँ आ गया।

यहाँ भी कहा कि प्रथम तो सम्यग्दर्शन और पुण्य-पाप से विरक्त, यह दशा तो होती ही है। इस दशा के बिना त्याग धर्म यथार्थ होता नहीं। बाह्य का त्याग, वह त्याग नहीं है। अन्तर का त्याग भी मुनि को अन्तर में आत्मा का स्वभाव-निधान अपने में मानकर, अनुभव करके पुण्य और पाप दोनों में विरक्त अर्थात् वैराग्य करके, बस्ती, उपकरण और आहार, तीन का उनको प्रसंग है, उसके प्रति के राग का त्याग।

उपकरण जो मोरपीछी, कमण्डल, आहा..! उसमें भी राग-द्वेष नहीं। '**वसदिं ममत्तहेदुं**'। बड़ी बस्ती मिली हो, वहाँ न रहे। एकान्त में शान्त, जिसमें आत्मा के आनन्द की, वैराग्य की वृद्धि हो, ऐसे स्थान में रहे। उसका नाम त्याग धर्म कहते हैं। आहाहा! यह तो बाह्य त्याग किया तो त्याग हो गया, ऐसा नहीं। ऐसा त्याग तो अनन्त बार किया है। 'मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रैवेयक उपजायो'। अनन्त बार मुनिपना लिया है। द्रव्यलिंगी जैन साधु दिगम्बर (हुआ)। एक आत्मज्ञान बिना, पंच महाव्रत आदि सब क्रिया निर्मल। उसके लिये, प्राण जाए तो भी एक पानी का बिन्दु बनाया हो तो भी न ले। आहाहा! ऐसी क्रिया तो अनन्त बार की। परन्तु आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पाया। आहाहा! आत्मज्ञान, जिसमें मिथ्यात्व का त्याग और स्वरूप का ग्रहण, त्रिकाल भगवान आत्मा, उसका शुद्ध चैतन्य आनन्द, आनन्द की नगरी आत्मा है। जैसे नगर में बहुत बस्ती होती है, वैसे आत्मा के आनन्द नगरी में बहुत गुण की बस्ती है। आहाहा! उसमें रहने में उपकरण और बस्ती के साथ... आहाहा! और आहार। उसके प्रति भी राग आता हो तो छोड़ दे। भविष्य की इच्छा, तृष्णा तो है ही नहीं। वर्तमान में लोभ थोड़ा हो, उसे कम करे दे। अन्तर आत्मा का आनन्द, भान सहित। उसको यहाँ त्याग धर्म कहते हैं।

ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है। ज्ञानी निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है। 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं। हमें त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं'॥४०१॥

अब, बहिन का ४०१ (वचनामृत)। ४०१। बहुत सरस बात है। आहा..! **ज्ञानी का परिणमन...** ४०१। धर्मी उसे कहते हैं.. आहाहा! जिसको अन्दर पुण्य और पाप के राग से भी भिन्न और अपनी आनन्दादि नगरी में अभिन्न, एकाकार... आहाहा! ऐसे **ज्ञानी का परिणमन...** धर्मी की दशा-अवस्था **विभाव से विमुख होकर...** है ? आहा..! अभी विभाव की भी खबर न हो। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम (हो), वह विभाव है, विकार है, शुभ है, अरे..! आत्मा के अमृतस्वरूप से विरुद्ध जहर है। शुभभाव। आहा..! **ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर...** विभाव अर्थात् शुभ और अशुभभाव। आहाहा! उससे भी विमुख होकर **स्वरूप की ओर ढल रहा है।** स्वरूप की ओर-समीप अन्दर में ढल रहा है। आहाहा! यह मार्ग।

ज्ञानी निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है। क्या कहते हैं? धर्मी जीव... ४०१ है न? ४०१। ज्ञानी अर्थात् धर्मी जीव **निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है।** आहाहा! जैसे लोभी को चाहे जितना पैसा मिले, तो भी नया प्राप्त करने को तरसता है। करोड़ हो तो दो करोड़, दो करोड़ हो तो पाँच करोड़ और दूसरे को देखे कि उसके पास दस करोड़ है, मेरे पास तो एक करोड़ है। तो नौ करोड़ कम है। आहाहा! मेरे पास एक है, उसके पास दस है। नौ करोड़ कम है। नौ करोड़ हो, तब मेरी तृष्णा पूरी होगी, ऐसा माने। माने। परन्तु दस करोड़ हो जाए तो पन्द्रह करोड़वाले की दृष्टि करके तृष्णा रहे।

यहाँ कहते हैं कि **विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है।** आहा..! सूक्ष्म बात। ४०१ बहुत ऊँचा (बोल) है, ऊँची बात है। आहा..! ज्ञानी-धर्मी **निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है।** अपनी दशा की पूर्णता प्राप्त करने को तरसता है। भावना और अभिलाषा यही है कि मैं पूर्ण हो जाऊँ। केवलज्ञान (प्राप्त कर लूँ)। आहाहा! जो दशा वर्तती है, मुनि छठ्ठे-सातवें में हजारों बार (झूलते हैं)। सच्चे भावलिंगी सन्त होते हैं, भावलिंगी सन्त को क्षण में छठ्ठा, क्षण में सातवाँ (गुणस्थान होता है)। अम्रवत ध्यान हो जाए। ऐसी दशा होती है। वे पूर्ण को तरसते हैं। इतनी दशा में भी पूर्ण केवलज्ञान की तृष्णा-तरसता है। मैं कब पाऊँ? कब पाऊँ? केवलज्ञान मैं कब पाऊँ? मैं पूर्ण कब हो जाऊँ? आहाहा! मुनि की अन्दर में ऐसी भावना (होती है)। आहाहा!

यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। आहाहा! क्या कहा? दया, दान, भक्ति का भाव आता है, वह विभावभाव हमारा देश नहीं है। आहाहा! गजब बात है! अरे..! उसने कभी अन्दर की सुनी नहीं। अन्दर की क्या चीज़ है? अरे..! चौरासी लाख के अवतार में एक-एक में अनन्त अवतार करता है। अपनी चीज़ की सम्भाल की नहीं। आहाहा! बाहर की सम्भाल करने में तत्परता। **यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** आहाहा! कहो, सेठ! पुण्य परिणाम हमारा देश नहीं, ऐसा कहते हैं। शुभभाव दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि या तप - यह उपवास, आत्मा के भान बिना, वह सब शुभभाव हमारा देश नहीं है। आहाहा! है? **विभावभाव हमारा देश नहीं है।** यह देश नहीं। सौराष्ट्र या महाराष्ट्र। वह देश तो जड़ है, पर है। यहाँ तो अन्दर में शुभ-अशुभभाव होता है,.. आहाहा! वह हमारा देश नहीं। धर्मी को अन्तर में ऐसी भावना वर्तती है। आहाहा! गजब है! ४०१ तो एक नम्बर का है!

यह विभावभाव... '*यह*' शब्द पड़ा है न? क्योंकि उसको भी आता तो है। शुभभाव आदि, भक्ति आदि। परन्तु **यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** '*यह*' शब्द पड़ा है न? इसलिए है तो सही, आता तो है। आत्मज्ञानी-धर्मीजीव को भी अशुभ से बचने को शुभभाव आता है, परन्तु वह हमारा देश नहीं है। हम तो परदेश में चले गये हैं। अरेरे..! आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम परदेश है। कभी सुना न हो।

मुमुक्षु :- यह बात ही कहीं चलती नहीं थी।

पूजय गुरुदेवश्री :- सच्ची बात है। हमारे लालचन्दभाई है न? लालचन्द मोदी। वे कहते हैं, यह चर्चा कहाँ थी? यह करो, वह करो, यह रखो, वह लो..

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! बहिन कहते हैं,.. आहाहा! अपने अनुभव में से वाणी निकली है। उस वाणी में ऐसा आया। शुभभाव आता है। अरे..! ज्ञानी को जब तक पूर्ण चारित्र न हो, तब तक मुनि के सिवा को शुभभाव भी आता है। और मुनि को भी कभी आर्तध्यान भी हो जाता है। आहाहा! परन्तु वह हमारा देश नहीं। आहाहा!

श्रीमद् ने कहा न? श्रीमद् राजचन्द्र। 'अशेष कर्म का भोग है, भोग का अवशेष रे..' अरेरे..! कुछ भी राग अभी मुझे छूटता नहीं। सम्यग्दर्शन होने पर भी। अभी राग छूटता नहीं है तो ऐसा लगता है, 'अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे..' अरे..! अभी थोड़ा राग

भोगना बाकी रहता है। 'इससे देह एक धारकर, इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे..' आहाहा! गृहस्थाश्रम में थे श्रीमद्। लाखों का व्यापार। जौहरी का लाखों का धन्धा (था)। परन्तु भिन्न। नारियल का गोला जैसे... क्या कहते हैं? अलग होता है, वैसे भिन्न रहकर काम करते थे। और (राग) बाकी रहने से (कहते हैं), अरे.. अभी अमुक जाति का राग आता है तो ऐसा लगता है कि एकाध देह करना पड़ेगा। आहाहा! और बाद में एक देह धारण करके 'जाशुं स्वरूप स्वदेश।' अपना स्वदेश अन्दर आनन्द की नगरी.. आहाहा! शान्ति का सागर.. लो, सेठ! यह तुम्हारा सागर आया। सागर तुम्हारा गाँव। सागर गाँव नहीं है, कहते हैं।

मुमुक्षु :- आप टिकिट दीजिए तो हम जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन दे? कौन ले? आहाहा!

अपने परिणाम का कर्ता, कर्म भी नहीं। निर्मल सम्यग्दर्शन परिणाम का कर्ता, कर्म नहीं। आहाहा! कर्ता आत्मा और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणाम, वह अपना कर्म; कर्म अर्थात् कार्य। आहाहा!

करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा।
जाने सो करता नहीं होई, करता सो जाने नहीं कोई।

आहाहा! बनारसीदास ने वर्णन किया है। कुन्दकुन्दाचार्य की टीका की है। आत्मा अपने निर्मल परिणाम का कर्ता होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान का कर्ता और वही उसका कार्य है। सम्यग्दर्शन का कार्य। कर्म, कर्ता और सम्यग्दर्शन कार्य; कर्म थोड़े हट जाए तो मुझे धर्म हो, तो कर्म कर्ता और धर्म का परिणाम कार्य—ऐसा होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? कर्ताकर्म में आ गया है न? अपने परिणाम का कर्ता, कर्म नहीं और कर्म के परिणाम का कर्ता आत्मा नहीं। आहाहा! ७५, ७६, ७७, ७८ गाथा। समयसार। आहाहा!

जैसे घड़े का कर्ता कुम्हार नहीं है। घट-घट, उसका कर्ता कुम्हार नहीं है। मिट्टी कर्ता है। मिट्टी कर्ता, मिट्टी का कार्य। आहाहा! और घड़े की पर्याय में षट्कारक परिणमन अपने स्वतन्त्र (होता है)। आहाहा! मिट्टी से भी नहीं। घड़े की पर्याय कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण षट्कारक से घड़ा का परिणमन होता है। कुम्हार से तो

नहीं, परन्तु मिट्टी से भी नहीं (होता)। अरेरे.. ! ऐसी बातें। समझ में आया ? प्रवचनसार में ज्ञेय अधिकार में ले लिया है। १०१-१०२ गाथा। आहा.. ! यह आत्मा, धर्म का परिणाम जो है, वह आत्मा का कार्य है। वह कार्य कोई कर्म का है या देव-गुरु का कार्य है, ऐसा है नहीं। यह कहते हैं।

यहाँ तो **विभावभाव हमारा देश नहीं है**। आहाहा ! एक विकल्प उठे भगवान की भक्ति का या शास्त्र की भक्ति उठे, वह विभावभाव, वह विकारभाव (है)। धर्मी जानते हैं कि वह हमारा देश नहीं। आहाहा ! आज आठवाँ दिन है। रविवार है। आहाहा ! भगवान आत्मा अपना शुद्ध स्वभाव की नगरी में विराजमान है। अनन्त अनन्त शुद्ध स्वभाव की नगरी में विराजमान है। उसका धर्म का शुद्ध परिणाम, आत्मा कर्ता और उसका कर्म, वह भी व्यवहार कहने में आता है। बाकी निश्चय से तो वह वीतरागी धर्म परिणाम अपना कर्ता और अपना ही कार्य है। वह परिणाम कर्ता, कर्म है। तो उस परिणाम का दूसरा कर्ता हो, व्यवहाररत्नत्रय करते-करते निश्चयरत्नत्रय हो, ऐसा होता नहीं। आहाहा !

बहिन यहाँ वह कहती है, **यह विभावभाव हमारा देश नहीं है**। आहाहा ! है ? मक्खनलालजी सेठ ! कभी सुनी नहीं ऐसी बात यहाँ है। सेठ ! ऐसी बात है न ! आहा.. ! पुण्य, दया, दान, भक्ति के परिणाम को यहाँ परदेश कहा। वह अपना देश नहीं। भगवान ! कभी सुना नहीं, प्रभु ! आहाहा ! तेरी अन्दर नगरी, अन्दर बसती है। जिसमें अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण की बस्ती बसती है। आहा.. ! ऐसे अपने नगर पर नजर नहीं है और विभावभाव विकल्प उत्पन्न होते हैं, वह हमारा देश नहीं।

इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ? आहाहा ! धर्मी को अपना ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप के समक्ष, भक्ति का राग आया, भगवान की भक्ति का, परमात्मा के स्मरण के.. अरे.. ! **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ?** आहाहा ! थोड़ा कठिन तो है, प्रभु ! मार्ग प्रभु ! ऐसा है। लोग भले दूसरे प्रकार से ढीला कर-करके (कहे), लोग समझे नहीं, उनको दिमाग नहीं है। ऊपर जो कहे उसे जय नारायण (करके) हाँ, हाँ करे। 'प्रभु का मार्ग है शूरों का, यह कायर का नहि काम'। वहाँ कायर का काम नहीं है, प्रभु ! आहाहा ! यहाँ तो वहाँ तक कहा, यह विभावभाव, **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ?** आहाहा ! अरे.. ! पुण्य और पाप का भाव परदेश है। अपनी नगरी में, अपने देश में वह नहीं। अपना

स्वरूपदेश, उसमें पुण्य-पाप का भाव है नहीं। आहाहा! ऐसा कहाँ मिले? वहाँ कहीं मिले ऐसा है? रुपया मिले-धूल।

मुमुक्षु :- वह तो परदेश है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह परदेश नहीं, पैसे की ममता है, वह परदेश है। आहाहा! ये तो लाखों रुपया पैदा करते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहा..! ये शान्तिभाई झबेरी के छोटे भाई हैं। हांगकांग में रहते हैं। लाखों की कमाई। बड़ी दुकान है। धूल है सब।

यहाँ तो उसे छोड़कर बात करते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही नाथ! तेरी नगरी में तो आनन्द, शान्ति, स्वच्छता और प्रभुता बसती है न, प्रभु! तू तो परमेश्वर है न! यह पुण्य और पाप के परदेश में कहाँ आ चढ़ा? आहाहा! यह सुना नहीं है, सेठ! कभी सुना नहीं। ऐ.. माणिकचन्दजी! शोभालालजी तो यहाँ बहुत आते थे। यहाँ बहुत रहते थे। हमारे साथ चलते थे। सबेरे बाहर जंगल जाते थे, तब बातचीत करते थे। चले गये। देह की स्थिति पूरी हो जाती है। राम-लक्ष्मण की जोड़ी थी। एक गया। दुनिया में ऐसा है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे?** आहाहा! है? परदेश कौन? पुण्य और पाप, विभावभाव। आहाहा! गजब बात है! एक बार नास्तिक को तो ऐसा लगे, यह क्या कहते हैं? प्रभु! तेरी चीज़ कोई अलौकिक अन्दर है, भगवान! आहाहा! तेरे शहर में तो गली-गली में गुण भरे हैं। आहाहा! और एक-एक गुण में अनन्ती-अनन्ती शक्ति पड़ी है। आहा..! एक-एक गुण, अनन्त पर्याय करने की शक्तिवाला गुण है। अनन्त पर्याय करनेवाला एक-एक गुण। ऐसे अनन्त गुण का शहर प्रभु अन्दर है। आहाहा! अरे..! यह विकल्प आया, शुभराग, हम कहाँ आ पहुँचे? **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे?** आहाहा! भाषा तो आसान है। भाव तो कठिन है।

हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। आहाहा! है? धर्मीजीव को उसको कहते हैं कि जिसको आत्मभान हुआ हो। वे ऐसा कहते हैं कि हमें शुभभाव भी अच्छा नहीं लगता। आहाहा!

मुमुक्षु :- खेद होता है या ज्ञान होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री :- ज्ञान भी होता है और साथ में थोड़ा खेद भी होता है। मुनि को

भी खेद होता है। आता है न ? समयसार में आता है। अरेरे..! दुनिया यह क्यों करती है ? हमको आश्चर्य तो होता है, परन्तु उसके साथ खेद भी होता है। मुनि कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं)। राग है न, थोड़ा अंश है। संज्वलन की अन्तिम कषाय। वह भी विभाव परदेश है। आहाहा! अरेरे..! ऐसी बात!

इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। आहाहा! यहाँ हमें अच्छा नहीं लगता। धर्मी को शुभभाव भी अच्छा लगता नहीं। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! आहाहा! **यहाँ हमारा कोई नहीं है।** शुभ और अशुभभाव में हमारा कोई नहीं है। अरे..! हम कहाँ आ गये ? जहाँ हमारा देश है, उसे छोड़कर हम परदेश में आ गये। देश का भान है, फिर भी अस्थिरता के कारण पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हुई है तो ऐसा राग आता है, तो धर्मी को ऐसा लगता है, अरेरे..! हम कहाँ आ पहुँचे ? हमको यह अच्छा नहीं लगता, **यहाँ हमारा कोई नहीं है।** आहाहा! कभी सुना नहीं है, सेठ! ऐसी बात कभी सुनी नहीं। यह बात ऐसी है, भगवान! आहाहा! आहाहा!

यहाँ हमारा कोई नहीं है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव हमारा नहीं। आहाहा! जिससे बन्ध पड़े, वह भाव हमारा नहीं। आहाहा! अरेरे..! बात की खबर नहीं, उसकी समझ तो कहाँ से होगी ? और आत्मा की समझपूर्वक दृष्टि वह कोई अलौकिक है! उसमें लौकिक भाव आया। अलौकिक नगरी को निहारा, अपनी नगरी को निहारा, निधान को, तब वहाँ राग आता है, वह तो विभाव और परदेश दिखता है। अरेरे..! यहाँ हमको अच्छा नहीं लगता है। यह हमारा देश नहीं है, हम कहाँ आ गये ? **यहाँ हमारा कोई नहीं है।**

जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि... अन्दर शक्ति-गुण। **जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है,...** आहाहा! शोभालाल आदि का परिवार नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! डालचन्दजी का परिवार नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, हमारा परिवार ज्ञान। अन्दर ज्ञानस्वरूप जो आत्मा-ज्ञान। श्रद्धा, उसकी श्रद्धा। उसकी रमणता-चारित्र ज्ञान में। आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द जहाँ हमारा बसता है। और वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ आदि अर्थात् अनन्त। ऐसे **अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है।** आहाहा!

अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं। आहाहा! समझ में आया? **अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर...** स्वरूपस्वदेश। आनन्द और ज्ञान, शान्ति जहाँ भरी है। जहाँ लबालब अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान और शान्ति, चारित्र वीतरागता लबालब भरी है। ऐसा हमारा देश है अन्दर। आहाहा! **अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं।** आहाहा! धर्मी को यह भावना है। राग होता है गृहस्थाश्रम में। समकिती को भी राग तो आता है। आहाहा! विषय का राग आता है। अरेरे..! यह जहर कहाँ से आया? यह हमारा देश नहीं। अरेरे.. हम कहाँ आ पहुँचे? पश्चाताप का पार नहीं रहता। आहाहा! राग आता है, तब साथ में पश्चाताप भी होता है। अरे..! ये क्या चीज़? मैं कहा हूँ और कहाँ आ गया?

अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं। हमारा स्वरूपस्वदेश ज्ञान, आनन्द, शान्ति अन्दर पूर्ण भरी है। वीतरागता से तो सारी नगरी भरी है। आहा..! उस ओर हम जा रहे हैं। है? जहाँ **हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं।** आहाहा! आज बहुत अलौकिक बात आ गयी है। ४०१। आहाहा! किसी ने इसमें लिखा है कि यह पढ़ना। भले किसी ने भी लिखा हो, वही पढ़ते हैं। दूसरे छोड़ दिये हैं। नहीं तो पहले से पढ़ते। किसी ने इसमें लिखा है, भले किसी ने भी रखा हो। आहाहा!

कहते हैं, **अब हम...** धर्मी.. धर्मी.. सम्यग्दृष्टि उसको कहते हैं। आहाहा! **अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं।** रागादि में हमारा देश नहीं है। वहाँ हमारा वतन नहीं है। वह हमारा वतन नहीं। वह हमारी दुकान नहीं, हमारा घर नहीं, वह हमारा परिवार नहीं। आहाहा! **हमें त्वरा से..** अब तो कहते हैं, जिसको आत्मा का भान हुआ, वह ऐसा (कहते हैं), अब तो त्वरा से **अपने मूल वतन में जाकर...** आहाहा! मूल वतन में जाकर। मूल वतन पालनपुर होगा? आहाहा! भाषा तो देखो बहिन की!

मुमुक्षु :- भाषा सरल परन्तु भाव गम्भीर है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- गम्भीर है। भाषा सादी है। पुस्तक तो मिली है न? यह पुस्तक मिली है न? सेठ को नहीं मिला होगा।

मुमुक्षु :- आज सुबह दस-बारह कॉपी ले आये।

पूज्य गुरुदेवश्री :- ले आये ? ठीक। आहाहा!

कहते हैं, धर्मी जीव अपने में ऐसा मानता है, अपने आत्मा का ज्ञान और आनन्द हुआ है तो **हमें त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर आराम से बसना है,...** वहाँ आराम है। यहाँ आराम करते हैं न ? थोड़ी देर आराम करो, आराम करो, आराम करो। क्या आराम ? प्रभु! बाहर में आराम कैसा ? यह तो मूल वतन में जाकर.. आहाहा! धन्य.. धन्य.. धन्य!! ज्ञान, दर्शन, आनन्द, चारित्र, वीर्य, प्रभुता, स्वच्छता ऐसे अनन्त गुण जो हमारे में भरे हैं, वहाँ अब त्वरा से, जल्दी से **मूल वतन में जाकर आराम से बसना है,...** वहाँ आराम से बसना है। आहाहा! **जहाँ सब हमारे हैं।** वहाँ हमें बसना है, वह हमारा है अन्दर। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि नगरी प्रभु की-आत्मा की, उस नगरी में-नगरी-नगर। नगरी कहते हैं न ? नगर-न कर। उसके सिर पर कर (कर्ज) नहीं होता। राजा की बड़ी नगरी हो। उसके सिर पर कोई कर्जा नहीं होता। नगर इसलिए नगरी कहते हैं। वैसे भगवान के सिर पर कोई कर्ज नहीं है। आनन्द की नगरी है। आहाहा! वहाँ जाकर आराम से बसना है। जहाँ सब हमारे हैं। जहाँ सब हमारे हैं। आहाहा! ४०१। आहाहा! हांगकांग में कभी सुना न हो। धूल के कारण। धूल.. धूल। भले उसके हीरे माणिक (हो)।

मुमुक्षु :- हृदय में उत्कीर्ण करने जैसे हैं।

उत्तर :- आहाहा! ऐसी बात है। ४०१। करीब ४० मिनिट हुई। ४० मिनिट। अब ? ४०३।

जैसे पूर्णमासी के पूर्ण चन्द्र के योग से समुद्र में ज्वार आता है, उसी प्रकार मुनिराज को पूर्ण चैतन्यचन्द्र के एकाग्र अवलोकन से आत्मसमुद्र में ज्वार आता है;—वैराग्य का ज्वार आता है, आनन्द का ज्वार आता है, सर्व गुण-पर्याय का यथासम्भव ज्वार आता है। यह ज्वार बाहर से नहीं, भीतर से आता है। पूर्ण चैतन्य चन्द्र को स्थिरतापूर्वक निहारने पर अन्दर से चेतना उछलती है, चारित्र उछलता है, सुख उछलता है, वीर्य उछलता है—सब कुछ उछलता है। धन्य मुनिदशा!॥४०३॥

४०३। **जैसे पूर्णमासी के पूर्ण चन्द्र के योग से...** जगत का ऐसा नियम है कि जब चन्द्र पूर्णिमा हो, तब ज्वार-बाढ़ पूरी आती है। क्या कहा? समुद्र का और चन्द्र का ऐसा स्वभाव है कि चन्द्र जब पूर्ण रूप-पूर्णिमारूप हो, तब समुद्र के पानी में ज्वार बढ़ा है। चन्द्र का और उसका ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। चन्द्र की पूर्णता जब प्रगट है, पूर्णिमा, (तब) समुद्र में ज्वार बहुत आता है। पूर्णिमा के दिन बाढ़ बहुत आती है। वह कहते हैं। **जैसे पूर्णमासी के पूर्ण चन्द्र के योग से...** पूर्णिमा के दिन पूर्ण चन्द्र के योग से **समुद्र में ज्वार आता है,...** समुद्र में बाढ़ आती है। पानी बहुत आता है।

उसी प्रकार... वह दृष्टान्त है। **मुनिराज को...** मुख्य मुनिराज की बात ली है। **पूर्ण चैतन्यचन्द्र के...** आहाहा! **पूर्ण चैतन्यचन्द्र के एकाग्र अवलोकन से...** आहाहा! मुनिदशा तो अलौकिक है, बापू! क्रियाकाण्ड में लोग मान बैठे हैं, वस्तु अन्तर की दूसरी चीज़ है। अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ ज्वार आता है। ज्वार कहते हैं न तुम्हारे में? बाढ़ आती है। आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागमूर्ति का सागर, उसके कारण पूर्णमासी के दिन जैसे समुद्र में ज्वार आता है, **उसी प्रकार मुनिराज को पूर्ण चैतन्यचन्द्र के एकाग्र अवलोकन से आत्मसमुद्र में ज्वार आता है;...** आहाहा! पूर्ण आत्मा को देखने से पर्याय में उसका ज्वार आता है। आहाहा! ऐसी भाषा। चन्द्रमा समुद्र में दिखे न। हम तो समुद्र के किनारे बहुत रहे हैं न। कौन? रमणीकभाई, मुम्बई। उनका घर समुद्र किनारे है। पाँच-छह करोड़ रुपया। दिगम्बर है। बहुत प्रेम है, दो भाई है। उसकी माता को बहुत प्रेम था। अभी स्वर्गवास हुआ। पाँच-छह करोड़ रुपये। समुद्र के किनारे ही उनका घर था। उस घर में ठहरे थे। व्याख्यान दूसरी जगह देते थे। समुद्र में बाढ़ आती थी। जैसे शुक्ल पक्ष के दिन आगे बढ़े, दूज, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, छठ, सप्तमी, अष्टमी वैसे पानी बढ़ता जाता था। पूर्णमासी के दिन पूर्ण।

एक वर्ष तो ऐसा हो गया, वहाँ ऊपर बगुले उड़ रहे थे। बगुला होता है न? सैकड़ों बगुले मछली लेने को। मैंने भाई को पूछा, ये बगुले कहाँ तक जाते होंगे? समुद्र में कहीं वृक्ष नहीं, स्थान नहीं। तो उसने कहा कि.. क्या कहा? बीस मील तक जाते थे। आहाहा! मछली लेने को बीस मील बगुला जाकर लेकर खाकर वापस चले आये। आहाहा! हमने ऐसा पूछा था। एकदम समीप समुद्र था। बीस मील बगुले मछली लेने को जाते थे।

आहाहा! और बीस मील वापस आते थे और फिर नरक में जाना है। आहाहा! मछली खाता है तो नरक में जाना है, अरेरे..! ऐसे अवतार अनन्त किये। देखो तो सैकड़ों। एकदम किनारे पर बड़ा घर है। बड़ा घर। कितने का? सत्तर लाख का तो घर है। सत्तर लाख का तो एक घर है। नरम आदमी है। उसने विनती की है कि मेरे घर प्रभु! (पधारिये)। व्याख्यान दूसरी जगह देते थे। सत्तर लाख का तो एक घर। आहाहा!

मुमुक्षु :- पहले महिमा बतायी, फिर धूल उड़ाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री :- महिमा नहीं, वह महिमा नहीं, धूल है। सत्तर लाख का घर वह धूल है, परदेश है। अपना देश नहीं। आहाहा! इसलिए तो बात करते हैं। आहा..!

यहाँ कहते हैं, **मुनिराज को पूर्ण चैतन्यचन्द्र के एकाग्र अवलोकन से आत्मसमुद्र में ज्वार आता है;...** वैराग्य का ज्वार आता है। आहाहा! अन्तर भगवान पूर्णानन्द प्रभु, ज्ञायकस्वरूप अपने अनन्त गुण की नगरी को देखने से.. ध्रुव.. ध्रुव, अन्दर ध्रुव पर नजर करने से.. आहाहा! **आत्मसमुद्र में ज्वार आता है;—वैराग्य का ज्वार आता है,...** अन्दर दृष्टि जहाँ ज्ञायक पर पड़ी, मात्र जानना.. जानना.. जानना.. जानना.. जानने का समुद्र भरा है, उस पर जब नजर पड़ी, दृष्टि हुई तो कहते हैं कि **आत्मसमुद्र में ज्वार आता है;...** सब गुण की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! और **वैराग्य का ज्वार आता है,...** एक तो गुण की पर्याय प्रगट होती है और पर ओर से वैराग्य उत्पन्न होता है। आहाहा! वैराग्य का भी ज्वार आता है। आहा..!

अपने स्वभाव में अनन्त गुण भरे हैं। उस ओर जाने से अपनी पर्याय में अनन्त गुण की दशा प्रगट पर्याय बाढ़-ज्वार आता है और पर ओर से वैराग्य का ज्वार आता है। पर ओर से बिल्कुल उदासीन (हैं)। स्व के समीप जाना और पर से दूर हो जाना। दूर अर्थात् पुण्य-पाप के भाव से। दूसरी बाह्य चीज़ नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। समयसार, पूरा समयसार भरा है। आहाहा! क्या कहते हैं?

अपना जो देश-स्वदेश आत्मा अनन्त गुण की नगरी है, उस पर जो दृष्टि करते हैं तो अनन्त गुण है, उसमें से अंश बाढ़ आती है। पर्याय में बाढ़ आती है। जैसे पूर्णमासी के चन्द्र से समुद्र में बाढ़ आती है, ऐसे आत्मा में शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. आनन्द, स्वच्छता,

प्रभुता अनन्त गुण का ज्वार आता है। और इस ओर से वैराग्य आता है। है ? दो बात ली। देखो! आहा..! **वैराग्य का ज्वार आता है,...** आहाहा! उदास.. उदास.. मुनिराज। उसके बिना मुक्ति नहीं। मुनिपना चीज़ अभी तो उसकी दृष्टि क्या है, यह खबर नहीं और मुनिपना कहाँ से आये ? सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है ? आहाहा!

सबको सुखी तो होना ही है, भाव है, परन्तु वस्तु की खबर नहीं। और धर्मी की भावना कोई भी प्राणी दु:खी हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! सब प्राणी आत्मकल्याण करके सुखी होओ। आहा..! कोई प्राणी विरुद्ध रहो नहीं। किसी को अपने स्वरूप की ओर का भी विरोध हो नहीं। तुम्हारा जो स्वरूप है, उससे भी विरुद्ध तुम न रहो। आहाहा! धर्मी की ऐसी भावना है। आहाहा!

आनन्द का ज्वार आता है,... आहाहा! तीन बात ली। एक तो अन्तर की दशा आती है। बाहर से वैराग्य हो जाता है, अन्दर आनन्द का ज्वार आता है। अन्तर अवलोकन से। अन्दर चैतन्य भगवान.. आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि करने से एक तो शान्ति की बाढ़ आती है। वैराग्य की बाढ़ आती है। पर से रहित उदासीन; और आनन्द का ज्वार आता है। अरे..! **सर्व गुण-पर्याय का यथासम्भव ज्वार आता है**। आहाहा! क्योंकि सर्व गुण से भरा प्रभु, उसमें दृष्टि होने से सर्व गुण-पर्याय का, जितने गुण है, उन सब गुण की पर्याय का अवस्था में **यथासम्भव ज्वार आता है**। आहाहा! गजब बात! बहुत अच्छा बोल है। ४०१ और ४०३।

यह ज्वार बाहर से नहीं,... कोई बाह्य की क्रिया करने से यह ज्वार नहीं आता। आहाहा! है ? **भीतर से आता है**। अन्दर में जाने से अन्तर स्वदेश में अन्दर जाने से वह ज्वार आता है-बाढ़ आती है। हम भरती कहते हैं। गुजराती में। समुद्र में भरती आयी। समुद्र के किनारे, मुम्बई में भी समुद्र के किनारे एक बार रहे थे। एकदम समुद्र के (समीप)। **पूर्ण चैतन्य चन्द्र को स्थिरतापूर्वक निहारने पर...** आहा..! पूर्ण चैतन्य, पूर्ण चैतन्य अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसको स्थिरतापूर्वक निहारने पर। स्थिरता.. स्थिरता.. स्थिरता.. धीरज, शान्ति। स्थिरतापूर्वक अन्दर में से निहारने पर **अन्दर से चेतना उछलती है,...** उछलती है। आहाहा! उछाला मारता है न ? ऐसे उछलती है। चेतन पर नजर करने से चेतना उछलती है। आहाहा! ऐसा उपदेश। नहीं इसमें कथा, नहीं कहानी। राजा और

रानी, ऐसा वैसा.. कोई बात नहीं। राजा भी तू और रानी भी तू। तेरी निर्मलानन्द परिणति, वह तेरी रानी। और तू भगवान पूर्णानन्द का नाथ राजा। यहाँ तो यह बात है। समझ में आया? आहाहा!

अन्दर से चेतना उछलती है,... उछलती है न? पाताल है न? पताला। पाताल का अन्तिम का पत्थर का पट होता है, अन्तिम, वह टूट जाए तो पानी उछलकर (बाहर आता है)। यहाँ है न? जनडा। हम वहाँ से निकले थे। अठारह कोस पानी रहता था। वहाँ बहुत खोदा था। खोदते-खोदते कायर हो गये तो चले गये। उसमें एक बारात निकली, बारात। दस बज गये। यहाँ पानी है, (ऐसा समझकर) बारात वहाँ रुक गयी। ऐसा देखा तो पानी नहीं था। पहले पानी होगा, ऐसा समझकर रुके। ऊपर से एक बड़ा बीस-पच्चीस मण का पत्थर डाला और फूटा, पानी का फव्वारा फूटा। जनडा.. जनडा। यहाँ बोटाद के पास है। बोटाद के रास्ते (पर आता है)।

एक बार उमराला से बडोद गये थे। छह कोस, छह गाँव विहार करके गये थे। फिर वहाँ से आगे जाकर बोटाद जाते समय बीच में जनड़ा आया। अभी तो बड़ा कुँआ है। चारों ओर पानी भरते हैं, फिर भी कम नहीं होता, इतना पानी। पाताल में से पानी आया है।

वैसे यहाँ कहते हैं... आहाहा! **पूर्ण चैतन्य चन्द्र को स्थिरतापूर्वक निहारने पर अन्दर से चेतना उछलती है,...** आहाहा! **चारित्र उछलता है,...** स्थिरता उछलती है अन्दर, स्थिरता आनन्द। आहाहा! **सुख उछलता है, वीर्य उछलता है...** आहाहा! **सब कुछ उछलता है।** आहाहा! **धन्य मुनिदशा!** है? अन्त में है। धन्य मुनिदशा! अन्तिम शब्द है। दूसरे पन्ने पर। आहाहा! यह मुनिदशा, बापू! मुनिदशा किसको कहे! आहाहा!

सम्यग्दर्शनपूर्वक जहाँ मुनि अन्दर जाते हैं तो सब गुण उछलते हैं। आहाहा! पर्याय में-अवस्था में सब गुण प्रगट होते हैं। आहाहा! धन्य मुनिदशा! बहिन (कहते हैं)। ऐसा दशा, बापू! वह ४०३ (पूरा) हुआ।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - १३, सोमवार, तारीख २२-९-१९८०
वचनामृत -४०५, ४०७ प्रवचन-४१

आज पर्यूषण पर्व का नौवां दिन है। आकिंचन धर्म। आकिंचन नौवें धर्म का नाम। है तो साधु के दस धर्म। उसके नीचे गृहस्थाश्रम में भी आंशिकरूप से सब समझ लेना चाहिए। यह आकिंचन धर्म नौवा। साधु के दस में से नववाँ है। वह कहते हैं।

तिविहेण जो विवज्जदि, चेयणमियरं च सव्वहा संगं।
लोयववहारविरदो, णिग्गथंत्तं हवे तस्स॥४०२॥

अन्वयार्थ : जो मुनि... मुनि की मुख्यता है न मुख्य? दस प्रकार का (धर्म)। **लोक व्यवहार से विरक्त होकर...** लोक के व्यवहार से विरक्त होकर। आकिंचन है न? कोई मेरी चीज़ नहीं है बाहर में। मैं तो ज्ञायकस्वरूप हूँ। ज्ञायकस्वरूप के अलावा कोई आकिंचन-अ अर्थात् नहीं। कोई चीज़ मेरी है ही नहीं। मान्यता में तो मेरी है नहीं। वह तो पहले सम्यग्दर्शन हुआ है। परन्तु अस्थिरता में भी मेरी कोई चीज़ नहीं। चारित्रदोष में भी मेरी कोई चीज़ है नहीं। आहाहा! यह दस प्रकार का धर्म प्रगट पाले बिना कभी मुक्ति होती नहीं। आहा..! परन्तु यह सम्यग्दर्शनसहित की बात है। आहाहा! अन्तर में आत्मा...

यहाँ कहते हैं, **जो मुनि लोक व्यवहार से विरक्त होकर चेतन-अचेतन परिग्रह को सर्वथा...** चेतन कौन? अपना शिष्य और संघ। शिष्य और संघ पर भी किंचित् ममता न रखे। अकिंचन-कुछ मेरा नहीं है। शिष्य मेरा कैसा? संघ मेरा कैसा? आहाहा! **चेतन -अचेतन-पुस्तक, पिच्छिका, कमंडलु धर्मोपकरण...** वह भी कोई मेरी चीज़ है नहीं। अचेतन। और **आहार, वसतिका, देह ये अचेतन इनसे भी सर्वथा ममत्व छोड़े। ऐसा विचारे कि मैं तो आत्मा ही हूँ।** मैं तो आत्मा ही हूँ। आहाहा! मैं तो ज्ञायक अन्दर जाननस्वभावस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, वही मैं हूँ। दूसरा कोई शिष्य, संघ, पुस्तक, उपकरण कोई चीज़ मेरी है नहीं। आहाहा! अकिंचन नौवा धर्म है। किंचन—कोई भी

चीज़ मेरी (नहीं है) । आनन्द और ज्ञानस्वभाव के सिवा कोई चीज़ मेरी जगत में है नहीं। धर्मात्मा अपनी भावना में ऐसी भावना करते हैं, उसको सच्चा भावलिंगी मुनि कहने में आता है । आहाहा ! है ?

सर्वथा ममत्व छोड़े । ऐसा विचारे कि मैं तो आत्मा ही हूँ, अन्य मेरा कुछ भी नहीं है । आहाहा ! यहाँ आये बिना कभी मुक्ति नहीं (होती) । अकेले सम्यग्दर्शन से मुक्ति नहीं, अकेली क्रियाकाण्ड से, सम्यग्दर्शन बिना क्रियाकाण्ड से मुक्ति नहीं । आहा.. ! अकेले सम्यग्दर्शन से भी मुक्ति नहीं (होती) । क्योंकि साथ में ज्ञान और चारित्र आये, तब मुक्ति होगी । और अकेला त्याग—सम्यग्दर्शन बिना बाह्य त्यागादि से भी मोक्ष या धर्म होता नहीं । वह कहते हैं ।

मैं तो आत्मा ही हूँ, अन्य मेरा कुछ भी नहीं है । मैं अकिंचन हूँ... आहाहा ! अकिंचन । कोई भी चीज़ मेरी नहीं है । मेरी हो, वह मुझसे भिन्न न रहे । मुझसे भिन्न रहे, वह मेरी चीज़ नहीं । आहाहा ! **ऐसा निर्ममत्व हो, उसके आकिंचन्य धर्म होता है** । नौंवा धर्म । आज नौवा दिन है न ?

अज्ञानी जीव ऐसे भाव से वैराग्य करता है कि—'यह सब क्षणिक है, सांसारिक उपाधि दु:खरूप है', परन्तु उसे 'मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है' ऐसे अनुभवपूर्वक सहज वैराग्य नहीं होने के कारण सहज शान्ति परिणमित नहीं होती । वह घोर तप करता है, परन्तु कषाय के साथ एकत्वबुद्धि नहीं टूटी होने से आत्मप्रतपन प्रगट नहीं होता ।।४०५ ।।

वचनामृत – ४०५ । ४०५ है न ? वचनामृत – ४०५ । आहाहा ! **अज्ञानी जीव ऐसे भाव से वैराग्य करता है कि—'यह सब क्षणिक है,...** ऐसा करता है । परन्तु आत्मा अन्दर नित्यानन्द कौन है ? ज्ञायकभाव जो अनादि-अनन्त है, जिसकी उत्पत्ति और विनाश कभी नहीं है, ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि करता नहीं और यह सब क्षणिक है—ऐसा मानता है, वह यथार्थ वैराग्य नहीं है । **सांसारिक उपाधि दु:खरूप है',...** ऐसा अज्ञानी मानता है । सांसारिक उपाधि दु:खरूप है । परन्तु मेरी चीज़ अन्दर निरुपाधिक है,... आहाहा ! है ?

परन्तु उसे 'मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है' ऐसे अनुभवपूर्वक... आहाहा! मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है। 'ही' (कहकर) एकांत ले लिया है। अतीन्द्रिय आनन्द हो तो वह मेरी सत्ता में है। मेरे सिवा मेरा आनन्द कोई चीज़ में है नहीं। ओहोहो! बहुत कठिन बात। एक राग का रजकण, रजकण और राग दोनों मेरी चीज़ नहीं। 'रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की' रजकण से लेकर वैमानिक देव की (ऋद्धि) पुद्गल स्वभाव है। 'रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की, सर्वे मान्या पुद्गल स्वभाव'। वह तो जड़ स्वभाव है। समयसार में आता है कि जो कोई प्राणी अपने आत्मा की क्रिया ज्ञानादि करे और राग और पर की क्रिया भी मैं कर सकता हूँ, तो वह दो क्रियावादी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ८५ गाथा, समयसार। मूल पाठ है। आहाहा! मैं अपना भी कर सकता हूँ और मैं पर का, शरीर का, वाणी का, मन का, स्त्री का, कुटुम्ब का, पर का कर सकता हूँ। भगवान ने समयसार ८५वीं गाथा में कहा है कि वह दो क्रियावादी-अपनी ही क्रिया करता है और पर की क्रिया करता हूँ ऐसा मानता है तो दो क्रियावादी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! अरेरे..! ऐसी बात।

एक परमाणु की क्रिया भी अपनी तीन काल में नहीं है। आहाहा! क्योंकि परमाणु जगत की चीज़ जड़ है और परमाणु में भी... ये तो एक परमाणु नहीं है, ये तो अनंत है। एक-एक परमाणु.. पंचास्तिकाय में ८१ गाथा में है न? भाई! स्कन्ध है, उसमें भी परमाणु तो अपना ही काम करते हैं। आहाहा! क्या कहा? यह पिण्ड है। उसमें एक-एक परमाणु अपना भिन्न काम करते हैं। पर के परमाणु के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! कौन माने? पंचास्तिकाय, कुन्दकुन्दाचार्य भगवान। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार और अष्टपाहुड़ आदि। पंचास्तिकाय में ८१ गाथा में है कि यह वस्तु है, सब पूरा स्कन्ध पिण्ड। उस पिण्ड में एक-एक परमाणु बिल्कुल भिन्न है। बिल्कुल भिन्न (रहते हुए) अपने से अपने में क्रिया करते हैं। पर के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! कौन माने? यह अनन्त परमाणु का पिण्ड है। उसमें एक-एक परमाणु अपना भिन्न काम करते हैं। पर के साथ मिलकर स्कन्ध हो गया और दो मिलकर दो की क्रिया एक करता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात।

यहाँ वह कहते हैं, अज्ञानी, **'मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है'...** ऐसा जानकर वैराग्य नहीं करता। संसार क्षणिक है, यह उपाधि है, ऐसा मानकर वैराग्य करता है, वह

वैराग्य नहीं। आहाहा! **'मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है'...** आहाहा! **ऐसे अनुभवपूर्वक...** सूक्ष्म बात है। मैं आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ज्ञायकस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द, उसका अनुभवपूर्वक। उसका अनुभव हो कि मेरी चीज़ यह है, उसकी दृष्टि में अनुभव में आया हो। यह चीज़ मेरी है, ऐसा ख्याल आ गया हो। आहाहा! **अनुभवपूर्वक सहज वैराग्य नहीं होने के कारण...** अज्ञानी को ऐसा मेरा आत्मा आनन्द है, ऐसे **अनुभवपूर्वक सहज वैराग्य नहीं होने के कारण...** आहाहा! ऊपर से वैराग्य है। शरीर नाशवान है, अमुक उपाधि है, यह है... वह वास्तविक वैराग्य नहीं है, वह वास्तविक तत्त्व नहीं है। आहाहा! गजब बात है!

सहज शान्ति परिणमित नहीं होती। ऐसे अनुभवपूर्वक सहज वैराग्य नहीं होने के कारण सहज शान्ति... आहाहा! आत्मा शान्ति का सागर है। उस पर दृष्टि नहीं है, उसका अनुभव तो है नहीं। तो शान्तिपूर्वक सहज वैराग्य नहीं होने के कारण। आहाहा! बहिन की वाणी में भी सूक्ष्म आया। दोपहर को समयसार में भी बात तो बहुत सूक्ष्म है, भाई! देह का एक-एक रजकण दूसरे रजकण के कारण कुछ करता नहीं। एक-एक रजकण अपनी पर्याय में परिणमन करता है। पर्याय के परिणमन बिना का कोई परमाणु है नहीं। आहाहा! तो दूसरे परमाणु की पर्याय से परिणमन करे, ऐसा है नहीं। ऐसी बुद्धि अन्तर में अनुभव बिना सहज वैराग्य नहीं होने के कारण **सहज शान्ति परिणमित नहीं होती।** आहाहा! स्वाभाविक अन्दर शान्ति-अकषायभाव, जो आत्मा में त्रिकाली शान्ति पड़ी है, आत्मा शान्ति का सागर है। आहाहा!

स्तवन में भी आता है न? 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां'। नयन में। आहाहा! 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां'। पूरा शरीर उपशम। भगवान तीर्थंकर के आत्मा का जो शरीर है, वह तो जगत में जितने शान्त परमाणु थे, वह आकर शरीर हो गया है। भक्तामर में है। भक्तामर स्तोत्र है। मानतुंग आचार्य मुनि थे, दिगम्बर सन्त। जब भक्तामर बनाया, तब राजा ने कैद में रखे थे। भक्तामर एक-एक पद बोलते हैं, ४८ ताले थे, ४८ ताले टूट गये। आहाहा! उसमें ऐसा कहा है। भक्तामर में है। समझ में आया? क्या कहा?

जगत के जितने शान्त परमाणु (थे), परमाणु में भी शीतलता आती है। ऐसी शीतलता के जितने परमाणु है, वह प्रभु! आपके शरीर में आकर शान्तरस हो गये (हैं)।

आप तो शांति के सागर हैं ही, परन्तु परमाणु शान्तिरूप आपको परिणमित देखकर शान्त-शान्त ढाला, शान्ति का ढाला माने ढल गया हो! सम्यग्दर्शनपूर्वक (सहज वैराग्य नहीं होने के कारण) ऐसी शान्ति परिणमित नहीं। आहाहा! बाहर का चाहे जितना त्याग-वैराग्य करे, परन्तु अन्तर आत्मा की चीज़ के अनुभव बिना शान्ति परिणमित नहीं होती। आहा..! है? कैसी? **सहज शान्ति...** कृत्रिम शान्ति नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग परमात्मा का मार्ग बहुत सूक्ष्म और बारीक है। लोगों ने स्थूल कर दिया है। मार्ग से दूसरा ही मार्ग बना दिया। आहाहा! माने, इसलिए कहीं दूसरा हो जाता है? मार्ग तो मार्ग ही है। आहा..!

कहते हैं कि अन्तर में बाहर का क्षणिक वैराग्य करने से शान्ति परिणमित नहीं होती। क्योंकि अनुभवपूर्वक जो शान्ति होनी चाहिए, वह शान्ति नहीं है। आहाहा! कषाय जो राग—पुण्य-पाप, उससे रहित शान्ति होनी चाहिए, वह शान्ति अज्ञानी को नहीं होती। क्योंकि अज्ञानी बाहर से क्षणिक वैराग्य को वैराग्य मानता है। परन्तु मेरे अनुभवपूर्वक पुण्य-पाप से विरक्त वैराग्य, पुण्य-पाप शुभाशुभभाव से विरक्त वैराग्य, ऐसा वैराग्य अज्ञानी को होता नहीं। आहाहा! नयी चीज़ लगे, सेठ! है तो अनादि की। अनन्त तीर्थंकर कहते आये हैं। बात गुप्त रह गयी। बाहर में धमाल.. धमाल.. धमाल।

कहते हैं कि **शान्ति परिणमित नहीं होती। वह घोर तप करता है,...** आहाहा! कहते हैं कि भले ही एक-एक महीने का उपवास करता हो, अरे..! छह-छह महीने का उपवास करता हो, परन्तु अन्तर में आत्मज्ञान कभी कहीं शान्ति नहीं है। आहाहा! ऐ.. शान्तिभाई! कहीं शान्ति नहीं है, ऐसा कहते हैं। लाखों की कमाई में शान्ति है या नहीं? आहाहा! पाँच-पाँच, दस-दस लाख की कमाई (हो तो) प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। आहाहा! क्या है? प्रभु! तुझे अभी परद्रव्य से भिन्नता की खबर नहीं है, तो तेरे में अनुभवपूर्वक जो वैराग्य साथ में होना चाहिए, वह तो है नहीं। आहा..! वह कहते हैं, भले **वह घोर तप करता है,...** है? परन्तु आत्मज्ञान बिना सब निरर्थक है। आहाहा! जिसको आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप प्रभु, ऐसे आनन्दपूर्वक अनुभव नहीं है, वह घोर तप करता है, **परन्तु कषाय के साथ एकत्वबुद्धि नहीं टूटी होने से...** आहाहा! अन्दर में से ज्ञायकभाव भगवान ध्रुव चैतन्य ज्ञायक और विकल्प दया, दान, तप, भक्ति आदि, तप आदि का विकल्प राग है। उस राग के साथ एकताबुद्धि नहीं टूटी। आहाहा!

एकत्वबुद्धि नहीं टूटी होने से आत्मप्रतपन प्रगट नहीं होता। आहाहा! यह तप। यह आचार्य का शब्द है। बहिन ने यह शब्द आचार्य का शब्द रखा है। आत्मप्रतपन। है? आत्मा प्रतपन। आत्मा में प्रतपन-विशेष तपन। रागरहित स्थिरता की शान्ति। आत्मा में आत्मप्रतपन वह आत्म तपस्या। आहाहा! समझ में आया? बाहर की तपस्या तो अनन्त बार की। परन्तु आत्मप्रतपन-अन्दर भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप... वह आ गया अपने कि तप किसको कहते हैं। परसों तप का दिन था न? वह आ गया कि आत्मा में चारित्र जो है, सम्यग्दर्शनपूर्वक स्वरूप की रमणता है, उसमें उग्र प्रयत्न और शुद्ध उपयोग की दशा, उसको तप कहते हैं। आहाहा! यह परसों आ गया। तप किसको कहे? आहाहा!

अनुभूति—अन्दर आत्मा का ज्ञान का अनुभव, उस पूर्वक जो चारित्र अन्दर में है, चारित्र अर्थात् चरना, रमना, आनन्द में रमना, उस चारित्र में घोर उपयोग करना, चारित्र में विशेष उपयोग रखना उसका नाम ही तप है। आहाहा! एक-एक व्याख्या में अन्तर। मधुभाई! वहाँ तुम्हारी धूल में कुछ मिले ऐसा नहीं है। बड़ा व्यापारी। लाखों की कमाई। धूल में भी नहीं है। यहाँ एक लाख रुपया खर्च करे तो उसे ऐसा हो जाए कि अपन ने कुछ किया। शान्तिभाई! यहाँ लाख दिया। वह भी बहुत पैसा देते हैं। हांगकांग रहते हैं, हांगकांग। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा में अन्तर प्रतपन, अन्तर चैतन्यमूर्ति का अनुभव, उसमें लीनतारूपी चारित्र, उसमें शुद्ध उपयोग की रमणता, वह आत्मप्रतपनरूपी आत्मा का तप है। सेठ! कभी सुना ही नहीं। सुना है तो दरकार नहीं करी। यह तो सबकी बात है न? अनन्त काल हुआ प्रत्येक को। आहाहा! यह शब्द आचार्य का है। टीका में है। तपस्या किसको कहनी? तप किसको कहते हैं? आत्म प्रतपन। आत्मा में शुद्ध सम्यग्दर्शन सहित, चारित्र स्वरूप सहित उग्र पुरुषार्थ अन्दर चारित्र में करना, अन्दर में उग्र पुरुषार्थ करके प्रतपन-आत्मा की शोभा (बढ़ाना, वह तप है)।

जैसे, सोने में गेरु लगाते हैं न? गेरु। तो वह सोना ओपित-शोभित होता है। ऐसे आत्मा में सम्यग्दर्शनसहित चारित्र में उग्र पुरुषार्थ.. आहाहा! उग्र पुरुषार्थ की प्रयत्न दशा, उसका नाम भगवान तप कहते हैं। अरे..! ऐसी व्याख्या। बाकी बाह्य की तपस्या, वह तो

साधारण (है)। राग मन्द करे तो शुभभाव पुण्य हो, पुण्य। धर्म-बर्म नहीं। धर्म कोई दूसरी चीज़ है। आहाहा!

आत्म प्रतपन। सम्यग्दर्शन बिना, अन्दर सच्चे वैराग्य बिना.. आहाहा! **आत्मप्रतपन प्रगट नहीं होता**। आहाहा! सबेरे भी ऐसी बात, दोपहर को भी ऐसी बात। भगवान! तूने तेरा घर देखा नहीं। आहाहा! परघर में जाँच करते.. करते.. करते.. करते अनन्त काल चला गया। अनन्त शरीर, वाणी, मन, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति... आहाहा! उसकी सम्भाल करते-करते अनन्त काल चार गति में परिभ्रमण किया। परन्तु तेरा आत्मा अन्दर देह से भिन्न है, उसका तो भान किया नहीं। तो प्रतपन-तप तो कहाँ से आयेगा? आहाहा! **आत्मप्रतपन प्रगट नहीं होता**। आत्मा के ज्ञान बिना क्षणिक वैराग्य में आत्म प्रतपन उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! ४०५ (पूरा हुआ)।

यहाँ (श्री प्रवचनसार प्रारम्भ करते हुए) कुन्दकुन्दाचार्य भगवान को पंच परमेष्ठी के प्रति कैसी भक्ति उल्लसित हुई है! पाँचों परमेष्ठी भगवन्तों का स्मरण करके भक्तिभावपूर्वक कैसा नमस्कार किया है! तीनों काल के तीर्थंकर भगवन्तों को—साथ ही साथ मनुष्य-क्षेत्र में वर्तते विद्यमान तीर्थंकर भगवन्तों को अलग स्मरण करके—'सबको एकसाथ तथा प्रत्येक-प्रत्येक को मैं वन्दन करता हूँ' ऐसा कहकर अति, भक्तिभीने चित्त से आचार्य भगवान नम गये हैं। ऐसे भक्ति के भाव मुनि को—साधक को—आये बिना नहीं रहते। चित्त में भगवान के प्रति भक्तिभाव उछले तब, मुनि आदि साधक को भगवान का नाम आने पर भी रोम-रोम उल्लसित हो जाता है। ऐसे भक्ति आदि के शुभभाव आयें, तब भी मुनिराज को ध्रुव ज्ञायकतत्त्व ही मुख्य रहता है; इसलिए शुद्धात्माश्रित उग्र समाधिरूप परिणमन वर्तता ही रहता है और शुभभाव तो ऊपर-ऊपर ही तरते हैं तथा स्वभाव से विपरीतरूप वेदन में आते हैं॥४०७॥

४०७। अब यहाँ पहली पंक्ति लेते हैं। आहाहा! **(श्री प्रवचनसार प्रारम्भ करते हुए)...** प्रवचनसार है न? समयसार और प्रवचनसार। प्रवचनसार कुन्दकुन्दाचार्य का

बनाया है। जो भगवान के पास गये थे और उससे यह शास्त्र बनाया। और तीसरे नम्बर में वे आते हैं। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, वे दूसरे नम्बर में। तीसरे नम्बर पर मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं। वह चौथा (पद) है। आहा..! वे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं... **कुन्दकुन्दाचार्य भगवान को पंच परमेष्ठी के प्रति कैसी भक्ति उल्लसित हुई है!** है मुनि है, समकिती ज्ञानी हैं। फिर भी भक्ति आती है। भगवान के प्रति त्रिलोकनाथ तीर्थंकर के प्रति भक्ति आती है। **कुन्दकुन्दाचार्य भगवान को पंच परमेष्ठी के प्रति कैसी भक्ति उल्लसित हुई है!** प्रवचनसार में टीका में है, मूल गाथा में है। **पाँचों परमेष्ठी भगवन्तों का स्मरण करके...** पाँचों परमेष्ठी भगवन्तों का स्मरण करके। वह शुभभाव आता है, परन्तु जानते हैं कि वह हेय है और बन्ध का कारण है। परन्तु वह आये बिना रहता नहीं। जब तक वीतरागता न हो, जब तक केवलज्ञान न हो, तब ज्ञानी को भी ऐसा शुभराग (आता है)। कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं ने शास्त्र बनाया। आहाहा! उनने भी पंच परमेष्ठी भगवन्तों का **स्मरण करके भक्तिभावपूर्वक कैसा नमस्कार किया है!**

तीनों काल के तीर्थंकर भगवन्तों को... साथ में लिये हैं। प्रवचनसार। मूल पाठ, पहली पाँच गाथा। प्रवचनसार की पहली पाँच गाथा। **तीनों काल के तीर्थंकर भगवन्तों को...** आहाहा! अभी तो तीर्थंकर हुए नहीं, परन्तु भविष्य में जो होंगे। तो **तीनों काल के तीर्थंकर भगवन्तों को—साथ ही साथ मनुष्य-क्षेत्र में वर्तते विद्यमान तीर्थंकर भगवन्तों को अलग स्मरण करके...** उसमें अलग स्मरण किया है। तीन काल के तीर्थंकर भगवन्तों को याद किया है, स्मरण किया है। है तो शुभभाव, पुण्य परिणाम। परन्तु ऐसी भक्ति कुन्दकुन्दाचार्य को भी आती है। आहाहा! वीतराग नहीं है तो शुभराग आता है। जानते हैं कि बन्ध का कारण है, मेरी कमजोरी है। परन्तु आये बिना रहता नहीं। आहा..!

तीनों काल के तीर्थंकर भगवन्तों को... नमस्कार करते हैं। प्रवचनसार। **साथ ही साथ मनुष्य-क्षेत्र में वर्तते विद्यमान...** सीमन्धर भगवान आदि। आहा..! वर्तमान बीस तीर्थंकर विराजते हैं। आहाहा! **विद्यमान तीर्थंकर भगवन्तों को अलग स्मरण करके...** आहाहा! तीन काल के तीर्थंकर में तो वर्तमान तीर्थंकर आ जाते हैं, परन्तु वहाँ गये थे। यहाँ भी अन्तर में भक्ति उल्लसित हुई है। प्रवचनसार बनाते हैं। पाँच गाथा, पहली पाँच गाथा। आहाहा! मैं तीन काल के तीर्थंकरों को तो नमस्कार करता हूँ। परन्तु **मनुष्य-क्षेत्र में वर्तते**

विद्यमान तीर्थंकर भगवन्तों को अलग स्मरण करके... तीन काल के तीर्थंकरों को। सीमन्धर भगवान आदि वर्तमान तीर्थंकर का अलग स्मरण किया है। आहा..! वह भक्तिभाव आता है। परन्तु आत्मज्ञानसहित है तो उसको हेय मानते हैं। हेय है। ज्ञानी को भाव आता है, परन्तु है हेय। आहाहा! तो लाते हैं क्यों? आये बिना रहे नहीं। भाई! कमजोरी है। पूर्ण वीतरागता केवलज्ञान जब तक नहीं होता, तब तक भक्ति का भाव (आता है)। तीन काल के तीर्थंकरों का स्मरण करके (भक्ति करते हैं)। तीन काल में तो वर्तमान तीर्थंकर आ गये। तो भी वर्तमान तीर्थंकर को याद किया। पाठ है, मूल पाठ। आहाहा!

मनुष्य-क्षेत्र में वर्तते विद्यमान तीर्थंकर भगवन्तों को अलग स्मरण करके... अलग किया। आहा..! क्योंकि उनका उपकार वर्तमान में (वर्तता है)। आहा..! उनका उपकार स्मरण (करते हैं)। धर्मी जीव दूसरे का उपकार भूलते नहीं। आहा..! है राग, परन्तु उपकार आये बिना रहता नहीं। वह नियमसार में कहेंगे। नियमसार। मुक्ति जो होती है, वह सम्यग्ज्ञान से होती है। मुक्ति जो होती है, वह सम्यग्ज्ञान-आत्मज्ञान से होती है। वह ज्ञान, सुशास्त्र से होता है। नियमसार में श्लोक है। है यहाँ? नियमसार। क्या कहा? कौन-सी गाथा है? छठ्ठी गाथा? यह आया, देखो! आया। मूल पाठ टीका है।

इष्ट फल की सिद्धि का उपाय सुबोध है। इष्ट जो मुक्ति, उसका उपाय सुबोध-सम्यग्ज्ञान है। अर्थात् मुनि (पद की) प्राप्ति का उपाय सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! मुनिपना भी सम्यग्ज्ञान बिना होता नहीं। तो पहले सम्यग्ज्ञान होना चाहिए। **सुबोध...** सम्यग्ज्ञान **सुशास्त्र से होता है,...** आहाहा! एक ओर ऐसा कहे कि शास्त्र में लक्ष्य करे तो बुद्धि व्यभिचारी हो जाती है। आहाहा! एक ओर कहे कि, सुशास्त्र से ज्ञान होता है। स्याद्वाद कथन है। उससे होता नहीं, होता तो अपने से है। परन्तु निमित्त है तो ऐसा कहने में आता है। सुबोध, सुशास्त्र और **सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है;...** आप्त-परमात्मा आदि सब आप्त पुरुष हैं। **इसलिए उनके प्रसाद के कारण आप्त पुरुष बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य है...** आहाहा! उनके प्रसाद द्वारा। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ का प्रसाद, देखो! लो, पर से कुछ होता नहीं, परन्तु भक्ति में ऐसा बोलने में आता है।

उनके प्रसाद के कारण आप्त पुरुष बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य है (अर्थात् मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल...) लिखा है। उसके ज्ञान में आया न? कि यह केवलज्ञान

प्राप्त कर मोक्ष (जायेगा)। **(सर्वज्ञदेव ज्ञानियों द्वारा पूजनीय है), क्योंकि किये हुए उपकार को साधु पुरुष (सज्जन) भूलते नहीं हैं।** आहाहा! (जिसका) अपने पर निमित्त-उपकार हुआ है.. आहाहा! उसके उपकार को सज्जन भूलते नहीं। श्लोक है, मूल श्लोक है। विद्यानन्दीस्वामी। विद्यानन्दीस्वामी का यह श्लोक है, उसका अर्थ है। आहा..! भक्ति आती है। आहाहा!

मनुष्य-क्षेत्र में वर्तते विद्यमान तीर्थंकर भगवन्तों को अलग स्मरण करके— 'सबको एकसाथ तथा प्रत्येक-प्रत्येक को... आहाहा! पाँच गाथा में है। प्रवचनसार। **'सबको एकसाथ तथा प्रत्येक-प्रत्येक को मैं वन्दन करता हूँ'...** आहाहा! **ऐसा कहकर अति, भक्तिभीने चित्त से...** आहा..! ऐसा शुभभाव हेय है, फिर भी आये बिना रहता नहीं। आहा..! है तो हेय। **ऐसा कहकर अति, भक्तिभीने चित्त से आचार्य भगवान नम गये हैं।** पंच परमेष्ठी को नम गये हैं। आहाहा!

सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ, उन्होंने जो देखा और उन्होंने कहा हुआ मार्ग कहीं और नहीं है। आहाहा! ऐसा जानकर उनको नमन और भक्ति का उपकार आये बिना रहता नहीं। है शुभभाव, है पुण्यभाव। समझ में आया? **ऐसे भक्ति के भाव मुनि को—साधक को—आये बिना नहीं रहते।** देखो! आहाहा! **चित्त में भगवान के प्रति भक्तिभाव उछले...** आहाहा! जिसका उपकार अपने में हुआ, कुछ समझता नहीं था और जिसके पास सुना और उसका उपकार हुआ, उस उपकार को सज्जन भूलते नहीं। आहाहा! **चित्त में भगवान के प्रति भक्तिभाव उछले तब, मुनि आदि साधक को भगवान का नाम आने पर भी रोम-रोम उल्लसित हो जाता है।** आहाहा! है? आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ भगवान का स्मरण करते हुए, भले पर है, परन्तु रोम-रोम उल्लसित हो जाता है। शुभभाव। आहाहा! निश्चयपूर्वक शुभभाव। अपना निश्चय स्वभाव का अनुभवपूर्वक ऐसा भक्तिभाव आता है, उसकी बात करते हैं। आहाहा!

ऐसे भक्ति आदि के शुभभाव आयें,... ऐसे भक्ति आदि के। भक्ति आदि। विनय, वाँचन, श्रवण, मनन आदि शुभभाव आते हैं न। भगवान की वाणी सुनना, वह भी शुभभाव है। आहाहा! **भक्ति आदि के शुभभाव आयें, तब भी मुनिराज को ध्रुव ज्ञायकतत्त्व ही मुख्य रहता है;...** आहाहा! ऐसा भाव आया तो भी **मुनिराज को ध्रुव ज्ञायकतत्त्व...** मैं तो

ज्ञायक त्रिकाल हूँ, यह दृष्टि हटती नहीं। वह मुख्य रहती है। शुभभाव कभी मुख्य नहीं हो जाता। आहाहा! अन्तर में आत्मस्वभाव की मुख्यता, ज्ञायक ध्रुव की मुख्यता तो धर्मी कभी भूलते नहीं। शुभभाव आता है। पहले कहा न? पंच परमेष्ठी को नमस्कार किया। वर्तमान भगवान को याद किया और सबको पृथक्-पृथक् नमस्कार किया। फिर भी **मुनिराज को ध्रुव ज्ञायकतत्त्व...** अन्दर जो ज्ञायकतत्त्व जो ध्रुव है, उसकी मुख्यता रहती है। आहाहा! शुभभाव आता है, परन्तु उसकी मुख्यता नहीं रहती है। शुभभाव आये, फिर भी मुख्यता नहीं हो।

मुमुक्षु :- शुभभाव में तल्लीन होते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री :- तल्लीन नहीं होते। तल्लीन तत्त्व में है। ध्रुव.. ध्रुव। ध्रुव नित्यानन्द प्रभु में तल्लीनता है। शुभभाव को पृथक् रखकर, शुभभाव आता है, उसको जानते हैं। गजब बात है, भाई! जिनेश्वर के पंथ में जन्म लिया, इसलिए जैन हो गया, ऐसा है नहीं। ऐसा तो अनन्त बार जन्म लिया है। आहाहा! उन्होंने जो भाव कहा, उसे समझ में न लिया। आहाहा!

क्या कहा? बहिन स्वयं कहते हैं। आहा..! कल ज्ञानचन्दजी का पत्र आया। ज्ञानचन्दजी, दिल्ली। पहले सेठिया के कारण थोड़ा... कल पत्र आया। वचनामृत पढ़कर तो.. आहाहा! क्या है उसमें! क्या लिखा है? गागर में सागर भरा है। ज्ञानचन्दजी। दिल्लीवाले हैं। यहाँ पहले आते थे। वह और एक जयकुमार आते थे। जयकुमार के पास तो अभी पैसे बहुत हो गये हैं। आठ-दस लाख। तो पैसे में घुस गये। कभी याद भी नहीं करते हैं, यहाँ आने के लिये। नहीं तो यहाँ तो बहुत आते थे। लाखों की कमाई है, कोई बड़ा व्यापार है। दस लाख रुपया है उसके पास। जयकुमार। ज्ञानचन्दजी और जयकुमार दोनों दिल्ली से साथ में आते थे। कल ज्ञानचन्दजी का पत्र था कि गागर में सागर भर दिया है। यह पुस्तक पढ़ा। प्रमोद बताते हैं। आहाहा! पत्र आया है।

यहाँ कहते हैं, ऐसे **शुभभाव आयें, तब भी मुनिराज को ध्रुव ज्ञायकतत्त्व ही मुख्य रहता है;...** मुख्यता शुभभाव की नहीं हो जाती। आहाहा! शुभभाव तो पुण्य है और बन्ध का कारण है। आहा..! हेय (होने पर) भी आये बिना रहता नहीं। आहा..! **इसलिए... मुनिराज को ध्रुव ज्ञायकतत्त्व ही मुख्य रहता है; इसलिए शुद्धात्माश्रित...** शुद्ध आत्मा

आश्रित। आहा.. ! **उग्र समाधिरूप परिणमन वर्तता ही रहता है...** आहाहा ! शुद्धात्माश्रित। शुद्ध परमात्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ पुण्य-पाप के विकल्प से भी रहित, एक समय की पर्याय भी जिसमें नहीं है, ऐसे शुद्धात्माश्रित। आहाहा ! वह आश्रित पर्याय है, परन्तु शुद्धात्मा द्रव्य है, ध्रुव। आहाहा !

शुद्धात्माश्रित उग्र समाधिरूप... समाधि अर्थात् शान्ति। कल कहा था। आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। समाधि, वह अन्यमति के साधु लगाये, वह नहीं। यहाँ तो वीतरागमार्ग की समाधि। समाधि का अर्थ—जो बाहर की उपाधि है, उससे रहित। उपाधि के बाद व्याधि। शरीर में व्याधि- रोग। उससे रहित। फिर तीसरी आधि। पुण्य-पाप का संकल्प-विकल्प, वह आधि। आधि, व्याधि, उपाधि तीन से रहित समाधि। आहाहा ! लोगस्स में आता है। लोगस्स। अपने दिगम्बर में भी है, परन्तु प्रचलित नहीं है। श्वेताम्बर में प्रचलित सामायिक में लोगस्स आता है। यहाँ अपने है, दिगम्बर का पुस्तक भी है। लोगस्स। तीर्थंकर की स्तुति। उसमें ऐसा पाठ है, 'समाहिवर मुत्तं दिंतु'। हे नाथ ! मुझे समाधि चाहिए। अपने में है, परन्तु प्रचलित नहीं है। दिगम्बर में पुस्तक है। यहाँ पुस्तक है, उसमें लोगस्स का पाठ भी है। नमोत्थुणं का भी पाठ है। आहाहा ! परन्तु प्रचलित नहीं है। श्वेताम्बर में अकेली क्रियाकाण्ड है, इसलिए प्रचलित हो गया है।

यहाँ कहते हैं, **समाधिरूप परिणमन वर्तता ही रहता है...** मुनि को पंच परमेष्ठी की उल्लसित भक्ति के काल में भी अपने शुद्धात्माश्रित उग्र शान्तिरूप परिणमन वर्तता ही रहता है। अकेला शुभभाव ही है, ऐसा नहीं। आहाहा ! शुद्धात्मा परमात्मा स्वयं जो ज्ञायकभाव, ज्ञायकभाव का पिण्ड अनादि-अनन्त प्रभु, उसका आश्रितपना, उग्र समाधिरूप परिणमन वर्तता ही रहता है। आहाहा ! **और शुभभाव तो ऊपर-ऊपर ही तरते हैं...** है ? शुभभाव आते हैं। वे ऊपर-ऊपर ही तरते हैं। आहाहा ! समयसार में प्रथम अधिकार में है कि पर्याय द्रव्य के ऊपर तिरती है। शान्ति की पर्याय, हों ! मोक्षमार्ग की पर्याय। मोक्षमार्ग भी पर्याय है। द्रव्य जो ध्रुव है, उसके ऊपर तिरती है। ऐसा श्लोक है। समयसार। अपना जो शुद्ध समाधि त्रिकाली स्वभाव, पर्याय उसके ऊपर तिरती है। आहाहा ! **समाधिरूप परिणमन वर्तता ही रहता है और शुभभाव तो ऊपर-ऊपर ही तरते हैं...** आहाहा ! गागर में सागर भर दिया है।

तथा स्वभाव से विपरीतरूप वेदन में आते हैं। शुभभाव आता है। उल्लसित हुआ है, भक्ति है, उपकार है, इसलिए आये बिना रहे नहीं। परन्तु स्वभाव से विपरीतरूप, अपने स्वभाव से विपरीत वेदन है। शुभ का वेदन दु:खरूप है। आहाहा! स्वभाव जो चैतन्य त्रिकाली है, उसके स्वभाव से शुभभाव विपरीत है। आते हैं, परन्तु विपरीत है। **विपरीतरूप वेदन में आते हैं।** देखो! ऐसा नहीं है कि, जाननेलायक है, जाननेलायक है, जाननेलायक है। जाननेलायक है, परन्तु साथ में वेदन भी है। किसका? शुभाशुभभाव का। आहाहा!

सरदारशहर। दीपचन्दजी सेठिया का बदल गया था न। सोगानजी का द्रव्यदृष्टि प्रकाश। ज्ञानी को दु:ख होता ही नहीं। ज्ञानी हुआ, तब से दु:ख होता ही नहीं। दु:ख होवे तो तीव्र कषाय है, ऐसा कहते थे। ऐसा है नहीं। सेठ! सेठिया। पीछे से थोड़ा बदल गया था। लड़के आये थे। लड़के आदि सब आये थे। आखिर में द्रव्यदृष्टि प्रकाश, सोगानी का। कल आये थे न? रमेशभाई। डॉक्टर के साथ। उनके पुत्र वहाँ मुम्बई में रहते हैं। द्रव्यदृष्टि प्रकाश बनाया है। उसे पढ़कर उसकी दृष्टि बदल गयी थी। अरे..! ये तो ऐसा कहते हैं कि शुभभाव से तो दु:ख होता है। शुभभाव तो अग्नि जैसा लगता है। ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं है। धर्मी को शुभ-अशुभ का वेदन होता ही नहीं, ऐसा मानते थे। ऐसा है नहीं।

यहाँ आया न? **स्वभाव से विपरीतरूप...** शुभभाव आता है। पंच परमेष्ठी की भक्ति उल्लसित होती है। परन्तु वेदन में **स्वभाव से विपरीतरूप वेदन में आते हैं।** आहाहा! अरे! इसमें कहाँ फुरसत है, संसार के पाप के कारण। अन्दर भगवान की जो दृष्टि, समाधि-शान्ति हुई है, उसकी मुख्यता कभी धर्मी को हटती नहीं, टलती नहीं। आया, शुभभाव भी आया, अरे..! चौथे, पाँचवें में तो पाप का परिणाम भी आता है। गृहस्थ समकिती है। भरत और बाहुबली लड़ाई में आये। समकिती थे। श्रेणिक राजा समकिती था, हजारों रानियाँ थी। उसकी वासना आती है, परन्तु उस वासना का वेदन दु:खरूप वेदन करते हैं। आहाहा! धर्मीजीव को ऐसा शुभ-अशुभभाव आता है, परन्तु उसका दु:खरूप वेदन करते हैं। आहाहा! क्रिया तो मिथ्यादृष्टि करे ऐसी क्रिया दिखे, उससे भी विशेष। मिथ्यादृष्टि ने तो आजीवन ब्रह्मचर्य भी ले लिया। है मिथ्यादृष्टि। शरीर से ब्रह्मचर्य पालता

है तो शुभभाव है। और यहाँ तो विषय लेता है, फिर भी आत्मा का भान है... आहाहा! शुद्धात्मा की परिणति की श्रद्धा कभी हटती नहीं। समझ में आया ? यह अटपटी बातें हैं। अज्ञानी इतने सारे शुभभाव करे, उसका फल चार गति है और ज्ञानी को अशुभभाव भी आये.. आहाहा! जाने, वेदे, फिर भी संसार बढ़े नहीं। संसार तो बढ़े नहीं, परन्तु जब तक परभव का आयुष्य जब समकिती को बँधता है, शुभभाव आता है, तब आयुष्य बँधेगा। जब तक बीच में अशुभभाव है, तब तक आयुष्य नहीं बँधेगा। अशुभभाव रहता है। आहाहा! समझ में आया ? भविष्य का आयुष्य बँधता है, तब शुभभाव होता है। आहा..! ऐसा ४०७ आया। उसके बाद क्या ४०९ है ? समय हो गया है। समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - १४, मंगलवार, तारीख २३-९-१९८०
वचनामृत -४०९, ४१० प्रवचन-४२

आज पर्यूषण का दसवाँ दिन है। अन्तिम दिन है, ब्रह्मचर्य का दिन है। दस प्रकार का चारित्र का जो प्रकार है, वही यह दस प्रकार है। मुनि के दस प्रकार में अन्त में ब्रह्मचर्य का बड़ा अच्छा अधिकार है। परन्तु वह सम्यग्दर्शन सहित। अपना आत्मा चैतन्यस्वरूप आनन्दस्वरूप, उसके अनुभव बिना तो यह ब्रह्मचर्य आदि क्रिया होती नहीं। व्यवहार होता है तो शुभभाव है।

यहाँ ब्रह्मचर्य तो उसको कहते हैं... देखो! ब्रह्मचर्य।

जो परिहरेदि संगं, महिलाणं णेव पस्सदे रूवं।
कामकहादिणिरीहो, णव विह बंभं हवे तस्स॥४०३॥

जो परिहरेदि संगं स्त्रियों की संगति छोड़ देना। आहाहा! उसके परिचय में तो राग, काम आये बिना रहे नहीं। क्योंकि मन में जो काम आता है, वह कषाय से भी विशेष है। मन में काम आता है। आहाहा! कहते हैं, **जो मुनि स्त्रियों की संगति नहीं करता है, उनके रूप को नहीं देखता है...** आहा..! यहाँ ब्रह्म की व्यवहार से बात करते हैं। बाद में कहेंगे। **काम की कथा आदि शब्द से, स्त्री आदि की कथा स्मरणादिक से रहित हो। ऐसा नवधा कहिये मन-वचन-काय कृतकारितअनुमोदना...** से ब्रह्मचर्य करते हैं, उसको ब्रह्मचर्य कहते हैं।

वास्तव में ब्रह्मचर्य तो उसको कहते हैं, वह भावार्थ में आयेगा, ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है। आहाहा! काया से ब्रह्मचर्य पाले, वह तो अनन्त बार पाला। वाणी, मन से भी नहीं बोले। परन्तु अन्दर में ब्रह्मस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! उसमें चर्य अर्थात् लीनता, ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें लीन होना, सो ब्रह्मचर्य (है)। आहाहा! जिसको जो ज्ञायकस्वरूप दृष्टि में आया नहीं और दृष्टि में ज्ञायक का आश्रय-

अवलम्बन लिया नहीं, उसको तो ब्रह्मचर्य होता ही नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! ब्रह्मचर्य—स्त्री का संग ही छोड़ देना। उसके साथ बैठना और बातें करना, उन सबका ब्रह्मचर्य में त्याग है। नव वाड में से ब्रह्मचर्य है। नव वाड़। स्त्री जहाँ बैठी हो, वहाँ बैठना नहीं। स्त्री की कथा करना नहीं, स्त्री का स्मरण करना नहीं। आहाहा! मिष्ट भोजन ऐसा नहीं करना कि जिससे मन में काम-भोग आये। आहाहा! बात तो कठिन है।

वह यहाँ कहते हैं, ब्रह्म अर्थात् आत्मा, **उसमें लीन होना, सो ब्रह्मचर्य है। परद्रव्यों में आत्मा लीन हो, उनमें स्त्री में लीन होना प्रधान है...** परद्रव्य में जो लीन होता है, वह है तो अब्रह्मचर्य। परन्तु उसमें स्त्री प्रधान है, मुख्य स्त्री है। आहाहा! भाई ने लिया है न? हुकमचन्दजी ने। दस प्रकार के धर्म में। वह पुस्तक आया है, सेठ! दस प्रकार के धर्म का पुस्तक। उसमें उसने लिया है कि भगवान महावीर ने विवाह नहीं किया था। क्यों? कि वह दुर्घटना है। उसमें लिखा है। स्त्री का संग तो दुर्घटना (है)। आत्मा को भूल जाना और आत्मा का प्रेम-रस छोड़ना, तब उसमें प्रेम-रस आ जाता है। आहाहा! तो वह प्रेम-रस, पर का, स्त्री का मुख्य है। यहाँ लिया है, देखो!

क्योंकि काम मन में उत्पन्न होता है, इसलिए यह अन्य कषायों से भी प्रधान है... काम अन्दर उत्पन्न होता है। दूसरे कषाय से भी यह कषाय विशेष है। आहाहा! संसार में भी ब्रह्म अर्थात् आत्मा में लीन (होना)। ज्ञायकभाव चैतन्यस्वरूप के अन्तर अनन्त काल में उस ओर कभी नजर की ही नहीं। उस ओर नजर करके उसमें लीन होना। क्योंकि मन में काम उत्पन्न होता है, वह सब कषाय से मुख्य है। तो उसे छोड़ने में.. आहाहा! आत्मा में लीन होना। आहा..! **इस काम का आलम्बन स्त्री है, सो इसका संसर्ग छोड़ने पर अपने स्वरूप में लीन होता है।** सूक्ष्म बात है, भाई! मुख्य साधुपना की बात है न। उन्हें तो स्त्री के संग में बैठना ही नहीं। आहाहा! उसके संग में अन्दर कुछ भी वृत्ति, मन में कामादि की वृत्ति उत्पन्न होती है तो उसको छोड़कर, आत्मा आनन्दस्वरूप में लीन होना वही ब्रह्मचर्य है। आहाहा! वह बात तो आयी। ज्ञायकभाव। आहाहा!

रात्रि को कहा था न? कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। आहाहा! यहाँ तो स्त्री के अवयव को भी छूता नहीं। आहाहा! वह तो उसकी मान्यता कल्पना है कि मैं स्त्री से ऐसा लेता हूँ, ऐसा लेता हूँ। ऐसा कामभोग लेता हूँ। बाकी एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता

नहीं। यह तो जैन सिद्धान्त का मूल है। आहाहा! रात्रि को बहुत कहा था। सेठ! रात्रि को बहुत लिया था। पहले शुरुआत में (आता है)। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। आहाहा! उस स्पर्श में ऐसा मानना कि मैं स्पर्श करता हूँ और मुझे मजा है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। गजब बात है, भाई!

अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान, उसके रस के आगे मन में स्त्री के काम का रस भी छूट जाता है। उसका नाम यहाँ, आज चौदस है न? आज पर्यूषण का-धर्म का अन्तिम का दिन है, तो उसका ब्रह्मचर्य अन्तिम (दिवस) है। आहाहा! उसके तो अठारह हजार आदि बहुत भेद है। परन्तु सब पर की ओर का लक्ष्य छोड़कर, पर में भी स्त्री की मुख्यता है। उसका लक्ष्य छोड़कर अपने चैतन्यस्वरूप में लक्ष्य करना और उसमें लीन होना, उसका नाम दसवाँ ब्रह्मचर्य धर्म कहते हैं। आहाहा! लो, वह ब्रह्मचर्य की बात (हुई)।

जिस प्रकार वटवृक्ष की जटा पकड़कर लटकता हुआ मनुष्य मधुबिन्दु की तीव्र लालसा में पड़कर, विद्याधर की सहायता की उपेक्षा करके विमान में नहीं बैठा, उसी प्रकार अज्ञानी जीव विषयों के कल्पित सुख की तीव्र लालसा में पड़कर गुरु के उपदेश की उपेक्षा करके शुद्धात्मरुचि नहीं करता, अथवा 'इतना काम कर लूँ, इतना काम कर लूँ' इस प्रकार प्रवृत्ति के रस में लीन रहकर शुद्धात्मप्रतीति के उद्यम का समय नहीं पाता, इतने में तो मृत्यु का समय आ पहुँचता है। फिर 'मैंने कुछ किया नहीं, अरेरे! मनुष्यभव व्यर्थ गया' इस प्रकार वह पछताये तथापि किस काम का? मृत्यु के समय उसे किसकी शरण है? वह रोग की, वेदना की, मृत्यु की, एकत्वबुद्धि की और आर्तध्यान की चपेट में आकर देह छोड़ता है। मनुष्यभव हारकर चला जाता है।

धर्मी जीव रोग की, वेदना की या मृत्यु की चपेट में नहीं आता, क्योंकि उसने शुद्धात्मा की शरण प्राप्त की है। विपत्ति के समय वह आत्मा में से शान्ति प्राप्त कर लेता है। विकट प्रसंग में वह निज शुद्धात्मा की शरण विशेष लेता है। मरणादि के समय धर्मी जीव शाश्वत ऐसे निज सुख सरोवर में विशेष-विशेष डुबकी लगा जाता है—जहाँ रोग नहीं है, वेदना नहीं है,

मरण नहीं है, शान्ति की अखूट निधि है। वह शान्तिपूर्वक देह छोड़ता है, उसका जीवन सफल है।

तू मरण का समय आने से पहले चेत जा, सावधान हो, सदा शरणभूत—विपत्ति के समय विशेष शरणभूत होनेवाले—ऐसे शुद्धात्मद्रव्य को अनुभवने का उद्यम कर।।४०९।।

यहाँ अपने वचनामृत – ४०९। वचनामृत का ४०९ (बोल)। **जिस प्रकार वटवृक्ष की जटा पकड़कर...** दृष्टान्त आता है न? वटवृक्ष की जटा पकड़कर।

मुमुक्षु :- उसकी डाल पकड़कर।

पूज्य गुरुदेवश्री :- डाल... क्या कहते हैं? वडवाई... वडवाई। बरोह होती है न? वटवृक्ष में से लम्बे-लम्बे बरोह होती है। तो बरोह को पकड़कर **लटकता हुआ...** जटा कहा न? वटवृक्ष की जटा कहा। वह वडवाई। वडवाई नहीं समझते? वटवृक्ष की डाल में जो लटकती है न? (उसे) वडवाई कहते हैं। तुम्हारी हिन्दी में क्या भाषा है? जटा। यहाँ तो जटा लिखा है। आहाहा! उसको **पकड़कर लटकता हुआ मनुष्य मधुबिन्दु की तीव्र लालसा में...** वह जहाँ लटकता है, उसके ऊपर मधुबिन्दु है। उसमें से एक-एक बिन्दु टपकती है। आहाहा! जटा पकड़कर लटकता है। उसे लालसा मधुबिन्दु की है। एक-एक मधु का बिन्दु मुख में आता है। उस **तीव्र लालसा में पड़कर, विद्याधर की सहायता की उपेक्षा करके...** विद्याधर आया (और कहे कि), तुम यहाँ बैठ जाओ। उसे छोड़ दो। परन्तु वह रस छोड़ता नहीं। एक-एक बिन्दु आवे... मधु का बिन्दु... आहाहा! उसके रस में विद्याधर विमान में आया (और कहा कि), भैया! छोड़ दे तू। मर जाएगा। परन्तु छोड़ता नहीं। **उपेक्षा करके विमान में नहीं बैठा,... विद्याधर की सहायता की उपेक्षा करके...** उपेक्षा बेदरकारी। **तीव्र लालसा में पड़कर...** मधुबिन्दु की तीव्र लालसा में पड़कर **विमान में नहीं बैठा...**

उसी प्रकार... वह तो दृष्टान्त हुआ। **अज्ञानी जीव विषयों के कल्पित सुख की...** विषयों में कल्पित सुख की। आहाहा! सुख है ही नहीं। सुख तो आत्मा में है। आनन्द का

खजाना-भण्डार सुखसागर वह तो प्रभु है। उसमें सुख है और सुख तो बाहर कोई चीज़ में, तीन काल तीन लोक में है नहीं। आहाहा! अपने सुख की तीव्र लालसा से, ऐसे अपने सुख की तीव्र लालसा करे तो पर की तीव्र लालसा छूट जाए। **उसी प्रकार अज्ञानी जीव विषयों के कल्पित सुख की तीव्र लालसा...** कल्पित सुख की कल्पित लालसा। आहाहा! **तीव्र लालसा में पड़कर गुरु के उपदेश की उपेक्षा करके...** जैसे वह विद्याधर की उपेक्षा करके विमान में बैठा नहीं। वैसे गुरु ने कहा कि भैया! छोड़ दे यह संसार जन्म-मरण, चौरासी के अवतार करने हैं (छोड़ दे)। आहाहा! **गुरु के उपदेश की उपेक्षा करके...** विशिष्टता तो क्या है? **शुद्धात्मरुचि नहीं करता,...** क्या कहते हैं उसका अर्थ? गुरु का उपदेश शुद्धात्मरुचि करने का है। आहाहा! गुरु उसे कहे कि एक शुद्धात्मा की रुचि का उपदेश दे। वीतरागभाव का ही उपदेश करते हैं। आहाहा! तो वह उपदेश सुनकर उसने शुद्धात्मरुचि की नहीं। उपदेश में यह आया।

सिद्धान्त में भी ऐसा लिखा है, पंचास्तिकाय की १७२ गाथा है कि चारों अनुयोग का सार वीतरागता है। कथानुयोग हो, द्रव्यानुयोग हो, चरणानुयोग हो, कुछ भी हो, परन्तु चारों अनुयोग का सार वीतरागता प्रगट करना है। तो वह वीतरागता कैसे प्रगट हो? कि त्रिकाली वीतरागस्वरूप भगवान ज्ञायकभाव, त्रिकाली ज्ञायकभाव वीतरागस्वरूप आत्मा, उसके अवलम्बन बिना वीतरागता होती नहीं। चारों अनुयोग का सार और आज्ञा यह है। समझ में आया? पंचास्तिकाय की १७२ वीं गाथा में आया है कि चारों अनुयोग का सार (वीतरागता है)। कोई कहता है, चरणानुयोग में ऐसा करने को कहा है। द्रव्यानुयोग में उससे दूसरा कहा है। करणानुयोग में कर्म की प्रकृति में दूसरा कहा है। ऐसा है नहीं। सबमें कहने में आया है - वीतरागता। समझ में आया? सबमें सार में सार वीतरागता (है)। क्यों?—कि सर्वज्ञ भगवान वीतराग हो गये। वीतराग हो गये तो वीतराग का ही उपदेश दिया। परन्तु वीतरागता उत्पन्न कैसे होती है? आहाहा!

त्रिकाली ज्ञायकभाव वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। अन्दर चैतन्यस्वरूप वीतरागस्वरूप है। आहाहा! उसका अवलम्बन लिये बिना वीतरागता उत्पन्न होती नहीं। वीतरागस्वरूपी आत्मा, उसका अवलम्बन लिये बिना वीतरागता उत्पन्न होती नहीं। और चारों अनुयोग का सार वीतरागता है। चरणानुयोग की क्रिया में शुभभाव आता है। पंच

महाव्रत ऐसे करो, अतिचार टालो.. परन्तु तात्पर्य तो वीतरागता है। उसको छोड़कर वीतरागता प्रगट करना है। आहाहा! पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा में और टीका में अमृतचन्द्राचार्य की टीका में ऐसे लिया है कि कोई ऐसा कहे कि इस अनुयोग में ऐसा कहा है और उस अनुयोग में वैसा कहा है, दूसरे अनुयोग में दूसरा कहा है, ऐसी बात है नहीं। चारों अनुयोगों में वीतरागता का ही वर्णन है।

वीतरागता अर्थात् राग से रहित, शुभ और अशुभ विकल्प जो राग है, उससे रहित ज्ञायकभाव है, उसका अवलम्बन लेने का चारों अनुयोग का सार है। आहाहा! वह न ले और दूसरी बात लाख, करोड़ करे तो उससे जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। आहाहा! बात ऐसी है।

गुरु के उपदेश की उपेक्षा करके... जैसे विद्याधर ने कहा कि आ जा विमान में। वैसे गुरु ने क्या कहा? चार गति में भटकते जीव को गुरु ने क्या कहा? शुद्धात्मरुचि (करो)। उन्होंने कहा कि शुद्धात्मरुचि कर। परन्तु नहीं करता है। है? जैसे विद्याधर ने कहा कि विमान में आ जा। परन्तु आया नहीं। वैसे गुरु ने कहा कि तू शुद्धात्म रुचि में आ जा। आहाहा! वटवृक्ष की जटा छोड़कर नीचे मर जाएगा। चूहा काटता है, वह आता है न? चित्र आता है। वटवृक्ष की डाली, उसको चूहा खाता है। यदि वह डाल टूट गयी तो जटा पकड़कर नीचे कुँए में गिरेगा। कुँए के ऊपर ही जटा थी बराबर। आहाहा! वह जटा कुँए के ऊपर थी और वह पकड़कर बैठा था। और एक बिन्दु ऊपर से गिरता था, उसकी लालसा में विद्याधर के विमान में बैठना छोड़ दिया।

ऐसे चार गति के सुख की लालसा में अज्ञानी प्राणी... आहाहा! एक के बाद एक स्त्री का सुख, पुत्र का सुख, पैसे का सुख, शरीर का सुख, इज्जत का सुख और बड़ी-बड़ी अनेक विचित्रता। उस लालसा में गुरु का उपदेश, जैसे विमान में बैठने का था, वैसे गुरु का उपदेश शुद्धात्मा में बैठने का है। आहाहा! है?

गुरु के उपदेश की उपेक्षा करके... तो उसका अर्थ क्या हुआ? कि गुरु ने शुद्धात्मरुचि करने का कहा था। वह नहीं की। समझ में आया? शुद्धात्मरुचि करने का कहा था। वह नहीं की। क्या कहा था, वह भी आ गया। जैन का साधु हो या गृहस्थ हो,

परन्तु उसमें प्रथम शुद्धात्मा की रुचि का ही उपदेश होना चाहिए। आहाहा! पहली यह बात। उसके बिना, जैसे विमान में बैठ सकता नहीं; वैसे शुद्धात्मरुचि बिना आत्मा में विश्रान्ति होती नहीं और बाहर की थकावट छूटती नहीं। आहाहा! है? **शुद्धात्मरुचि नहीं करता,...** विशिष्टता क्या है? कि शुद्धात्मरुचि करने का ही उपदेश है। चारों अनुयोग में और अनेक लेख में, चाहे कोई भी उपदेश हो, परन्तु उस उपदेश में ज्ञायकभाव की ओर झुकना (कहा है)। आहाहा! यह उपदेश सुनकर, जैसे विद्याधर ने कहा कि आ जा। वैसे यहाँ ये विद्याधर। विद्या अर्थात् आत्मा को धरनेवाला गुरु। गुरु ने ऐसा उपदेश दिया। क्या? कि शुद्धात्मरुचि में आ जा, प्रभु! बाकी सब छोड़ दे। जन्म-मरण करते-करते अनन्त अवतार हो गये। आहा..! शुद्धात्मरुचि करे बिना तुझे सम्यग्दर्शन नहीं होगा। सम्यग्दर्शन बिना जन्म-मरण का अन्त आता नहीं। अब तो यह बात थोड़ी चलती है। कैलाशचन्द्रजी ने कल बहुत लिखा है। कैलाशचन्द्रजी पण्डित है न? आत्मदर्शन, ज्ञान बिना यह सब त्याग और तप करके निकल पड़े हैं। बहुत लिखे हैं। क्योंकि बात तो अब बहुत चली है न! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, शुद्धात्मरुचि, दुनिया के प्रेम में, रस में अनेक प्रकार की रुचि में **शुद्धात्मरुचि नहीं करता, अथवा 'इतना काम कर लूँ, '...** आहाहा! क्यों नहीं करता है? इतना काम कर लूँ, लड़की बड़ी हो गयी है, बीस साल की। उसका विवाह कर दूँ, लड़का पच्चीस साल का हो गया है तो अच्छी घर की कन्या लाकर विवाह कर दूँ। इतना कर लूँ, इतना कर लूँ, इतना कर लूँ। आहाहा! **'इतना काम कर लूँ' इस प्रकार प्रवृत्ति के रस में लीन रहकर शुद्धात्मप्रतीति के उद्यम का समय नहीं पाता,...** जैसे वह विमान में बैठने की भावना नहीं करता। वैसे यहाँ **शुद्धात्मप्रतीति के उद्यम का समय...** क्योंकि गुरु तो यह कहते थे कि शुद्धात्मा की प्रतीति कर। सब छोड़कर एक ही बात - भगवान अन्दर विराजता है। आहाहा! आज अन्तिम दिन है। बात तो बहुत अच्छी आयी है। आहाहा! पूरे शास्त्र में यह.. पूरा शास्त्र पढ़कर यह न निकाले तो शास्त्र पढ़ना नहीं आता। कुछ करना निकाले, ऐसा-वैसा निकाले तो वह शास्त्र समझता ही नहीं। आहाहा!

यहाँ तो यही कहा, **प्रवृत्ति के रस में लीन रहकर शुद्धात्मप्रतीति के उद्यम का समय नहीं पाता,...** शुद्धात्मप्रतीति का उद्यम का समय नहीं पाता। उसको प्रवृत्ति के कारण

समय ही नहीं मिलता। आहाहा! एक के बाद, एक के बाद काम ही काम में घुस गया। आहा..! **प्रवृत्ति के रस में लीन रहकर शुद्धात्मप्रतीति के उद्यम का समय...** उद्यम का समय नहीं लेता। मैं कौन हूँ अन्दर? क्या है यह? ये परिभ्रमण का भाव क्या है और मैं चीज़ क्या हूँ? ऐसा समय शुद्धात्मा के विचार में मिले ऐसा लेता नहीं। ऐसा समय निकालता नहीं। आहाहा! बात तो बहुत अच्छी (आयी है)। **इतने में तो मृत्यु का समय आ पहुँचता है।** आहाहा! इतना कर लूँ, इतना कर लूँ, उसका कर लूँ, उसका कर लूँ, उसका कर लूँ। आहाहा! लड़की का कर लूँ, लड़के का कर लूँ। लड़के का लड़का हुआ हो, उसका कर लूँ। आहाहा!

कथा में तो ऐसी एक बात आती है कि मनुष्य है तो दो पैर है। परन्तु जब स्त्री से शादी करता है तो वहाँ चार पैर हो गये। तो पशु हुआ। पशु को चार पैर है। आहाहा! मनुष्य एक है, स्त्री दूसरी हो गयी, दो हुआ तो चार पैर हुए। चार पैर तो पशु को होते हैं। उसमें उसका लड़का हुआ। तो छह पैर हुए। छह पैर भँवरे के होते हैं। भँवरा होता है न? भँवरा, उसको छह पैर होते हैं। और उसमें लड़के की शादी की। आठ पैर हुए। मकड़ी को आठ पैर होते हैं। मकड़ी... मकड़ी। आठ पैर होते हैं। फिर लार निकालकर उसमें घुस जाए। आहाहा!

मुमुक्षु :- स्वयं जाल बनाता है, उसी में फँसता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसमें फँस गया। मकड़ी लार निकालता है, उसमें फँस गया। आहाहा!

मृत्यु का समय आ पहुँचता है। आहाहा! **फिर 'मैंने कुछ किया नहीं, अरेरे!'** दामनगर में एक आदमी था। खुशालभाई करके। गाँव में होशियार गिने जाते थे। गाँव के काम में सब ले जायें। काम निपटा दे। गाँव में इज्जत बहुत थी। उसकी जब मृत्यु हुआ तो सेठ भी देखने जाए न? गाँव के सेठ। फिर वह अन्त में ऐसा बोला, अरेरे..! मैंने मेरा कुछ नहीं किया। मैं गाँव का करने में रुक गया, मेरा कुछ नहीं किया। आँख में से आँसू बहे। खुशालभाई थे। यहाँ पहले जबलबेन थे। जबलबेन रहती थी, उसके पिता। जबलबेन यहाँ रहते थे। चल बसे न? चल बसे। जबलबेन दामनगरवाले। गढडा में शादी की थी। शादी

गढडा में (हुई थी), परन्तु छोटी उम्र में विधवा हो गये। उसके पिताजी थे, खुशालभाई। देह छूटते समय आँसू की धारा। अरेरे..! स्थिति पूरी हो गयी। मैं गाँव के काम में पड़कर मेरा कुछ मैंने किया नहीं। आहा..! पीछे से बोले, परन्तु पहले कर।

हमारे यहाँ आणंदजी था। कुँवरभाई का भतीजा। हम लोग साथ में रहते थे न। वह भी लौकिक में होशियार था। माल मुम्बई लेने जाए। व्यापार बड़ा था न। एक महीने का तो.. क्या कहते हैं? पास रखता था। एक महीने का पास। क्योंकि चौथे दिन पालेज से मुम्बई माल लेने को जाना पड़े। वह माल लाये और बहुत होशियार था, संसार में। क्या भाव से माल आया है, कितना खप गया और कितना बाकी है और अभी क्या भाव है, ऐसे एक-एक चीज़ का तीनों ओर का ख्याल था। क्या भाव से आया था, कितना खपा है, कितना बाकी है और अभी क्या भाव है। अन्त में शरीर जीर्ण हो गया। मैंने बहुत कहा था, भैया! अब छोड़ दे। कुछ तो कर। मरते समय बोला, अरेरे..! मैंने किसी ने कर, ऐसा नहीं कहा। परन्तु कौन कहे? मजदूर मुफ्त का दुकान पर आकर मजदूरी करे। मुझे किसी ने कहा नहीं। मैंने कहा था, वह माने नहीं। उसके कुटुम्ब के लोगों को कहे, मुझे किसी ने कहा नहीं कि तेरा कर। कौन कहे? तू मजदूरी करता है न उसकी। आहा..! उसकी अनुकूलता के लिये तो तू रुकता है। तो वह ऐसा कहे कि हमारी अनुकूलता छोड़ दे।

दूसरी बात। मृत्यु होने के बाद लोग रोते हैं। किसको रोते हैं? अपनी अनुकूलता जाती है, उसको रोते हैं। वह मरकर नरक में गया, पशु में गया उसमें मुझे क्या? आहाहा! मृत्यु के बाद कहाँ गया, वह कोई पूछता नहीं। उसको कोई रोता नहीं, शोक करते नहीं। उसके लिये कोई रोया? कि अरेरे..! इसने कुछ नहीं किया, मरकर नरक में, पशु में गया। वह रोते हैं, अपनी अनुकूलता करता था, वह छूट गयी, उसको रोते हैं। आहाहा! ये संसार!

यहाँ वह कहते हैं, **अरेरे! मनुष्यभव व्यर्थ गया**' मैंने कुछ किया नहीं। क्या करे? समय आया और करे नहीं। आहा..! **इस प्रकार वह पछताये, तथापि किस काम का?** बाद में पछताये, वह किस काम का? आहाहा! **मृत्यु के समय उसे किसकी शरण है?** आहाहा! देह के छूटने के समय शरण किसका? **वह रोग की, वेदना की, मृत्यु की, एकत्वबुद्धि की और आर्तध्यान की चपेट में आकर देह छोड़ता है**। आहाहा! बहुत बात.. क्या कहते हैं? मृत्यु के समय या तो रोग की चपेट में एकाकार, अथवा वेदना में।

मृत्यु में एकाकार अथवा एकत्वबुद्धि राग में और आर्तध्यान की चपेट। आर्तध्यान के भाव में जाकर देह छोड़ता है। आहाहा! वैराग्य की बात है।

वैराग्य किसको कहते हैं ? पहले आत्मज्ञान हो और बाद में पुण्य-पाप के भाव से वैराग्य हो, उसका नाम वैराग्य है। सबकी व्याख्या ही अलग। पहले आत्मज्ञान अन्दर हो, बाद में पर से, पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव दोनों, दोनों से विरक्त हो तो वैराग्य है। समझ में आया ? आहाहा! **मनुष्यभव हारकर चला जाता है**। आहाहा! मनुष्यभव हारकर चला जाता है।

धर्मी जीव... आहाहा! **रोग की, वेदना की या मृत्यु की चपेट में नहीं आता,...** उसमें एकत्वबुद्धि नहीं होती। आहाहा! मैं तो ज्ञायक हूँ, यह सब चीज़ तो जड़ की है। रोग जड़ का है, वेदना जड़ की है, मृत्यु भी शरीर की है, उसकी चपेट में-एकत्व में धर्मी नहीं आता। आहाहा! **क्योंकि उसने शुद्धात्मा की शरण प्राप्त की है**। कारण कहते हैं। शुद्धात्मा पवित्र भगवान अन्दर पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव से रहित और आनन्द से सहित—ऐसे ज्ञायकभाव की शरण ली है। आहाहा! है ? ऐसे **शुद्धात्मा की शरण प्राप्त की है। विपत्ति के समय...** प्रतिकूलता के समय **वह आत्मा में से शान्ति प्राप्त कर लेता है**। आहाहा! प्रतिकूलता आवे, तब भी आत्मा में से शान्ति प्रगट करता है। आहा..! प्रतिकूलता में दब नहीं जाता। आहाहा! मुझे प्रतिकूलता हुई, ऐसा नहीं मानता। आहाहा! धर्मी। मैं तो ज्ञायक हूँ। ज्ञायक किसी की चपेट में आता नहीं। आहाहा! किसी के दबाव में, किसी के एकत्व में वह आता नहीं। आहा..!

विकट प्रसंग में वह निज शुद्धात्मा की शरण विशेष लेता है। विकट प्रतिकूल विशेष संयोग हो, आहाहा! तब तो **वह निज शुद्धात्मा की शरण विशेष लेता है**। साधारणरूप से तो आत्मा का विचार करते हैं, आत्मा का ध्यान करते हैं, आत्मा को पहचानता है, परन्तु विकट प्रतिकूल समय में तो.. आहा..! **शुद्धात्मा की शरण विशेष लेता है**। आहाहा! दृष्टान्त आया था न ? लड़का हो, उसकी माता का कपड़ा पकड़कर खड़ा हो। उसमें कोई कुत्ता आया तो माँ की विशेष शरण लेता है। माँ की गोद में चला जाता है। वैसे धर्मी जीव.. आहाहा! अपने को पकड़ लिया है, उसमें प्रतिकूलता आ जाए तो विशेष अन्दर जाते हैं। बहिन के (वचन में) वह दृष्टान्त आ गया है। माँ का कपड़ा

पकड़कर खड़ा हो और उसमें कोई कुत्ता, बिल्ली या सुअर आ गया तो बालक कपड़े को पकड़ लेता है, माँ की शरण में जाता है।

वैसे धर्मी जीव... पहले से जिसने आत्मा राग और पुण्य-पाप की क्रिया से भिन्न... आहाहा! रात्रि को तो बहुत बात की थी। आहा..! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कभी कुछ करता नहीं। कभी कर सकता नहीं। आहाहा! और एक द्रव्य क्रमसर पर्याय होनेवाली पर्याय होती है, उसमें तू पर को क्या करे? तीसरा, जो आत्मा में उत्पाद होता है, उत्पादव्ययध्रुव समय-समय में वह पर की अपेक्षा नहीं रखता। आहाहा! जो उत्पाद है, वह व्यय की अपेक्षा नहीं रखता, ध्रुव की नहीं रखता। ऐसे उसकी... आहाहा! पर्याय में पर की अपेक्षा नहीं है, उसको ही शरण आत्मा का है। उसका लक्ष्य आत्मा पर है। आहाहा! वह पर्याय अन्दर द्रव्य में जाती नहीं, परन्तु पर्याय स्वतन्त्र होकर, कर्ता होकर द्रव्य का लक्ष्य करती है। आहाहा! ओहो..! क्रमबद्ध होता है। धर्मी की दृष्टि द्रव्य पर होने से, ज्ञायक पर होने से क्रमबद्ध की पर्याय जो होती है, उसे जानने-देखनेवाला रहता है, उसका करनेवाला रहता नहीं। आहाहा! शुद्धभाव बहुत संक्षेप...

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं, स्पर्श करता नहीं। आहाहा! यह बात..! एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं, स्पर्श करता नहीं। तो आत्मा परमाणु को स्पर्श करता है, यह बात है नहीं। आहाहा! प्रत्येक पदार्थ अपने स्वचतुष्टय में रहता है। अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव दोपहर को आया था। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में प्रत्येक पदार्थ रहता है। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में सब पदार्थ रहता है। परपदार्थ को तो छूते ही नहीं। आहाहा! कैसे माने? प्रत्यक्ष दिखे कि...

कहा था न? (संवत्) १९९७ की साल। व्याख्यान चलता था। चीमन चकु है न लींबडीवाला? मुम्बई। वकील है। व्याख्या चलते-चलते (आया कि), एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर नहीं सकता। ये किया, ऐसा कहा। क्यों नहीं कर सकता? ये किया। १९९७ की साल। मन्दिर होता था तब। ये तो फाल्गुन में था, और यह बात तो मार्गशीर्ष की बात है। आहाहा! उसके पहले की बात है। (संवत) १९९७ साल। व्याख्यान चलता था। कितने साल हुए? ४०? ४० साल पहले बात करते थे कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता है नहीं, कभी कर नहीं सकता। यहाँ तो यह आया कि, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता

नहीं। स्पर्श करता नहीं। आहाहा! तो उसने ऐसा कहा.. अभी मुम्बई में स्थानकवासी में प्रमुख है। जहाँ-तहाँ हम सेवा करते हैं, हम सेवा करते हैं। हम सबकी सेवा करते हैं, ऐसा करके लोगों से मान लेता है। उस दिन यहाँ व्याख्यान में भी कहता था कि लो, यह किया। क्यों नहीं कर सकता आत्मा? भाई! क्या हुआ? आत्मा ने क्या किया और उसने क्या किया? तुम आत्मा को जानते हो? आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप तो ज्ञान करता है और यह क्रिया तो जड़ से होती है। आहाहा!

'धर्मी जीव रोग की, वेदना की या मृत्यु की चपेट में (अर्थात् दबाव में) नहीं आता, क्योंकि उसने शुद्धात्मा की शरण प्राप्त की है।' विकट प्रसंग में वह निज शुद्धात्मा की शरण विशेष लेता है। मरणादि के समय धर्मी जीव शाश्वत... आहाहा! देह छूटने का प्रसंग हो तो **धर्मी जीव शाश्वत ऐसे निज सुख सरोवर...** निज सुख सरोवर अन्दर भगवान। सुख का सरोवर भरा है अन्दर। आहाहा! सुख का सागर कहो, यहाँ सरोवर कहा। क्योंकि समीप जा सके। वायु बहुत हो गयी है। बहुत वायु, सवेरे तो बहुत वायु था। कारण कुछ मालूम नहीं।

मरणादि के समय धर्मी जीव शाश्वत ऐसे निज सुख सरोवर में विशेष-विशेष डुबकी लगा जाता है... आहाहा! अन्तर में ज्ञायकभाव में उतर जाता है। अन्तर में लक्ष्य करता है। जैसे प्रतिकूलता आती है तो उतने प्रमाण में जोर करके लक्ष्य अन्दर करते हैं। आहाहा! परन्तु जिसे उसकी खबर ही नहीं, आत्मा क्या है, क्या ज्ञायक है, ज्ञायक की चीज़ कैसी है? वह अरूपी है, नजर में आता नहीं, आँख बन्द करे तो भी अंधेरा दिखे। परन्तु वह अंधेरा देखनेवाला कौन? यह अंधेरा है, ऐसा देखता है कौन? ज्ञान देखता है। अंधेरा अंधेरे को देखता नहीं। आहाहा!

जहाँ रोग नहीं है,... वहाँ डुबकी लगाते हैं। आत्मा ज्ञायक में रोग नहीं है। **वेदना नहीं है,...** अन्दर ज्ञायकस्वरूप भगवान में दृष्टि देते हैं, उसमें रोग नहीं है। उसमें वेदना नहीं है, **मरण नहीं है,...** मरे कौन? शाश्वत वस्तु प्रभु आत्मा है। आहाहा! मरण नहीं है। **शान्ति की अखूट निधि है।** आहा..! है? **शान्ति की अखूट निधि है।** उसमें से शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. खत्म न हो, खत्म न हो। अखूट-खत्म न हो। अर्थात? कमी कभी होती नहीं, ऐसी शान्ति निधि है। आहाहा! ज्ञायकस्वरूप शान्ति का सरोवर अखूट निधि है। **वह शान्तिपूर्वक**

देह छोड़ता है,... धर्मी जीव शान्तिपूर्वक देह छोड़ता है। **उसका जीवन सफल है।** आहाहा! (सफल) जीवन किया और देह छूट गया तो उसका जीवन सफल हो गया।

तू मरण का समय आने से पहले चेत जा,.. देह छूटने का समय आने से पहले चेत जा। **सावधान हो,...** स्वरूप में सावधान हो। आहाहा! यह बात किसी ने इसमें लिखी है। वही बात वहाँ ४१९ में है। किसी ने पत्र में लिखा है। यही बात वहाँ है। हम दुखियारे को कौन शरण? दुखियारे को शरण अन्दर आत्मा है। आहाहा! आत्मा तो अन्दर अनन्त गुण का निधान वहाँ शरण है। दुखियारे को दूसरा कोई शरण (नहीं है)। दुखियारे को कहाँ जाना? दुखियारे को जाना अन्दर में। दुःख तो तूने माना है। स्वरूप में दुःख है नहीं। स्वरूप तो आनन्द और शान्ति है। आहा..! **तू मरण का समय आने से पहले चेत जा, सावधान हो, सदा शरणभूत—विपत्ति के समय विशेष शरणभूत होनेवाले...** आहाहा! विपत्ति-प्रतिकूलता विशेष हो, (उस समय) **ऐसे शुद्धात्मद्रव्य को अनुभवने का उद्यम कर।** शुद्धात्मद्रव्य का अनुभव करने का उद्यम कर। आहाहा! प्रतिकूलता के काल में परीषह और उपसर्ग मृत्यु का, रोग का, वेदना का अरे..! कोई बाहर में नुकसान हुआ हो.. ये सेठ लोग मर जाते हैं न? अपने पास पूँजी हो लाख, दो लाख की। उसमें कोई जुआ खेला और उसमें पच्चीस लाख गया तो करना क्या? अहमदाबाद में एक सेठ था न? अहमदाबाद में। साराभाई। मृत्यु किया था। जहर पीया था। आहाहा! सेठ कहलाता हो और अन्दर (पैसा) कम हो गया हो। बाहर में दिखाव बड़ा हो। उलझन में आ गये, उलझन में। साराभाई सेठ थे, श्वेताम्बर के। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, पहले चेत जा न, प्रभु! आहा..! है? **ऐसे शुद्धात्मद्रव्य को अनुभवने का उद्यम कर।** ऐसे शुद्धात्मद्रव्य। आहाहा! ४१९ किसी ने लिखा है, उसमें यह है। शुद्धात्मा अन्दर प्रभु सहजात्म शुद्धस्वरूप परमात्मा अन्दर है, उसकी शरण ले। ४०९ पूरा हुआ। बाद में? ४१० है?

जिसने आत्मा के मूल अस्तित्व को नहीं पकड़ा, 'स्वयं शाश्वत तत्त्व है, अनन्त सुख से भरपूर है' ऐसा अनुभव करके शुद्ध परिणति की धारा प्रगट नहीं की, उसने भले सांसारिक इन्द्रियसुखों को नाशवन्त और भविष्य में दु:खदाता जानकर छोड़ दिया हो और बाह्य मुनिपना ग्रहण किया हो, भले ही वह दुर्धर तप करता हो और उपसर्ग-परीषह में अडिग रहता हो, तथापि उसे वह सब निर्वाण का कारण नहीं होता, स्वर्ग का कारण होता है; क्योंकि उसे शुद्ध परिणमन बिल्कुल नहीं वर्तता, मात्र शुभ परिणाम ही—और वह भी उपादेयबुद्धि से—वर्तता है। वह भले नौ पूर्व पढ़ गया हो, तथापि उसने आत्मा का मूल द्रव्य सामान्यस्वरूप अनुभवपूर्वक नहीं जाना होने से वह सब अज्ञान है।

सच्चे भावमुनि को तो शुद्धात्मद्रव्याश्रित मुनियोग्य उग्र शुद्धपरिणति चलती रहती है, कर्तापना तो सम्यग्दर्शन होने पर ही छूट गया होता है, उग्र ज्ञातृत्वधारा अटूट वर्तती रहती है, परम समाधि परिणमित होती है। वे शीघ्र-शीघ्र निजात्मा में लीन होकर आनन्द का वेदन करते रहते हैं; उनके प्रचुर स्वसंवेदन होता है। वह दशा अद्भुत है, जगत से न्यारी है। पूर्ण वीतरागता न होने से उनके व्रत-तप-शास्त्ररचना आदि के शुभभाव आते हैं अवश्य, परन्तु वे हेयबुद्धि से आते हैं। ऐसी पवित्र मुनिदशा मुक्ति का कारण है ॥४१०॥

४१०। **जिसने आत्मा के मूल अस्तित्व को नहीं पकड़ा,...** आहाहा! जिसने आत्मा का मूल अस्ति त्रिकाली अस्ति, त्रिकाली सत्ता, मौजूदगी को नहीं पकड़ा **'स्वयं शाश्वत तत्त्व है,...** आहा..! **'स्वयं शाश्वत तत्त्व है,...** किसी के कारण से वह रहता है और किसी के कारण से उत्पन्न हुआ है, ऐसा है नहीं। **'स्वयं शाश्वत तत्त्व है, अनन्त सुख से भरपूर है'...** आहाहा! **ऐसा अनुभव करके...** ऐसा अनुभव करके **शुद्ध परिणति की धारा प्रगट नहीं की,...** शुद्ध परिणति-शुद्ध दशा। शुभाशुभभाव—पुण्य-पाप के भाव से भिन्न। आहाहा! दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि का भाव है, वह सब तो राग है। आहा..! **शुद्ध परिणति की धारा प्रगट नहीं की,...** है? तीसरी पंक्ति। **शुद्ध परिणति की धारा...** शुभाशुभभाव से रहित शुद्ध, मैं पवित्र हूँ, आनन्द हूँ—ऐसी धारा **प्रगट नहीं की,**

उसने भले सांसारिक इन्द्रियसुखों को नाशवन्त... माने। इन्द्रियसुख को नाशवान माने, **भविष्य में दु:खदाता जानकर छोड़ दिया हो...** परन्तु अन्तर की चीज़ को पकड़े बिना सब मिथ्याा है। आहाहा!

और बाह्य मुनिपना ग्रहण किया हो,... आहाहा! पंच महाव्रत आदि लिया, अट्ठाईस मूलगुण पाले, ऐसा मुनिपना ग्रहण किया हो, **भले ही वह दुर्धर तप करता हो...** उपवास आदि दुर्धर-उग्र एक-एक महीना, दो-दो महीने के उपवास (करता हो)। **उपसर्ग-परीषह में अडिग रहता हो,...** प्रतिकूलता में भी अडिग रहता हो, **तथापि उसे वह सब निर्वाण का कारण नहीं होता,...** मोक्ष का कारण नहीं (होता)। आहाहा! वह पुण्य आदि बन्ध का कारण है। आहाहा! **स्वर्ग का कारण होता है;...** मोक्ष का कारण नहीं होता। स्वर्ग में जाए। फिर वहाँ से गिरे और जाए चार गति में भटके। आहाहा!

क्योंकि उसे शुद्ध परिणमन बिल्कुल नहीं वर्तता,... शुद्ध परिणमन जो है, शुभराग और पुण्य-पाप के भाव से रहित, ऐसी दृष्टिसहित परिणति है नहीं, **मात्र शुभपरिणाम ही...** अकेले शुभपरिणाम ही किये **और वह भी उपादेयबुद्धि से—वर्तता है।** शुभभाव उपादेय है, अपना है, ऐसा मानकर वर्तता है। **वह भले नौ पूर्व पढ़ गया हो,...** आहाहा! कहते हैं, नौ पूर्व भी पढ़ गया हो, ऊपर कही ऐसी क्रिया भी करता हो, आहाहा! **तथापि उसने आत्मा का मूल द्रव्यसामान्यस्वरूप...** आत्मा का मूल द्रव्य-त्रिकाली भगवान, उसे **अनुभवपूर्वक नहीं जाना...** उसने अनुभवपूर्वक नहीं जाना **होने से वह सब अज्ञान है।** आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अन्तर आत्मा के अवलम्बन से...

सच्चे भावमुनि को तो... सच्चे भावमुनि को **शुद्धात्मद्रव्याश्रित मुनियोग्य उग्र शुद्धपरिणति चलती रहती है,...** उन्हें तो उग्र शुद्ध अवस्था कायम है। **कर्तापना तो सम्यग्दर्शन होने पर ही छूट गया होता है,...** मैं राग का कर्ता हूँ, दया भाव का कर्ता हूँ, वह तो सम्यग्दर्शन होते ही छूट गया। आहाहा! अपने आत्मा के सिवा रागादि पर का कर्ता सम्यग्दर्शन होने पर ही छूट जाता है।

'करे करम सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा।
जाने सो कर्ता नहीं होई, कर्ता सो जाने नहीं कोई।'

ऐसी सूक्ष्म बात! विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र कृष्ण - १, गुरुवार, तारीख २५-९-१९८०
वचनामृत -४१५ प्रवचन-४३

मुनिराज कहते हैं:—हमारा आत्मा तो अनन्त गुणों से भरपूर, अनन्त अमृतरस से भरपूर, अक्षय घट है। उस घट में से पतली धार से अल्प अमृत पिया जाये ऐसे स्वसंवेदन से हमें सन्तोष नहीं होता। हमें तो प्रतिसमय पूर्ण अमृत का पान हो, ऐसी पूर्ण दशा चाहिए। उस पूर्ण दशा में सादि-अनन्त काल पर्यन्त प्रतिसमय पूर्ण अमृत पिया जाता है और घट भी सदा परिपूर्ण भरा रहता है। चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य और प्रतिसमय ऐसी ही पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन! ऐसी उत्कृष्ट-निर्मल दशा की हम भावना भाते हैं। (ऐसी भावना के समय भी मुनिराज की दृष्टि तो सदाशुद्ध आत्मद्रव्य पर ही है।) ॥४१५॥

वचनामृत - ४१५, ४१५। यहाँ शब्द ऐसा है कि **मुनिराज कहते हैं...** ऐसा शब्द है। वास्तव में तो यह आत्मा कहता है, ऐसा है। यह आत्मा जो देह से भिन्न, वह कहता है, **हमारा आत्मा तो अनन्त गुणों से भरपूर,...** है। आहा..! धर्मी जीव की दृष्टि में अपना आत्मा के अलावा कोई चीज़ भरपूर दिखने में नहीं आती। समझ में आया? **हमारा आत्मा तो अनन्त गुणों से भरपूर,...** थोड़ी बात बाद में आयेगी। **अनन्त अमृतरस से भरपूर,...** पहले अनन्त गुण कहा, फिर अनन्त अमृतरस (कहा)। आहा..! प्रत्येक आत्मा ऐसी पुकार करते हैं - धर्मी, कि अपना आत्मा अनन्त अमृतरस से भरपूर है। विशेष आयेगा।

अक्षय घट है। वह ऐसा घट है कि अक्षय है। अक्षय क्यों कहा? उसका स्पष्टीकरण करते हैं। **उस घट में से पतली धार से अल्प अमृत पिया जाये...** आहाहा! भगवान अमृतधारा से भरपूर भरा है। उस ओर दृष्टि करके उसमें से अमृत की पर्याय, द्रव्य और

गुण से अनन्तवें भाग में है। परन्तु एक द्रव्य में गुण और पर्याय तीन है, उत्पाद, व्यय और ध्रुव। वह उत्पाद भी ध्रुव की अपेक्षा रखता नहीं। ऐसी अमृतधारा आती है, कहते हैं। आहाहा! उत्पाद है न? त्रिकाली वस्तु जो अमृत का भण्डार, उसका पहले विकल्प से निर्णय तो करे कि यह चीज़ ऐसी है। सब बात छोड़कर यह आत्मा ही अमृत का घट है। वह **अक्षय घट है**। अक्षय की व्याख्या करेंगे। चाहे जितनी पतली धारा अन्दर में शुद्ध चैतन्य अमृत का घन प्रभु, उसकी दृष्टि करके, अनुभव करके जो पर्याय में आनन्द की पतली धारा अर्थात् अल्प अनुभव होता है। पूरे द्रव्य-गुण का तो अनुभव होता नहीं। वह तो कहा था।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को तो छूता नहीं, परन्तु एक द्रव्य में पर्याय का वेदन है, वह ध्रुव का वेदन नहीं है। और ध्रुव का आलम्बन है, वह वेदन का आलम्बन नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अपने में जहाँ दो भेद हैं, वहाँ पर के साथ क्या सम्बन्ध? आहा..! पर का आत्मा और पर का शरीरादि, ये दुनिया, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत-कीर्ति, उसके साथ तो कोई सम्बनध है ही नहीं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ यह है कि एक-दूसरे को कुछ करते नहीं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहने में आता है, परन्तु उसका अर्थ यह है, निमित्त-नैमित्तिक। एक निमित्त है, वह अपनी पर्याय करता है, उपादान अपनी पर्याय करता है। तब उसको निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहने में आता है। कोई भी द्रव्य की पर्याय में दूसरे द्रव्य से कुछ भी होता है—ऐसा तीन काल में है नहीं। आहाहा! ऐसी बात।

यहाँ कहते हैं, हमें अमृतधारा... एक तो द्रव्य लिया, आत्मा लिया न? आत्मा द्रव्य, बाद में अनन्त गुण लिये। अमृतधारा से भरा गुण। अक्षयघट। फिर उसमें (पतली धार) पर्याय ली। आहाहा! समझ में आता है? ४१५। अलौकिक बात है, भाई! आत्मा वस्तु और अनन्त-अनन्त अमृत गुण से भरी शक्ति-गुण और उसकी दृष्टि करने से.. पर का तो सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ तो कोई सम्बन्ध है नहीं। परन्तु अपने में भी उत्पाद है, उसके साथ ध्रुव का सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! जो यह धारा उत्पन्न होती है.. पहले कहा, आत्मा द्रव्य है, अनन्त गुण भरपूर है। फिर भी पतली पर्याय जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है, उस उत्पाद को द्रव्य-गुण की अपेक्षा है नहीं।

मुमुक्षु :- ....

पूज्य गुरुदेवश्री :- उत्पाद है। अमृतधारा उत्पाद है।

मुमुक्षु :- घट में से पर्याय आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कथन है। **घट में से पतली धार से अल्प अमृत...** वह तो समझाते हैं। बात ऐसे ही है। पर्याय द्रव्य में से आती है। परन्तु पर्याय हुई, उसको अपेक्षा कोई नहीं है। बाद में द्रव्य की अपेक्षा नहीं है। वह बात करते हैं। समझ में आया ? घट में से पतली... निमित्त तो है न ? पर्याय आती है द्रव्य में से, परन्तु पर्याय हुई, उसको द्रव्य की अपेक्षा नहीं है। हुई उसको अपेक्षा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु :- है उसमें द्रव्य निमित्त है, ऐसा तो आया न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह आया, उतना निमित्त का कथन है, वह तो कथन है। एक समझाना है कि पर्याय अद्धर से नहीं आती है। पर्याय आती है द्रव्य में से, पर्याय जाती है द्रव्य में। जो पर्याय व्यय होती है, वह भी जाती है द्रव्य में। तो उस अपेक्षा से तो द्रव्य एकरूप न रहा। अपेक्षा से है। बाकी ध्रुव को तो कोई उत्पाद की अपेक्षा नहीं है, व्यय की अपेक्षा नहीं है, उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं है। ऐसी बात है। दरकार नहीं की। आहाहा!

वह तो ठीक है, परन्तु उस पर्याय का क्षेत्र है, वह द्रव्य का क्षेत्र नहीं है। आहाहा! जितने में पर्याय उत्पन्न होती है, उतना क्षेत्र और ध्रुव का क्षेत्र भिन्न है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! और वह प्रत्येक उत्पाद, व्यय और ध्रुव प्रत्येक स्वतन्त्र है। किसी के अवलम्बन से कोई है, वह कथन व्यवहार से है। आहाहा! समझ में आया ? पतली धार है, कहते हैं, उसमें भी षट्कारक है। क्या षट्कारक है ? पर्याय जो आती है, वह कर्ता स्वतन्त्र होकर आती है। घट में से कहा, वह तो लक्ष्य (वहाँ) था, इसलिए। परन्तु कर्ता होकर लक्ष्य करती है, वह स्वतन्त्र करती है। घट में से, उसकी व्याख्या की। वह पर्याय जो उत्पन्न हुई, वह कर्ता स्वतन्त्रपने होकर उत्पन्न हुई है। स्वतन्त्रपने कर्ता कब कहने में आता है ? वह पर्याय स्वतन्त्रपने द्रव्य का लक्ष्य करती है। स्वतन्त्रपने लक्ष्य करती है। आहाहा! अभी तो दूसरी बहुत बातें आयेगी। आहा..!

एक-एक पर्याय में षट्कारक परिणमन स्वतन्त्र होता है। आहाहा! रात को कहा

था न? आत्मा वस्तु है। उसमें एक भाव नाम का गुण है। भाव नाम का गुण आत्मा में लीन है। एक भाव नाम का गुण है, वह द्रव्य में है, तो द्रव्य की जहाँ दृष्टि हुई तो भावगुण के कारण पर्याय उत्पन्न होती है। पर्याय उत्पन्न करना और मैं करूँ, ऐसा है नहीं। आहाहा! ४७ गुण है न। शक्ति। भाव नाम की एक शक्ति है जो कि शक्तिवान को पकड़कर जो पर्याय प्रगट हुई, वह भावगुण के कारण से प्रगट हुई, ऐसा कहने में आता है। भावगुण से। बाकी गुण तो गुण है और पर्याय, पर्याय है। परन्तु दूसरे से नहीं (हुई), इतना सिद्ध करने को भावगुण की पर्याय भाववान को पकड़ा... आहाहा! ज्ञायकभाव ध्रुवभाव अचलभाव अविनाशी त्रिकाली एकरूप सनातन सत्ता, उस सत्ता के समीप गया और पकड़ की और जो पर्याय उत्पन्न हुई,... आहाहा! उस पर्याय को उसकी अपेक्षा नहीं है, बाद में ऐसा कहते हैं। आहा..!

उस पर्याय का क्षेत्र भिन्न है। पर्याय का क्षेत्र भिन्न है, ध्रुव का क्षेत्र भिन्न है। पर्याय का प्रदेश भिन्न है, ध्रुव का प्रदेश भिन्न है। पर्याय का सूक्ष्मत्व, पर्याय का सूक्ष्मत्व का कारण पर्याय को है। द्रव्य का सूक्ष्मत्व कारण पर्याय को नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अन्दर में यह वास्तविक तत्त्व, उसकी स्थिति न बैठे तब तक शास्त्र का वांचन करे तो भी अपनी दृष्टि से करे। अपनी दृष्टि से खताये। परन्तु वास्तविक तत्त्वदृष्टि वस्तु क्या है? और कैसे है? यह समझे बिना अर्थ सही होता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

पर्याय जो आती है, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। और है, वह है, उसको कोई अपेक्षा नहीं है। आहाहा! वह है, षट्कारक से परिणमन करती उत्पन्न हुई है। समझ में आया? आहा..! ऐसी बात अब। पर्याय भी कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। षट्कारक से पर्याय उत्पन्न होती है। उस षट्कारक को द्रव्य और गुण की अपेक्षा नहीं है। गुण बिना पर्याय उत्पन्न होती है। है कहीं? दो भिन्न है। चिद्विलास नहीं है? चिद्विलास - ८९ पृष्ठ पर है। चिद्विलास है न? दीपचन्दजी का। उसके ८९ पृष्ठ पर है कि गुण बिना पर्याय पर्याय से उत्पन्न हुई है। ऐसा पाठ है। गुण बिना। आहाहा! क्या है! ऐसा मार्ग। यहाँ पुस्तक नहीं है न? कोई बात नहीं।

उसमें तो ऐसा लिखा है कि गुण बिना पर्याय अपने से होती है। ऐसा लिया है। और पर्याय का षट्कारक अपने से होता है। तो पर्याय जो है, उसका क्षेत्र भी भिन्न (है)। ताकत,

उसकी शक्ति भी भिन्न। आहा.. ! फिर भी वेदन तो पर्याय का ही होता है। अलिंगग्रहण का २०वाँ बोल। अपने पूरे द्रव्य को स्पर्श किये बिना, पूरे द्रव्य-गुण को स्पर्श किये बिना, मैं तो पर्याय हूँ, वही मैं आत्मा हूँ। आहाहा! क्योंकि मेरे वेदन में आया-अनुभव में आया, वह मैं आत्मा। ध्रुव अनुभव में आता नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात। एक बार सुने तो सही, ख्याल में तो ले। आहाहा! क्या चीज़ है! आहाहा!

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। एक द्रव्य की पर्याय उत्पन्न होती है, वह भी क्रमसर होती है। क्रमसर। और वह पर्याय उत्पन्न होती है, उस पर्याय को दूसरी पर्याय-व्यय या ध्रुव की अपेक्षा नहीं है। अपेक्षा नहीं है, परन्तु वह पर्याय.. आहाहा! अपनी शक्ति और ताकत से उत्पन्न होती है।

यहाँ वह कहते हैं, घट में से कहा। क्योंकि वस्तु है, उसको बताना है। धार घट में है, ऐसा बताना है न। **पतली धार से अल्प अमृत पिया जाये...** आहा.. ! पूरा आत्मा तो पिया जाता नहीं - अनुभव में आता नहीं। यहाँ सम्यग्दर्शन में चैतन्य पूर्ण स्वरूप भगवान के अन्तर अनुभव में पर्याय में जो वेदन आता है, वह पर्याय का है। वेदन का आलम्बन नहीं और ध्रुव का वेदन नहीं। ध्रुव का अवलम्बन है, परन्तु वेदन पर्याय का है। आहाहा! सेठ! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :- बाहर में यह बात कौन समझे?

पूज्य गुरुदेवश्री :- तो हो गया, भटक मरना है। चार गति। बात सच्ची है। आहाहा! यहाँ तो इतने में तीन बोल लिये - द्रव्य, गुण और पर्याय तीन इतने में। एक पंक्ति में तो इतना है।

यह बहिन के वचनामृत है। वह पर्याय.. आहाहा! क्रमबद्ध होती है। क्रमबद्ध होती है, उसका अर्थ क्या? उसके द्रव्य-गुण की अपेक्षा रही नहीं। तो क्रमबद्धपर्याय अपने से होती है और उसमें भी वह पर्याय षट्कारक से उत्पन्न होती है। उसमें भाव जो अभी कहा कि आत्मा में तीन प्रकार का भाव है। एक भाव यह कि आत्मा को पकड़ा, उसको निर्मल पर्याय प्रगट-उत्पन्न होती ही है। उसे निर्मल पर्याय प्रगट करना, यह है नहीं। समझ में आया? आत्मा में एक भावगुण ऐसा है कि जो आत्मा की दृष्टि की, उसे भावगुण के कारण वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती ही है। वह भावगुण के कारण। कारण कहा वह भी... आहाहा!

दूसरा भाव। जो आत्मा में अनन्त गुण है, उसमें जो निमित्त के वश होकर विकार होता है; निमित्त से होता नहीं, निमित्त के वश से होता है। उसमें बड़ा अन्तर है। निमित्त से होता है और निमित्त के वश से होता है, उसमें पूर्व-पश्चिम जितना अन्तर है। आत्मा में निर्मल पर्याय जो उत्पन्न होती है, उसके दो प्रकार। एक समय की पर्याय में विकार षट्कारक से उत्पन्न होता है, उससे रहित निर्मल पर्याय का उत्पन्न होना, वह भावगुण का कार्य है। आहाहा! समझ में आया? दो भाव कहे। दो भाव कहे? ध्यान तो रखे कि कुछ आता है, है कुछ। आहा..!

एक भावगुण के कारण निर्मल पर्याय अनन्त गुण की पर्याय उत्पन्न हुए बिना रहती नहीं। एक भावगुण के कारण; विकार जो पर्याय में होता है, उससे निवृत्त होकर निर्मल पर्याय का अस्तित्व उत्पन्न हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया? एक भाव के कारण अनन्त गुण की निर्मल पर्याय प्रगट होती ही है। और दूसरे भावगुण के कारण.. यह दूसरा गुण है। समय-समय में विकृत अवस्था होती है, वह सिद्ध किया है। परन्तु उस भावगुण के कारण विकृत से रहित निर्मल पर्याय रहती है। आहाहा! पर्याय में अधर्म-विकार उत्पन्न होता है, फिर भी आत्मा में एक भावगुण ऐसा है कि उससे रहित वेदन है। विकार का वेदन नहीं। ऐसा यहाँ कहा। एक ओर विकार और आनन्द दोनों का वेदन है। आहाहा! अरेरे..!

तीसरा एक भाव। निक्षेप का भाव। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। वह दो भाव अलग, यह भाव अलग। यह भाव पर्याय, बस। द्रव्य की पर्याय भावनिक्षेप है। आहाहा! कौन ध्यान दे? लालचन्दभाई! ये सब बड़े सेठ। ध्यान कौन दे? ध्यान दिया नहीं, सेठ! ठपका है। आहाहा! वह भाव-पर्याय भावनिक्षेप से है, वह भी भाव। आहाहा! और वह दो भाव (जो पहले कहे), वह भी भाव (है)। और तीसरा-अनन्त गुण की परिणति निर्मल जो होती है, उस गुण का नाम क्रियागुण है। ४७ गुण में। निर्मल ही उत्पन्न होती है।

यहाँ कहा न? **पतली धार से अल्प अमृत पिया जाये, ऐसे स्वसंवेदन से हमें सन्तोष नहीं होता।** क्या कहते हैं? आहाहा! अपनी पर्याय में, गुण में पूर्ण अमृत भरा है, तो उसकी पर्याय में अल्प अमृत आता है, उससे हमको सन्तोष नहीं होता। आहाहा! ये पैसे बिना सन्तोष होता नहीं, ऐसा कहते हैं? पाँच लाख हो, पच्चीस लाख हो, करोड़, पाँच करोड़ हो, दस करोड़वाले को देखे तो, उसके पास दस करोड़ है, मेरे पास पाँच करोड़ है।

पाँच करोड़ कम गिने। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि हमारा स्वभाव अमृत से परिपूर्ण भरा है। अतीन्द्रिय अमृत से। उसमें से पर्याय में तो अल्प धारा आती है। आहाहा! उससे हमें सन्तोष नहीं। आहाहा! है?

हमें तो प्रतिसमय... प्रत्येक समय में **पूर्ण अमृत का पान हो,...** आहाहा! धर्मी को यह भावना है। वर्तमान पर्याय में अल्प आनन्द और अल्प धर्म की दशा है। उसे उतने में सन्तोष नहीं है। आहाहा! मैं पर्याय में पूर्ण हो जाऊँ। पर्याय में, हों! आहाहा!

मुमुक्षु :- मिथ्यादृष्टि को भी सन्तोष नहीं और सम्यग्दृष्टि को सन्तोष नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री :- सन्तोष का अर्थ- इतनी पर्याय में, मैं रहना नहीं चाहता हूँ, मुझे तो पूर्ण चाहिए। है इतने में सन्तोष है, परन्तु नहीं मिली.. आहा..! वह भी कहा था न?

तृष्णा और लोभ, दोनों का अर्थ भिन्न है। तृष्णा उसे कहते हैं—भविष्य की इच्छा। वस्तु नहीं मिली, वह मिलने की भावना, उसका नाम तृष्णा। और लोभ उसे कहें कि वस्तु प्राप्त है, उसमें इच्छा, उसका नाम लोभ। स्वामी कार्तिकेय में आता है। समझ में आया?

वैसे यहाँ तृष्णा और लोभ को पलटकर... बालचन्दभाई! तृष्णा। वर्तमान पर्याय परिणमती है वह। और लोभ.. वर्तमान में है इतना नहीं, मैं तो पूर्ण हूँ। आहाहा! किसी की अपेक्षा नहीं। आहाहा! देव-गुरु और शास्त्र की भी अपेक्षा मेरी पर्याय के लिये नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ओहो..!

हमें तो प्रतिसमय पूर्ण अमृत का पान हो, ऐसी पूर्ण दशा चाहिए। आहाहा! धर्मात्मा को पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद भी ऐसी भावना है, ऐसा कहना है। आहा..! सम्यग्दर्शन प्रथम प्रगट करना, वह त्रिकाली द्रव्य के अवलम्बन से होता है। सम्यग्दर्शन है पर्याय। परन्तु पर्याय षट्कारक से कर्तापना से स्वतन्त्र, द्रव्य पर स्वतन्त्र कर्तापने से लक्ष्य करती है, आश्रय करती है। पर्याय को द्रव्य आश्रय करवाता है पराधीन (करके), ऐसा नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी विशेष कहना है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि हुई, उसका स्वीकार हुआ, सत्कार हुआ, उपादेयबुद्धि हुई (तो) पर्याय में आनन्द का अंश आता है। पूरा आनन्द नहीं आता। तो इतने आनन्द से भी धर्मी को सन्तोष नहीं होता। है उतना सन्तोष है, परन्तु उतने से नहीं होता अर्थात् वृद्धि करना है।

षट्खण्डागम में तो ऐसा कहा है, मतिज्ञान हुआ है, वह मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। आहाहा! षट्खण्डागम। वीतराग की वाणी, त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि। षट्खण्डागम के ४० पुस्तक हैं। यहाँ सब है। दो-तीन बाकी है, वह छपते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि एक समय की पर्याय में मुझे सन्तोष नहीं है, मुझे तो पूर्ण चाहिए। आहाहा! धर्मी की भावना-पैसा बहुत चाहिए, स्त्री-कुटुम्ब चाहिए और यह चाहिए, वह बात तो मिथ्यादृष्टि मानता है। आहा..! परद्रव्य का संयोग मिले, वह तो मिथ्यादृष्टि माने। संयोग में लक्ष्य जाने से तो राग उत्पन्न होता है। संयोग में लक्ष्य जाने से,.. संयोगी चीज़ दुःख का कारण नहीं है। नरक में दुःख के संयोग का पार नहीं, परन्तु वह संयोग दुःख का कारण नहीं है। मात्र उस ओर लक्ष्य करके रुक जाता है, वह दुःख है। आहाहा! लालचन्दभाई! ऐसी बात है। बिच्छु का काटने का और सर्प काटने का दुःख नहीं है। संयोग का दुःख नहीं है। संयोग तो ज्ञेय है। ज्ञेय में ऐसी कोई चीज़ नहीं है कि इष्ट और अनिष्ट, ऐसा कोई ज्ञेय के दो भाग नहीं है। आहाहा! मात्र अज्ञानी अपने स्वरूप से हटकर, उस ओर के लक्ष्य में रुक जाता है, वह महाविकार की परिणति दुःखरूप है। संयोग दुःखरूप नहीं, द्रव्य-गुण दुःखरूप नहीं। आहाहा! इसमें कितना याद रखना?

उस पूर्ण दशा में... आहाहा! **सादि-अनन्त काल...** देखो! पूर्ण दशा भी सादि-अनन्त काल। सिद्धदशा हुई, (उसकी) सादि हुई—आदि हुई, अन्त नहीं। आहाहा! ऐसी **पूर्ण दशा में सादि-अनन्त काल पर्यन्त प्रतिसमय...** थोड़ा ध्यान रखना। सूक्ष्म बात आयेगी। **अनन्त काल पर्यन्त प्रतिसमय पूर्ण अमृत पिया जाता है...** पूर्ण सिद्ध। मैं तो पूर्ण परमात्मा हो जाऊँ। मैं परमात्मा ही हूँ। स्वभाव में-शक्ति में-गुण में-सत् के सत्त्व में, सत् आत्मा उसका सत्त्व परमात्मपना, वही उसका सत्त्व है। आहा..! परन्तु पर्याय में पूर्णानन्द की पर्याय प्राप्त हो.. आहाहा! **पूर्ण अमृत पिया जाता है और घट भी सदा परिपूर्ण भरा रहता है।** अब यह देखो! घट में से पतली पर्याय निकलती थी तो भी वह पूरा था और विशेष निकलती हो तो भी घट तो पूरा ही है। आहाहा! ऐसी बात! यह तो अभी दृष्टान्त है, हों!

चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य... क्या कहते हैं? मेरी पर्याय में परिपूर्ण अमृत की पर्याय प्रगट हो तो भी द्रव्य तो है, वही है। द्रव्य में कमीबेसी—कम-ज्यादापना

होता नहीं। आहाहा! घट में से पतला प्रवाह निकले तो भी घड़ा परिपूर्ण और पूरा विशेष निकले तो भी परिपूर्ण! वह तो दृष्टान्त है। सिद्धान्त—भगवान आत्मा में परिपूर्ण पर्याय निकले तो भी परिपूर्ण और साधक की अपूर्ण पर्याय निकले तो भी आत्मा परिपूर्ण। और विकारपने पर्याय में परिणमे तो भी द्रव्य तो परिपूर्ण है ही। आहाहा! अरे..! ऐसी बात! मूल चीज़ स्पर्श किये बिना सुनने मिले नहीं और बाहर से हा-हो, हा-हो धमाल। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य...** ऐसा क्यों कहा? **चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य...** यह वस्तु। क्यों? कि **प्रतिसमय ऐसी ही पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन!** आहाहा! प्रतिसमय पूर्ण व्यक्ति प्रगट। द्रव्य में जितनी शक्ति है, वैसी पर्याय में परिपूर्ण शक्ति व्यक्त हो गयी तो भी द्रव्य तो वैसा का वैसा, उतना का उतना है। समझ में आया? भाषा तो सादी है, भगवान! आहाहा! पर्याय में.. अरे..! निगोद की पर्याय हो, अक्षर के अनन्तवें भाग में, तो भी द्रव्य तो परिपूर्ण भरा है और केवलज्ञान प्रगट हो। पूर्ण कहा न? तो भी द्रव्य तो परिपूर्ण भरा है, वैसा ही है। केवलज्ञान प्रगट हुआ तो अन्दर की शक्ति में से घट गया... बाहर में इतनी शक्ति प्रगट हुई कि एक समय में एक ज्ञान की एक समय की पर्याय.. आहाहा! तीन लोक को जाने, अपने द्रव्य-गुण को जाने, अपनी अनन्त प्रगट पर्याय को जाने। एक समय की पर्याय, बस, उसमें पूर्ण आ गया।

एक ज्ञान की एक समय की, वह पर्याय एक समय की पूरे द्रव्य-गुण को जाने, अपना त्रिकाली द्रव्य-गुण। अपनी पर्याय को जाने, अपनी अनन्त पर्यायें दूसरी हैं, उनको जाने। अनन्त केवली और सिद्ध भगवान को जाने। एक समय की पर्याय में कोई बाकी नहीं रहा कि अमुक जानने में न आये। आहाहा! ऐसी एक समय की पर्याय पूर्ण प्रगट हो, तो भी द्रव्यस्वरूप तो है, वैसा है। आहाहा! कोई चमत्कारिक द्रव्य है। आत्मा चमत्कारिक है, भाई! ऐसे बाहर में गिनती गिने कि अल्प पर्याय प्रगट हुई तो अन्दर द्रव्य विशेष पुष्ट है, और परिपूर्ण प्रगट हुई तो अन्दर में थोड़ा कम हो गया, ऐसी बाहर से लोग कल्पना करे। परिपूर्ण वस्तु। आहाहा!

चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य... आहा..! देखा! चमत्कारिक वसतु है, वह वस्तु चमत्कारिक है। आहाहा! बाहर का चमत्कार धूल का, एक प्रतिमा थी और उसमें से पसीना निकला, उसमें से वह हुआ, एक चमत्कार हुआ, ढीकना हुआ.. अरेरे..!

दुनिया कहाँ जाती है और कहाँ (मार्ग है)। यह चमत्कारिक प्रभु, कि जिसमें से अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. पूर्ण शक्ति केवलज्ञान की, केवलदर्शन की... केवलज्ञान की एक पर्याय, ऐसे दर्शन की एक पर्याय में भी वैसा है, वैसे श्रद्धा की एक पर्याय में भी ऐसा है, वीर्य की एक पर्याय में भी ऐसा पूर्ण है। आहाहा! समझ में आता है ? यह कथा नहीं है, वार्ता नहीं है। यह तो भगवान का घर है! आहाहा..!

अनन्त-अनन्त अन्दर वस्तु परिपूर्ण पड़ी है। उसकी परिपूर्ण (पर्याय)... **प्रतिसमय ऐसी ही पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन!** आहाहा! तो भी वस्तु तो है, ऐसी है। यह कैसे बैठे ? मतिज्ञान और श्रुतज्ञान अल्प ज्ञान है। शास्त्र तो ऐसा कहते हैं, बारह अंग जो भगवान के मुख से निकले, बारह अंग, हों! चौदह पूर्व के उपरान्त। क्योंकि बारहवाँ अंग चौदह पूर्व तो एक भाग है और बारह अंग तो परिपूर्ण है। तो भी कहते हैं, पंचाध्यायीकार कहते हैं कि, वह तो स्थूल कथन है। अन्दर में गम्भीरता तू जाने तब तुझे आये। आहाहा! बारह अंग का ज्ञान! आहाहा! एक-एक आचारांग में १८ हजार पद, एक-एक पद में ५१ करोड़ से अधिक श्लोक। ऐसे-ऐसे डबल सूयगडांग, ठाणांग आदि। तो कहते हैं कि ग्यारह अंग तो ठीक, परन्तु बारह अंग। समकिती को दस पूर्व के ज्ञान में तो समकित होता ही है। नौ पूर्व ज्ञान मिथ्यादृष्टि तक को भी होता है। पर्याय में द्रव्य का माहात्म्य न हो, तो भी पर्याय में विभंग आदि प्रगट होता है। सात द्वीप, सात समुद्र देखे। मिथ्यात्व में। और समकित की पर्याय में भले उससे बहुत कम देखे, परन्तु भगवान चमत्कारिक को पकड़ा है। चमत्कारिक वस्तु को पकड़ी है तो वह पर्याय अलौकिक है। वह पर्याय भव का अन्त लायेगी। और मिथ्यात्व के वेदन में.. आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि बारह अंग का ज्ञान भगवान के मुख से निकला। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे'। भगवान की ॐ ध्वनि छूटे। भगवान को ऐसी वाणी नहीं होती। होठ बन्द हो, कण्ठ कंपे नहीं। पूरे शरीर में से ॐ ऐसी आवाज आती है। ॐकार ध्वनि। भगवान की ॐकार ध्वनि सुनी गुणधर ने। 'ॐकार धुनि सुणी अर्थ गणधर विचारे'। उसके अर्थ का विचार करे। आहाहा..! उसमें से बारह अंग की रचना करे। भगवान के मुख से निकला, वह भी अनन्तवें भाग में और गणधर रचना करे, वह भी अनन्तवें भाग में। आहाहा! क्या कहना है ? प्रभु! तेरा माहात्म्य कोई अलौकिक है!

बाहर की कोई पर्याय, राग की तो क्या बात करनी, पर की तो क्या बात करनी, परन्तु तेरी पर्याय में अल्पता या विशेषता, वह सब भेद पर्याय में है। द्रव्य में अल्प और विशेषता, ऐसा कुछ है नहीं। ऐसा चमत्कारिक आत्मा। यह चमत्कार नहीं है ?

आत्मा में अनन्त गुण है। एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। आहा..! यह क्या ? ऐसे एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप। ऐसे अनन्त गुण। ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड, वह द्रव्य-वस्तु। उसमें कभी कमी-बेसी होती नहीं, ऐसी चमत्कारिक चीज़ है। बारह अंग आओ, ग्यारह अंग आओ, पाँच समिति और तीन गुप्ति जितना आओ.., आहाहा! कहना क्या है ? पहले से क्या कहते हैं ? हमारा अनन्त गुणों से भरपूर (है)। मुनिराज भले शब्द लिया है। साधकजीव अपने आत्मा को परिपूर्ण मानते हैं। आहाहा! पहली शुरुआत यहाँ से करते हैं। इस शुरुआत के बिना चाहे जितने शुभभाव करे, उसके संसार का अन्त नहीं। वह स्वयं संसार है। शुभभाव को तो नियमसार में घोर संसार कहा है। आहाहा! दिगम्बर मुनि को जगत की कहाँ पड़ी है। नागा बादशाह थी आघा। आहाहा! सत्य को प्रसिद्ध करते हुए, दुनिया की कुछ नहीं पड़ी है। दुनिया को बैठेगा या नहीं बैठेगा, वस्तु ऐसी है।

चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य... यह क्यों कहा ? कि इतनी पर्याय प्रगट हो तो भी वस्तु तो उतनी की उतनी ही रहती है। **चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य...** आहाहा! **और प्रतिसमय ऐसी ही पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन!** ऐसा चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवाला द्रव्य-वस्तु और प्रतिसमय ऐसी पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन। आहाहा! पर्याय। **ऐसी उत्कृष्ट-निर्मल दशा की हम भावना भाते हैं।** आहाहा! इसलिए कहा है। धर्मी की दृष्टि द्रव्यदृष्टि पर है। वहाँ दृष्टि बदलती नहीं होती। परन्तु पर्याय में तो जितना विकास हुआ है, उतने में भी सन्तोष नहीं है। समकित वह पर्याय है। समकित वह भी पर्याय है। परन्तु उसका विषय है वह परिपूर्ण है। उस पर्याय में भी पूर्ण पर्याय का सन्तोष नहीं है। वह पर्याय द्रव्य के अवलम्बन से हुई, द्रव्य के आश्रय से हुई। आहाहा! फिर भी पूर्ण स्वरूप नहीं है, इसलिए सन्तोष नहीं है। आहाहा! दुनिया की क्रियाकाण्ड की यहाँ बात अन्दर में है नहीं। आहा..! आता है, धर्मी को भी शुभभाव आता है। अशुभ से बचने को। धर्म का अंश और उससे कोई परम्परा धर्म होता है, ऐसा है नहीं।

शास्त्र में आता है, शुभभाव परम्परा कारण है, ऐसा आता है। किसको ? अपना पूर्ण स्वरूप की दृष्टि हुई है, उसको अशुभ से बचने को शुभ आया, वह शुभ छोड़कर शुद्ध में जायेगा ही। आहाहा! इसलिए शुभभाव को परम्परा कारण कहने में आया है। क्यों ?—कि शुभ में समकित तो है, अकेला शुभ नहीं है। समकित है, उसके साथ शुभभाव है। इतने शुभभाव में अशुभ से बचे। और कदाचित् पंचम काल है तो केवल तो है नहीं, परन्तु जब आयुष्य बँधने का काल आयेगा, तब शुभभाव ही आयेगा। समकिती को शुभभाव में ही आयुष्य बँधेगा। आहाहा! अशुभभाव आता है, भविष्य का आयुष्य बन्ध नहीं करेगा। आहाहा! समझ में आया ? अशुभ आता है। बन्ध नहीं करेगा। ऐसी समकितदर्शन की शक्ति है और उससे भी द्रव्य की शक्ति अनन्तगुनी है। महा चमत्कारिक चीज़ जहाँ दृष्टि में आयी, उस दृष्टिवान को इस भव में कदाचित् केवल (ज्ञान) न हो तो उसको वैमानिक में स्वर्ग में ही जाना है। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष है, उसमें नहीं जाते हैं। आहा..! ऐसी ताकत तो पर्याय की है। ऐसी पूर्ण पर्याय हो तो भी चमत्कारिक द्रव्य में घटता नहीं–कमी नहीं होती। आहाहा!

प्रतिसमय ऐसी ही पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन! शाश्वत द्रव्य, **चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत् द्रव्य...** वह दृष्टि में है। **और प्रतिसमय ऐसी ही पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन!** आहाहा! **ऐसी उत्कृष्ट-निर्मल दशा की हम भावना भाते हैं।** देखो! धर्मात्मा मुनि लिये हैं, परन्तु समकिती को भी ऐसा ही है। **ऐसी उत्कृष्ट-निर्मल दशा की...** क्या उत्कृष्ट दशा ? चमत्कारिक पूर्ण द्रव्य और पूर्ण पर्याय जो अन्दर से आयी, फिर भी अन्दर में तो परिपूर्ण रहा। आहाहा! यह द्रव्य कैसा! एक मति का अंश अक्षर का अनन्तवाँ भाग निगोद के जीव को प्रगट है, तो भी द्रव्य तो परिपूर्ण है। आहाहा! यह चैतन्य चमत्कार..! आहाहा!

उसमें तो एक बात ऐसी भी कही है कि प्रत्येक समय केवलज्ञान आदि है, उसमें भी षट्गुणहानिवृद्धि होती है। क्या कहा ? अन्दर से आता है। एक समय की केवलज्ञान की पर्याय, उसमें अनन्तगुण हानि और अनन्तगुण वृद्धि एक समय में (होती है)। क्या है यह ? है क्या ? शास्त्रकार बोलते हैं कि यह बात शास्त्रगम्य (सर्वज्ञगम्य) है। सब बात श्रुतज्ञान में आ जाए तो केवलज्ञान की महिमा क्या रहे ? समझ में आया ? पंचास्तिकाय में

है। पंचास्तिकाय, टीका में। अगुरुलघु। अनन्तगुणी वृद्धि अनन्तगुण हानि। केवलज्ञान तो तीन काल–तीन लोक को जाने। पर्याय परिपूर्ण है। परिपूर्ण में अनन्तगुण हानि और अनन्तगुण वृद्धि! ऐसी कोई पर्याय में भी अलौकिक महिमा है। द्रव्य में तो अलौकिक महिमा है, केवलज्ञान प्रगट हुआ तो भी द्रव्य तो वैसा का वैसा रहा। परन्तु पर्याय में भी ऐसा चमत्कार है कि एक–एक पर्याय में षट्गुणहानिवृद्धि। ऐसी अनन्त पर्याय आत्मा में अनन्त गुण की। अनन्त गुण की अनन्त पर्याय सबकी प्रगट है, प्रतिसमय। कोई भी द्रव्य विशेष–पर्याय बिना का अकेला द्रव्य रहता नहीं। और कोई भी पर्याय द्रव्य बिना रहती नहीं।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। सामान्य–विशेषस्वरूप है। आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत आयी, बापू! इस ४१५वें बोल में। यह बहिन का बोल है। आहाहा..! अरेरे..!

ऐसी उत्कृष्ट–निर्मल दशा की हम भावना भाते हैं। आहाहा! फिर भी उस भावना भाते समय भी दृष्टि तो ध्रुव पर है। समझ में आया? दृष्टि तो ध्रुव पर है। भले पूर्णता की भावना भाये पर्याय में। दृष्टि में कोई फेरफार (होता नहीं)। ध्रुव पर दृष्टि पड़ी है, वह तो त्रिकाल ऐसे ही पड़ी है। उसमें तो फेरफार है नहीं। चाहे तो चौथा गुणस्थान हो या चाहे तो छठ्ठा–सातवाँ हो। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है। यह बहुत लोग आये हैं, एक बार सुने तो सही कि ऐसी कोई बात है। यह कोई सोनगढ़ का मुफ्त का नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु :- पद्मपुरी में चमत्कार मानते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो सब मानते थे। पद्मपुरी में यह चमत्कार, फलाने में यह चमत्कार है। यह चमत्कार यहाँ है। आहा..!

(ऐसी भावना के समय भी मुनिराज की दृष्टि तो सदा शुद्ध आत्मद्रव्य पर ही है।) दृष्टि आत्मद्रव्य पर से कभी हटती नहीं। इतनी बात...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र कृष्ण - ३, शनिवार, तारीख २७-९-१९८०
वचनामृत -४१०, ४१२ प्रवचन-४४

वचनामृत-४१० । पहला पैरेग्राफ चल गया है । फिर से । एक पैरेग्राफ बाकी है । शुरु से । **जिसने आत्मा के मूल अस्तित्व को नहीं पकड़ा,...** मुद्दे की रकम है ।

मुमुक्षु :- मूल अस्तित्व क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- मूल अस्तित्व-यह आत्मा सत्ता । अकेला ज्ञान और आनन्द । सर्वांग आनन्द और सर्वांग शान्ति से भरा हुआ भगवान, वह मूल अस्तित्व । मूल अस्तित्व । मौजूदगी । अस्तित्व अर्थात् मूल सत्ता की मौजूदगी । आहाहा ! आत्मा की मूल सत्ता की मौजूदगी, उसका नाम अस्तित्व कहने में आताा है । आहाहा !

जिसने आत्मा के मूल अस्तित्व को... पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव अखण्ड एकरूप स्वरूप, उसको जिसने पकड़ा नहीं, उसका अस्तित्व जिसकी दृष्टि में है नहीं और उसका अनुभव किया नहीं.. आहाहा ! **स्वयं शाश्वत तत्त्व है,..** देखो ! आया न ? मूल अस्तित्व को नहीं पकड़ा, वह अस्तित्व क्या ? उस अस्तित्व में क्या है ? **स्वयं शाश्वत तत्त्व है,...** उसमें स्पष्टता है । स्वयं.. आया है न ? **स्वयं शाश्वत तत्त्व है,...** आहाहा ! मूल अस्तित्व को पकड़ा नहीं, माने क्या ? कि **स्वयं शाश्वत तत्त्व है,..** आत्मा । **अनन्त सुख से भरपूर है...** अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द के सुखस्वरूप से भरपूर भरा है । आहाहा ! ऐसा स्वयं शाश्वत् तत्त्व, उसका मूल जिसने पकड़ा नहीं, जिसकी दृष्टि हुई नहीं । उसको छोड़कर कुछ भी करे, उसमें कोई जन्म-मरण मिटेगा नहीं । आहा.. !

वह कहते हैं, **'स्वयं शाश्वत तत्त्व है, अनन्त सुख से भरपूर है' ऐसा अनुभव करके...** आहा.. ! ऐसा अपना स्वयं शाश्वत तत्त्व । उसका अनुभव करके **शुद्ध परिणति की धारा...** शुद्ध दृष्टि, शुद्ध दशा । वस्तु तो त्रिकाली कहा । परन्तु त्रिकाली को पकड़कर

अनुभव कर शुद्ध परिणति की धारा प्रगट न की। आहाहा! स्वयं शाश्वत् चैतन्य तत्त्व भगवान, जो मूल अस्तित्व, मूल अस्ति। उसको पकड़कर अनुभूति, शुद्ध परिणति की अनुभूति। शुद्ध दशा की धारा प्रगट न की। आहाहा!

उसने भले सांसारिक इन्द्रियसुखों को नाशवन्त... जाने। आहाहा! उसमें कुछ है नहीं। भले **सांसारिक इन्द्रियसुखों को नाशवन्त और भविष्य में दुःखदाता जानकर छोड़ दिया हो...** आहा..! इन्द्रिय का सुख। वर्तमान में भोगेगा पाप तो भविष्य में दुःख होगा। नरक अथवा तिर्यंच में जाना पड़ेगा। ऐसे विचार से **छोड़ दिया हो...** इन्द्रिय का विषय। **और बाह्य मुनिपना ग्रहण किया हो,...** बाह्य में पंच महाव्रत, नग्नपना आदि ग्रहण किया हो। **भले ही वह दुर्धर तप करता हो...** है? **तप करता हो...** दुर्धर अर्थात् धार न सके ऐसा। मास-मासखमण दो-दो महीने, तीन महीने, छह महीने के उपवास भले करे। **और उपसर्ग-परीषह में अडिग रहता हो,...** बाहर में उपसर्ग अर्थात् अनुकूलता से विरुद्ध हो, उसे सहन करे, अडिग रहे। **तथापि उसे वह सब निर्वाण का कारण नहीं होता,...** आहाहा! ऐसी बात है।

अन्तर भगवान मूल अस्तित्व, शाश्वत स्वयं तत्त्व जो है। उसको अन्तर दृष्टि में लिये बिना चाहे तो इन्द्रियसुख नाशवान है, ऐसा जानकर और इन्द्रिय का सुख भोगेगा तो भविष्य में दुःख होगा, नरक-निगोद में जाएगा, ऐसा जानकर इन्द्रिय का विषय छोड़ दे... आहा..! तो भी उसमें कुछ आत्मा का लाभ नहीं। आहाहा! **उपसर्ग-परीषह में अडिग रहता हो, तथापि उसे वह सब निर्वाण का कारण नहीं होता,...** तथापि उसे वह निर्वाण का-मोक्ष का कारण नहीं होता। आहाहा! वृक्ष होता है न? वृक्ष। उसका जिसने मूल नहीं काटा और ऊपर से पत्र और फल, फूल तोड़े, वह तो पन्द्रह दिन में वापस आ जाएगा। मूल काटे बिना वृक्ष के पत्र, फूल, फूल सूखेंगे नहीं। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा राग की एकता तोड़े नहीं और स्वभाव की एकता करे नहीं, तब तक चाहे जितनी क्रियाकाण्ड करे.. आहा..! ऐसी कठिन बात है।

तो भी निर्वाण को प्राप्त नहीं होता। आया न? **स्वर्ग का कारण होता है;...** स्वर्ग में जाये तो अनन्त बार स्वर्ग में गया है। अनन्त बार। स्वर्ग में जाकर वहाँ से तिर्यंच में जाये। आठवें स्वर्ग में जाये.. आहाहा! देह छोड़कर स्वर्ग में जाये, तिर्यंच में जाये। पशु। आठवें

स्वर्ग में जाये, वह मरकर पशु में जाये। आहाहा! ऐसी शुक्ललेश्या की क्रिया की। जिससे आठवें स्वर्ग में गया। परन्तु वहाँ से निकलकर तिर्यंच में जायेगा। पशु में। आहाहा! और वह पशु मरकर नरक में जायेगा। ऐसे शास्त्र में अनेक लेख पड़े हैं। अरेरे..! उसने मूल तत्त्व को पकड़ने की और अनुभव करने की दरकार की नहीं। दुनिया की लाज-शर्म और दुनिया का बड़प्पन, उसी में रुक गया। आहाहा!

क्योंकि उसे शुद्ध परिणमन बिल्कुल नहीं वर्तता,... स्वर्ग में क्यों जाता है ऐसी क्रिया करके? कि शुद्ध आत्मा अन्दर, उसकी परिणति निर्मल वीतरागी दशा क्रियाकाण्डी को बिल्कुल होती नहीं। आहाहा! इतने-इतने परीषह सहन करे, इन्द्रिय के विषय छोड़ दे, परन्तु शुद्ध स्वरूप की दृष्टि / परिणति बिना, वह सब निरर्थक स्वर्ग और नरक का कारण है। गति—चार गति का कारण है। आहाहा! **क्योंकि उसे शुद्ध परिणमन बिल्कुल नहीं वर्तता,...** आहाहा! शुभ और अशुभभाव दोनों अशुद्ध है। उससे भिन्न शुद्ध परिणति बिल्कुल नहीं होती। आहाहा! है? **उसे शुद्ध परिणमन बिल्कुल नहीं वर्तता, मात्र शुभ परिणाम ही...** आहाहा! शुभभाव। पंच महाव्रत, परीषह सहन करे, इन्द्रिय का त्याग करे, वह शुभभाव है। **मात्र शुभ परिणाम ही—और वह भी उपादेयबुद्धि से—वर्तता है।** भाषा क्या कहते हैं? शुभभाव होता है, परन्तु उसकी उपादेयबुद्धि है। उससे लाभ होगा। क्योंकि चैतन्य ज्ञायकस्वरूप शुभ-अशुभ परिणाम-भाव से भिन्न, उसकी दृष्टि और परिणति तो हुई नहीं। इसलिए वह शुभभाव को उपादेय माने बिना रहे नहीं। आहा..! उपादेय अर्थात् आदरणीय। आहाहा! बहुत कठिन बात।

शरीर ही ऐसा है.. आहा..! कहते हैं, बहिन को आज रात को थोड़ा हो गया था। वजुभाई कहते थे। ऐसा देह। आहा..! वे तो देह छोड़कर स्वर्ग में जायेंगे। वैमानिक। उसमें दूसरी कोई बात है नहीं। कभी भी देह छोड़े। आहाहा! ऐसी स्थिति है।

यहाँ कहते हैं कि **वह भले नौ पूर्व पढ़ गया हो,...** भले शुभभाव उपादेयबुद्धि से किया और **नौ पूर्व पढ़ गया हो, तथापि उसने आत्मा का मूल द्रव्य सामान्यस्वरूप अनुभवपूर्वक नहीं जाना...** आत्मा है, ऐसा तो जाना था। ग्यारह अंग पढ़ा, उसमें वह बात आयी न? धारणा में आया था कि आत्मा है। आनन्दस्वरूप है, ऐसा धारणा में आया था। परन्तु धारणा में आया, उससे क्या? वह तो शुभभाव है। आहा..! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

मार्ग ऐसा है कि मुनियों को भी ऐसा कहना पड़ा.. ब्रह्मचर्य की बात कही। आहा..! पद्मनन्दी मुनि ने पद्मनन्दी पंचविंशतिका शास्त्र बनाया। बहुत ऊँचा पुस्तक है। पद्मनन्दी पंचविंशतिका है। ब्रह्मचर्य की व्याख्या करते-करते (कहा), काया से तुम ब्रह्मचर्य पालो, आजीवन बाल ब्रह्मचारी (रहो) तो भी वह शुभभाव है। वह धर्म नहीं, वह ब्रह्मचर्य नहीं। आहा..! तब कहा, ब्रह्मचर्य किसको कहते हैं ? ब्रह्म अर्थात् आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप है उसमें चरना, अन्दर रमना। आत्मा के आनन्दस्वरूप में रमना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। आहाहा! आचार्यों और मुनियों को भी ऐसा कहकर (कहना पड़ा), अरे..! श्रोताओं! ऐसा कहा। मेरी बात सुनकर तुमको ग्लानि होगी। कदाचित् तुमको न रुचे। आहाहा! ऐसी बात। शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य पाले तो भी वह धर्म नहीं, वह शुभभाव है। आहाहा! आत्मा ब्रह्म अर्थात् चिदानन्द प्रभु, उसकी पकड़ और अनुभव बिना तेरा आजीवन बाल ब्रह्मचारीपना भी शुभभाव है, धर्म नहीं। आहाहा! यह सुनकर तुझे न रुचे, मुनि कहते हैं, आहाहा! माफ करना! दूसरा क्या कहें ? मार्ग तो ऐसा है, वैसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। मुनि ऐसा कहते हैं कि मैं तो जैसा मार्ग है, वैसा कहता हूँ। और तुमको दूसरी दृष्टि में कुछ चला गया हो और तुमको यह रुचे नहीं (तो) माफ करो, प्रभु! दूसरा क्या करना ? यहाँ तो जो है, वह आयेगा, दूसरा क्या आये ? आहा..! पद्मनन्दी पंचविंशतिका में, भाई! है छब्बीस अधिकार, परन्तु उसका नाम पंचविंशति है। छब्बीसवाँ अधिकार ब्रह्मचर्य का है। उसमें यह बात ली है। आहाहा!

वैसे यहाँ कहते हैं कि आत्मा के भान, अनुभव बिना तेरी क्रियाकाण्ड लाख कर, बाल ब्रह्मचारी हो, परीषह और उपसर्ग चाहे जितने सहन करे, सब शुभभाव है। आहाहा! **उसने आत्मा का मूल द्रव्यसामान्यस्वरूप अनुभवपूर्वक नहीं जाना होने से वह सब अज्ञान है।** आहाहा! ऐसी बात सुननी मुश्किल पड़े। इसलिए आसान लगे, वैसी बात सुनने पर प्रेम लगे। फिर वहीं अटक जाये। वहाँ अटक जाये। आहा..! यहाँ तक तो चला था।

सच्चे भावमुनि को... यहाँ तक तो पैरेग्राफ आ गया था। फिर यहाँ से नहीं चला था। उतना पहले आ गया था। सच्चा भावमुनि जो है, सच्चा भाव। वीतरागी प्रगट दशा जिसको हो गयी, जिसमें आत्मा का आनन्द का वेदन हो गया और आत्मा के वेदन के अतिरिक्त उग्र आनन्द की दशा प्रगट हुई। क्योंकि आनन्द की दशा की धारा तो समकिती

को भी अल्प तो आनन्द आता है। तो मुनि को तो आनन्द की धारा... कल आया था न? कल या परसों। मुनि कहते हैं कि मुझे आनन्द की पतली धारा अब नहीं पुसायेगी। आनन्द की पतली धारा। जैसे घट में से पतली धारा निकलती हो, वैसे यह घट-भगवान आत्मा उसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान या चारित्र से पतली धारा आनन्द की आयी, वह नहीं। हमें तो पूर्ण आनन्द चाहिए। आहाहा! धर्मी की यह भावना (है)। आहाहा! पूर्ण आनन्द की धारा चाहिए, पतली नहीं। पहले में आ गया था। भाई!

घड़ा है, उसमें से जैसे पतला पानी का प्रवाह निकले। फिर भी वह घड़ा तो उतना का उतना ही रहे। बात तो कठिन है। वैसे भगवान आत्मा, उसमें से आनन्द की धारा सम्यग्दर्शन और ज्ञान, चारित्र से भी जो विशेष धारा प्रगट हो तो भी वस्तु तो पूर्ण आनन्द और पूर्ण स्वरूप है, वैसी की वैसी है। ऐसी शुद्ध परिणति बहुत बढ़ गयी तो अन्दर में-द्रव्यस्वभाव में कुछ कमी हो गयी, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसी बात वीतराग के अलावा, सर्वज्ञ के अलावा कौन कहे? पर्याय में अल्पज्ञपना हो तो भी वस्तु तो पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण है, वही है। और पर्याय में सर्वज्ञपना आओ, केवलज्ञान हो जाओ तो भी वस्तु तो पूर्णानन्द जैसी है, वैसी रही है। आहाहा! ऐसी चमत्कारिक वस्तु है। उसने मूल पकड़े बिना बाकी सब भक्ति, पूजा, दान, दया करोड़ों के बड़े मकान बनाये, बड़े मन्दिर बनाये। फिर भक्ति ठाठ... क्या कहते हैं? हाथी, गजरथ.. गजरथ। बड़े गजरथ निकाले। दस-दस लाख रुपये का खर्च करके। क्या है? वह कोई धर्म नहीं। वह क्रिया होती है, वह तो पर से होती है। बहुत करने का भाव हो तो उसका शुभभाव (करे), वह क्रिया नहीं। क्रिया तो जड़ से, पर से होती है। उसमें लीन हो जाता है। आहाहा!

यहाँ कहते है... आहा..! **सच्चे भावमुनि को तो शुद्धात्मद्रव्याश्रित मुनियोग्य उग्र शुद्धपरिणति चलती रहती है,...** आहाहा! अपना नाम है, उसे भूल जाता है? निद्रा में बुलावे तो भी हाँ.. करे। ऐसे जिसने आत्मा की दृष्टि की और आत्मा का अनुभव हुआ, उसे कोई भी प्रसंग में मुनि को **शुद्धात्मद्रव्याश्रित मुनियोग्य उग्र शुद्धपरिणति चलती रहती है,...** यह मुनि की विशेष बात है। समकिती को थोड़ी परिणति है। अल्प परिणति शुद्ध; शुभभाव से भिन्न। आहा..! ये मुनि!

कर्तापना तो सम्यग्दर्शन होने पर ही छूट गया होता है,... क्या कहते हैं? कि जो

दया, दान, व्रत, पंच महाव्रत का परिणाम आता है, उसका कर्तापना मेरा कर्तव्य है, वह दृष्टि तो मिथ्यात्व छूट गया, जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ छूट गया। आहाहा! कर्तापना-पंच महाव्रत परिणाम मेरा कार्य है, देह का नग्नपना तो जड़ की क्रिया है, उसकी क्रिया व्यवहार से भी नहीं है। अन्दर पंच महाव्रत का, अट्ठाईस मूलगुण का परिणाम आता है.. आहाहा! उसका कर्तापना तो प्रथम से ही छूट गया है। सम्यग्दर्शन हुआ, उसी समय राग मेरी चीज़ नहीं और कर्तापना नहीं है, मैं तो उसको जानने-देखनेवाला हूँ, ऐसा कर्तापना तो सम्यग्दर्शन होते ही छूट गया। तो मुनिपना की तो बात क्या करनी! आहाहा!

उग्र ज्ञातृत्वधारा अटूट वर्तती रहती है,... मुनि को तो उग्र ज्ञातृधारा। जानन.. जानन.. जानन.. जानन.. जानन.. ज्ञाता-दृष्टा की जो धारा, जो दया, दान, व्रत विकल्प से भिन्न, ऐसी जो धारा-धारा अर्थात् परिणति; परिणति अर्थात् पर्याय; पर्याय अर्थात् अवस्था, ऐसी अटूट वर्तती रहती है। आहाहा! ऐसा मार्ग। **परम समाधि परिणमित होती है।** मुनि को तो परमसमाधि-शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. (होती है)। समाधि का अर्थ अन्य साधु कहे वह समाधि नहीं। अन्यमति में साधु कहे कि मैंने ऐसी समाधि लगा दी। धूल भी नहीं है वहाँ। वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग के सिवा कहीं भी अंश भी नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, समाधि। आधि, व्याधि, उपाधि तीन से रहित समाधि। आहाहा! उपाधि अर्थात् इस शरीर से लेकर सब संयोग, वह उपाधि। व्याधि-शरीर में रोग हो, वह व्याधि और अन्दर संकल्प और विकल्प वृत्ति उठती है, वह आधि। आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग। लोगों को पचता नहीं हो; इसलिए फिर उड़ा दे। कुछ उसका साधन व्यवहार है कि नहीं? शास्त्र में आता भी है। व्यवहार साधन-निश्चय साध्य। वह तो साधन आरोप से कथन है। ऐसे व्यवहार से होता हो तो अनन्त बार व्यवहार आ गया। नौवीं ग्रैवेयक गया तो अभी तो ऐसा व्यवहार है भी नहीं। ऐसा व्यवहार नौवीं ग्रैवेयक गया, शुक्ललेश्या... शुक्ललेश्या। कैसी शुक्ललेश्या? चमड़ी निकालकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे, ऐसी शुक्ललेश्या। परन्तु वस्तु की खबर नहीं। आहाहा! आत्मदर्शन, आत्मप्रतीति आत्मअनुभव क्या है, उसकी खबर नहीं। उसके बिना सब किया। आहा..!

मुनि को तो 'परम समाधि परिणमित होती है।' देखो! परम समाधि लिया। **वे**

शीघ्र-शीघ्र निजात्मा में लीन होकर आनन्द का वेदन करते रहते हैं;... आहा.. ! मुनिराज / मुनि किसको कहें ! आहाहा ! **वे शीघ्र-शीघ्र निजात्मा में लीन होकर आनन्द का वेदन करते रहते हैं;...** अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव। आहाहा ! **उनके प्रचुर स्वसंवेदन होता है।** देखा ! मुनि को तो प्रचुर स्वसंवेदन होता है। यह शब्द बहिन ने कहाँ से निकाला है ? पाँचवीं गाथा, समयसार। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मैं प्रचुर स्वसंवेदन मेरा निज वैभव से समयसार कहूँगा। आहाहा ! पाठ है। मेरा वैभव। वह कोई शरीर, वाणी, मन का वैभव नहीं, दया, दान, पंच महाव्रत का परिणाम, वह मेरा वैभव नहीं है। आहा.. ! मेरा वैभव जो आत्मा का आनन्द आदि अनन्त गुण का अंश जो प्रगट हुआ है, अनन्त गुण का अंश जो पर्याय में प्रगट हुआ है, वह मेरा निज वैभव है। पाँचवीं गाथा में (है)। ऐसे मेरे निज वैभव से.. आहाहा ! और वह निज वैभव प्रचुर स्वसंवेदन (है)। ऐसा पाठ लिया है। वह शब्द यहाँ बहिन का है। प्रचुर.. प्रचुर है न ? प्रचुर स्वसंवेदन। मुनि। आहाहा ! उन्हें तो उत्कृष्ट स्वसंवेदन प्रचुर बहुत होता है। मुनिपना.. आहा.. ! धन्य अवतार ! मुनि किसको कहें ! आहा.. ! वह दशा प्राप्त करके देह छूटकर मनुष्यपना सफल कर दिया। आहाहा ! और एकावतारी बनकर, एकाध देह धारण करना पड़े तो होगा, फिर मोक्ष ही होगा। पंचम काल के मुनि की बात है। आहाहा !

प्रचुर स्वसंवेदन होता है। वह दशा अद्‌भुत है,... आहाहा ! **जगत से न्यारी है।** जगत से न्यारी वह दशा है, भाई ! आहाहा ! **पूर्ण वीतरागता न होने से...** मुनि की ऐसी दशा होने पर भी **पूर्ण वीतरागता न होने से उनके व्रत-तप-शास्त्ररचना आदि के शुभभाव आते हैं...** देखो ! पूर्ण वीतराग न होने से शुद्धपरिणति होने पर भी, उनको व्रत का, तप का, शास्त्र रचना का आदि का उपदेश देने का, उपदेश सुनने का सब शुभभाव है। वह शुभभाव आता है अवश्य, **परन्तु वे हेयबुद्धि से आते हैं।** आहाहा ! हेयबुद्धि से आते हैं। आहाहा ! है ? **हेयबुद्धि से आते हैं।** छोड़ने लायक की दृष्टि से आते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? **ऐसी पवित्र मुनिदशा मुक्ति का कारण है।** आहाहा ! ऐसी पवित्र दशा, अतीन्द्रिय आनन्द की दशा, पूर्णानन्दी आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, उसकी अन्तर दशा मुक्ति का कारण है। बाकी कोई क्रियाकाण्ड मुक्ति का कारण है नहीं। आहाहा ! ४१० (पूरा) हुआ। ४१२। किसी ने लिखा है। पहले यह पढ़ना बाकी है, वह बाद में पढ़ लेंगे।

मरण तो आना ही है, जब सब कुछ छूट जाएगा। बाहर की एक वस्तु छोड़ने में तुझे दुःख होता है, तो बाहर के समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एकसाथ छूटने पर तुझे कितना दुःख होगा? मरण की वेदना भी कितनी होगी? 'कोई मुझे बचाओ' ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा? तू भले ही धन के ढेर लगा दे, वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें, आसपास खड़े हुए अनेक सगे-सम्बन्धियों की ओर तू भले ही दीनता से टुकुर-टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है? यदि तून शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की प्रतीति-अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी, आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी। इसलिए अभी से वह प्रयत्न कर। 'सिर पर मौत मंडरा रहा है' ऐसा बारम्बार स्मरण में लाकर भी तू पुरुषार्थ चला कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है॥४१२॥

४१२। **मरण तो आना ही है,...** देह तो छूटेगा। देह तो जड़ है, मिट्टी-धूल है। आहा..! भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, सत् कायम रहनेवाला आनन्दरूप प्रभु, वह तो सच्चिदानन्द शाश्वत है, अनादि-अनन्त सनातन है। देह तो छूटेगी। यह तो धूल है, मिट्टी है। **मरण तो आना ही है, जब सब कुछ छूट जाएगा।** आहाहा! सब छूट जाएगा। देह छूटेगा तो फिर क्या रहेगा? मिट्टी तो खत्म हो गयी। आहाहा! समझ में आया? देह छूट जाएगी तो सब कुछ छूट जाएगा। तेरा एक आत्मा अन्दर है, वह शाश्वत आत्मा रहेगा। आहाहा! शाश्वत प्रभु...

लोग भी देह छूटने पर ऐसा कहते हैं न? यह जीव गया। जीव गया, ऐसा कहते हैं। जीव का नाश हुआ, ऐसा नहीं कहते। देह छूटने के समय जीव गया लगता है। अन्दर से भगवान गया लगता है। आहाहा! वह चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर विराजता है। उसकी उसे अनन्त काल में खबर नहीं। 'अनन्त काल से भटक रहा विना भान भगवान'। अनन्त काल से चौरासी के अवतार में भटकता है। परन्तु यह भगवान अन्दर आत्मा कौन

है, क्या है, उसमें समृद्धि क्या है, ऋद्धि क्या है, सम्पदा.. आहाहा! सम्पदा, क्या सम्पदा अन्दर पड़ी है अन्दर आत्मा में, (इसकी) खबर नहीं।

वह कहते हैं, **मरण तो आना ही है, जब सब कुछ छूट जाएगा। बाहर की एक वस्तु छोड़ने में तुझे दुःख होता है, तो बाहर के समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एकसाथ छूटने पर...** बाहर की चीज़ तो एकसाथ छूट जाएगी। आहाहा! **तुझे कितना दुःख होगा?** पर ऊपर तेरी दृष्टि है और तेरा आत्मा अन्दर भगवान विराजता है, उसकी तो तुझे खबर नहीं। फिर भले ही बड़ा राजा हो, पाँच-पाँच करोड़ और दस करोड़ की कमाईवाला। आहाहा! कमाई, हों! अपने एक बनिये है न? जामनगर का। रामजीभाई का पुत्र जिसमें नौकर है न? उसे एक वर्ष की साढ़े तीन करोड़ की कमाई है। मुम्बई। मिले थे, यहाँ आये थे। लेकिन धूल में एकाकार। आहा..! बनिये को साढ़े तीन करोड़ की एक वर्ष की कमाई। और अभी बढ़ानेवाले हैं, ऐसा सुना है। पाँच करोड़ की कमाई हो, उतना करनेवाले हैं। रामजीभाई का पुत्र जिसमें नौकर है न। जामनगर का बनिया मन्दिरवासी श्वेताम्बर है। आहा..! मिला था, यहाँ आया था। मुम्बई में मिला था। अरेरे..! धूल में क्या है? पाँच करोड़ की कमाई हो या दस करोड़ की, उसमें आत्मा में क्या आया? मान और ममता।

यहाँ वह कहते हैं, तुझे थोड़ा छूटने पर दुःख होता है **तो बाहर के समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एकसाथ छूटने पर तुझे कितना दुःख होगा?** सब छूट जाएगा। लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, कबीला, मकान, इज्जत.. आहाहा! **मरण की वेदना भी कितनी होगी?** आहाहा! शरीर में भी मरण की ऐसी स्थिति में एकताबुद्धि है, राग से एकताबुद्धि है तो वेदना में... आहाहा! हमने तो देखा है। हार्टअटैक आता है न? हार्ट का हमला। छटपटाये। आहाहा! (संवत्) १९७६ की साल में एक देखा था। ध्रांगध्रा। एक बनिया था, जेठालाल। ७६ की बात है। पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... एक बार १९८२ की वर्ष में वढवाण चातुर्मास था। दादभावाले। जिनके यहाँ कामधेनु गाय थी। बारह महीने दूध दे। कामधेनु गाय थी उसके पास। क्या कहते हैं? जब भी दूहे, तब दूध दे। ऐसी कामधेनु गाय थी। उसके कुटुम्ब में किसी को हार्टअटैक आया था। हमारा चातुर्मास था। महाराज को बुलाओ। मांगलिक सुनो। परन्तु वह पीड़ा.. पीड़ा... पीड़ा... सब देखने आये थे। देखने आये, उसमें क्या हुआ? डॉक्टर भी मर जाता है। डॉक्टर भी एक क्षण में चला जाता है।

हेमन्तकुमार। भावनगर हॉस्पिटल के बड़े सर्जन। हेमन्तकुमार। यहाँ आये थे। दो-तीन बार आये थे। वह किसी का कुछ करते थे, उसमें मुझे कुछ होता है, कुर्सी पर बैठे और देह छूट गयी। हॉस्पिटल का सर। सर.. क्या कहते हैं ? सर्जन। सर-जन। आहाहा! अरे..! प्रभु! उसमें तुझे क्या मिला ? अन्दर भगवान आत्मा कौन है, उसे तो तूने सुना ही नहीं। और धूल में पाँच करोड़, धूल करोड़, शरीर बड़ा मक्खन जैसा सुन्दर। यह तो मिट्टी है। श्मशान में राख होगी, यहाँ अग्नि लगेगी। राख होगी। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! **मरण की वेदना भी कितनी होगी ? 'कोई मुझे बचाओ' ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा ?** आहाहा! डॉक्टर वहाँ आये थे न ? क्या नाम ? रस्तोगी। डॉक्टर बड़ा। वह वहाँ मर गया। सबकी जाँच करता था। जाँच करते-करते.. मुझे कुछ होता है। एक पलंग खाली था। एक आदमी था, वह चला गया था। पलंग खाली था, वहाँ सो गया। देह छूट गयी। रस्तोगी डॉक्टर, बड़ा डॉक्टर। और उसका छोटा भाई। अभी परसों आया था। उसकी बहू आयी थी। उसके वहाँ हम दो बार तो भोजन के लिये गये थे। बड़ी हॉस्पिटल है न ? बड़ा डॉक्टर है। बहुत विनती की थी, महाराज! मेरे यहाँ (पधारिये)। दो बार भोजन के लिये गये थे। परसों आया था। रस्तोगी की बहू और उसकी पुत्री। कांप में रहते हैं। हॉस्पिटल में नौकरी है। एक बार उसके कारण हॉस्पिटल में गये थे। बहुत प्रेम से.. आहा..! डॉक्टर मरे। अरे..! परन्तु डॉक्टर क्या है ? उसकी देह की स्थिति हो, तब तक रहता है।

भगवान अन्दर सनातन अनादि शाश्वत वस्तु, उसकी तो खबर नहीं और बाहर में ढिंढ़ोरा पीटे,.. आहाहा! कहाँ जाना है तुझे ? वह कहते हैं। **परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा ? तू भले ही धन के ढेर लगा दे,...** धन के ढ़ेर लगा दे। करोड़ रुपया खर्च करे कि बचाओ, कोई डॉक्टर बुलाओ, कलकत्ता से, मुम्बई से, अमेरिका से। प्रभु! यह सब तो नाशवान चीज़ है। एक सनातन शाश्वत स्वयं शाश्वत तो प्रभु है अन्दर। आहाहा! स्वयं शाश्वत है, उसकी खबर नहीं और नाशवान को अपना मानकर हैरान-हैरान हो गया। आहाहा! कहा न ? **तू भले ही धन के ढेर लगा दे, वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें,...** वैद्य और डॉक्टर आयें। क्या हुआ है ? कुछ खबर नहीं पड़ती। कितनों को तो खबर नहीं पड़ती है। अभी कोई कहता था, किसी को खून की उल्टी होती थी। कोई था।

मीठावाला करोड़पति। गुणवन्त करोड़पति। स्वामीनारायण, भावनगर के। उसको? आहा..! उसके पुत्र को। खून की उल्टी (होती थी) तो बड़े डॉक्टर के पास गये। चीरकर देखा, सब देखा, क्यों है? उल्टी बन्द न हो। खून.. खून। कहाँ से आता है, वह डॉक्टर को खबर नहीं पड़ी। आहाहा! देह छूट गया। आहा..! ऐसा समय (आयेगा)। अन्दर भगवान.. आहाहा! नरसिंह मेहता भी कहते हैं, नरसिंह महेता हुए न? जूनागढ़। 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिहन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नियों नहीं। यह आत्मा कौन है, क्या है, उसका ज्ञान और अनुभव किया नहीं, तब तक तेरी साधना-व्रत, तप, भक्ति, पूजा सब शून्य है। आहाहा! गजब बात है!

मुमुक्षु :- सच्चे डॉक्टर तो आप हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- सच्चा इंजेक्शन यह है।

वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें, आसपास खड़े हुए अनेक सगे-सम्बन्धियों की ओर तू भले ही दीनता से टुकुर-टुकुर देखता रहे,... अरेरे..! मुझे कोई बचाओ, मुझे बचाओ। मुझे कहीं अच्छा नहीं लगता, अन्दर में घाव लगता है। आहाहा! यह कहने का कारण क्या? कि उसके पहले तू आत्मा का ज्ञान कर ले। देह छूटने से पहले... आहाहा! **तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है? यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित...** अब आया। **तूने शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की प्रतीति-अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी,...** तो तुझे देह छूटते समय अन्दर से शरण मिलेगी। आहाहा! अरेरे..! ऐसे बड़े मकान। छब्बीस लाख का यह मकान। उसमें क्या? वह तो धूल का ढ़ेर है। उसमें है क्या? वह तो जहाँ बनना होता है, वह बनता है। उसमें खुश हो जाये कि हमने ऐसा किया, हम वहाँ रहते हैं। अरे..! प्रभु! क्या करता है? आहा..!

यहाँ कहते हैं, ऐसे प्रतिकूल संयोग में **यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित...** आत्मा तो अपने से रक्ष्ज्ञित है ही। उसको कोई रखे तो रहें, नहीं तो नाश हो जाये, ऐसा होता नहीं। वह तो अनादि शाश्वत सनातन तत्त्व तेरा आत्मा है। देह में सनातन भगवान विराजता है। देहमन्दिर में। आहाहा! स्वयं.. आहाहा! **शाश्वत स्वयंरक्षित...** वह क्या कहते हैं? अपने से रक्षित है। उसकी कोई रक्षा करे तो आत्मा रहे, नहीं तो आत्मा न रहे—(ऐसा नहीं है।)

वह तो शाश्वत वस्तु है सनातन। अनादि–अनन्त नित्यानन्द प्रभु सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर है। परन्तु रंक, गरीब को उसकी खबर नहीं पड़ती। उसे खबर नहीं पड़ती है कि मैं क्या हूँ और यह क्या होता है? आहाहा!

शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप... देखो! कैसा है भगवान आत्मा? ज्ञानानन्द। ज्ञान का आनन्द से भरा पड़ा है। आहाहा! जैसे हिरन की नाभि में कस्तूरी, हिरन की नाभि में कस्तूरी है, उसकी गन्ध वन में ढूँढ़ने जाता है। कस्तूरी मेरे पास यहाँ है, वह मालूम नहीं। वैसे हिरन जैसे मनुष्य सुख के लिये बाहर में व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। पैसे से मिलेगा, स्त्री से मिलेगा, इज्जत से मिलेगा,.. हिरन जैसे। आहाहा! वह आता है न? पशु चरन्ति। आहा..! मृग की भाँति पशु चरंति, ऐसा पाठ आता है। उसे आत्मा की खबर नहीं। इस देह में शाश्वत प्रभु विराजता है। देहमन्दिर में। आहा..! देहमन्दिर में शाश्वत। है? स्वयंरक्षित। कोई उसे रखे तो रहे, ऐसी चीज़ नहीं है। वह तो त्रिकाली अनादि सनातन है। आहाहा!

ऐसे **ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की प्रतीति-अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी,...** आहाहा! मैं तो अन्दर ज्ञान–जाननस्वरूप प्रज्ञाब्रह्म; प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान और ब्रह्म अर्थात् आनन्द। मैं तो ज्ञान और आनन्द से सर्वांग भरा पड़ा प्रभु हूँ। अरे..! कैसे बैठे? यहाँ दो बीड़ी–सिगरेट बराबर पीये, तब दस्त उतरे। ऐसे तो अपलक्षण। आहाहा! दो सिगरेट पीये। ऐसे पीये। हमें तो मालूम नहीं है। हमने तो कभी बीड़ी पी नहीं, पूरी जिन्दगी। ९१ साल हुए। ९१। ९० और १। शरीर को। शरीर को, हों! आत्मा तो अनादि–अनन्त भिन्न है। बीड़ी पीये, फिर दस्त उतरे। चाय की प्याली पीये, पाव सेर, डेढ़ सेर तो दिमाग ठीक रहे। आहाहा! ऐसे अपलक्षण। अब उसे आत्मा...

सच्चिदानन्द प्रभु स्वयंरक्षित शाश्वत आत्मा, उसकी आराधना यदि की हो, **प्रतीति-अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी, आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी,...** आहाहा! **आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी,...** बाहर कुछ है नहीं। आहाहा! डॉक्टर–वॉक्टर इंजेक्शन लगाये। क्या कहते हैं? इंजेक्शन। धूल में भी काम न आये। इंजेक्शन लगाये और उड़ जाए। यहाँ कहा था न? यहाँ हुआ था न? शिवा पटेल। कोई व्याधि नहीं। खाकर आये, बैठे थे। कैसा है? शिव पटेल! खाकर आये। कैसा है? अन्तिम स्थिति। क्या है? अन्दर से श्वास उठा है। अभी तो खाकर आये, खाकर बैठे थे। अन्तिम स्थिति।

आहाहा! डॉक्टर कौन था? धरमचन्दभाई डॉक्टर थे। उन्होंने इंजेक्शन लगाया, लगाते ही देह छूट गया। आहाहा! मैं देखकर आया था। यहाँ कमरा था। वहाँ थे। हम देखने आये। देखकर आया, तब तक तो देह छूट गया। डॉक्टर, स्वयं धरमचन्द डॉक्टर खंडवावाले थे। क्या करे? बापू! भाई! यह सब नाशवान चीज़ एक क्षण में पलटने में देर नहीं लगती। आहाहा! आपने तो घर पर शोभालालजी का देखा है। कैसा शरीर था! आहाहा! अलमस्त शरीर। कितना बेचारे को प्रेम! यहाँ आये तब। आहाहा! साथ में सुनने आये दो समय। फिर रात्रि में चर्चा, तीन बार (आते थे)। क्या करे? बापू! कौन रखे उसे?

यहाँ कहते हैं, **आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी।** मृत्यु के समय कोई शरण नहीं है। आहाहा! बड़े डॉक्टर भी चले जाते हैं। एक क्षण में चले जाते हैं। **इसलिए अभी से वह प्रयत्न कर।** प्रभु! आत्मा को यहाँ तो प्रभु कहते हैं। भगवान आत्मा! प्रभु! अभी से प्रयत्न कर न, प्रभु! बाद में नहीं होगा। आहाहा! शरीर, वाणी, मन—ये सब तो मिट्टी-धूल है। परन्तु अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम है, वह भी विकार है, राग है, दुःख है। प्रभु! तेरी चीज़ कोई अन्दर से भिन्न है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के परिणाम से भी तेरी चीज़ भिन्न है। वह परिणाम तो राग है। उसमें धर्म मानकर जिन्दगी निकाले। आहाहा! मरण के समय दबकर मरकर चार गति में भटकने जाए। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी। इसलिए अभी से वह प्रयत्न कर। 'सिर पर मौत मंडरा रहा है'...** वह तुम्हारी भाषा है। सिर पर मौत। **'सिर पर मौत मंडरा रहा है'...** अर्थात् भ्रमे है। किस क्षण देह छूटेगा, ऐसा। हिन्दी भाषा है न। **ऐसा बारम्बार स्मरण में लाकर भी तू पुरुषार्थ चला कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे'...** आहाहा! 'अब हम अमर भये, न मरेंगे।' आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर शाश्वत नित्यानन्द प्रभु, उसका जिसने बोध-ज्ञान किया, उसको अब जन्म-मरण नहीं है। आहाहा! उसके बिना लाख दान, तपस्या, मन्दिर, पूजा, भक्ति, करोड़ बनाये, दया, दान, दयामण्डल का, पांजरापोल का बड़ा अधिकारी, वह सब भटक मरेंगे बेचारे। अरेरे..! ऐसी बात सुनने मिले नहीं।

यहाँ कहते हैं, **पुरुषार्थ चला कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे'...** ऐसा

तुझे हो जाएगा। **ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके।** पहले से यदि अन्दर से अभ्यास किया हो, राग का विकल्प, दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का परिणाम भी राग है। वह विकल्प है। विकल्प का उत्थान संसार है। आहाहा! उससे भिन्न भगवान आत्मा, उसका जिसे ज्ञान हुआ, वह 'अब हम अमर भये' अब हम अमर (हो गये), हमें मरना है नहीं। आहा..! वह आनन्दघनजी का वाक्य है। 'अब हम अमर भये, न मरेंगे'। आहा..! कौन मरे? पढ़ा है बहुत, परन्तु याद कितना रहे? पूरा पढ़ा था, पूरा पुस्तक पढ़ा था। हजारों पुस्तक पढ़े हैं। पूरी निवृत्ति (है)। आहाहा!

ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है। लो, यह टोटल। इस जीवन में एक अन्दर भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध, शुद्ध, शुद्ध। पुण्य-पाप के भाव अशुद्ध। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह शुभभाव अशुद्ध है। वह तो मलिन भाव है। आहाहा! भगवान तो उस परिणाम से भिन्न अन्दर है। आहाहा! सुना न हो और बाहर में भ्रान्ति में जिन्दगी चली जाए। आहाहा!

आज एक सुना। भानजे का एक लड़का था। हीराभाई, मुम्बई। वह मर गया। आहा..! यहाँ आता नहीं था, मुम्बई था। ५५ साल की उम्र होगी। हमारी बहन के लड़के का लड़का था। आज एक बहिन कहती थी। देह छूटे, उसमें उसे कहाँ... उसका समय निश्चित है। जिस समय, जिस क्षेत्र में, जिस स्थिति में देह छूटनेवाला है, वैसे ही छूटकर छुटकारा है। उसमें फेरफार इन्द्र, नरेन्द्र आये तो फेरफार कर सके नहीं। आहाहा!

जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है। आहाहा! उपादेय अर्थात् आदरणीय, उप-आदेय। त्रिकाली सच्चिदानन्द प्रभु, उप अर्थात् समीप जाकर एक ग्रहण करने - अनुभव करने लायक है। बाकी सब व्यर्थ, बिना अंक के शून्य हैं। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र कृष्ण - ४, रविवार, तारीख २८-९-१९८०
वचनामृत -४१३, ४१४ प्रवचन-४५

सर्वज्ञभगवान परिपूर्ण ज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं। वे अपने को पूर्णरूप से—अपने सर्वगुणों के भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित—प्रत्यक्ष जानते हैं। साथ ही साथ वे स्वक्षेत्र में रहकर, पर के समीप गये बिना, परसन्मुख हुए बिना, निराले रहकर लोकालोक के सर्व पदार्थों को अतीन्द्रियरूप से प्रत्यक्ष जानते हैं। पर को जानने के लिये वे परसन्मुख नहीं होते। परसन्मुख होने से ज्ञान दब जाता है—रुक जाता है, विकसित नहीं होता। जो ज्ञान पूर्णरूप से परिणमित हो गया है, वह किसी को जाने बिना नहीं रहता। वह ज्ञान स्वचैतन्यक्षेत्र में रहते हुए, तीनों काल के तथा लोकालोक के सर्व स्व-पर ज्ञेयों मानों वे ज्ञान में उत्कीर्ण हो गये हों, उस प्रकार समस्त स्व-पर को एक समय में सहजरूप से प्रत्यक्ष जानता है; जो बीत गया है, उस सबको भी पूरा जानता है; जो आगे होना है, उस सबको भी पूरा जानता है। ज्ञानशक्ति अद्भुत है॥४१३॥

वचनामृत-४१३। सर्वज्ञ भगवान... पहले सर्वज्ञ भगवान की पहचान करवाते हैं। सर्वज्ञ भगवान जगत में है, ऐसी जिसको अन्दर प्रतीति हो, उसको अपना स्वभाव ही सर्वज्ञ है। क्योंकि सर्वज्ञ अर्थात् शक्ति-सर्वज्ञशक्ति आत्मा में पड़ी है। उसका अर्थ कि आत्मा का स्वभाव ही सर्वज्ञ है। जिसमें सर्वज्ञ भगवान का यथार्थ बोध हुआ और सर्वज्ञ ने देखा, उस अनुसार होगा—ऐसी जिसकी श्रद्धा होती है, उसको अपना स्वभाव-सन्मुख दृष्टि होती है। आहा..! कहा न? यह बात (संवत्) १९७२ की साल में (चली थी)। ७२, बहुत चर्चा हुई थी सम्प्रदाय में। ४१३ (बोल) है न?

सर्वज्ञभगवान परिपूर्ण ज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं। किसे? जिसने माना हो

उसे। वे तो है ही। कहा था न? कारणपरमात्मा आत्मा है, परन्तु किसको? जिसने कारणपरमात्मा की प्रतीति करके, दृष्टि निर्मल बनायी है, उसको कारणपरमात्मा है। आहा..! यहाँ भी सर्वज्ञ भगवान किसको है? है तो सर्वज्ञ भगवान, सर्वज्ञ भगवान। परन्तु सर्वज्ञ भगवान की प्रतीति, उसके ख्याल में आनेवाली चीज़,.. ८०वीं गाथा में आता है न? प्रवचनसार - ८० गाथा। '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**' यह गाथा। जो कोई जीव अरहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानते हैं, '**सो जाणदि अप्पाणं**।' '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**' जो द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने वह '**सो जाणदि अप्पाणं**।' उसका अर्थ क्या हुआ? आहाहा! '**मोहो खलु जादि तस्स लयं**'। ऐसा पाठ है। यह बात यहाँ बताते हैं। आहाहा!

सर्वज्ञ एक समय, एक सेकेण्ड का असंख्यवें भाग में तीन काल-तीन लोक भगवान देखते हैं। ऐसे द्रव्य-गुण-पर्याय, अरहन्त का द्रव्य-वस्तु, अरहन्त का गुण त्रिकाली और पर्याय सर्वज्ञ। द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों को जो यथार्थ जानता है। ८०वीं गाथा में है, प्रवचनसार।

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥

आहाहा! जिसने अरहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय जाने, उसने आत्मा को जाना, वहाँ ऐसा लिया है। नहीं तो वे तो परद्रव्य है। पद्रव्य है तो परद्रव्य के लक्ष्य में तो राग ही होता है। परद्रव्य का ज्ञान करने में तो विकल्प ही उठता है। परन्तु यहाँ ऐसा लिया है कि जिसने अरहन्त के द्रव्य, गुण, पर्याय जानकर अपना जाना.. आहा..! **सो जाणदि अप्पाणं** वह आत्मा को जानता है। उसे सर्वज्ञदेव की सर्वज्ञपर्याय और द्रव्य-गुण उसकी प्रतीति में आये। आहाहा!

सर्वज्ञभगवान परिपूर्ण ज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं। वे अपने को पूर्णरूप से—अपने सर्वगुणों के... अपने सर्व गुणों के, अनन्त गुणों के **भूत-वर्तमान-भावी...** भूतकाल, वर्तमान और भविष्य, **पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित...** आहाहा! अनन्त द्रव्य, उसके अनन्त गुण, उसकी अनन्त पर्याय, उसके अनन्त पर्याय में अनन्त अविभावग प्रतिच्छेद। अर्थात् वह शक्ति एक पर्याय में अनन्त गुनी है। आहाहा! एक

पर्याय में, हों! जिसने अरहन्त की पर्याय को और द्रव्य-गुण को यथार्थ जाना, उसको अन्तर आत्मा के समीप, (उस) ओर जाने की भावना हुए बिना जाने नहीं। आहाहा! जहाँ सर्वज्ञस्वभाव आत्मा में पड़ा है, तो सर्वज्ञ को जो जाने.. वह कैसा जाने? कि ऐसा। अपने परिपूर्णरूप से अपने सर्व गुणों के, सर्व गुण अर्थात् अनन्त गुण। आहाहा! सर्व गुणों के भूत, वर्तमान, भावि पर्यायों के। सर्व गुणों के और उन गुणों की पर्याय-अवस्था। आहाहा! भूतकाल की अनन्ती अवस्था, वर्तमान की अनन्ती अवस्था और भविष्य की अनन्ती अवस्था, अपनी, हों! अपनी अर्थात् सर्वज्ञ की।

अविभाग प्रतिच्छेदों सहित—प्रत्यक्ष जानते हैं। आहाहा! समझ में आता है? वह ८० गाथा की शैली है। बात चली होगी बहिन के (साथ)। आहाहा! 'साथ ही साथ..' सर्वज्ञ भगवान अपने गुण की त्रिकाली पर्याय जानते हैं, उसके साथ ही साथ **वे स्वक्षेत्र में रहकर,...** अपने असंख्य प्रदेश में रहकर। आहा..! **पर के समीप गये बिना,...** पर को जानते हैं, परन्तु पर के समीप गये बिना। आहाहा! और **परसन्मुख हुए बिना,...** गजब बात है! लोकोलोक को जानते हैं, पर के समीप होकर जानते नहीं। अपने समीप में रहकर जानते हैं। आहा..! इसकी भी खबर नहीं कि केवलज्ञान कौन है। आहाहा! **परसन्मुख हुए बिना, निराले रहकर...** लोकालोक को जानते हैं, परन्तु **स्वक्षेत्र में रहकर, परसन्मुख हुए बिना,...** आहाहा! है? परसन्मुख हुए बिना और पर के समीप गये बिना। दो बोल आये न? आहाहा! भगवान स्व को जाने, लोकालोक को जाने। अलोक का तो अन्त नहीं। परन्तु लोक चौदह ब्रह्माण्ड है, उसकी चारों ओर आकाश है। आकाश का अन्त कहाँ कि आकाश समाप्त हो गया। ऐसा है कहीं? यह चौदह ब्रह्माण्ड है, वह असंख्य योजन में है। और पीछे अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त योजन में आकाश है। उसको भी जानते हैं, परन्तु उसके सन्मुख हुए बिना और उसके समीप गये बिना। आहाहा! यह सर्वज्ञ की सत्ता की सामर्थ्यता कैसी है, यह बताते हैं। उसे जाने, वह आत्मा को यथार्थ जाने बिना रहे नहीं। आहाहा!

स्वक्षेत्र में रहकर,... एक बात। **पर के समीप गये बिना,...** दो बात। **परसन्मुख हुए बिना,...** तीन बात। **निराले रहकर...** लोकालोक को जानते हैं, परन्तु निराले रहकर। आहाहा! बहुत कठिन बात। लोकालोक को जानते हैं परन्तु लोकालोक के समीप जाकर

नहीं। लोकालोक के सन्मुख हुए बिना। और लोकालोक को जानते हैं, परन्तु निराले रहकर जानते हैं। आहाहा! ये तो अभी सर्वज्ञ की-णमो अरिहंताणं प्रथम पद है। आहाहा! वैसे तो सब णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं (बोले)। परन्तु अरिहन्त कौन?

जिसको अपने अनन्त गुण, उसकी अनन्त भूत-भविष्य की एक-एक गुण की अनन्त पर्याय, ऐसे अनन्त गुण की अनन्त पर्याय को साक्षात् जानते हैं। पहले वह आया न? वह भी पर्याय के अनन्त अविभाग। क्योंकि एक पर्याय है केवली की, केवली की एक पर्याय में अनन्त केवली जानने में आये हैं। तो एक पर्याय में भी अनन्त प्रतिच्छेद हो गया। ऐसे-ऐसे अनन्त केवली। आहाहा! भूत-भविष्य-वर्तमान अनन्त केवली को, वर्तमान अनन्त सिद्ध को.. आहाहा! ऐसी बात है। क्या करना? पहले जाने तो सही कि यह चीज़ है। जाने बिना क्या करेगा? आहाहा!

वह कहते हैं, **परसन्मुख हुए बिना, निराले रहकर लोकालोक के सर्व पदार्थों को...** लोक और अलोक। लोक यह चौदह राजू (लोक)। उसमें अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद। आहाहा! लोक को जानते हैं और अलोक-खाली भाग। कहीं अन्त नहीं। आकाश का अन्त कहाँ? खाली भाग में अब आकाश समाप्त हो गया, ऐसा कहाँ है? ऐसे **लोकालोक के सर्व पदार्थों को...** आहा..! **अतीन्द्रियरूप से...** भगवान कहीं इन्द्रिय से नहीं जानते। **अतीन्द्रियरूप से प्रत्यक्ष जानते हैं**। आहाहा!

पर को जानने के लिये वे परसन्मुख नहीं होते। आहाहा! केवलज्ञान की व्याख्या। पर को जानने के लिये परसन्मुख नहीं होते। **परसन्मुख होने से...** आहाहा! अपना उपयोग अपने में नहीं रखकर परसन्मुख करेगा तो **ज्ञान दब जाता है...** क्या कहते हैं? अपने स्वरूप सन्मुख होकर अपने को जानते हैं। परसन्मुख और पर समीप को छोड़कर निराले (रहते हैं)। क्योंकि परसन्मुख यदि लक्ष्य जाए तो ज्ञान दब जाता है, दब जाता है। आहाहा! क्यों? कि अपना जो उपयोग, अपनी ओर जो झुकाव है, उसमें तो उपयोग में विकास होता है। परन्तु अपनी सन्मुखता और समीपता छोड़कर, परसन्मुख और (उसके) समीप जाकर रलक्ष्य करे तो ज्ञान की पर्याय ढक जाती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। अभी तो अरिहन्त की व्याख्या।

परसन्मुख होने से ज्ञान दब जाता है—रुक जाता है,... उसका क्या अर्थ?

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी जो सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण दशा प्रगट हुई, परसन्मुख यदि उपयोग जाए तो ज्ञान की दशा हीन हो जाती है, ज्ञान दब जाता है, ज्ञान ढक जाता है। आहाहा! यह भाषा तो देखो! अपने समीप और.. आहाहा! समझ में आया? अपने स्वरूप के सन्मुख और समीप जाकर लोकालोक को जानते हैं। आहाहा! यह तो अरिहन्त का स्वरूप। और पर लोकालोक को जानते समय परसन्मुख और पर के समीप गये बिना अपने क्षेत्र में रहकर परक्षेत्र को छूए बिना ज्ञान करते हैं। आहाहा! ऐसी अरिहन्त की व्याख्या। णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं..

भाई! वीतरागमार्ग का एक-एक बोल बहुत सूक्ष्म। आहाहा! कहते हैं कि जो ज्ञान परसन्मुख हो जाए तो ज्ञान ढक जाता है, रुक जाता है, **विकसित नहीं होता**। विकसित अर्थात् प्रकाश प्रगट। अपने स्वरूप-सन्मुख हो तो वह विकसित होता है। परसन्मुख यदि लक्ष्य करे तो दब जाता है। अस्ति-नास्ति कही। अपना उपयोग.. शशीभाई! अलग बात है, भाई! अपना चैतन्य का उपयोग स्वसन्मुख और स्व समीप जाए तो विकसित होता है। ज्ञान का विकास होता है। ज्ञान में शक्ति की व्यक्तता प्रगट होती है और यदि परसन्मुख लक्ष्य जाए तो ज्ञान दब जाता है, ढक जाता है। आहाहा!

केवली लोकालोक को जानते हैं न। जानते हैं, वह तो अपनी पर्याय की ताकत है। अपने सन्मुख में एकाग्र हुए... आहाहा! उसमें लोकालोक का ज्ञान तो जानने में आ गया। उस ओर लक्ष्य नहीं करते। लक्ष्य तो अपने स्वरूप की ओर किया और केवलज्ञान हुआ, उसमें सब जानने में आ गया। आहाहा! यह अरिहन्त की सर्वज्ञ की शक्ति का वर्णन है। आहाहा! क्या करे? आहाहा! **परसन्मुख होने से ज्ञान दब जाता है—रुक जाता है, विकसित नहीं होता।**

जो ज्ञान पूर्णरूप से परिणमित हो गया है,... आहाहा! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा.. अभी तो बीस तीर्थंकर विराजते हैं। लाखों केवली महाविदेह में विराजते हैं। लाखों केवली। केवलीपने, हों! अरिहन्तपद में। अनन्त सिद्ध हुए केवली, परन्तु वे तो शरीररहित। वे भी केवलज्ञानी परमात्मा अनन्त सिद्ध, वे तो शरीररहित (हो गये)। ये तो शरीरसहित केवलज्ञानी लाखों महाविदेह में विराजते हैं। आहाहा! और तीर्थंकर बीस। तीर्थंकर क्षत्रिय होते हैं। बनिये तीर्थंकर नहीं होते। आहाहा! बनिया-व्यापारी केवलज्ञान प्राप्त करता है।

अपने समीप जाकर केवलज्ञान प्राप्त करता है, परन्तु तीर्थंकर नहीं होते। आहाहा! तीर्थंकर तो क्षत्रिय होते हैं। अनन्त तीर्थंकर हुए, हैं, होंगे, सब क्षत्रिय होंगे। आहाहा! बनिये नहीं।

मुमुक्षु :- शूरवीर।

पूज्य गुरुदेवश्री :- क्षत्रिय की जाति ही शूरवीर (होती है)। आहा..!

अनन्त तीर्थंकर हुए और वर्तमान में हैं, वे सब क्षत्रिय हैं। उसके अलावा केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। बनिये, ब्राह्मण, ... जाति केवलज्ञान को प्राप्त होते हैं। हरिजन केवलज्ञान को प्राप्त नहीं होते। उसके अलावा दूसरे प्राणी (प्राप्त करते हैं)। क्योंकि अपने में सर्वज्ञपना पड़ा ही है। वे प्राप्त करते हैं। परन्तु पहले अरिहन्त कैसे हैं, उसका ज्ञान हुआ हो, उसका ज्ञान होने के बाद फिर अपने में प्रयोग करे तो उसको होता है। आहाहा! परन्तु अभी जिसको अरिहन्त के ज्ञान की कितनी शक्ति, किस प्रकार की, क्या प्रकार है (यह खबर नहीं, उसे प्राप्त नहीं होता)।

चौदह राजू लोक यह ब्रह्माण्ड है, वह असंख्य योजन में ही है। जड़-चैतन्य का जो यह संग्रह है, जड़-चैतन्य का संग्रह छह द्रव्य। रात्रि में कहा था न? छह द्रव्यस्वरूप लोक। छह द्रव्यस्वरूप लोक.. आहाहा! ज्ञेय है। छह द्रव्यस्वरूप ज्ञेय है, व्यक्त है, उससे भगवान आत्मा निराला है। आहा..! आहाहा! इसलिए सम्यग्ज्ञानदीपिका में धर्मदास क्षुल्लक थे। भावलिंगी थे, पंचम गुणस्थान था। उन्होंने कहा कि आत्मा छह द्रव्य से भिन्न सप्तम हो गया। निराला हो गया। छह द्रव्य से भिन्न सप्तम हो गया। सप्तम हो गया, ऐसा पाठ है। है तो छह द्रव्य में। परन्तु छह द्रव्य के समीप गये बिना, सन्मुख हुए बिना अपनी पर्याय में केवलज्ञान प्रगट करते हैं तो वह आत्मा एक ओर और एक ओर लोकालोक। लोकालोक छह द्रव्य है, उससे निराला भगवान आत्मा है, तो उसको सप्तम द्रव्य कह दिया। छह द्रव्य से भिन्न सप्तम द्रव्य। परमात्मा सप्तम (द्रव्य) हो गया। आहाहा!

ऐसे यहाँ कहते हैं, **जो ज्ञान पूर्णरूप से परिणमित हो गया है, वह किसी को जाने बिना नहीं रहता।** आहा..! ज्ञान में तो तीन काल-तीन लोक जानने में आता है। क्रमबद्धपर्याय प्रत्येक द्रव्य की समय.. समय.. समय में पर्याय होती है, वह क्रमबद्ध-क्रमसर होती है, आगे-पीछे नहीं। यह क्रमबद्धपर्याय का यथार्थ ज्ञान किसको होता है? कि जिसको सर्वज्ञ

की शक्ति की-ताकत की प्रतीति हुई और वह प्रतीति करने में स्वसन्मुख हुआ, ज्ञायक-सन्मुख हुआ, तब उसको क्रमबद्ध की और सर्वज्ञ की प्रतीति सम्यग्दर्शन में आ गयी है। आहाहा! ऐसी बातें। अनादि का अनभ्यास। बहिन थोड़ा अन्तर से बोले थे, वह बात आ गयी।

ज्ञान पूर्णरूप से परिणमित हो गया है, वह किसी को जाने बिना नहीं रहता। जिसको क्रमबद्ध नहीं बैठता, जिस समय जो पर्याय जिस द्रव्य की होनेवाली है, वही होती है, आगे-पीछे नहीं। यह बात किसी को न बैठे तो सर्वज्ञ.. सर्वज्ञ है या नहीं? सर्वज्ञ हैं, वे देखते हैं कि नहीं? सर्वज्ञ के ज्ञान में जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, ऐसा ज्ञान आता है या नहीं? समझ में आया? आहाहा! बात सूक्ष्म पड़े, क्या हो? अन्तर मार्ग कोई अलग है।

अरिहन्त को जाने तो भी कहते हैं कि वह तो पर का ज्ञान हुआ। दूसरे ठिकाने ऐसा आता है कि परद्रव्य पर लक्ष्य जाएगा तो राग ही होगा। यहाँ तो कहते हैं कि अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, वह आत्मा को जाने। वह निमित्त का ज्ञान कराया। आहाहा! नहीं तो दूसरी जगह शास्त्र में जहाँ-तहाँ हजारों जगह (ऐसा आये) कि अपना ज्ञान पर ओर लक्ष्य जाए तो उसको राग हुए बिना रहे नहीं। क्योंकि रागी है। रागी है तो राग हुए बिना रहे नहीं। आहाहा!

यहाँ ऐसा कहते हैं कि जो अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, वह आत्मा को जाने। दो में अन्तर हो गया। वहाँ विकल्प की बात यहाँ उड़ा दी। अरिहन्त को सर्वज्ञ को जैसा है, वैसा जाना, वह इस ओर का लक्ष्य करके विकल्प को उड़ा दिया। आहाहा! ऐसी बात। रोज कुछ नया-नया, नया-नया (आये)।... ये तो रात्रि में बहिन बोले होंगे, किसी ने लिख लिया है तो यह बाहर आ गया है, नहीं तो बाहर आये भी नहीं। आहाहा!

वह ज्ञान स्वचैतन्यक्षेत्र में रहते हुए,... क्या कहा? देखो! पर को जाने, तीन काल-तीन लोक अपने सन्मुख और समीप रहकर, **वह ज्ञान स्वचैतन्यक्षेत्र में रहते हुए,...** अपना चैतन्यक्षेत्र असंख्य प्रदेश, उसमें रहते हुए जानते हैं। अपने प्रदेश से बाहर जाते हैं और पर को जानते हैं, ऐसा है नहीं। आहा..! यह तो अरिहन्त के केवलज्ञान की बात है अभी। एक

जीव के, एक गुण की एक पर्याय। लालचन्दभाई! एक जीव की कहा न? एक जीव की, एक गुण की एक पर्याय। ऐसे अनन्त गुणों की अनन्त पर्याय। आहा..! यहाँ तो अभी एक ज्ञानगुण, उसकी एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक को जाने। है विकल्प, परन्तु यहाँ ऐसा आत्मा लिया है कि जो उनको जाने, वह अपने सन्मुख हो जाता है। परसन्मुखता छोड़कर.. आहाहा! परसन्मुख लक्ष्य रहे, तब तक तो विकल्प आता है, राग है। अरिहन्त के गुण-पर्याय को जाने, वह आत्मा को जानता है, ऐसा पाठ है। ८० गाथा। इसका अर्थ यह कि विकल्प छोड़ दिया। लक्ष्य परद्रव्य का था, वहाँ जो विकल्प था। छोड़कर अन्दर गया, तब आत्मा के सर्वज्ञस्वभाव की प्रतीति हुई, तब सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना चाहे जितनी क्रियाकाण्ड करे, जानपना करे.. वह अपने १२वीं गाथा में आयेगा। आ गया न? ... ४१० में आ गया। ४१०। ४१० में आ गया है। तू चाहे जितने ... सहन कर, परन्तु आत्मा के भान बिना सब मिथ्या है। ४१०।

जिसने आत्मा के मूल अस्तित्व को नहीं पकड़ा, 'स्वयं शाश्वत तत्त्व है, अनन्त सुख से भरपूर है' ऐसा अनुभव करके शुद्ध परिणति की धारा प्रगट नहीं की, उसने भले सांसारिक इन्द्रियसुखों को नाशवन्त... यह आ गया है। **भविष्य में दुःखदाता जानकर छोड़ दिया हो और बाह्य मुनिपना ग्रहण किया हो, भले ही दुर्धर तप करता हो और उपसर्ग-परीषह में अडिग रहता हो, तथापि उसे वह सब निर्वाण का कारण नहीं होता,...** आहाहा! वह आ गया है। कल ही आया था न? कल ही आया था। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सर्वज्ञ का आत्मा लोकालोक जानते हैं तो स्वक्षेत्र में रहकर जानते हैं। अपने उपयोग परक्षेत्र में जाकर जानता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! यह तो एक-एक आत्मा की ऋद्धि बताते हैं। तेरे एक आत्मा में सर्वज्ञपद पड़ा है, प्रभु! सर्वज्ञपद, सर्वदर्शीपद, अनन्त आनन्द सर्वांग.. आहाहा! ऐसी तेरी चीज़ है, वह प्रगट हुई है, ऐसा अरिहन्त का जिसको यथार्थ ज्ञान होता है तो अपने आत्मा में ऐसा है, ऐसी दृष्टि किये बिना रहता नहीं। समझ में आया? आहा..!

वह ज्ञान पर को, लोकालोक को जाने, वह **स्वचैतन्यक्षेत्र में रहते हुए,...** चैतन्य के क्षेत्र में यहाँ रहते हुए जानते हैं। उपयोग बाहर नहीं जाता। आहाहा! **तीनों काल के तथा लोकालोक के सर्व स्व-पर ज्ञेयों मानों वे ज्ञान में उत्कीर्ण हो गये हों,...** ज्ञान में मानो सब

आ गया हो। वह गाथा है, प्रवचनसार की। प्रवचनसार – ९९ गाथा। प्रवचनसार, नहीं? भगवान जानते हैं तो सब मानों यहाँ आ गया हो, उत्कीर्ण हो गया हो, घुस गया हो। ऐसा शब्द है। प्रवचनसार। मूल संस्कृत टीका। भगवान का और कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। लोकालोक मानों यहाँ आ गये हों, घुस गया हो, मानों उत्कीर्ण हो गया हो,..! आहाहा! **स्व-पर ज्ञेयों मानों वे ज्ञान में उत्कीर्ण हो गये हों,...** आहाहा! **उस प्रकार समस्त स्व-पर को एक समय में...** आहाहा! **सहजरूप से...** वह भी सहजरूप से, स्वाभाविकरूप से **प्रत्यक्ष जानता है;...** आहाहा!

जो बीत गया है,... द्रव्य की जो पर्याय बीत गयी, उसको भी जाने। **उस सबको भी पूरा... जो बीत गया है, उस सबको भी पूरा जानता है;...** आहाहा! अभी पर में पर्याय प्रगट हुई नहीं, वह भी केवली पहले से जानते हैं। आहाहा! ऐसा आत्मा का स्वभाव है। सर्वज्ञशक्ति पड़ी है अन्दर। आहाहा! अनन्त परमात्मा में, सब आत्मा में अन्दर एक सर्वज्ञशक्ति है। ४७ शक्ति का वर्णन हो गया है। उसमें यह आया है – सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व, प्रत्यक्ष, ... प्रत्यक्ष होने के लायक ही आत्मा है। आहाहा! आत्मा की बात छोड़कर बाहर की सब लम्बी-लम्बी बात करे। परन्तु मूल बात का माल नहीं।

यहाँ यह कहते हैं, **पूरा जानता है;... सबको भी पूरा जानता है; जो आगे होना है, उस सबको भी पूरा जानता है।** अभी तो पर्याय हुई नहीं। केवलज्ञानी तो प्रत्यक्ष जानते हैं कि यह पर्याय, ऐसे प्रत्यक्ष जानते हैं। जैसे एक आटा है, आटा पिण्ड। रोटी बनानी है। ... उसके ख्याल में आया नहीं कि पहले यह आटा था, अब रोटी होगी। छद्मस्थ को भी ख्याल में आता है या नहीं? सेठ! क्या कहते हैं? आटा बाँधते हैं न? ... रोटी के लिये थोड़ा। रोटी अभी बनी नहीं। छद्मस्थ को भी ख्याल में है कि इसमें से अब रोटी बनेगी। कर्ता नहीं है। आहाहा! उसका कर्ता नहीं। बनेगी, बनती है, ऐसा देखता है। पहले आटा था। गेहूँ था, फिर आटा था, आटे की रोटी होगी। बस, ऐसा जानते हैं। आहाहा! पहले से जानते हैं या नहीं? ... ऐसा-ऐसा करते हैं, तब ख्याल में नहीं आता? अभी हुआ नहीं, उसके पहले ख्याल में आता है कि ... अन्दर में से रस निकलेगा। आहाहा! वर्तमान में ख्याल में भविष्य की भी पर्याय छद्मस्थ को भी जानने में आती है। आहाहा! तो केवलज्ञानी की बात क्या करना! आहा..! और एक केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष जानते

हैं, ऐसा ही प्रभु ! तेरा स्वभाव है। राग नहीं, पुण्य नहीं, निमित्त भी नहीं और अल्पज्ञपना भी नहीं। आहाहा !

निमित्त का लक्ष्य छोड़ दे, राग का लक्ष्य छोड़ दे, अल्पज्ञ दशा है, उसका लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा ! अन्दर सर्वज्ञस्वभाव पड़ा है, भगवान ! उसका लक्ष्य कर ले। आहाहा ! इसके बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं और इसके बिना जन्म-मरण का अन्त कभी आता नहीं। आहाहा ! वह यहाँ कहते हैं।...

जो आगे होना है, उस सबको भी पूरा जानता है। ज्ञानशक्ति अद्‌भुत है। अन्तिम शब्द यह आया। आहाहा ! इस आत्मा में ज्ञानशक्ति कोई अद्‌भुत है ! दीपचन्दजी ने लिया है, दीपचन्दजी-अनुभवप्रकाश के कर्ता। प्रभु ! क्या तेरी बात कहूँ ? तेरे दर्शन और ज्ञान एक समय में जो होता है, केवलज्ञान और केवलदर्शन। केवलदर्शन, है - इतना बस (देखता है)। यह आत्मा है और यह गुण है और यह पर्याय है, उसका बिल्कुल भेद नहीं करते। केवलदर्शन का स्वभाव-है-इतना ही जाने, बस ! उसके साथ ज्ञान है, वह तीन काल के द्रव्य-गुण-पर्याय, पर्याय के अविभाग प्रतिच्छेद, सबको भिन्न-भिन्न जाने। प्रभु ! तेरी एक समय की पर्याय ऐसी है कि है इतना (देखे)। और उसी समय की ज्ञान की पर्याय इतना जाने ! यह कोई अद्‌भुत रस है ! ऐसा पाठ लिया है, दीपचन्दजी ने। परम अध्यात्म, रात को नहीं निकाला था ? पर्याय में... उसमें यह है। अध्यात्म पंच संग्रह में। आहाहा ! क्या कहा ? एक समय की पर्याय में तीन काल तीन लोक जानते हैं, प्रत्यक्ष जानते हैं। वह अपनी पर्याय का स्वभाव है। आहा.. !

मुमुक्षु :- केवलदर्शन...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, वह कहना था। आहाहा ! एक समय में केवलदर्शन और केवलज्ञान, दोनों एक समय में भगवान के पास है। दर्शन का स्वभाव-है-... यह जीव है और यह अजीव है, ऐसा भेद भी वहाँ नहीं। केवलदर्शन। आहाहा ! केवलदर्शन में भेद नहीं है कि यह जीव है और यह भगवान है। मेरे में यह गुण है, पर्याय है, ऐसा भेद बिल्कुल नहीं है। केवलदर्शन भेद नहीं मानता, भेद मानता नहीं। है, बस। उसी समय केवलज्ञान की पर्याय, जिस समय दर्शन की पर्याय भेदरहित जानती है, उसी समय ज्ञान की एक समय की पर्याय भेद कर-करके (जानती है)। एक-एक द्रव्य भिन्न, द्रव्य का गुण भिन्न,

गुण की पर्याय भिन्न, पर्याय में अनन्त अविभागप्रतिच्छेद। सबको केवलज्ञान की एक समय की पर्याय, दर्शन की पर्याय भेद नहीं माने और यह पर्याय (भेद) माने। प्रभु! यह तो अद्‌भुत रस है! ऐसा लिखा है। अद्‌भुत रस लिखा है। आहाहा! यह दर्शन और यह ज्ञान, कितना अन्तर है! यह तो कोई चैतन्य का अद्‌भुत रस है। अद्‌भुत रस डाला है। अध्यात्म पंच संग्रह में।

यहाँ **ज्ञानशक्ति अद्‌भुत है**। बस। ४१३ पूरा हुआ।

कोई स्वयं चक्रवर्ती राजा होने पर भी, अपने पास ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी, बाहर भीख माँगता हो; वैसे तू स्वयं तीन लोक का नाथ होने पर भी, तेरे पास अनन्त गुणरूप ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी, 'पर पदार्थ मुझे कुछ ज्ञान देना, मुझे सुख देना' इस प्रकार भीख माँगता रहता है! 'मुझे धन में से सुख मिल जाये, मुझे शरीर में से सुख मिल जाये, मुझे शुभ कार्यों में से सुख मिल जाये, मुझे शुभ परिणाम में से सुख मिल जाये' इस प्रकार तू भीख माँगता रहता है! परन्तु बाहर से कुछ नहीं मिलता। गहराई से ज्ञायकपने का अभ्यास किया जाये तो अन्तर में से ही सब कुछ मिलता है। जैसे भोंयरे में जाकर योग्य कुंजी द्वारा तिजोरी का ताला खोला जाये तो निधान प्राप्त हों और दारिद्र दूर हो जाये, उसी प्रकार गहराई में जाकर ज्ञायक के अभ्यासरूप कुंजी से भ्रान्तिरूप ताला खोल दिया जाये तो अनन्त गुणरूप निधान प्राप्त हों और भिक्षुकवृत्ति मिट जाये॥४१४॥

४१४। **कोई स्वयं चक्रवर्ती राजा होने पर भी,... कोई स्वयं चक्रवर्ती राजा होने पर भी, अपने पास ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी,...** आहाहा! भण्डार भरा है चक्रवर्ती के पास। नौ निधान। एक-एक निधान का देव स्वामी है। ऐसा भण्डार। वह **बाहर भीख माँगता हो;...** आहाहा! ऐसा जो चक्रवर्ती राजा, जिसके पास भण्डार का पार नहीं, वह भीख माँगे।

वैसे तू स्वयं तीन लोक का नाथ... चक्रवर्ती, यहाँ **स्वयं तीन लोक का नाथ होने पर भी, तेरे पास अनन्त गुणरूप ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी,...** आहाहा! **तेरे पास अनन्त गुणरूप ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी, 'पर पदार्थ मुझे कुछ ज्ञान देना,...**

पर पदार्थ मुझे कुछ ज्ञान दे। परन्तु ज्ञान भण्डार यहाँ भरा है न। भीख माँगता है बाहर। आहाहा! है? आहा..! **पर पदार्थ मुझे कुछ ज्ञान देना,...** गुरु मुझे कुछ दे देगा, देव दे देगा। आहाहा! क्या दे? प्रभु! तेरे में है। भण्डार का पार नहीं है। आहाहा! '**मुझे सुख देना**', '**पर पदार्थ मुझे कुछ ज्ञान देना,...** और मुझे सुख दो। मुझे सुख का साधन दो। लक्ष्मी, इज्जत-कीर्ति... भीख माँगता है, भिखारी है। चक्रवर्ती राजा होकर भीख माँगता है, अनन्त भण्डार यहाँ भरा है। अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य भरा है। चक्रवर्ती राजा से भी अनन्त गुनी ऋद्धि तेरे में है और भीख माँगता है, मुझे ज्ञान दो, मुझे सुख दो। यहाँ ज्ञान का भण्डार है न! आनन्द का सागर है न, प्रभु! आहाहा!

स्वयं तीन लोक का नाथ होने पर भी, तेरे पास अनन्त गुणरूप ऋद्धि के भण्डार भरे होने पर भी,... परपदार्थ मुझे कुछ ज्ञान दो, ज्ञान दो, ज्ञान दो। अरे..! ज्ञान का तो भण्डार है न, भगवान! आहाहा! **मुझे सुख देना...** मुझे कुछ अनुकूलता हो, अनुकूल करो, अनुकूल दो। आहाहा! **इस प्रकार भीख माँगता रहता है!** आहाहा! बराबर है? शान्तिभाई! यहाँ तो बहुत भरा है, परन्तु ... ऐसा हो तो ठीक, आहाहा! अपने को निवृत्ति मिले। भिखारी! पर में क्या माँगता है? वह कहाँ ... आहाहा! ... इसका पुत्र अमेरिका जाकर आया। चन्दुभाई डॉक्टर। उनके भाई हैं। ... अब निवृत्ति ले तो दिक्कत नहीं। ऐसी बातें। ... आहाहा! अलग होकर अमेरिका चला गया। वहाँ कमायेगा।

यहाँ यह कहा, **मुझे धन में से सुख मिल जाये,...** आहाहा! है? **मुझे धन में से सुख मिल जाये, मुझे शरीर में से सुख मिल जाये,...** आहाहा! हिरन की नाभि में कस्तूरी है, परन्तु वह कस्तूरी की गन्ध पूरे वन में ढूँढ़ने जाता है। वैसे भगवान आत्मा के अन्दर ज्ञान और आनन्द (भरा है)। वह बाहर ढूंढ़ने जाता है, (मानो) बाहर से ज्ञान और आनन्द आता हो! हिरन जैसा है, भिखारी है। आहाहा! है? **मुझे शरीर में से सुख मिल जाये, मुझे शुभ कार्यों में से सुख मिल जाये,...** है? शुभ कार्य करेंगे तो अनुकूलता (मिले), दूसरों को पैसे दे, गरीबों को आहार दे, पानी दे, औषध दे, रहने का स्थान बना दे। आहाहा! **शुभ कार्यों में से सुख मिल जाये,...** ऐसा अज्ञानी मानते हैं। आहा..! तो क्या वह नहीं करना? परन्तु करे कौन? वह बनने के समय बनेगा ही। आहाहा! जिस क्षण परमाणु की पर्याय होनेवाली है, बनेगी। तू कर तो बनेगी, न करे तो नहीं बने, ऐसा है नहीं। आहाहा!

मुझे शुभपरिणाम में से सुख मिल जाये... कितने शब्द लिये हैं, देखो ! **मुझे शुभ कार्यों में से सुख मिल जाये, मुझे शुभपरिणाम में से सुख मिल जाये...** बाहर के कार्य करे, उसमें से और अन्दर शुभपरिणाम। उसमें से सुख मिलेगा।... शुभपरिणाम तो दुःख है। आहाहा ! शुभभाव तो दुःख है। भगवान आनन्द से उल्टी दशा है। समयसार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने तो कहा कि शुभभाव तो विषकुंभ है। जहर का घड़ा है। ऐसे लिया है। आहा.. ! समयसार, मोक्ष अधिकार। आहाहा ! यहाँ कहे कि शुभभाव मैं करूँ तो कुछ तो मिलेगा न ? मिलेगा कुछ नहीं, मिथ्यात्व मिला है। आहाहा ! शुभभाव से मुझे कुछ तो मिलेगा। मुझे ज्ञान देना, मुझे सुख देना। भीख माँगता है। '**मुझे धन में से सुख मिल जाये, मुझे शरीर में से सुख मिल जाये, मुझे शुभ कार्यों में से सुख मिल जाये, मुझे शुभ परिणाम में से सुख मिल जाये' इस प्रकार तू भीख माँगता रहता है!** आहाहा !

परन्तु बाहर से कुछ नहीं मिलता। बाहर तो कुछ है नहीं। ज्ञान भी यहाँ पड़ा है, सुख भी यहाँ पड़ा है, अन्दर में है। अन्दर में दृष्टि करने से ज्ञान और सुख मिलता है। बाहर में दृष्टि करने से सुख और ज्ञान नहीं मिलता। आहाहा ! है ? **परन्तु बाहर से कुछ नहीं मिलता। गहराई से ज्ञायकपने का अभ्यास किया जाये...** आहाहा ! गहराई से ज्ञायकपने का (अभ्यास)। मैं जाननस्वरूप हूँ, मैं जाननस्वरूप हूँ, ऐसा **ज्ञायकपने का अभ्यास किया जाये तो अन्तर में से ही सब कुछ मिलता है।** तो अन्तर में से सब कुछ मिलताा है। अन्दर में सब भरा है। ज्ञान भरा है, आनन्द भरा है, शान्ति भरी है, वीर्य भरा है। आहाहा ! स्वच्छता भरी है, पूर्णता प्रभुता भरी है, परमेश्वता भरी है। आहाहा ! तेरे में क्या (नहीं है) ? प्रभु मेरे तू किस बात अधूरा ? आहाहा ! किस बात से तू अधूरा है ? प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा। पर की आश कहाँ प्रीतम...

प्रभु मेरे तुम सब बाते पूरा, प्रभु मेरे तुम सब बाते पूरा,
पर की आश कहाँ करे प्रीतम, किस बात से तू अधूरा ?

प्रभु ! तू किस बात से अधूरा है ? आहाहा ! दिखे नहीं। अन्दर देखनेवाला दिखे नहीं। परन्तु देखनेवाला दिखता नहीं, ऐसा निर्णय किसने किया ? किसकी सत्ता में निर्णय हुआ ? मैं दिखता नहीं हूँ, ऐसा निर्णय कौन सी सत्ता में किया ? वह तो अपनी सत्ता में निर्णय हुआ। पर की सत्ता में ज्ञान का निर्णय होता नहीं। आहाहा !

गहराई से ज्ञायकपने का अभ्यास किया जाये... मैं ज्ञायक.. ज्ञायक.. जाननशरीर। ज्ञान–जाननशरीर मेरी चीज़ है। यह शरीर नहीं। ज्ञायकस्वरूप, यही मेरा शरीर है। यह मेरी चीज़ है। ज्ञायकस्वरूप का गहराई से अर्थात् गम्भीरता से। आहाहा! **ज्ञायकपने का अभ्यास किया जाये तो अन्तर में से ही सब कुछ मिलता है।** आहा..! **जैसे भोंयरे में जाकर योग्य कुंजी द्वारा...** अब, ... **योग्य कुंजी द्वारा..** उसके योग्य जो कुंजी चाहिए।... **तिजोरी का ताला खोला जाये...** तिजोरी का ताला खुल जाए **तो निधान प्राप्त हों...** भोंयरे में निधान भरा है। आहाहा!

श्वेताम्बर में वस्तुपाल–तेजपाल की एक बात आती है। श्वेताम्बर में। पैसे बहुत थे। यात्रा के लिये निकलना था। पैसे बहुत थे, कहाँ गाड़ना? उस समय करोड़ों रुपया चाँदी का। तो अपने ... खाली जगह होती है, उसमें गाड़ने को गये। जहाँ खोदना शुरु किया तो वहाँ चरु निकले। खोदकर गाड़ने गये, उसमें से चरु निकले। आहाहा! उसकी स्त्री कहती है कि कितना गाड़ते हो? तुम्हारे कदम–कदम पर निधान भरा है न! गाड़ना है? खर्च करो। यहाँ भगवान कहते हैं, क्षण–क्षण में भण्डार भरा है न! आहाहा! विश्वास अन्तर में आना, पर का विश्वास छोड़कर... आहा!

जैसे भोंयरे में जाकर योग्य कुंजी द्वारा तिजोरी का ताला खोला जाये तो निधान प्राप्त हों और दारिद्र दूर हो जाये, उसी प्रकार गहराई में जाकर... ज्ञायकभाव–अन्तर जानन–जाननस्वभाव, उस ज्ञायकभाव में गहराई में, द्रव्यस्वभाव में गहराई में जा। आहाहा! ऊंडे कहते हैं? गहराई। **गहराई में जाकर ज्ञायक के अभ्यासरूप कुंजी से...** आहाहा! **भ्रान्तिरूप ताला खोल दिया जाये...** आहाहा! राग से लाभ है, पुण्य से लाभ हो, पर से सुख हो—ऐसी भ्रान्ति का ताला खुल जाए.. आहाहा! **तो अनन्त गुणरूप निधान प्राप्त हों...** अनन्त गुणरूप निधान अन्दर भरा है, वह निधान प्राप्त हो। **भिक्षुकवृत्ति मिट जाये।** आहाहा! भिक्षुकवृत्ति मिट जाए। यहाँ अन्दर में सब है। बाहर में कहीं नहीं है। पैसे से, लक्ष्मी से, इज्जत से, अरे..! परमेश्वर से भी यहाँ कुछ नहीं मिलता। परमेश्वर भी परपदार्थ है। परसन्मुख और पर के समीप जाए तो राग–द्वेष होता है। आहाहा! स्वसन्मुख और स्व समीप जाए तो अन्दर अरागी दशा प्रगट होती है। वहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! **भिक्षुकवृत्ति मिट जाये।** ४१४ पूरा हुआ। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र कृष्ण - ५, सोमवार, तारीख २९-९-१९८०
वचनामृत -४१६, ४१७ प्रवचन-४६

भवभ्रमण चलता रहे, ऐसे भाव में यह भव व्यतीत होने देना योग्य नहीं है। भव के अभाव का प्रयत्न करने के लिये यह भव है। भवभ्रमण कितने दु:खों से भरा है, उसका गम्भीरता से विचार तो कर! नरक के भयंकर दु:खों में एक क्षण निकलना भी असह्य लगता है, वहाँ सागरोपम काल की आयु कैसे कटी होगी? नरक के दु:ख सुने जायें ऐसे नहीं हैं। पैर में काँटा लगने जितना दु:ख भी तुझसे सहा नहीं जाता, तो फिर जिसके गर्भ में उससे अनन्तानन्तगुने दु:ख पड़े हैं, ऐसे मिथ्यात्व को छोड़ने का उद्यम तू क्यों नहीं करता? गफलत में क्यों रहता है? ऐसा उत्तम योग पुन: कब मिलेगा? तू मिथ्यात्व छोड़ने के लिये जी-जान से प्रयत्न कर, अर्थात् साता-असाता से भिन्न तथा आकुलतामय शुभाशुभ भावों से भी भिन्न ऐसे निराकुल ज्ञायकस्वभाव को अनुभवने का प्रबल पुरुषार्थ कर। यही इस भव में करनेयोग्य है।।४१६।।

वचनामृत - ४१६। ४१५ आ गया है। **भवभ्रमण चलता रहे, ऐसे भाव में...** अर्थात् मिथ्यात्व में **यह भव व्यतीत होने देना योग्य नहीं है**। क्या कहते हैं? **भवभ्रमण चलता रहे,...** चार गति। एक के बाद, एक के बाद। **ऐसे भाव में...** अर्थात् मिथ्यात्व में। आयेगा। मिथ्यात्व एक ऐसी पाप की चीज़ है कि जिसमें नरक और निगोद के भव उसके गर्भ-मिथ्यात्व में पड़े हैं। आहाहा! उसमें है। मिथ्यात्व में अनन्त भव पड़े हैं। मिथ्यात्व किसको कहना, यह लोगों को विचार में (नहीं आता)। बाह्य क्रियाकाण्ड में भव व्यतीत करते हैं।

यहाँ कहते हैं, **भवभ्रमण चलता रहे,...** अरेरे! **ऐसे भाव में...** राग की एकता और परद्रव्य की एकता, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव। अथवा पर्यायमूढापरसमया। ऐसा प्रवचनसार में पाठ है। पर्यायमूढापरसमया। दूसरी चीज़ तो नहीं, एक ओर रही, परन्तु अपने आत्मा में जो पर्याय-अवस्था है, उस अवस्था में जिसकी रुचि, और अनादि से परिभ्रमण है, वह मिथ्यादृष्टि परसमय है। आहाहा! प्रवचनसार। दूसरा ज्ञेय अधिकार। उस ज्ञेय अधिकार में यह गाथा कुन्दकुन्दाचार्य की है। प्रभु! आहाहा! जो अन्दर में अनादि... पर चीज़ है, वह तो दूर रही, उसके साथ तेरा सम्बन्ध नहीं है। शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, अरे..! देव-गुरु और शास्त्र, वह तो परपदार्थ है। उसके साथ तो तेरा कोई सम्बन्ध है नहीं। और उसके सम्बन्ध से जन्म-मरण कभी मिटता नहीं।

यहाँ तो उससे विशेष लेना है। **भवभ्रमण चलता रहे, ऐसे भाव...** पर्यायबुद्धि। आहाहा! त्रिकाली द्रव्य ध्रुव भाव, उसमें जो एक समय की पर्याय है। कभी सामान्य, विशेष बिना होता नहीं। सामान्य और विशेष तो अनादि-अनन्त वस्तु का स्वरूप है। सिद्ध भी सामान्य और विशेष है। सिद्ध की पर्याय विशेष है और उसका द्रव्य, वह सामान्य है। आहा..! परन्तु यहाँ कहते हैं, प्रवचनसार, ज्ञेय अधिकार। परसमया। पर्यायमूढापरसमया। जो कोई अपना त्रिकाली आनन्दमूर्ति प्रभु ध्रुव अनन्त-अनन्त गुण का सागर, उसकी दृष्टि न करके एक समय की पर्याय पर बुद्धि है,.. आहाहा! वह भवभ्रमण का कारण है। गजब बात है!

भगवान, तीर्थंकर और देव-गुरु-शास्त्र तो पर रह गये। उन पर लक्ष्य करने से तो राग ही होता है। यहाँ तो अपनी पर्याय पर लक्ष्य करने से, पूरी त्रिकाली चीज़ का अनादर होता है। समरू में आया? आहा..! भवभ्रमण चलता रहे, ऐसा भाव अर्थात् पर्यायबुद्धि। फिर उसके चाहे जितने प्रकार (हों)। आहाहा! **यह भव व्यतीत होने देना योग्य नहीं है।** आहाहा! **भव के अभाव का प्रयत्न करने के लिये यह भव है।** आहा..!

मुमुक्षु :- अभाव करने के लिये ही यह भव मिला है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह भव उसके लिये है।

भव के अभाव का प्रयत्न करने के लिये यह भव है। यह भव कोई व्यापार-धन्धा या ऐसा-वैसा करने के लिये (नहीं है)। उसके लिये तो पूरी दुनिया अज्ञानी ने की

है। मान्यता, हों! कुछ कर नहीं सकता। 'मैं धन्धा करता हूँ, मैं कुटुम्ब को पालता हूँ, पैसे का ब्याज पैदा करता हूँ।' दो-पाँच करोड़ हो तो ... न करे। पाँच-पच्चीस अच्छे लोग तैयार करे। पाँच-पाँच लाख रुपया देकर धन्धा करवाये। पाँच लाख दे, उसमें आधा हिस्सा। और पाँच लाख का ब्याज भी स्वयं ले। ऐसा सब तुम्हारा सुना है सेठ! तुम्हारा अर्थात् दुनिया का।

एक सेठ था। बहुत करोड़पति। एक को पाँच लाख, दो लाख देकर दुकान चलाये और दुकान में आधा हिस्सा। और महीने का ब्याज (ले)। उन दिनों में तो आठ आना, दस आना ब्याज था। अभी डेढ़ रुपया हो गया। ब्याज लेना, आधा मुनाफा लेना और हर महीने जाँच करने जाना। यह खा तो नहीं जाता? आहाहा! इसके लिये भव है?

भव के अभाव का प्रयत्न करने के लिये यह भव है। आहाहा! **भवभ्रमण कितने दुःखों से भरा है,..** भवभ्रमण। आहा..! **कितने दुःखों से भरा है, उसका गम्भीरता से विचार तो कर!** आहाहा! ऊपर-ऊपर से नहीं, परन्तु गहराई से विचार कर। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. नरक के अनन्त, निगोद के अनन्त, तिर्यंच के अनन्त.. आहाहा! ऐसे अनन्तानन्त भव। अकेले दुःख का मूल है। आहा..! वादिराज कहते हैं, स्तोत्र बनाया है न? वादिराज ने। राजा ने एक कमरे में वादिराज को बन्द कर दिया था। ४७ (तालों में)। सबको ४८ ताले लगाये। वादिराज।

मुमुक्षु :- मानतुंग आचार्य।

पूज्य गुरुदेवश्री :- मानतुंग आचार्य, वह भक्तामर। भक्तामर (बनाया)। ये तो वादिराज। उनको तो कोढ़ हुआ था न? वादिराज को कोढ़ था। परन्तु भक्तामर स्तुति करते-करते ताले टूट गये, वह बात निमित्त से है। भक्तामर से ताले टूट जाए, एक द्रव्य के कारण परद्रव्य की पर्याय हो जाए, ऐसी बात है नहीं। परन्तु बन गया, बनने की पर्याय थी तो। आहाहा! यह भक्तामर।

वादिराज (मुनि को) तो पूरे शरीर में कोढ़ था। बाद में एक श्रावक था, वह राजा के पास गया। राजा ने उस श्रावक को ऐसा कहा कि, तेरे गुरु तो कोढ़ी है, इसने कहा, साहब! मेरे गुरु कोढ़ी नहीं है। कोढ़ी तो थे। परन्तु कोढ़ी नहीं है, ऐसा श्रावक ने कहा। बाद में वादिराज के पास आया। प्रभु! मैने राजा को ऐसा कहा है कि मेरे गुरु को कोढ़ नहीं है। कोढ़ तो है। परेशान मत हो, भाई! प्रभु का शासन है, सब अच्छा होगा। ऐसा कहकर

वादिराज ने स्तुति का प्रारम्भ किया है। भक्तामर अलग। स्तुति करते-करते कोढ़ मिट गया। फिर भी थोड़ा कोढ़ रखा। कोढ़ था, वह बात भी झूठी नहीं थी, इतना कहने को थोड़ा रखा। स्तुति करते-करते बाद में कहते हैं, अरे..! प्रभु! कोढ़ तो ठीक, वह तो सनतकुमार चक्रवर्ती, छह खण्ड का धनी, तद्भव मोक्षगामी, उसको ७०० वर्ष तक गलित कोढ़ रहा। अँगुली गलने लगे। आहाहा! मुनिराज! शरीर की क्रिया है, शरीर में होती है। आत्मा, आत्मा के कारण भिन्न है। आहाहा!

वादिराज ऐसा कहते थे, प्रभु! मैं भूतकाल के दुःख याद करता हूँ, मैं दुःख को स्मरण करता हूँ,... यहाँ कहा न? **भवभ्रमण कितने दुःखों से भरा है,...** आहाहा! उसका विचार भी किया है? अरे..! प्रभु! तू कहाँ रहा? यह कहते हैं। वादिराज तो कहते हैं कि मैं भूतकाल के मेरे दुःख को याद करता हूँ, चोट लगती है। छाती में चोट लगती है। अररर..!

वह यहाँ कहते हैं, **भवभ्रमण कितने दुःखों से भरा है, उसका गम्भीरता से विचार तो कर! नरक के भयंकर दुःखों में एक क्षण निकलना भी...** आहाहा! नरक के अन्दर, बापू! प्रभु! तूने विचार किया नहीं। भगवान तो ऐसा कहते हैं, एक क्षण नरक में निकलना, वह असह्य लगता है। **भयंकर दुःखों में एक क्षण निकलना भी असह्य लगता है।** आहाहा! शास्त्र तो वहाँ तक कहता है कि पहली नरक में उष्ण वेदना इतनी है कि एक लाख मन का लोहे का गोला वहाँ रखे तो उसकी उष्णता से गल जाए। जैसे पारा होता है न? पारा। पारा होता है न? ऐसा हो जाए। ऐसी एक-एक क्षण में तूने तैतीस सागर नरक में निकाले। पहली नरक में एक सागर, दूसरी में तीन, फिर सात। आहाहा! प्रभु! तूने भवभ्रमण के अभाव के लिये यह भव, उसका प्रयत्न तूने नहीं किया। उसका प्रयत्न तूने किया नहीं। आहाहा! है?

नरक के भयंकर दुःखों में एक क्षण निकलना भी असह्य लगता है, वहाँ सागरोपम काल की आयु कैसे कटी होगी? आहाहा! एक क्षण के दुःख का असह्य वेदन। भगवान तो रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं, नरक का एक क्षण का दुःख करोड़ जीभ से और करोड़ भव में कह सके नहीं, उतना दुःख है। विचार कब किया है? अरे..! यह भवभ्रमण। नरक और निगोद में जाना होगा। यह भव तो भवरहित होने के लिये है, उसकी जगह तूने ये क्या किया? भवभ्रमण का भाव का सेवन किया। वह यहाँ कहते हैं।

नरक के दुःख सुने जायें ऐसे नहीं हैं। आहाहा! है? नरक के दुःख सुनते सुने जाए नहीं, ऐसी बात है। वहाँ अनन्त काल व्यतीत किया है, भाई! तू भूल गया। अब तक अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. भूतकाल अनन्त.. नरक में अनन्त काल व्यतीत किया। शास्त्र पाठ तो ऐसा कहता है कि अनन्त काल के बाद एक बार मनुष्य भव मिलता है, तो भी अनन्त-अनन्त बार मिला है। और उससे असंख्य गुना अनन्त भव नरक के किये। मनुष्यभव की जो संख्या अनन्त भव है अथवा अनंत काल के बाद एक काल मिले, ऐसे अनन्त भव मिले। उससे अनन्त गुना नरक के भव असंख्य गुना अनन्त। एक मनुष्य का भव, असंख्य नारकी के। एक मनुष्य का भव, असंख्य नारकी के, ऐसा भगवान कहते हैं। आहाहा! मनुष्य की संख्या जो अनन्त है, उससे असंख्यात गुना अनन्त (भव) नरक में रहा तू। तूने विचार भी नहीं किया है, प्रभु! ऐसा कहते हैं। आहाहा! उससे असंख्य गुना अनन्त भव स्वर्ग के भी किये। शुभभाव बहुत किया तो नरक की संख्या से देव की संख्या के भव असंख्य गुना, नारकी के भव से असंख्य गुना अनन्त देव के भव (किये)। वहाँ से मरकर निकलकर तिर्यंच पशु में जाए। और नरक, निगोद के एवं तिर्यंच के भव तो अनन्त-अनन्त किये। आहाहा! यहाँ एक क्षण ज्यादा गर्मी लगे तो... आहा..! इससे तो अनन्त गुना गर्मी पहली नरक में है। और अनन्त गुना ठण्डी सातवीं नरक में है।

तो कहते हैं, **नरक के दुःख सुने जायें ऐसे नहीं हैं।** आहाहा! मिथ्यात्व का जोर देते हैं। मिथ्यात्व में अनन्त भव करने की ताकत है। इसलिए मिथ्यात्व का किसी भी प्रकार से त्याग कर। वह आता है, अभी आयेगा। **पैर में काँटा लगने जितना दुःख भी तुझसे सहा नहीं जाता,...** पैर में काँटा लगने जितना दुःख भी तुझसे सहा नहीं जाता **तो फिर जिसके गर्भ में...** गर्भ में अर्थात् शक्ति में। मिथ्यात्व। मिथ्याश्रद्धा वह चीज़ ही कोई ऐसी है। बहुत कठिन बात। आहाहा! शुभभाव करते-करते धर्म होगा। अशुभभाव में भी मजा आता है। अनुकूल सामग्री में मुझे ठीक पड़ता है। परन्तु सामग्री अनुकूल-प्रतिकूल कोई है ही नहीं। परमात्मा तो ऐसा कहते हैं कि तेरा स्वरूप ज्ञान और सारी दुनिया ज्ञान का ज्ञेय। ज्ञेय-जानने लायक ज्ञेय। उसमें यह भगवान अच्छे, (और यह बुरा)—ऐसे दो भाग नहीं है। ज्ञेय के दो भाग नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात है! तेरा स्वभाव ज्ञान और वह सब ज्ञेय। ज्ञेय में दो भाग मत कर। यह इष्ट है और यह अनिष्ट है, ऐसे दो भाग मत कर। जानने लायक है। तू जाननेवाला भिन्न है। आहा..!

यहाँ कहा, **जिसके गर्भ में...** अर्थात् शक्ति में **उससे अनन्तानन्तगुने दु:ख पड़े हैं,...** नरक से भी अनन्तानन्त दु:ख निगोद में पड़ा है। **ऐसे मिथ्यात्व को छोड़ने का उद्यम तू क्यों नहीं करता ?** आहाहा ! है ? **ऐसे मिथ्यात्व को छोड़ने का उद्यम तू क्यों नहीं करता ?** आहाहा ! विपरीत मानयता छोड़ने का उद्यम तो नहीं करता। विपरीत मान्यता किसको कहना, इसकी भी तुझे खबर नहीं पड़ती। आहाहा ! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूए नहीं। आहाहा ! गजब बात है ! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चूमे नहीं, छूए नहीं, स्पर्शे नहीं। आहाहा ! ऐसी चीज़ में अनन्तानन्त भव किये। मैं पर को कर सकता हूँ (ऐसा मानता है) । यहाँ तो कहते हैं, तू शरीर को छूता नहीं। और शरीर मेरा है, ऐसा माना। तो स्त्री को छूता नहीं, स्त्री को मेरी मानी। ये तूने क्या किया ? आहाहा ! **जिसके गर्भ में उससे अनन्तानन्तगुने दु:ख पड़े हैं, ऐसे मिथ्यात्व को छोड़ने का उद्यम तू क्यों नहीं करता ?** आहाहा !

रात्रि में बहिनों के बीच बोले होंगे, तो लिख लिया है। बहिन बोले। बहिन की वाणी है न यह ! आहाहा ! ऐसा भगवान ! नरक के एक क्षण के दु:ख सुने जाए नहीं। ऐसे अनन्त-अनन्त भव करने का जिसमें गर्भ अर्थात् शक्ति मिथ्यात्व-विपरीत मान्यता में है। विपरीत मान्यता के स्थूल असंख्य प्रकार, सूक्ष्म अनन्त प्रकार है। आहाहा ! समयसार में कहा है न ? कि पर को मैं जीवित रख सकता हूँ, वह मिथ्यात्व है। पर को मैं मार सकता हूँ, वह मिथ्यात्व है। आहाहा ! पर को मैं बचा सकूँ, पर मुझे बचा सके, वह मिथ्यात्व है। वह तो ठीक है, परन्तु उसमें ऐसा लिखा है कि मिथ्यात्व का यह एक भाग है। पूरा मिथ्यात्व नहीं। समझ में आया ? वहाँ टीका में है। मिथ्यात्व का एक भाग है। पर को जीवित रख सकता हूँ, मार सकता हूँ। उसमें पूरा मिथ्यात्व आ गया, ऐसा है नहीं। आहाहा ! पाठ है, समयसार में। आहाहा !

पर अनन्त-अनन्त चीजों में से प्रत्येक को तूने अपनी मानी है। आहा.. ! और यहाँ तो कहते हैं, आहा.. ! तेरी चीज़ के सिवा दूसरी चीज़ को तो तू छू सकता नहीं और यह तूने क्या किया ? मिथ्यात्व का अभिमान। आहाहा ! वह भी वहाँ ऐसा कहा, मैं सत्य बोल सकता हूँ, शरीर से ब्रह्मचर्य पाल सकता हूँ, वह भी मिथ्यात्व है। आहाहा ! और वह भी मिथ्यात्व का एक भाग है। समझ में आया ? मिथ्यात्व का एक अवयव है। पूरा मिथ्यात्व नहीं। आहा.. ! पूरा मिथ्यात्व में तो असंख्य और अनन्त प्रकार की विपरीतता पड़ी है।

आहाहा! जो कभी उसने ख्याल में, विचार में लिया ही नहीं। आहाहा! ऐसा समयसार शास्त्र में पाठ है। पर को मैं जिला सकता हूँ, पर से मैं जी सकता हूँ, पर को मैं सुखी कर सकता हूँ, पर से मैं सुखी होता हूँ, पर को मैं दु:खी कर सकता हूँ, पर से मैं दु:खी होता हूँ—यह सब मिथ्यात्वभाव है। फिर भी वहाँ ऐसा लिया है कि यह तो मिथ्यात्व का एक अवयव है। आहाहा! सारा मिथ्यात्व नहीं-पूरा मिथ्यात्व नहीं। आहाहा! यह तो एक मिथ्यात्व का अवयव है।

जिसमें अनन्त भव पड़े हैं, ऐसी जो अनादि की महा पर्यायबुद्धि-मिथ्यात्वबुद्धि.. आहाहा! **मिथ्यात्व को छोड़ने का उद्यम तू क्यों नहीं करता? गफलत में क्यों रहता है?** आहाहा! **ऐसा उत्तम योग पुनः कब मिलेगा?** ऐसा मनुष्यपना, पंचेन्द्रियपना, निरोगपना, लम्बा आयुष्य, आर्यक्षेत्र, जैनकुल में जन्म, जैन वाणी सुनने का योग.. आहा..! **ऐसा उत्तम योग पुनः...** वापस **कब मिलेगा?** आहाहा! यदि यह भव गँवाया तो पुनः कब मिलेगा? प्रभु! आहाहा! **ऐसा उत्तम योग पुनः कब मिलेगा? तू मिथ्यात्व छोड़ने के लिये...** विपरीत मान्यता छोड़ने के लिये **जी-जान से प्रयत्न कर,...** मरकर भी प्रयत्न कर। आहा..! वह आता है न? जघन्य अन्तर्मुहूर्त में मिथ्यात्व का नाश होता है, उत्कृष्ट छह महीने में कर, ऐसा कहा है। मरकर भी कर, ऐसा पाठ है। अमृतचन्द्राचार्य, समयसार। मरकर भी उद्यम कर। मरकर का अर्थ? दुनिया की दरकार छोड़ दे। मरकर अर्थात् मैं हूँ ही नहीं। पर के साथ मेरा कोई सम्बन्ध है ही नहीं। ऐसे अन्दर मरकर आत्मा का प्रयत्न कर। आहाहा! फुरसत कब मिले? बच्चों को सँभालना, स्त्री को सँभलना.. मरकर, वहाँ समयसार में ऐसा पाठ है। मरकर भी। मरकर का अर्थ? भले जान चली जाए, ऐसे कोई प्रसंग हो, परन्तु मिथ्यात्व को छोड़ने का प्रयत्न कर। आहा..! दुनिया की दरकार रहे नहीं, दुनिया तेरा माने नहीं, दुनिया प्रतिकूल हो जाए—ऐसा चाहे जो प्रसंग हो, परन्तु मिथ्यात्व छोड़ने का प्रयत्न तू कर। आहाहा! समझ में आया?

तू मिथ्यात्व छोड़ने के लिये जी-जान से... आहाहा! मरणपर्यन्त का प्रयत्न कर। **अर्थात् साता-असाता से भिन्न...** साता और और असाता जो है, उससे तो प्रभु भिन्न है। आहाहा! साता-असाता में रुक गया तो वस्तु पड़ी रही। अभी असाता टले, बाद में साता होगी तो मैं धर्म करूँगा। अनुकूल शरीर निरोग हो तो मैं धर्म करूँगा। अभी प्रतिकूल है,

मुझसे होता नहीं। अरे.. ! ऐसा तो अनन्त बार शुभभाव किया। **साता-असाता से भिन्न...** चाहे तो असाता हो, चाहे तो साता हो। उस क्षण भी तेरी चीज़ तो भिन्न है।

दूसरी बात। **तथा आकुलतामय शुभाशुभभावों से भी भिन्न...** लिया दो? एक साता-असाता संयोग। शरीर में रोगादि, निरोग आदि। वह भी तेरी चीज़ नहीं, छोड़। यह ध्यान कर। और **आकुलतामय शुभाशुभभावों से...** आहाहा! अशुभभाव हिंसा, झूठ, चोरी तो आकुलता है-दु:ख है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि भी दु:ख है। शुभभाव दु:ख है। गजब बात है! यह कहाँ माने? है? **आकुलतामय शुभाशुभभावों से भी भिन्न...** आहाहा! शुभ-अशुभभाव विकल्प जो शुभ-अशुभवृत्ति उठती है, भगवान की भक्ति आदि या पूजा या नाम स्मरण, शास्त्र बनाना या शास्त्र वन्दन करना, वह सब आकुलतामय भाव है। आहाहा! शुभाशुभभाव.. आकुलतामय से प्रभु तो भिन्न है। आहाहा! साता-असाता से तो भिन्न है, परन्तु आकुलतामय शुभ-अशुभभाव से भी आत्मा भिन्न है। आहाहा! लक्ष्मी, शरीर, कुटुम्ब से तो भिन्न है, परन्तु शुभाशुभभाव.. शुभ और अशुभ दोनों, हों! दोनों दु:खरूप है। आहा.. !

शुभाशुभभावों से भी भिन्न... तेरी चीज़ अन्दर भिन्न-पृथक् है। आहाहा! **शुभाशुभभावों से भी भिन्न ऐसे निराकुल ज्ञायकस्वभाव को...** आहाहा! शुभाशुभभाव आकुलता दु:ख है। साता-असाता तो पर। परन्तु उस आकुलता से भिन्न तेरा स्वभाव निराकुल ज्ञायकस्वभाव। आनन्दस्वरूप ज्ञायकस्वभाव। निराकुल अर्थात् आकुलता बिना। आनन्दस्वरूप तेरा भगवान अन्दर (है)। आहाहा! **निराकुल ज्ञायकस्वभाव को अनुभवने का...** आहाहा! जाणक.. जाणक.. जाणकस्वभाव जो अनाकुल है। शुभाशुभ आकुलता है। शुभाशुभ आकुलता से भिन्न **निराकुल ज्ञायकस्वभाव को अनुभवने का प्रबल पुरुषार्थ कर**। आहाहा! है उसमें? नहीं?

साता-असाता से भिन्न, शुभाशुभभाव आकुलतामय है; इसलिए दु:खरूप है। निराकुल ज्ञायकभाव... आहाहा! उसको अनुभवने का-उसका अनुभव करने का **प्रबल पुरुषार्थ कर**। आहाहा! अभी तो सत्य बात सुनने मिले नहीं.. आहाहा! एक जीव दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। ऐसी बात। और प्रत्येक द्रव्य में क्रमबद्धपर्याय होती है। एक के बाद एक। आहाहा! और प्रत्येक पदार्थ एक समय में उत्पाद, व्यय और ध्रुववाला है। उत्पाद,

ध्रुव की अपेक्षा रखता नहीं। ध्रुव, उत्पाद की अपेक्षा रखता नहीं। आहाहा! ऐसा समझने के प्रयत्न में तो महा पुरुषार्थ है। आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं तीन काल में। कभी सुना नहीं। और पुण्य-पाप का भाव आकुलता और दुःखमय है। भगवान आत्मा निराकुल ज्ञायकभाव है। आहाहा! और समय-समय में जो पर्याय उत्पन्न होती है, उस पर्याय को दूसरे द्रव्य की अथवा उसके उत्पाद और व्यय की अपेक्षा नहीं है। ऐसे तत्त्व को दृष्टि में ले, तेरे मिथ्यात्व का नाश होगा और अनुभव होगा। आहाहा!

श्रीमद् में भी रात को आया था न? स्वद्रव्य। आहाहा! स्वद्रव्य और परद्रव्य को भिन्न-भिन्न जान। आहाहा! स्वद्रव्य की रक्षा के लिये तीव्र प्रयत्न कर। उसमें तेरा हो। ऐसे ... है। आहाहा! तेरे स्वद्रव्य की रक्षा के लिये तीव्र हो। आहाहा! पर की रक्षा आत्मा कर सकता नहीं। आहाहा!

वह यहाँ कहा, **निराकुल ज्ञायकस्वभाव को अनुभवने का प्रबल पुरुषार्थ कर। यही इस भव में करनेयोग्य है।** आहाहा! ४१६ है। उसके बाद ४१७ है? ४१७ है। इसमें तो अब थोड़े बाकी है। यहाँ तो एक दिन रहना है, परसों तो मुम्बई जाने का है। लोगों का (भाव है)। ४१७ न?

सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते, बारम्बार स्वरूपलीनता होती रहे, ऐसी दशा हो, तब मुनिपना आता है। मुनि को स्वरूप की ओर ढलती हुई शुद्धि इतनी बढ़ गयी होती है कि वे घड़ी-घड़ी आत्मा में प्रविष्ट हो जाते हैं। पूर्ण वीतरागता के अभाव के कारण जब बाहर आते हैं, तब विकल्प तो उठते हैं परन्तु वे गृहस्थदशा के योग्य नहीं होते, मात्र स्वाध्याय-ध्यान-व्रत-संयम-तप-भक्ति इत्यादि सम्बन्धी मुनियोग्य शुभ विकल्प ही होते हैं और वे भी हठरहित होते हैं। मुनिराज को बाहर का कुछ नहीं चाहिए। बाह्य में एक शरीरमात्र का सम्बन्ध है, उसके प्रति भी परम उपेक्षा है। बड़ी निःस्पृह दशा है। आत्मा की ही लगन लगी है। चैतन्यनगर में ही निवास है। 'मैं और मेरे आत्मा के अनन्त गुण ही मेरे चैतन्यनगर की बस्ती है। उसी का मुझे काम है। दूसरों का मुझे क्या काम? इस प्रकार एक आत्मा की ही धुन है।

विश्व की कथा से उदास हैं। बस, एक आत्मामय ही जीवन हो गया है— मानों चलते-फिरते सिद्ध! जैसे पिता की झलक पुत्र में दिखायी देती है उसी प्रकार जिनभगवान की झलक मुनिराज में दिखती है। मुनि छठवें-सातवें गुणस्थान में रहें उतना काल कहीं (आत्मशुद्धि की दशा में आगे बढ़े बिना) वहीं के वहीं खड़े नहीं रहते, आगे बढ़ते जाते हैं; केवलज्ञान न हो तब तक शुद्धि बढ़ाते ही जाते हैं।—यह, मुनि की अन्तःसाधना है। जगत के जीव मुनि की अन्तरंग साधना नहीं देखते। साधना कहीं बाहर से देखने की वस्तु नहीं है, अन्तर की दशा है। मुनिदशा आश्चर्यकारी है, वन्द्य है॥४१७॥

४१७। **सम्यग्दर्शन होने के पश्चात्...** यहाँ पहले सम्यग्दर्शन की बात ली है। **सम्यग्दर्शन होने के पश्चात्...** आहाहा! **आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते,...** तब आत्मा की स्थिरता बढ़ती है। सम्यग्दर्शन बिना चारित्र-फारित्र तीन काल में होता नहीं। है? ४१७। **सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते, बारम्बार स्वरूपलीनता होती रहे,...** आहाहा! बाद में स्वरूप में लीनता बढ़ती रहे **ऐसी दशा हो, तब मुनिपना आता है।** आहाहा! यहाँ तो मुनिपना बाहर की क्रिया - पंच महाव्रत, नग्नपना, कपड़े छोड़े। आहाहा! मुनिपना तो परमेश्वरपद! पंच परमेष्ठी। पंच परमेष्ठी है मुनि। वह दशा तो अलौकिक है!

वह यहाँ कहते हैं कि **सम्यग्दर्शन होने के पश्चात्...** तब तक अटकना नहीं है, ऐसा कहते हैं। **आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते, बारम्बार स्वरूपलीनता होती रहे, ऐसी दशा हो, तब मुनिपना आता है।** और मुनिपना बिना चारित्र होती नहीं और चारित्र बिना मुक्ति होती नहीं। यह चारित्र। वस्त्र का एक टुकड़ा रखकर भी मुनिपना माने, मनावे तो निगोद में जाए, ऐसा शास्त्र में पाठ है। सूत्रपाहुड। कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! वस्त्र का एक टुकड़ा रखकर, तिल.. तिल। तिल का छिलका। छिलका कहते हैं? एक छिलके जितनी चीज़ भी यदि रखे, परवस्तु.. मुनि किसको कहें! '...' निर्विकल्प दृष्टि-ज्ञान, अनुभव, नग्नपना और बाहर में वस्त्ररहित नग्नपना। पाठ है, पाहेड़ में '...' ऐसे नग्न को मोक्ष है। इसके अतिरिक्त '...' सब उन्मार्ग है।

मुमुक्षु :- चौथे काल के मुनि की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- तीनों काल के मुनि की बात है। आहाहा! पाँचवें काल के मुनि तो बात करते हैं। समयसार। समयसार (के रचयिता) पाँचवें काल के मुनि थे। प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, पाँचवें काल के मुनि थे और पाँचवें काल के जीव को कहते हैं। यहाँ कहते हैं। चौथेवाले को नहीं। आहाहा! अरे..! अप्रतिबुद्ध को कहते हैं, आया न? तब तक आया? अप्रतिबुद्ध। कुछ भान नहीं है। ज्ञान की खबर नहीं है, उसको कहते हैं। सुन रे सुन, प्रभु! आहाहा! ऐसा अवसर तुझे मिलना मुश्किल है।

यहाँ वह कहते हैं, **बारम्बार स्वरूपलीनता होती रहे,...** स्वरूपलीनता। बारम्बार पंच महाव्रत के परिणाम और क्रिया (होती रहे), वह नहीं। आहाहा! होता है, परन्तु वह चीज़ नहीं है। वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! स्वरूपलीनता होती है, **ऐसी दशा हो, तब मुनिपना आता है।** यह पंचम काल के कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान जो कहते हैं, वह बात यह है। आहाहा! और पंचम काल के प्राणी को कहते हैं। या चौथे काल के प्राणी को कहते हैं? आहाहा!

मुनि को स्वरूप की ओर ढलती हुई शुद्धि... आहाहा! **स्वरूप की ओर ढलती हुई शुद्धि इतनी बढ़ गयी होती है...** आहाहा! इसको ख्याल भी न हो कि देव-गुरु-शास्त्र कैसे हो? देव अरिहन्त कैसे होते हैं, वह बात तो कल आयी थी। आज गुरु की बात आयी। मुनि.. मुनि। मुनि कैसे होते हैं? आहाहा! वस्त्र रहित, अन्दर विकल्प रहित जंगल में रहनेवाले। बाघ और भेडिये के बीच रहनेवाले। आहाहा! **मुनि को स्वरूप की ओर ढलती हुई शुद्धि इतनी बढ़ गयी होती है कि वे घड़ी-घड़ी आत्मा में प्रविष्ट हो जाते हैं।** आहाहा! देखो! यह मोक्ष का मार्ग। अन्दर स्थिरता दृष्टि-समकित सहित। आत्मअनुभव सहित मुनिपना आया है तो वह स्थिरता बारम्बार अन्दर में जाती है। है? **घड़ी-घड़ी आत्मा में प्रविष्ट हो जाते हैं।** आहाहा! क्षण में सातवाँ, क्षण में छठवाँ। एक क्षण में तो निर्विकल्प आनन्द, दूसरे क्षण में विकल्प आता है, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! उसको भी छोड़कर पुन: स्वरूप में अन्दर जाते हैं। आहाहा! जैसे झूला होता है न? झूला। झूला झूलते हैं न? वैसे मुनि छठवें-सातवें में झूलते हैं। आहाहा! अभी यह भी खबर न हो कि मुनि किसको कहें। यह तो अभी व्यवहारश्रद्धा है। आहाहा! व्यवहारश्रद्धा में भी भिन्न भगवान आत्मा है। परन्तु व्यवहार श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं, तो निश्चय तो कहाँ से आयेगी? आहाहा!

घड़ी-घड़ी आत्मा में प्रविष्ट हो जाते हैं। पूर्ण वीतरागता के अभाव के कारण... आहाहा! पंचम काल के मुनि वीतरागता प्रगट हुई है, परन्तु पूर्ण वीतरागता नहीं है। केवलज्ञान हो तब पूर्ण वीतरागता होती है। **पूर्ण वीतरागता के अभाव के कारण जब बाहर आते हैं...** अन्तर में से। आनन्द के ध्यान में से। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में प्रवेश किया है जिसने। उसके आनन्द में से बाहर आना पड़े.. आहाहा! तो विकल्प तो उठते हैं, राग तो मुनि को भी उठता है। अन्तर में ध्यान, श्रद्धा-समकित है। ध्यान में से उपयोग हट गया, परन्तु स्वरूप की दृष्टि और स्थिरता और शुद्ध परिणति तो है। तो कहते हैं, जो विकल्प उठा.. आहाहा! **परन्तु वे गृहस्थदशा के योग्य नहीं होते,...** उसको राग आता है। परन्तु गृहस्थाश्रम में जैसा राग (होता है), वैसा राग मुनि को होता नहीं। आहाहा! पैसे इकट्ठे करना...

मुमुक्षु :- पूछते हैं कि आज के जो मुनि हैं, वे सच्चे मुनि हैं या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री :- आप समझ लो। आहाहा! ...

मुमुक्षु :- वे कहते हैं, जैसे श्रावक ऐसे मुनि।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं चले। श्रावक तो समकिती हो तो राजपाट में भी पड़े हो। मुनि को तो एक वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं (होता), और विकल्प उठे, वह भी दु:खरूप लगे। आहाहा! अन्तर में ध्यान में इतनी लीनता है कि बाहर निकलना पड़े, वह तो दु:ख है, दु:ख, दु:ख लगता है। पंच महाव्रत का परिणाम भी दु:खरूप लगता है। आहाहा! अरे..! ऐसा मुनिपना। परन्तु सेठ लोगों को दरकार नहीं होती। अपने तो बहुत पाप करते हैं और ये पाप करते नहीं। जय नारायण करो। यह तो दृष्टान्त.. आहाहा!

मुमुक्षु :- सेठ कहते हैं, गाँव में मुनि आये तो भूखे जाने देना?

पूज्य गुरुदेवश्री :- व्यक्तिगत... इसमें से समझ लो न। किसने पूछा? आहाहा! सेठ। व्यक्तिगत... नहीं, किसी के प्रति हमें तो अनादर है नहीं। वह भी भगवान है, भूल गया है। आहाहा! मुनिदशा... आहाहा! वह तो कहा था न। मनोहरलालजी, वर्णीजी के शिष्य। जयपुर में आये थे। चल बसे, किसी ने मार डाला। पुस्तक का व्यापार करते हैं, पुस्तक बनाते हैं, उसमें पाँच लाख रुपया इकट्ठा किया होगा। क्षुल्लक को ऐसा धन्धा होता

है ? ... आधे घण्टे पहले कुछ नहीं था। ... कोई कहता था, मूल हेतु तो ऐसा लगता है कि पाँच लाख रुपये का पुस्तक बेचे न। वह उसके पास थे। अब, मुझे यहाँ से छोड़कर वहाँ ईसरी जाना है, तो पैसा लाईए। फिर कुछ भी हो।

मुझे तो दूसरा कहना है कि जयपुर मेरे पास आये थे। तो उसने प्रश्न किया। दो प्रश्न (किये) कि राग और द्वेष को दुःख क्यों कहते हैं ? राग और द्वेष, पुण्यभाव को धर्म नहीं है, ऐसा क्यों कहते हैं ? और पुद्गल क्यों कहते हैं ? दया, दान, पाँच महाव्रत का परिणाम को पुद्गल क्यों कहते हैं ? ऐसा प्रश्न किया। मैंने कहा, वह जड़ है, चैतन्य नहीं। उसमें चैतन्यस्वभाव का राग में अभाव है, इसलिए उसको छुड़ाने के लिये पुद्गल का कहा। और दूसरी बात वह कही कि अभी वर्तमान साधु, श्रावक के लिये, क्षुल्लक के लिये आहार बनाकर देते हैं, तो वह क्षुल्लक अथवा साधु तो कहते नहीं है कि हमारे लिये बनाओ। तो करते नहीं, करवाते नहीं। तो उसके लिये बनाया हुआ ले, उसमें उद्देशिक है या नहीं ? मैंने कहा, उद्देशिक है। मैंने तो शान्ति से कहा। शान्ति से सुनते थे। जयपुर। गोदिकाजी के बँगले में। मैंने कहा, उद्देशिक (है)। मैंने कहा, क्या कहूँ ? जिसके लिये (बनाया), वह आहार लेते हैं, भले उसने करवाया नहीं, कर्ता नहीं परन्तु उसके लिये बनाया हुआ लेते है, वह द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी नहीं है। द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी नहीं है। शान्ति से कहा था। मैंने तो कहा, भगवान का प्रभु का विरह पड़ा, तीर्थंकर देव यहाँ नहीं है और उनके अर्थ विपरीत करना कि उनके लिये किया है, परन्तु वह करता नहीं है और करवाता नहीं है, इसलिए उसको क्या ? अरे.. ! उसे मालूम पड़ता है कि यह मेरे लिये बना है। समझ में आया ? और लेते हैं तो वह तो है नहीं, मार्ग नहीं है। अपने को व्यक्ति का क्या काम है ? सबके परिणाम की जिम्मेदारी सबकी है। यह तो वस्तु का स्वरूप भगवान कहते हैं, वैसा कहते हैं। कोई व्यक्ति के प्रति (द्वेष नहीं है)। व्यक्ति-भगवान बेचारा दुःखी मिथ्यात्व का सेवन करेगा तो दुःख होगा। कोई दुःखी हो, ऐसी भावना होती है क्या ? कोई प्राणी दुःख न हो, सब भगवान होओ ! मिथ्यात्व और अज्ञान को टालकर परमात्मपद को प्रगट करो, प्रभु ! ऐसी भावना होती है। धर्मी की तो ऐसी भावना होती है। द्रव्यसंग्रह में है। द्रव्यसंग्रह में यह पाठ है। संस्कृत टीका। अवाय।

धर्मी अवाय अर्थात् विचार करते हैं, आणायविचय, विपाकविचय अवायविचय,

ऐसे चार बोल है। धर्म के विचार के चार बोल। उसमें एक अवाय है। द्रव्यसंग्रह में पाठ है। धर्मी ऐसा विचार करते हैं कि मैं तो मेरा स्वरूप प्राप्त करके आठ कर्म का नाश करूँगा ही। मेरी चीज़ में वह है ही नहीं। मैं तो अतीन्द्रिय आनन्दमय हूँ। मेरी पर्याय एक समय की है, वह भी मेरी चीज़ में नहीं। मैं तो पूर्णानन्द का नाथ हूँ, (ऐसा) पर्याय निर्णय-अनुभव करती है। अनुभव कहीं द्रव्य का नहीं होता। अनुभव तो पर्याय का होता है। वह पर्याय ऐसा अनुभव करे कि मैं तो आठों कर्म से रहित हो जाऊँगा। मैं तो नहीं, अपितु सर्व जीव आठ कर्म से रहित हो जाओ। ऐसा पाठ है। कोई व्यक्ति के प्रति द्वेष या राग हो सकता नहीं। व्यक्ति की जिम्मेदारी व्यक्ति (पर है)।

वहाँ तो ऐसी भावना ली है। आहाहा! सर्व प्राणी। प्रभु! तू आत्मा है न! आठों कर्म से रहित हो जाओ। आहाहा! द्रव्यसंग्रह में है। अवायविचय के पाठ में। आहाहा! और ३८ गाथा में है। हे जीवो! सर्व लोकालोक को जानने की चीज़ है, उसमें आ जाओ। है न? भाई! ३८ गाथा में है। आ जाओ। सर्व जीव, मैं एक ही नहीं, सर्व जीव। ज्ञायकस्वरूप भगवान लोकालोक को जाननेवाला है, उसमें आ जाओ। आहाहा! समयसार की ३८ गाथा में है। किसी के प्रति नहीं, सब भगवान हो जाओ। है न वह शब्द? क्या शब्द है? '**मज्जन्तु**'। अन्दर आ जाओ। अन्तर में आ जाओ। '**मज्जन्तु**' अर्थात् अन्तर में आ जाओ। ऐसा पाठ है। समयसार। आहाहा! किसी के प्रति.. अरेरे..! भाई! दुःख का अंश दूसरों को हो, उसका तू अनुमोदन करे तो तुझे भी पाप लगा। पर को दुःख हो, तो तूने दुःख का अनुमोदन किया। आहाहा! गजब बात है! सब भगवान अन्तर सच्चिदानन्द प्रभु है।

वह कहते हैं, पूर्ण वीतरागता न हो तो मुनि को विकल्प उठते हैं, **परन्तु वे गृहस्थदशा के योग्य नहीं होते,...** गृहस्थाश्रम में स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, व्यापार हो, ऐसा विकल्प नहीं होता। मात्र पंच महाव्रतादि, शास्त्र श्रवण का, शास्त्र रचना का ऐसा विकल्प मुनि को आता है। **मात्र स्वाध्याय-ध्यान-व्रत-संयम-तप-भक्ति इत्यादि सम्बन्धी मुनियोग्य...** वह मुनि के लायक **शुभ विकल्प ही होते हैं...** शुभराग होता है। आहाहा! **और वे भी हठ रहित होते हैं।** हठ नहीं, सहज आ जाता है। अशुभ से बचने को कहना, वह भी व्यवहार है। परन्तु उस समय क्रमबद्ध में शुभ आता ही है। शुद्धता में तो दृष्टि पड़ी है, शुद्ध परिणति तो है। परन्तु क्रम में आनेवाले में वह राग क्रमबद्ध में आ जाता है। उसको

जानते हैं, हठ नहीं है। हठ से शुभभाव बनाऊँ, (ऐसा नहीं होता)। आहाहा! समझ में आया? **हठ रहित होते हैं।**

मुनिराज को बाहर का कुछ नहीं चाहिए। बाहर का कुछ नहीं चाहिए। अन्दर का परिपूर्ण चाहिए। आहाहा! **बाह्य में एक शरीरमात्र का सम्बन्ध है,...** मुनि को तो एक शरीर होता है, दूसरी कोई चीज़ है नहीं। श्वेताम्बरमत तो दो हजार साल पहले निकला। दूसरी कोई चीज़ है नहीं। श्वेताम्बर मत तो दो हजार साल पहले निकला। दिगम्बर में से निकला है। उसे वस्त्र, पात्र (होते हैं), वह सब तत्त्व से विरुद्ध है। आहाहा! दूसरों को दुःख लगे। वस्त्र की गठरी उठाये और कहलाये निर्ग्रन्थ। निर्ग्रन्थ! यहाँ कहते हैं, मुनि को तो शरीरमात्र अकेला होता है। आहाहा!

श्रीमद् में भी आता है न? मात्र शरीर। संयम हेतु... शरीर। संयम हेतु होय जो। संयम के हेतु से, निमित्त से शरीर होता है। बाकी कोई चीज़ नहीं। श्रीमद् अपूर्व अवसर में भावना भाते हैं। अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा? कब बाह्याभ्यन्तर निर्ग्रन्थ होऊँ। पुस्तक है हिन्दी में? हिन्दी है, अपूर्व अवसर। श्रीमद् का है न। देखो!

यह अपूर्व अवसर मेरा कब आयेगा?
कब होऊँगा बाह्यांतर निर्ग्रंथ मैं?
सब प्रकार के मोह बंध को तोड़कर,
कब विचरूँगा महत् पुरुष के पंथ में।
कब दिगम्बर मुनि मुद्रा को पाऊँगा
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आयेगा?

हिन्दी में है। राजमल पर्वया है न? भोपाल। राजमल पवैया। उसने बनाया है। पूरा हिन्दी में।

यहाँ इतना कहते हैं, **शरीरमात्र का सम्बन्ध है, उसके प्रति भी परम उपेक्षा है। बड़ी निःस्पृह दशा है। आत्मा की ही लगन लगी है।** विशेष है, लो...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र कृष्ण - ६, मंगलवार, तारीख ३०-९-१९८०
वचनामृत -४१७, ४१९ प्रवचन-४७

मुनि की दशा की बात चलती है। वचनामृत। यहाँ तक आया है। शरीरमात्र का सम्बन्ध है। मुनि को तो शरीरमात्र का सम्बन्ध है, दूसरा कोई सम्बन्ध है नहीं। अन्तर आनन्द का निधान अन्दर जगा... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना जहाँ खुल गया, उसे ... मुनिपना किसको... वह जान सकते नहीं। बाह्य की क्रिया हो तो माने।

यहाँ कहते हैं कि उन्हें शरीर सम्बन्ध है, **उसके प्रति भी परम उपेक्षा है**। शरीर पर भी परम उपेक्षा है, आदर जरा भी नहीं है। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन के समक्ष शरीर प्रति भी उपेक्षा है। **बड़ी निःस्पृह दशा है**। बहुत निःस्पृह दशा होती है। **आत्मा की ही लगन लगी है**। आहाहा! मुनि को तो अन्तर की लगन लगी है, बाहर किसी का सम्बन्ध ही नहीं करते। **चैतन्यनगर में ही निवास है**। आहाहा! चैतन्यनगर। अनन्त-अनन्त चैतन्य रत्नाकर से भरा ऐसा भण्डार भगवान आत्मा। अनन्त चैतन्य रत्न आकर - उसका सागर है आत्मा। आहाहा! उसमें निवास है। चैतन्यनगर में निवास है। वहाँ स्थान है। बाहर शरीर, वाणी, मन, राग में निवास नहीं है। आहाहा!

'मैं और मेरे आत्मा के अनन्त गुण ही मेरे चैतन्यनगर की बस्ती है।' धर्मी मुनि ऐसा जानते हैं, **'मैं और मेरे आत्मा के अनन्त गुण ही मेरे चैतन्यनगर की बस्ती है।'** चैतन्यनगर की तो यह बस्ती है अन्दर। आहाहा! ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, जीवत्व, चिति, दर्शि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व—ऐसी-ऐसी अनन्त शक्तियों से भरा पड़ा भगवान है। उस पर तो नजर नहीं है और क्रियाकाण्ड पर नजर है, वह कोई मुनिपना और धर्म है नहीं। आहाहा!

यहाँ वह कहते हैं, मेरे चैतन्यनगरी में मेरी बस्ती है। **उसी का मुझे काम है। दूसरों का मुझे क्या काम? इस प्रकार एक आत्मा की ही धुन है**। आहाहा! **विश्व की कथा**

से उदास हैं। अपने आत्मा के सिवा दुनिया की वार्ता-कथा जगत की कोई भी, उससे उदास हैं। **बस, एक आत्मामय ही जीवन हो गया है...** आहाहा! इस जीवन के बिना मुनिपना है नहीं और उसके बिना मुक्ति है नहीं। अकेले सम्यग्दर्शन-ज्ञान से भी मुक्ति नहीं होती। साथ में ऐसे आनन्द और चारित्र की रणमता होती है, तब तीनों मिलते हैं— सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तब उसकी मुक्ति होती है। आहाहा!

मानों चलते-फिरते सिद्ध! आहाहा! मुनि अर्थात् आहाहा! नियमसार में तो लिखा है कि मुनि में और वीतराग में कुछ भी अन्तर माने, अरेरे..! हम जड़ हैं। यह श्रीमद् में डाला है। श्रीमद् का पुस्तक है न,पुण्यविजय का। पुण्यविजय श्वेताम्बर थे न? यहाँ एक महीने रहे थे। बाद में ववाणिया रहे। उसने इमसें से सब निकालकर डाला है। उसमें यह भी डाला है। नियमसार में ऐसा कहते हैं, ऐसा डाला है। आहाहा! अरे..! मुनि तो किसे कहें! आहा..! जिसके अन्दर वीतरागता के ढाले ढल गये हैं। जिसकी बस्ती में अकेली आनन्द और शान्ति भरी है। आहा..! (आत्मामय ही) जीवन हो गया है। **मानों चलते-फिरते सिद्ध!** हैं।

जैसे पिता की झलक पुत्र में दिखायी देती है... क्या कहते हैं? पिता का जो शरीर का आकार आदि है, वह **जैसे पिता की झलक पुत्र में दिखायी देती है...** पिता की झलक पुत्र में दिखायी देती है। समझ में आया? पुत्र के अन्दर उसके पिता की झलक दिखती है। उसके चेहरे पर, उसके आकार में... **उसी प्रकार जिनभगवान की झलक मुनिराज में दिखती है।** आहाहा! गजब बात है! पिता की झलक पुत्र में दिखती है, उसी प्रकार वीतराग त्रिलोकनाथ भगवान की झलक। वीतराग.. वीतराग विम्ब शान्त। अन्तर में उतर गये हैं पताला तल में। ध्रुव तल में उतर गये हैं। ऊपर की पर्याय में अन्दर में तल में उतर गये हैं। ऐसे भगवान की झलक उसमें भी दिखने में आती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुनि छठवें-सातवें गुणस्थान में रहें, उतना काल कहीं (आत्मशुद्धि की दशा में आगे बढ़े बिना) वहीं के वहीं खड़े नहीं रहते,... क्या कहते हैं? मुनिदश तो छठवाँ गुणस्थान और सातवाँ क्षण में। क्षण में निर्विकल्प आनन्द और क्षण में छठ्ठा। ऐसे काल में भी शुद्धि वृद्धि रहती है, ऐसा कहते हैं। वहीं छठवें-सातवें में खड़े हैं, इसलिए छठ्ठी-सातवीं भूमिका की एक ही दशा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! छठ्ठे-सातवें भी अन्दर शुद्धि-

शुद्धि आनन्द का नाथ, चैतन्यनगरी में बसे। ऐसी सन्तों की वीतरागी दशा। पिता की झलक जैसे पुत्र में आती है, वैसे वीतराग केवलज्ञान की झलक उसमें है। आहाहा! है ?

क्या कहते हैं ? छठवें-सातवें गुणस्थान में रहते हैं तो शुद्धि बढ़ती नहीं है और वहीं के वहीं खड़े हैं, ऐसा नहीं है। छठवें-सातवें में भी पर्याय की शुद्धि तो बढ़ती है। भले गुणस्थान न बदले। गुणस्थान छठ्ठा-सातवाँ (रहता है), परन्तु शुद्धि की वृद्धि अन्दर होती रहती है। आहाहा! **वहीं के वहीं खड़े नहीं रहते, आगे बढ़ते जाते हैं; केवलज्ञान न हो, तब तक शुद्धि बढ़ाते ही जाते हैं**। आहाहा! देखो! यह मार्ग मोक्ष का। **यह, मुनि की अन्तःसाधना है। जगत के जीव मुनि की अन्तरंग साधना नहीं देखते**। बाहर देखते हैं। क्रिया कैसी है ? नग्न हुए और यह किया, वह किया। आहाहा! **जगत के जीव मुनि की अन्तरंग साधना नहीं देखते। साधना कहीं बाहर से देखने की वस्तु नहीं है,...** आहाहा! **अन्तर की दशा है**। अन्तर आत्मा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अन्तर की दशा, वह मुनिपना है। बाह्य की क्रिया कोई मुनिपना है नहीं। **मुनिदशा आश्चर्यकारी है, वन्द्य है**। वन्दनीक है। परन्तु यह मुनिदशा हो वह। अब यहाँ एकदम लेकर पूरा किया था।

प्रश्न—हम अनन्त काल के दुखियारे; हमारा यह दुःख कैसे मिटेगा ?

उत्तर—'मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, विभाव से भिन्न मैं ज्ञायक हूँ' इस मार्ग पर जाने से दुःख दूर होगा और सुख की घड़ी आयेगी। ज्ञायक की प्रतीति हो और विभाव की रुचि छूटे—ऐसे प्रयत्न के पीछे विकल्प टूटेगा और सुख की घड़ी आयेगी। 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भले ही पहले ऊपरी भाव से कर, फिर गहराई से कर, परन्तु चाहे जैसे करके उस मार्ग पर जा। शुभाशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का ज्ञायकरूप से अभ्यास करके ज्ञायक की प्रतीति दृढ़ करना, ज्ञायक को गहराई से प्राप्त करना, वही सादि-अनन्त सुख प्राप्त करने का उपाय है। आत्मा सुख का धाम है, उसमें से सुख प्राप्त होगा ॥४१९॥

४१९ बोल में बहिन को प्रश्न किया है। ४१९ है ? यह तो अन्तर की बात है। आहाहा! बहिन को प्रश्न किया कि **हम अनन्त काल के दुखियारे;...** आहाहा! किसी ने बहिन को प्रश्न किया होगा। हम अनन्त काल के दुखियारे हैं, इतना तो निर्णय हुआ। हम

दु:खी हैं। चाहे तो लक्ष्मी का साधन आदि हो बाहर का कुछ भी, आहाहा! कल आया था न नरेश? कितने? दस-बारह करोड़ रुपये हैं उसके पास। दस-बारह करोड़-धूल। परन्तु है नरम आदमी। उद्दत नहीं। स्थानकवासी। स्थानकवासी है, फिर भी दिगम्बर में दिया। पाँच लाख की जमीन और ढाई लाख रुपया ऊपर दिया। साढ़े सात लाख। दिगम्बर मन्दिर बनाने के लिये।

मुमुक्षु :- आपकी लकड़ी घूमी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- ... इतना तो उसे हुआ कि वहाँ पाँच लाख की जमीन दी थी। और एक लाख ग्यारह हजार कहा था। परन्तु यहाँ आकर दर्शन करके ऐसा लगा.. ओहोहो! यह! एक लाख ग्यारह हजार कहा था, उसके ढाई लाख किये। इतना बढ़ाया। करोड़पति। दस-बारह करोड़, कहते हैं। आठ-दस करोड़। वह बाहर की चीज़ है। उसमें राग की मन्दता हो तो पुण्य हो। पाँच लाख क्या, पचास करोड़ दे दे न, राग की मन्दता हो तो पुण्य बँध जाये। धर्म नहीं, उसमें किंचित् धर्म नहीं है। आहाहा!

यहाँ बहिन के पास ऐसा प्रश्न रखा गया है। **हम अनन्त काल के दुखियारे;...** आहाहा! हम अनन्त काल के दु:खी (हैं)। इतना निश्चित हुआ कि हम सुखी नहीं हैं। यह साधन-बाधन, शरीर, पैसा, इज्जत... आहाहा! शान्तिभाई! दुखियारे (हैं)। हीरा-माणेक का बड़ा व्यापार हो, सब सुखी कहते हैं। करोड़पति है। आहाहा! यहाँ बहिन को प्रश्न किया, **हम अनन्त काल के दुखियारे;...** अनन्त काल से दु:खी। **हमारा यह दु:ख कैसे मिटेगा?** बहुत अच्छी बात आयी है। आहाहा! इसके पहले वाला जल्दी से ले लिया। यह ... है न। आहाहा! **हमारा यह दु:ख कैसे मिटेगा?** आहाहा!

बहिन का उत्तर है। '**मैं ज्ञायक हूँ,**' आहाहा! कहाँ ले गये? तल में ले गये। मैं तो ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. जानन-देखन, ऐसा ज्ञायकभाव का पिण्ड मैं हूँ। ज्ञायक, मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, '**विभाव से भिन्न मैं ज्ञायक हूँ**' आहाहा! पुण्य और पाप का, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध भाव विभाव से मेरी चीज़ विरक्त (है)। वैराग्य की व्याख्या आयी है। वैराग्य अर्थात् स्त्री, कुटुम्ब छोड़ दे, लाखों की कमाईवाला धन्धा छोड़ दे, इसलिए वैराग्य है, उसकी भगवान ना कहते हैं। वैराग्य की व्याख्या समयसार में, पुण्य-पाप (अधिकार) में ऐसे की है कि शुभ और अशुभभाव से हटकर स्वभाव में आये

तो वैराग्य कहा जाता है। आहाहा! उसका नाम वैराग्य। अकेला नग्न मुनि हो और हजारों रानियाँ छोड़ दी, बाहर का परीषह-उपसर्ग सहन करे। समझ में आया? इसलिए वह धर्मी है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

विभाव से भिन्न... यह पुण्य-पाप अधिकार में है। वैराग्य किसको कहते हैं? वैराग्य की व्याख्या क्या? ऐसा पुण्य-पाप अधिकार में है। शुभभाव और अशुभभाव। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा शुभभाव और अशुभभाव-दोनों से रक्त है, वह संसार में दु:खी प्राणी है। उससे विरक्त है और स्वभाव की दृष्टि सहित पुण्य-पाप के भाव से रहित है, उसका नाम वैराग्य कहने में आता है। आहाहा! निर्जरा अधिकार में है न? भाई! ज्ञान और वैराग्य। शुरुआत की गाथाओं में। पण्डितजी! शुरुआत की गाथा में ज्ञान और वैराग्य धर्मी को होते हैं। ज्ञान सम्यक् और वैराग्य। निर्जरा अधिकार की प्रथम गाथाओं में। ज्ञान का अर्थ ज्ञायक। मैं ज्ञायक ऐसा अनुभव, दृष्टि में आना... आहाहा! मैं तो चैतन्यज्योति जलहल ज्योति आनन्द का नाथ ज्ञायक। आहाहा! मेरी पर्याय में भी समृद्धि ऋद्धि का पार नहीं। परन्तु उतना ही नहीं। आहाहा! मेरी पर्याय अनन्त सिद्ध को स्वीकारे, अनन्त तीन काल के तीर्थंकरों को स्वीकारे, फिर भी उसकी कीमत नहीं है। आहाहा! अन्तर में ज्ञायक - स्वभाव चैतन्यज्योत जलहल ज्योत विराजती है, वह अस्ति-ज्ञायक; और विभाव से भिन्न-यह नास्ति—यह अनेकान्त।

अज्ञानी अनेकान्त ऐसा कहता है कि आत्मा का ज्ञान और शुभराग। शुभराग करते-करते कल्याण होगा। वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! यहाँ तो एक अस्तिरूप ज्ञायकभाव त्रिकाल ज्ञायकभाव। चैतन्य की मूर्ति अकेली अरूपी ज्ञानघन आनन्दघन, यह अस्ति। इस सत्ता का स्वीकार, यह अस्ति। और पुण्य, शुभ-अशुभभाव से विरक्त, विभाव से भिन्न, वह वैराग्य। आहाहा! यह ज्ञान और वैराग्य, दोनों एकसाथ होते हैं। समझ में आया? वैराग्य हुआ और ज्ञान नहीं है, ऐसा भी नहीं है और ज्ञान हुआ और वैराग्य नहीं है, (ऐसा भी नहीं होता)। आहाहा!

ज्ञान तो इसको कहते हैं कि, अपने चैतन्य का अनुभव। इससे अतिरिक्त पुण्य-पाप के विकल्प से विरक्त-वैराग्य। दुखियारे का दु:ख कैसे छूटे, उसका उत्तर (है)। आहाहा! किसी बहिन ने पूछा होगा, ऐसा लगता है। हम अनन्त काल के दुखियारे। आहाहा!

एकेन्द्रिय से लेकर नौवीं ग्रैवेयक के भव, सब दु:खरूप भव। करोड़ोपति, अरबोंपति मनुष्य मैं अनन्त बार हुआ परन्तु मैं दुखियारा, मैं दु:खी हूँ। आहाहा! मुनि पंच महाव्रत धारण करके नौवीं ग्रैवेयक गया, तो भी दुखियारा है। आहाहा! बड़ी कठिन बातें। इस प्रश्न का उत्तर है।

हम अनन्त काल के दुखियारे... अनन्त काल के दुखियारे। **हमारा यह दु:ख कैसे मिटेगा?** यह मुद्दे का प्रश्न है। अन्दर अस्ति-नास्ति की दृष्टि कर। एक तो ज्ञायकस्वरूप मैं त्रिकाली हूँ, ऐसी। और परभाव से विरक्त, विभाव से विरक्त भिन्न। विरक्त कहो या भिन्न कहो। विभाव से विरक्त / भिन्न मैं ज्ञायक हूँ। आहाहा! यह दु:ख छूटने का उपाय है। दूसरा कोई क्रियाकाण्ड (नहीं है)। लोगों को कठिन लगता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं कि चारित्र को मानते नहीं हैं। बापू! चारित्र तो महा परमेश्वर है। चारित्र किसको कहना? किसको कहना चारित्र? यह क्रियाएँ—बाहर से छोड़कर नग्न हो गया तो चारित्र हो गया? आहाहा!

अन्तर ज्ञायकभाव का अनुभव और विभाव से भिन्न विरक्त, यह ज्ञान और वैराग्य, दु:ख से मुक्त होने का उपाय है। आहाहा! है? **इस मार्ग पर जाने से...** इस मार्ग पर अन्दर जाने से **दु:ख दूर...** आहाहा! किसी ने यह प्रश्न किया था, लिखा था। ४१९ पढ़ना। जब आयेगा, तब बात। आज आ गया। किसी ने लिखा होगा। क्या कहते हैं?

इस मार्ग पर जाने से... क्या मार्ग? मैं ज्ञायक अस्तिरूप से ज्ञायकस्वभाव त्रिकाल जानन (स्वभाव का) पिण्ड स्वभाव, ध्रुव, ज्ञायक ध्रुव और परभाव से विरक्त। यह दु:ख से मुक्त होने का एक ही उपाय है। परमात्मा त्रिलोकनाथ ने फरमाया है। आहाहा! **सुख की घड़ी आयेगी।** दु:ख का नाश होगा और सुख की घड़ी आयेगी, आनन्द आयेगा। आहा..! ऐसा पूछा था न कि हम दुखियारे हैं, हमारा दु:ख कैसे टले? यहाँ ज्ञायकभाव अन्दर और परभाव से विरक्त, यह दु:ख से मुक्त होने का मार्ग और सुख की घड़ी आयेगी। तेरे आनन्द का अनुभव होगा। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आयेगा। ४१९ है न? समझ में आया? आहाहा!

ज्ञायक की प्रतीति हो और विभाव की रुचि छूटे... आहाहा! कैसा प्रयत्न

करना ? कैसा पुरुषार्थ करना ? ४७ शक्ति है। अनन्त शक्ति आत्मा में है। परन्तु ४७ नाम है। समयसार में। उसमें एक वीर्यशक्ति-पुरुषार्थ (है)। इस पुरुषार्थ का फल क्या ? तेरे स्वरूप की रचना करे, वह पुरुषार्थ। पर की रचना तो कर सकते ही नहीं, परन्तु शुभ-अशुभभाव की रचना करे, वह भी पुरुषार्थ नहीं, वह नपुंसक है। आहाहा ! नपुंसक समझे ? नपुंसक को वीर्य नहीं होता तो पुत्र नहीं होता। यह पावैया / हिजड़ा। ऐसे वहाँ समयसार में परमात्मा का फरमान है... आहाहा ! पुण्य-पाप अधिकार में और अजीव अधिकार में, दो जगह, दो जगह अधिकार है। क्लीव। जो कोई प्राणी.. आहाहा ! अपना स्वभाव सन्मुख होकर शुद्धता नहीं प्रगट करता है और शुद्धता को धर्म नहीं मानता है और शुभभाव करने से धर्म मानता है, वह नपुंसक-हिजड़ा है। साधु को कहाँ पड़ी है ? सेठ को ठीक लगे या न लगे। पाठ में लिया है। क्लीव। संस्कृत में क्लीव (है), अर्थ में नपुंसक (है)। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं, **ज्ञायक की प्रतीति हो और विभाव की रुचि छूटे—ऐसे प्रयत्न के पीछे विकल्प टूटेगा...** ऐसे प्रयत्न के पीछे राग टूट जायेगा। आहा.. ! निर्विकल्प दृष्टि सम्यग्दर्शन होगा। आहा.. ! यह रीति है। बाकी सब रीति की बातें करे। लाख बात की बात.. आता है न छहढाला में ? छहढाला में। लाख बात क्या, अनन्त बात। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद निज आतम ध्यावो।' छहढाला में आता है। समझ में आया ? भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाव और उसके प्रयत्न करने से विकल्प टूटेगा और सुख की घड़ी आयेगी। आहाहा! और आनन्द का काल-आनन्ददशा तुझे प्रगट होगी। आहाहा ! अनन्त काल का दु:ख, अनन्त काल में अरबोंपति हुआ, अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक का देव हुआ, सब दु:खी। उस दु:ख से मुक्त होने का उपाय, एक ज्ञायकभाव और विभाव-पुण्य-पाप से विरक्त, उसको दु:ख की एकता टूट जायेगी और सुख की घड़ी अर्थात् काल, तेरे आनन्द का स्वकाल प्राप्त होगा। आहाहा ! यह उपाय है।

विकल्प टूटेगा और सुख की घड़ी आयेगी। घड़ी समझे ? सुख का काल। अन्तर आनन्द का काल तुझे आयेगा। दु:ख का काल नाश कर आनन्द का काल, घड़ी अर्थात् काल (आयेगा)। आहाहा ! परन्तु अन्दर ज्ञायकस्वरूप पर दृष्टि जाकर, शुभ-अशुभभाव जो विभाव, उससे भिन्न होकर ज्ञायक में जाने से तेरे सुख का काल आयेगा। तेरे स्वकाल में-पर्याय में आनन्द आयेगा। आहाहा ! जो दु:ख अनन्त काल का है, उस दु:ख का व्यय

होगा और आनन्द की उत्पत्ति होगी और ध्रुव की दृष्टि होगी। आहाहा! अनन्त काल के दु:ख का नाश होगा और अपूर्व-अनन्त काल में नहीं प्राप्त हुआ, ऐसे सुख का काल मिलेगा, आनन्द आयेगा। आनन्द है, वह उत्पाद; दु:ख का नाश, सो व्यय और आनन्द की उत्पत्ति द्रव्य के आश्रय से-ज्ञायक के आश्रय से होती है। आहाहा! इसके सिवा कोई उपाय नहीं। आहाहा! है ?

'मैं ज्ञायक हूँ'... देह में जाननेवाला मैं हूँ। बस, ज्ञायक ही एक हूँ। मेरे में कोई शरीर, वाणी, मन तो नहीं, परन्तु दया, दान, भक्ति का परिणाम भी मेरे में नहीं। वह मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! दुखियारे का दु:ख छूटने का उपाय कहते हैं। आहाहा! बहिन की वाणी यह है। परन्तु यह भगवान की वाणी है। भगवान ने कहा, वह कहते हैं। आहाहा! समयसार में पुण्य-पाप अधिकार में वह कहा है। आहाहा! अथवा निर्जरा अधिकार में। ज्ञान और वैराग्य शक्ति धर्मी की होती है। पहली गाथा में है। ज्ञान का अर्थ आत्मा का अनुभव और वैराग्य का अर्थ पुण्य-पाप से विरक्त। ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति धर्मी को कायम होती है। आहाहा!

यह कहते हैं **'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भले ही पहले ऊपरी भाव से कर,...** क्या कहते हैं ? भले विकल्प से पहले कर कि मैं तो ज्ञायक हूँ। जाननेवाला हूँ—ऐसा पहले विकल्प से ऊपर-ऊपर से तो कर। आहाहा! इसके सिवा कोई उपाय नहीं है, इसके सिवा कोई मार्ग नहीं है, इसके सिवा कोई रास्ता ही नहीं है। आहाहा! सिवा कहते हैं न ? अलावा। इसके अलावा-सिवा कोई चीज़ ही नहीं है न! आहाहा! तो कहते हैं कि पहले **'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भले ही पहले ऊपरी भाव से कर,...** आहाहा! ऊपरी भाव से अर्थात् विकल्प, राग और मन के सम्बन्ध से पहले कर। आहाहा!

बाकी तो अलिंगग्रहण के २० बोल में ऐसा लिया है, मन और इन्द्रिय से भगवान रहित है। आत्मा का जीवन मन और इन्द्रिय से रहित जीवन वह आत्मा का है। अलिंगग्रहण के २० बोल हैं। ऐसा है उसमें। मन और इन्द्रिय से जिसका जीवन नहीं है। आहाहा! मन और इन्द्रियाँ-भावेन्द्रिय और जड़ इन्द्रिय और मन। इन्द्रिय और मन से जिसका जीवन नहीं है। आहाहा! कठिन बात है। २० बोल में है। आहाहा!

मन और इन्द्रिय, आहाहा! उसका जिसका जीवन नहीं। मन, इन्द्रिय से पार

ज्ञायकभाव हूँ, ऐसी दृष्टि कर। तेरे मन और इन्द्रियाँ भिन्न हो जायेगी। और पर का लक्ष्य छूटेगा तो उतना दु:ख का नाश होगा और तेरा सुख का काल आयेगा। तेरे स्वकाल में आनन्द आयेगा। आहा..! आनन्द आायेगा, वही धर्म है। आहाहा! कठिन बात है। मार्ग तो यह है। अपने आप मना ले, कुछ भी माने और मनवानेवाले मिले।

कल एक विरोध आया है। सनावत में। सोनगढ़वाले चारित्र के विरोधी हैं। चारित्र के विरोधी! अरे..! प्रभु! चारित्र किसे कहना? बाहर की क्रिया करे, उसे चारित्र माने। पंच महाव्रत भी कहाँ है? उसके लिये चौका बनाकर तो लेता है। आहा..! जहाँ पर्वत पर रहता है, वहाँ घर भी कहाँ है? विद्यासागर पर्वत पर रहते हैं। ... बाहर से चौका करने के लिये गये।

मुमुक्षु :- मुनि तो नहीं कहते हैं, चौका लगाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह बात तो कल कही थी। नहीं कहते हैं, परन्तु बनाते हैं, उसके लिये न? लेते हैं, उसी में नौ कोटि टूटती है। यह प्रश्न तो.. कहा था न? संवत १९६९ की साल। दीक्षा लेने से पहले। दीक्षा लेने से पहले प्रश्न (किया था)। गुलाबचन्दजी गाँधी, राजकोट के। उसने दीक्षा ली थी। ये गाँधी नहीं? वजुभाई की लड़की दी है न। गाँधी कुटुम्ब, राजकोट। गुलाबचन्द गाँधी थे। स्त्री थी, पुत्र था। क्या कहते हैं? .. थे। आपके पिताजी ... थे। दीक्षा ली थी। वैराग्य बहुत था। परन्तु दृष्टि, तत्त्व क्या है, उसकी खबर नहीं। मिले थे। पहले वहाँ मिले थे। गुलाबचन्दजी मिले। उनको ऐसा था कि वैरागी हो गये। ऐसा तो अनन्त बार हुआ है। परन्तु तत्त्वदृष्टि की खबर नहीं। आहाहा! अन्तर चीज़ क्या है?

पहले हम तो दुकान छोड़कर चले आये थे। हमको तो हमारा गुरु उसको मानते थे बहुत। तो उस समय उन्होंने ऐसा कहा... (संवत्) १९६८-६९ चौमासे की बात है। ६८, संवत्-१९६८। साधु के लिये मकान बनाया और साधु इस्तेमाल करे, वह साधु नहीं। पहली बार सुना। यह क्या? हमारे हीराजी महाराज गुरु, जिनके पास दीक्षा लेनी है, वे भी उपाश्रय तो इस्तेमाल करते हैं। और बहुत शान्त थे, बहुत शान्त थे। सज्जन थे। बहुत सज्जन थे। यह वस्तु थी नहीं। बाकी सज्जन उतने थे। शान्त, गम्भीर। दो-दो हजार लोगों के बीच

व्याख्यान दे तो नजर बाहर जाये नहीं। और शांति से कहे, भाई! प्रभु का मार्ग, पर की हिंसा बिल्कुल करना नहीं, यह सिद्धान्त का सार है। भले दृष्टि में कुछ खबर नहीं थी। ऐसे सज्जन। किसी के साथ बैर, विरोध कुछ नहीं। वह बात हमें खबर नहीं थी कि साधु के लिये उपाश्रय करे.. वह साधु की बात तो सुनी ही नहीं थी। बोटाद में पहले सुना, १९६८ में। तो हमारे गुरु को मैंने प्रश्न किया, १९६९ में। यह सुना १९६८ में। फिर १९६९ में प्रश्न किया, राणपुर में। महाराज! साधु के लिये उपाश्रय करे और इस्तेमाल करे तो कौन-सी कोटि टूटती है? कौन-सी कोटि अर्थात् मन, वचन और काया, करना, करवाना और अनुमोदन। नौ में से कौन-सी कोटि टूटती है?

यह तो १९६९, दीक्षा लेने से पहले की बात है। कहा, परीक्षा किये बिना कुछ मानते नहीं। हमको तो परीक्षा करके, अन्तर में बैठे वह मानते हैं। तो गुरु को ऐसा हो गया कि यह तो हमारे पास दीक्षा के पास लेनेवाला है। यह मकान तो हम इस्तेमाल करते हैं। फिर जवाब दिया, तुम्हारे भाई खुशालभाई ने मकान बनाया हो और आप इस्तेमाल करो, उसमें क्या? परन्तु इस्तेमाल करे, वह अनुमोदन है। दशवैकालिक गाथा में पाठ है। उस समय कण्ठस्थ किया था। उस समय, १९६९ की साल। दीक्षा लेने से पहले। दशवैकालिक। आठवें अध्ययन में है कि उसके लिये बनाया हो और वह स्वयं बनाये नहीं, बनाने को कहे नहीं परन्तु बनाया हो उसे ले तो उसकी नौ कोटि टूटती है। अनुमोदन कोटि टूटती है। अनुमोदन टूटता है तो सब टूट जाता है।

और अष्टपाहुड़ में तो ऐसा भी कहा, जिसके मूलगुण में पाप-दोष है, उसमें सब कुछ व्यवहार और निश्चय कुछ नहीं है। ऐसा अष्टपाहुड़ में (है)। जिसके लिये आहार बनाया। सेठ बराबर बनाये। निमन्त्रण दिया हो। मोसम्बी का रस, आम का रस हो तो रस, मोसम्बी का पानी। दस सेर, पन्द्रह सेर पानी-जल। एक बिन्दु में असंख्य जीव। आहाहा! दस सेर, पन्द्रह सेर पानी-जल। उसके कमण्डल में डालने के लिये। यहाँ तो कहते हैं, एकान्त पाप (है)। देना-लेना दोनों पाप है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! दूसरी बात छोड़ दे अब, तेरी कर। **'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भले ही पहले ऊपरी भाव से कर,...** ऊपर-ऊपर से पहले कर, नहीं तो निश्चित तो कर। अन्दर में बाद में। आहाहा! इसके अलावा कोई चीज़ नहीं है। मैं तो ज्ञायक ही हूँ। पुण्य, दया,

दान, व्रत का भाव भी राग है, मेरी चीज़ नहीं—ऐसा ऊपर-ऊपर से तो निर्णय कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :- ऊपर-ऊपर से थोड़ा व्यवहार आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऊपर-ऊपर से कहा, परन्तु जाना है अन्दर में। उसको ऊपर-ऊपर से कहते हैं। ऊपर-ऊपर से क्या? यहाँ क्रिया की कहाँ बात है? ऊपर-ऊपर तो... ज्ञायक और पर से भिन्न, यह ऊपर-ऊपर से है। समझ में आया? वही कहा न? देखो!

'मैं ज्ञायक हूँ'... ये ऊपर-ऊपर से। **ऐसा भले ही पहले ऊपरी भाव से कर,...** परन्तु वह ज्ञायक के ऊपरी-भाव से, क्रिया के ऊपरी-भाव से, ऐसा नहीं। आहाहा! बड़ी कठिन बात। यह तो बहिन ने जवाब दिया है। हम अनन्त काल के दुखियारे, अरे..! हमारा दु:ख कैसे टूटे? उसका बहिन यह जवाब देते हैं। आहाहा! ऊपर-ऊपर की बात.. देखो! सेठ ने कहा, क्रिया ऊपर की कहते हैं न? वह यहाँ नहीं। यहाँ तो ऊपर-ऊपर से, ज्ञायक हूँ, भले अनुभव में बाद में जायेगा-वेदन में, परन्तु पहले ज्ञायक हूँ, यही चीज़ मैं हूँ; बाकी राग, पुण्य-पाप, दया, दान मेरी चीज़ नहीं है, ऐसे पहले ऊपर से अर्थात् अन्दर में अनुभव पहले ऐसा तो कर कि मैं ज्ञायक ही हूँ, दूसरी कोई चीज़ मैं हूँ नहीं और मेरे में कोई दूसरी चीज़ है नहीं। आहाहा! यह तो प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की पद्धति की बात है। ऊपर की क्रियाकाण्ड है, वह तो ऊपर की भी नहीं है।

ये तो मैं ज्ञायक हूँ,... आहाहा! अनन्त-अनन्त सर्वज्ञ, सिद्ध जो है या तीर्थंकर हैं, वे मेरे ज्ञान में ज्ञेय हैं। मेरी चीज़ नहीं। मैं तो ज्ञायक-जाननेवाला, वह भी उस चीज़ को नहीं जाना, मैं तो अपने को जानता हूँ, उसमें वह जानने में आ जाता है। आहाहा! समझ में आया? **ऊपरी भाव से कर,...** परन्तु भाव से कहा है। देखो! पाठ है? **'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भले ही पहले ऊपरी भाव से...** ऊपरी-भाव से। क्रिया से, ऐसा नहीं। आहाहा! उस समय एकान्त में बहिन बैठे हो और किसी ने पूछा होगा तो जवाब दिया होगा। आहाहा! यह सब शब्द उत्कीर्ण होनेवाले हैं।

फिर गहराई से कर,... देखो! पहले ऊपर-ऊपर से अर्थात् यह ज्ञायक का ऊपर-ऊपर से। आहाहा! जानन... जानन... जानन... जानन... चैतन्य के प्रकाश का पूर, चैतन्य के प्रकाश का पूर। चैतन्य का नूर का पूर। चैतन्य का नूर अर्थात् तेज का पूर। आहाहा!

ज्ञायकभाव हूँ—ऐसा पहले ऊपरी-भाव से। वह भी भाव से, हों! क्रिया से नहीं। आहा..! अन्दर विकल्प उठा, भाव से वह तो कर। **फिर गहराई से कर,...** आहाहा! फिर अन्दर गहराई में जा। प्रभु अन्दर विराजता है। भोंयरे में जैसे भगवान विराजते हैं, वैसे पर्याय के पीछे तल में परमात्मा विराजता है। पर्याय एक समय की अवस्था है। उसमें ऐसा पहले ऊपर से विचार कर कि मैं तो अकेला ज्ञायक हूँ। पर्याय भी नहीं। मैं तो ज्ञायक हूँ।

पर्याय में ऐसा विचार कर कि मैं तो ज्ञायक हूँ। मैं पर्याय हूँ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! मैं दया, दान, व्रत का करनेवाला, वह बात तो है नहीं, वह तो मिथ्यात्व है। उसका कर्ता मानना, वह तो मिथ्यात्व है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं, ज्ञायक हूँ, उसका जो भाव है, उस भाव से ज्ञायक हूँ—ऐसा कर। विकल्प से अन्दर विचार में वह ले। देह तो मिट्टी का पिण्ड है और पुण्य-पाप का भाव तो विकार और दु:ख है। मैं तो ज्ञायक और आनन्द हूँ। आहाहा! पंच परमेष्ठी को भी मैं तो जाननेवाला हूँ। वास्तव में तो पंच परमेष्ठीस्वरूप ही आत्मा है। आहाहा! आता है? योगसार, वह आता है। आहाहा! पंच परमेष्ठी हुए, वे आत्मा में से हुए। तो मेरे आत्मा में पंच परमेष्ठी का स्वरूप पड़ा ही है। आहाहा! कहाँ जाना?

पहले (ऊपरी भाव से कर), **फिर गहराई से कर,...** गहराई में जा। बाद में (गहराई में जा)। चैतन्यमूर्ति... ये विचार करता है पर्याय में, ध्रुव में विचार नहीं चलते। विचार चलता है भाव का, वह सब पर्याय में (चलता है)। क्योंकि पर्याय में कार्य होता है। वस्तु तो त्रिकाली पड़ी है। वह कार्य हो, आत्मा का अनुभव (हो), तब त्रिकाल चीज़ को कारण कहने में आता है। बाकी त्रिकाल चीज़ तो ध्रुव है। ध्रुव में तो परिणमन भी नहीं, पलटा नहीं, फेरफार नहीं। एकरूप अनादि-अनन्त चैतन्यसत्ता। आहा..! ऐसे पहले ऊपर-ऊपर के भाव से कर। **फिर गहराई से कर,...** बाद में गहराई में अन्दर जा। आहाहा! विकल्प को भी छोड़कर गहराई में पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु विराजता है, वहाँ जा।

परन्तु चाहे जैसे करके... चाहे जैसे करके **उस मार्ग पर जा**। दूसरा कोई रास्ता नहीं है। है? **चाहे जैसे करके...** चाहे जैसे करके अर्थात् अन्दर में यह करने का है, वही कर। **उस मार्ग पर जा**। उसके सिवा दूसरा कोई मार्ग है नहीं। आहाहा! **शुभाशुभभाव से भिन्न...** देखो! जो क्रियाकाण्ड का शुभभाव है, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह शुभभाव; और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, धन्धे का भाव, वह पाप। पाप और पुण्य दोनों से भिन्न

है। शुभ पुण्य है और अशुभ पाप है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव से भिन्न **ज्ञायक का ज्ञायकरूप से अभ्यास करके...** आहाहा! यह अभ्यास। बहुत सादी भाषा में (आया है)।

ज्ञायक का, ज्ञायक का ज्ञायकरूप से अभ्यास। ज्ञायक का–जानन का जाननरूप से अभ्यास। आहाहा! मैं चैतन्य हीरा ज्ञायक हूँ। ज्ञायक का ज्ञायकरूप से अभ्यास। ज्ञायक का दूसरी रीति से अभ्यास, ऐसा नहीं। आहा..! किसी ने विनती की थी, पाँच–सात दिन पहले। ४१९ पढ़ें। अब बराबर आ गया। कल तो मुम्बई जाना है। आहाहा! शरीर में बराबर ठीक नहीं है। अन्दर में कुछ भी हो। पेशाब में बहुत (पीड़ा होती है)। ऐसी शरीर की स्थिति है। क्या होता है शरीर में...

यहाँ कहते हैं, यह कर लिया तो सब हो गया। आहाहा! **शुभाशुभभाव से भिन्न...** आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, महाव्रत आदि वह तो शुभभाव है। उससे तो भगवान भिन्न है। आहाहा! है? **शुभाशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का ज्ञायकरूप से अभ्यास करके...** अभ्यास की बात भी ये। ज्ञायक–जानन का ज्ञायकरूप से अभ्यास। विकल्प से और राग से भी नहीं। आहाहा! पहले ऊपर से कहा था, फिर अन्दर गहराई में चल गया। फिर ज्ञायक का ज्ञायकरूप से। पहले ऊपर से कहा था, अब ज्ञायक का ज्ञायकरूप से (कहा)। आहाहा! वाणी आ गयी है न सहज! पत्थर में उत्कीर्ण करनेवाले हैं। पौने तीन लाख रुपये आ गये हैं। पौने तीन लाख। पाँच–सात लाख रुपये का होगा, ऐसा कहते हैं। कोई कहता था, हमें कुछ खबर नहीं। हम किसी को कहते नहीं, कर या ले या दे। यहाँ तो प्रवचन के सिवा कुछ नहीं। कुछ भी हो। आहाहा! दुनिया में बननेवाला होगा, ऐसा बनेगा। उसमें किसी का अधिकार पर में करने का नहीं है। जिस समय जहाँ होना होगा, उस समय वहाँ क्रमबद्ध की पर्याय होगी। जड़ में भी जिस समय, जिस क्षेत्र में, जिस समय में क्रमबद्ध आनेवाला है, वहाँ आनेवाला है। कल अपने आया था। क्रम। दोपहर को।

आत्मा में अनित्य नहीं माननेवाला अकेला नित्य मानता है और कोई भी समय में अनित्य बिना का है ही नहीं। अनित्य में ऐसा लिया था। उछलती हुई निर्मल पर्याय का क्रम। आहाहा! ध्रुव तो ध्रुव है, परन्तु उसका निर्णय किया है पर्याय ने। वह पर्याय कैसी है? निर्मल उछलती क्रमसर पर्याय होती है। आहाहा! परन्तु जो कोई अनित्य को नहीं मानता है, नित्य को माननेवाला अनित्य ऐसी पर्याय को न माने। पर्याय बिना का द्रव्य

त्रिकाल में होता नहीं, ऐसा न माने तो वह मिथ्यादृष्टि द्रव्य का नाश करता है। कल आया था। आहाहा! और गहराई में रही चीज़ और उसकी निर्मल पर्याय। नित्य भी मैं हूँ और अनित्य से निर्णय करनेवाला मैं अनित्य भी हूँ। निर्णय होता है अनित्य में। नित्य में निर्णय नहीं होता। निर्णय समकित, ज्ञान सब पर्याय में होता है। पर्याय न हो तो वस्तु है ही नहीं। वेदान्त यह मानता है। सामान्य को मानने गये तो पूरे आत्मा का नाश कर दिया। वेदान्त।

यहाँ कहते हैं, **ज्ञायक का ज्ञायकरूप से अभ्यास करके ज्ञायक की प्रतीति दृढ़ करना,...** आहाहा! जाननस्वभाव की प्रतीति। आहाहा! मैं तो ज्ञायक ही हूँ। कोई भी विकल्प और कोई भी बाहर की चीज़, उसका मैं कर्ता नहीं और मेरे में वह है ही नहीं। ऐसी प्रतीति दृढ़ करना। **ज्ञायक को गहराई से प्राप्त करना,...** आहाहा! जाननस्वभाव ज्ञायक, उसको पर्याय में.. आहाहा! ज्ञायक द्रव्य, गहराई से प्राप्त करना, वह पर्याय में। पर्याय में अन्दर गहराई में जाकर ज्ञायक को पकड़ना। आहाहा! ऐसी बात है। कार्य तो पर्याय में होता है या नहीं? त्रिकाली ध्रुव में तो पर्याय है नहीं। वह पर्याय से भिन्न है। परन्तु भिन्न का ज्ञान करनेवाली चीज़ पर्याय है। ध्रुव का भी ज्ञान करती है और अपना भी ज्ञान करती है। ऐसी उछलती निर्मल पर्याय। आहाहा! उसमें **ज्ञायक की प्रतीति दृढ़ करना,..** आहाहा!

ज्ञायक को गहराई से प्राप्त करना,... ज्ञायकस्वभाव भगवान आत्मा, उसे गम्भीरता से, गहराई से। गहराई अर्थात् ऊंडाण से **प्राप्त करना, वही सादि-अनन्त सुख प्राप्त करने का उपाय है।** लो। यही एक सादि-अनन्त सुख... श्रीमद् में आता है न? 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुखमां।' सादि—अनन्त-शुरुआत होती है। सादि-शुरुआत होती है। सादि अर्थात् यह शादी नहीं, हों! सादि अर्थात् शुरुआत। 'सादि अनन्त ज्ञान सहित जो। अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा? समकिती यह भावना भाते हैं। पहले सम्यग्दर्शन की भावना में आत्मा आया, बाद में केवलज्ञान की भावना भाते हैं।

सादि-अनन्त सुख प्राप्त करने का उपाय है। सिद्ध। सिद्ध सादि-अनन्त है न? सिद्ध होती है शुरुआत, अनादि के सिद्ध हैं, वे भी हैं। सब सिद्ध सादि ही हैं। अनादि के

सिद्ध भी हैं। आहाहा! पहले कभी सिद्ध नहीं थे और बाद में सिद्ध शुरु हुए, ऐसा है नहीं। गजब बात है! अनादि का सिद्ध भी है और अनादि का संसार भी है, दोनों है। आहाहा! उसमें से तेरी नयी सादि-अनन्त करना हो तो यह उपाय है। आहाहा! **सादि-अनन्त सुख प्राप्त करने का उपाय है। आत्मा सुख का धाम है,...** आहा... ! श्रीमद् में आता है न? स्वयं ज्योति सुखधाम। श्रीमद् में आता है। स्वयं ज्योति सुखधाम। चैतन्य स्वयं ज्योति। उसका कोई कर्ता नहीं। चैतन्यमूर्ति पुण्य-पाप के विकल्प से, राग से रहित। स्वयं ज्योति सुखधाम। वह अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है। वह अतीन्द्रिय सुख का क्षेत्र है। आहाहा! उस क्षेत्र में तो आनन्द पकता है। वह कहते हैं, **सादि-अनन्त सुख प्राप्त करने का उपाय है। आत्मा सुख का धाम है, उसमें से सुख प्राप्त होगा।** जो सुख का धाम है.. आहाहा! उसकी दृष्टि से सुख का धाम प्राप्त होगा, दूसरा कोई उपाय है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र कृष्ण - ७, बुधवार, तारीख ५-१०-१९८०

वचनामृत -४२३ प्रवचन-४८

प्रश्न :- सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व कहा है, तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के सर्व गुणों का आंशिक शुद्ध परिणमन वेदन में आता है ?

उत्तर :- निर्विकल्प स्वानुभूति की दशा में आनन्द-गुण की आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होने पर आत्मा के सर्व गुणों का (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणों की पर्यायों का वेदन होता है।

आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्मा के ही हैं, इसलिए एक गुण की पर्याय का वेदन हो, उसके साथ-साथ सर्व गुणों की पर्यायें अवश्य वेदन में आती हैं। भले ही सर्व गुणों के नाम न आते हों, और सर्व गुणों की संज्ञा भाषा में होती भी नहीं, तथापि उनका संवेदन तो होता ही है।

स्वानुभूति के काल में अनन्त गुणसागर आत्मा अपने आनन्दादि गुणों की चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायों में रमण करता हुआ प्रगट होता है। वह निर्विकल्प दशा अद्‌भुत है, वचनातीत है। वह दशा प्रगट होने पर सारा जीवन पलट जाता है।।४२३।।

वचनामृत - ४२३। लिखा है न किसी ने। उसमें दो बोल बाकी हैं। ४२३, ४२९। फिर जो बाकी है रहे हैं, वह फिर से (लेंगे)। बाकी रह गये हैं न?

प्रश्न :- सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व कहा है,... मुद्दे की बात है। सम्यग्दर्शन, वह प्रथम धर्म की प्रथम सीढ़ी है। प्रथम सोपान। तो वह सम्यग्दर्शन चीज़ क्या है? कि सर्वगुणांश, सो समकित। आहाहा! अर्थात् जितने अपने आत्मा में अनन्त.. अनन्त..

अनन्त.. गुण हैं, उन सब गुण का एक अंश प्रगटरूप, व्यक्तरूप, प्रगटरूप अनुभव में आता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! यह शब्द श्रीमद् राजचन्द्र, श्रीमद् राजचन्द्र के हैं। अपने मोक्षमार्गप्रकाशक में, रहस्यपूर्ण चिट्ठी। टोडरमल (में आता है)।

समकित किसको कहते हैं? ज्ञानादि अनन्त गुण जो हैं, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ये ज्ञानादि अनन्त गुण का एक अंश प्रगट हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है और ज्ञानादि सर्व गुण प्रगट हो, उसका नाम केवलज्ञान देव परमात्मा है। आहाहा! टोडरमल (जी) में आता है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। आहा..! यह श्रीमद् का वाक्य है। एक ही बात है।

सर्व गुणांश, सो समकित कहा है। आहाहा! अभी तो प्रथम में प्रथम चीज़। उसके बाद सम्यग्ज्ञान होता है और बाद में चारित्र होता है। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान भी सच्चा नहीं और चारित्र भी सच्चा नहीं, झूठा है सब। वह चीज़ यहाँ प्रश्न में पूछा है। **सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व कहा है, तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर...** आत्मा में राग से, विकल्प से भिन्न अपने आत्मस्वरूप का निर्विकल्प-राग बिना सम्यग्दर्शन होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर... अभी तो प्रश्न है। **आत्मा के सर्व गुणों का आंशिक शुद्ध परिणमन वेदन में आता है?** आहाहा! मुद्दे की बात है। शिष्य का यह प्रश्न है कि जब सर्व गुणांश, सो समकित कहा तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर, आत्मा में कोई सच्चा सम्यग्दर्शन। निर्विकल्प कहो या सच्चा कहो। देव-गुरु-शास्त्र की मान्यता, वह कोई समकित नहीं है। देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा या शास्त्र का ज्ञान, या शास्त्र की स्वाध्याय, भगवान की माला (जपना), वह कोई धर्म नहीं है, वह कोई सम्यग्दर्शन नहीं है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन। सर्व गुणांश, सो समकित। तो पूछते हैं कि, **क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के सर्व गुणों का आंशिक...** आत्मा, जितने अनन्त.. अनन्त.. तीन काल के समय से भी अनन्त गुने आत्मा में संख्या से गुण हैं। संख्या से। एक क्षण में असंख्य समय जाये। ऐसे तीन काल के समय। आहाहा! ये तीन काल के समय से अनन्त गुना एक आत्मा में गुण हैं। तो कहते हैं कि **निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के सर्व गुणों...** कितने? अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण हैं, उन सर्व गुणों का आंशिक-एक अंश प्रगट **शुद्ध परिणमन वेदन में आता है?** आहा..! मुद्दे की रकम है। अरे..! लोग कहाँ-कहाँ फँस गये हैं।

समझे ? प्रश्न समझ में आया ? सर्व गुणांश, सो समकित कहा। सर्व जितने आत्मा में गुण हैं, उसका एक अंश व्यक्त-प्रगट बाह्य में आये और उसका वेदन करना, उसका अर्थात् सम्यग्दर्शन कहा है। तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर, राग के भाव से भिनन अपने स्वरूप की प्रतीति, अनुभव करने पर, क्या जितने गुण हैं, उन सर्व गुणों का आंशिक.. आहाहा! शुद्ध परिणमन। उन सर्व गुणों का अंश शुद्ध परिणमन पर्याय में और वेदन, दो बोल लिये। प्रश्नकार ने यह बात कही है। आहाहा!

निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर... क्या जितने गुण हैं, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त संख्या से, सब गुण का शुद्ध परिणमन आंशिकरूप से प्रगट होता है, सर्व गुणों का और सब गुणों के परिणमन के साथ वेदन भी होता है। प्रश्न बड़ा है। समझ में आया ? ऐसा तो किसी ने बहिन के पास प्रश्न किया है। चर्चा, बातें तो बहुत चलती हो। उसमें किसी ने यह प्रश्न किया।

निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर... सच्चा। सच्चा सम्यग्दर्शन निर्विकल्प। राग के आश्रय बिना। त्रिकाली निर्विकल्प भगवान, उसके जितने गुण हैं, उन सबका एक अंश प्रगट होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा। तो क्या उस निर्विकल्प सम्यग्दर्शन में सर्व गुणों का अंश परिणमन होता है ? सर्व गुणों का पर्याय में आंशिकरूप से परिणमन होता है ? और सर्व गुणों का पर्याय में वेदन होता है ? आहाहा! यह तो अभी प्रश्न है। सेठ! लोग बाहर में (घुस गये)। अन्तर की मूल चीज पड़ी रही और जिन्दगी चली जाती है। आहा..! उसमें कोई जन्म-मरण मिटे, ऐसी कोई चीज़ बाह्य में लाखों भक्ति करे और करोड़ों रुपया खर्च करे.. आहा! दस लाख रुपया दिया, कहा न ? कांदिवली। चालीस फीट जमीन को कहा था। फिर वहाँ जाने के बाद पचास वाई पचास की। तो वह साढ़ सात लाख की तो जमीन हुई और ढाई लाख दूसरे दिये। आठ-दस करोड़वाला है, है स्थानकवासी। परन्तु यहाँ देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। कहा, बापू! तेरे दस लाख क्या करोड़ दे, पाँच करोड़ दे तो धर्म हो जाये, ऐसा नहीं है।

धर्म तो निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होता है, तब होता है और निर्विकल्प सम्यग्दर्शन की पहिचान क्या ? प्रतीति करना, परन्तु उसके साथ कोई है या नहीं ? आहाहा! अपनी चीज़

अनन्त-अनन्त गुण से भरी है, उसकी निर्विकल्प प्रतीति और सम्यग्दर्शन होता है, तब जितने गुण हैं, उतने गुण का एक अंश परिणमन में-पर्याय में आता है। विशेष। सामान्य तो त्रिकाल है। परन्तु उस पर दृष्टि करने से पर्याय में विशेष, जितने गुण है, उतने गुण की पर्याय एक अंश में विशेष अर्थात् पर्याय में प्रगट होती है और उसका वेदन होता है ? यह प्रश्न है। आहाहा! यहाँ तो कहे, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करो, तुम्हें हो गया, जाओ! अब व्रत ले लो।

हमारे गुरु भाई ऐसा कहते थे। यह तो किस साल की बात होगी ? (संवत) १९७० या १९७४ की साल की बात है। अपने को तो गौतम जैसी श्रद्धा मिल गयी है। ऐसा कहते थे। बात तो बिल्कुल झूठी। स्थानकवासी। अब अपने व्रत और नियम करना। सम्यग्दर्शन तो अपने गौतम जैसा मिल गया है। अब व्रत और नियम करना, वह चारित्र करना। वह अपने करने जैसा है। वह भी व्रतादि चारित्र। आहाहा! यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है।

अरे..! यहाँ क्या कहते हैं ? प्रश्नकार का यह प्रश्न है, बहिन का प्रश्न है, बहनों में से होगा। उसका उत्तर। इस प्रश्न का रूप समझ में आया ? प्रश्न की क्या चीज़ है ? प्रश्न का रूप क्या है ? कि सर्व गुणांश, सो समकित कहा। सर्व गुणों का अंश प्रगट वेदन में (आता है) उसे समकित कहा। तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर, सच्चा सम्यग्दर्शन होने पर अनन्त गुण जितने हैं, उतने पर्याय में परिणमन में अनन्त गुण का अंश पर्याय में बाह्य में आता है ? और वह अंश भी, जितने गुण का परिणमन (होता है), उतना वेदन में आता है ? आहाहा! ऐसा तो प्रश्न है। इसके बिना बाहर में कर-करके चला गया। ऐसा माने कि हम कुछ करते हैं। पढ़े, एक घण्टा सुने,... आहाहा!

उत्तर :- निर्विकल्प स्वानुभूति की दशा में... आहाहा! ४२३ और ४२९ भाई! दो बाकी है। ये लिखे हैं उसमें। दो पढ़ लेते हैं। फिर जो बाकी है (वह लेंगे)। आहाहा! निर्विकल्प स्वानुभूति अर्थात् आत्मा में राग से भिन्न पर्याय में निर्विकल्प दशा-राग बिना की दशा, ऐसी जो अनुभूति अनन्त गुण की एक समय में प्रगट आंशिक परिणमन (होता है)। आहाहा! उस दशा में **आनन्द-गुण की आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होने पर...** आहाहा! निर्विकल्प सम्यग्दर्शन धर्म। धर्म की पहली-पहली सीढ़ी। धर्म का प्रथम-प्रथम सोपान।

आहाहा ! निर्विकल्प स्वानुभूति-स्व अनुभूति । अन्तर का अनुभव । दशा में **आनन्द-गुण की आश्चर्यकारी पर्याय...** आहा.. ! एक तो यह बात ली । अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद पहले आता है । आहा.. ! अपूर्व अनन्त काल में नहीं हुआ, ऐसा अनन्दगुण की आश्चर्यकारी पर्याय (प्रगट होती है) । पर्याय, हों ! गुण तो त्रिकाल है । आहाहा ! सम्यग्दर्शन होने पर आनन्द नाम का गुण, जो भगवान में सुखगुण है, उसका एक अंश भी बाह्य प्रगट होता है । आहाहा ! तब तो उसे धर्म की प्रथम दशा का सम्यग्दर्शन कहें । आहाहा ! ऐसे ही जिन्दगी जगत की धमाल में और प्रमाद में चली जाती है । अनन्त काल गया, मूल बात नहीं हुई । बिना एक के शून्य चढ़ा दिये, करोड़ों और लाखों । अंक में नहीं आया । यह एकड़ा अंक है । धर्म-सम्यग्दर्शन वह एकड़ा अंक है । आहाहा ! क्या कहते हैं ? ऐकड़ा ? अंक कहते हैं । आहाहा !

उत्तर यह दिया कि **निर्विकल्प स्वानुभूति की दशा में आनन्द-गुण की आश्चर्यकारी...** आहाहा ! पर्याय प्रगट होती है । सम्यग्दर्शन भी पर्याय है । परन्तु सम्यग्दर्शन के साथ अतीन्द्रिय आनन्दगुण जो आत्मा का है, उसका एक अंश साथ में प्रगट होता है । आहाहा ! कितने ही ऐसा कहते हैं, सोनगढ़वालों ने समकित को महंगा कर दिया । महंगा या सस्ता, बापू ! मार्ग तो यह है । आहाहा ! लोगों ने मानकर दूसरे रास्ते पर चढ़ा दिया है । आहाहा ! जो-जो सम्प्रदाय में जन्म लिया, उस सम्प्रदाय की श्रद्धा और क्रिया को माना, वह धर्म । वह वस्तु बिल्कुल झूठी है । आहाहा !

निर्विकल्प स्वानुभूति की दशा में... सम्यग्दर्शन में **आनन्द-गुण की आश्चर्यकारी...** आहाहा ! अनन्त काल में कभी अनुभव नहीं किया । अनन्त काल में कभी अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना खोला नहीं । वह सम्यग्दर्शन में खुल गया, खजाना खुल गया । आहाहा ! गुण की पर्याय प्रगट होने पर **आत्मा के सर्व गुणों का...** देखो ! दो तो मुख्य लिये । सम्यग्दर्शन और आनन्दगुण की पर्याय साथ में । अब, वह होने पर **आत्मा के सर्व गुणों का...** आहाहा ! वीर्यगुण, ज्ञानगुण, शान्तिगुण, प्रभुत्वगुण, अकार्यकारणगुण । अकार्यकारणगुण है कि जो सम्यक्त्व प्रगट होने पर उसकी प्रतीति में ऐसा आ जाता है कि मैं कभी किसी का कार्य करनेवाला नहीं हूँ और मेरे कार्य में दूसरा कोई कारण नहीं है । आहाहा ! अरेरे.. ! सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर... आया न ? **आत्मा के सर्व गुणों का...** तो एक अकार्यकारण

नाम का गुण है। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ तो आत्मा में अकार्यकारण नाम का गुण है उसकी प्रतीति नहीं हुई तो उसकी पर्याय प्रगट हुई। तो सम्यग्दृष्टि की पर्याय किसी के कार्य का कारण नहीं है और कोई कारण का कार्य नहीं है। आहाहा! अरे..! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

अनन्त-अनन्त काल से भटककर मर गया है। देव-गुरु-धर्म के नाम पर श्रद्धा से धर्म की क्रिया करते-करते भी मर गया चौरासी के अवतार में। आहाहा! मूल चीज़ को पकड़े बिना जन्म-मरण का अन्त आये ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा के सर्व गुणों का (यथासम्भव)... यथासम्भव माने? उसकी पर्याय की योग्यता के अनुसार अनन्त गुण की पर्याय प्रगट होती है। जो शक्तिरूप से अनन्त गुण हैं, सामान्य में हैं, सम्यग्दर्शन होने पर उसकी विशेष पर्याय में अनन्त गुण की यथासम्भव पर्याय प्रगट होती है। मीठालालजी! बात आयी है, भगवान! अलौकिक बातें हैं। आहाहा! अरे! क्या करें? लोग ऐसी ही जिन्दगी गँवाते हैं। मूल बात पड़ी रहती है। जिसके लिये प्रयत्न करना चाहिए, उसे प्रयत्न की रीति की खबर नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जितने गुण आत्मा में सामान्य शक्तिरूप हैं, गुण अनन्तानन्त, सम्यग्दर्शन होने पर सर्व गुणों का एक अंश-विशेष दशा पर्याय में विशेषपना प्रगट होता है। समझ में आया? विशेष कहो या गुण की पर्याय कहो। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। **आत्मा के सर्व गुणों का (यथासम्भव) आंशिक...** अंश **शुद्ध परिणमन...** पर्याय विशेष। सर्व गुणों की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, स्व आत्मा में अन्तर्मुख होकर जो प्रतीति अन्तर आत्मा की होती है, उसमें आनन्द गुण की आश्चर्यकारी दशा के साथ सर्व गुणों का, आहाहा! **आत्मा के सर्व गुणों का (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन...** विशेष। शुद्ध परिणमन विशेष। गुण-द्रव्य है, वह सामान्य है, गुण भी सामान्य है। शुद्ध परिणमन विशेष है। आहाहा! **शुद्ध परिणमन प्रगट होता है...** आहाहा! **और सर्व गुणों की पर्यायों का वेदन होता है।** दो बोल पूछे थे न? परिणमन और वेदन। दो बोल पूछे थे। है न? **शुद्ध परिणमन वेदन में आता है?** ऐसा प्रश्न पूछा था। आहाहा!

क्या कहा? इसलिए लोग ऐसा कहते हैं कि, निश्चय.. निश्चय। प्रभु! निश्चय

अर्थात् सत्य। और सब व्यवहार उपचारिक कथन। है, व्यवहार है। परन्तु उस वस्तु का आश्रय करने से कोई समकित होता है, ऐसा तीन काल में है नहीं। सम्यग्दर्शन होने के बाद जो राग भक्ति देव-गुरु आदि की, व्यवहार आता है, वह पुण्यबन्ध है। वह भी पुण्यबन्ध का कारण समकिती को भी। समकित बिना अकेला करता है, वह तो अकेला मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध (है)। समझ में आया?

आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणों की पर्यायों का... सर्व गुणों की पर्यायों का। आहाहा! इसमें तो योग नाम का आत्मा में एक गुण है। अकम्प। अकम्प गुण की भी आंशिक प्रगट दशा होती है।

मुमुक्षु :- सब गुणों की होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- सब गुणों की। आहाहा! जो अकम्पपना-अयोगपना चौदहवें गुणस्थान में पूर्ण प्रगट होता है, उसका एक अंश। सर्व गुण है न? तो जो पूर्ण गुण परमात्मा को पर्याय में प्रगट होते हैं, समकिती को उसमें से अंश, अपूर्ण भी अंश सर्व गुणों का एक अंश प्रगट होता है। जितने गुण हैं, उतने गुण की सबकी पर्याय। आहाहा! ऐसी बात सुनी न हो। आहाहा! ऐसा मार्ग है। पहले सुना हो, ख्याल हो तो प्रयत्न करे न। परन्तु सुना नहीं, ख्याल में बात नहीं, प्रयत्न उस ओर अन्तर में करने का प्रसंग कहाँ रहा? आहाहा!

सर्व गुणों का आंशिक परिणमन प्रगट होता है **और सर्व गुणों की पर्यायों का वेदन होता है।** आहाहा! अयोग नाम का आत्मा में एक गुण है। जो अयोगपना चौदहवें में पूर्ण प्रगट होता है, उसका अयोग नाम का अंश सम्यग्दर्शन में सर्व गुणांश पर्याय में अकम्पपने का भी एक अंश आता है। सर्व गुणों की पर्याय के साथ अकम्पपने की पर्याय भी साथ में प्रगट होती है। आहाहा! अकम्पपना। जो अयोग तो चौदहवें गुणस्थान में (प्रगट होता है)। चौदहवें में तो पूर्ण (होता है) और सम्यग्दर्शन में अयोगगुण का अंश। सर्व गुण आये न? कोई बाकी है? आहाहा! जीवत्व, चिति, दर्शि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शी.. अरे..! सर्वदर्शी और सर्व ज्ञान, उसका भी अंश प्रगट होता है। आहाहा! अरेरे..!

जीवत्वशक्ति, चितिशक्ति, दर्शशक्ति, ज्ञान, सुख सब। वीर्य। एक अंश वीर्य भी ऐसा प्रगट होता है कि शुद्ध की रचना करे। पवित्रता-शुद्ध उपयोग और शुद्ध परिणति की

रचना करे। ऐसे गुण का एक अंश, वीर्यगुण का भी प्रगट होता है। प्रभुत्व का अंश प्रगट होता है। प्रभुत्व। अनन्त गुण में प्रभुत्व का रूप पड़ा है। एक प्रभुत्व नाम का गुण आत्मा में है। प्रभुत्व नाम का गुण। तो अनन्त गुण में प्रभुत्व नाम के गुण का रूप है। अनन्त गुण में प्रभुत्व का अंश सम्यग्दर्शन होने पर प्रगट होता है। आहाहा! ऐसी बात। बाहर से मनवाकर सम्प्रदाय चलाना है, वाडा रखना है। अरे..! प्रभु! सम्प्रदाय तो अनन्त बार चलाया। उसमें जन्म-मरण नहीं मिटे, बापू! आहाहा!

परसों कहा न? पारसी आया था, पारसी। वृद्ध। पारसी बहुत वृद्ध (था)। परन्तु नरम आदमी था। इस साल अफ्रीका गये, तब भी देखने आया था। उसे ऐसा हुआ.. आहा..! बाहर निकलकर कहा, महाराज को ऐसा कहो, मुझे आशीर्वाद दें। क्या? आहाहा! क्या कहा? तड़प-तड़पकर न मरूँ, ऐसे आशीर्वाद दे। क्योंकि डाक्टर है, उसने बहुत देखे थे। बहुत दर्दी देखे थे। तड़प-तड़पकर मर गये हों। आहाहा! रिबाईन का क्या शब्द है हिन्दी? दुःख.. दुःख.. दुःख। कल पत्र आया है।... नैरोबी से। उसका एक छोटा लड़का है। गृहस्थ आदमी। वह सब पैसेवाले। लाखोंपति की गिनती नहीं। उनके घर गये तो तीन हजार रखे। वैसे दूसरे तो कितने ही खर्च कर दिये, भगवान के मन्दिर के लिये। उसके पुत्र की ऐसी स्थिति हुई है। आँख बन्द हो गयी है, ऐसा हुआ है, ऐसा लिखा है। लड़का बचेगा नहीं। आहाहा! कारमणभाई। उसका लड़का। आहाहा! ओहो! ऐसी स्थिति है। घर पर कितने पैसे। क्या करे पैसा? क्या कहा?

मुमुक्षु :- पैसा ... तो लड़का हुआ न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- लड़का आया, वह पैसे से कहाँ आया है? धूल में। आहा..! वह तो कल बात हुई न? प्रत्येक द्रव्य में अपनी सामान्य और विशेष दो शक्ति पड़ी है। तो वह सामान्य और विशेष शक्ति, वह अनेकान्त है। सामान्य भी है और विशेष भी है। कल दोपहर को आया था। पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। कोई देव-गुरु-शास्त्र (के साथ सम्बन्ध नहीं है)।

अपने में सामान्य और विशेष दो नाम की विरुद्ध शक्ति है। अनेकान्त। अनेकान्त अर्थात् परस्पर विरुद्ध शक्ति का प्रकाशित होना, वह अनेकान्त। आहाहा! परस्पर वस्तु की

व्यवस्था में विरुद्ध शक्तियों का एकसाथ प्रगट होना, उसका नाम अनेकान्त है। पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! कल दोपहर को बहुत चला। प्रत्येक पदार्थ। परमाणु एक लो, एक परमाणु। उसमें भी सामान्य और विशेष दो शक्ति भरी है। तो यह सामान्य और विशेष शक्ति परस्पर विरुद्ध है। फिर भी वह वस्तु को प्रकाशित करनेवाली है। वस्तु की स्थिति समझानेवाली है। वस्तु ऐसी है। आहाहा! कोई भी द्रव्य एक समय में सामान्य और विशेष दो शक्ति के बिना कोई द्रव्य होता नहीं। और वह शक्ति अपने-अपने कारण से है। ऐसी विरुद्ध शक्ति अनेकान्त है। आहाहा! अनेक अन्त अर्थात् विरुद्ध जो धर्म हैं, वह अनेकान्त है।

४७ शक्ति का वर्णन है, समयसार में। विरुद्ध शक्ति नाम की एक शक्ति है। आत्मा में विरुद्ध नाम का एक गुण है। आहाहा! उसका भी एक अंश बाहर प्रगट होता है। इसमें आया न? **सर्व गुणों का (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणों की पर्यायों का वेदन होता है।** आहाहा! अन्त में कहा न? अन्त की कौन-सी शक्ति कहीं? विरुद्धधर्मत्व शक्ति। अन्दर आत्मा में विरुद्ध नाम की शक्ति अर्थात् गुण है। अनादि। विरुद्ध। तत् चैतन्यपने चैतन्य रहे। अतत्-चैतन्य जड़रूप न हो। वह अपने स्वभाव से है। वह विरुद्ध शक्ति उसमें है। विरुद्ध शक्ति से.. आहाहा! अपना स्वभाव व्यवस्थित है। भले एक समय में नित्य भी है और एक समय में अनित्य भी है। उसमें विरुद्ध शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म उपदेश।

यहाँ वह कहते हैं, **सर्व गुणों का (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है...** तो विरुद्ध शक्ति का अंश भी प्रगट होता है। आहाहा! कितना सूक्ष्म! **और सर्व गुणों की पर्यायों का वेदन होता है।** परिणमन होता है और वेदन भी होता है। आहाहा! यह बहिन ने उत्तर दिया। कोई बहिन ने प्रश्न किया होगा, उसका उत्तर बहिन ने दिया। आहाहा! यह पुस्तक आया है न सेठ? यह पढ़ने कहाँ आता है? खाताबही का हिसाब आये। नहीं? ऐसा कहते हैं, कोई मिला नहीं था। सुनानेवाला नहीं मिला था।

मुमुक्षु :- प्रचार की जरूरत है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऐसा कहकर सेठ ऐसा कहते हैं कि, प्रचार की जरूरत में

सागर आओ। कहने का आशय यह है। अब शरीर काम नहीं करता है। आहाहा! बहुत अच्छी बात आयी।

आत्मा अखण्ड है,... है? अखण्ड है। जितने गुण है, उतने सहित अखण्ड है। आहाहा! **सर्व गुण आत्मा के ही हैं,...** जितने अनन्त गुण हैं, सर्व गुण आत्मा के ही हैं। अखण्ड कहा न? **आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्मा के ही हैं, इसलिए एक गुण की पर्याय का वेदन हो, उसके साथ-साथ सर्व गुणों की पर्यायें अवश्य वेदन में आती हैं।** आहाहा! ऐसी बात है। पहले तो सुनने मिलता नहीं है। बात सच्ची है। बहुत फेरफार हो गया। और सबको सुख की इच्छा तो है, सब प्राणी को। परन्तु वस्तु मिलती नहीं है, क्या करे? स्वयं को दु:खी होने का पंथ लेने का भाव होता है? कोई प्राणी को दु:खी होने का पंथ लेने का भाव होता है? परन्तु मिला नहीं है। आहाहा! क्या चीज़ है? भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी क्या कहते हैं? और उसका वस्तु का स्वभाव क्या है? भगवान ने तो देखा है, भगवान ने किया नहीं। सब द्रव्य के गुण को क्या भगवान ने किये हैं? वह तो उसका गुण है। भगवान ने तो जाना है। जाना है, वह बात कहते हैं। आहाहा!

आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्मा के ही हैं,... एकान्त किया। **सर्व गुण आत्मा के ही हैं,...** आहाहा! नित्य और अनित्य गुण भी आत्मा के ही हैं। ४७ नय आती है न? भाई! ४७ नय में नित्य और अनित्य आता है। दोनों नय आते हैं। नय भी एक समय में अन्दर में है। नित्यपना भी एक गुण है, अरे..! अनित्यपना भी एक गुण है। आहाहा! उन सबकी पर्याय... **सर्व गुण आत्मा के ही हैं, इसलिए एक गुण की पर्याय का वेदन हो,...** एक गुण की पर्याय का वेदन हो, **उसके साथ-साथ सर्व गुणों की पर्यायें अवश्य वेदन में आती हैं।** आहाहा! बहुत अच्छी बात! अभी और सूक्ष्म आयेगा।

भले ही सर्व गुणों के नाम न आते हों,... देखो! अन्तर अनन्त गुण है, उसके नाम भले न आते हों। आहाहा! तिर्यंच को शक्कर मुँह में दो तो शक्कर नाम आता है उसे? शक्कर। तिर्यंच। परन्तु मिठास आती है। शक्कर की मिठास आती है। नाम नहीं आता है। वैसे इन सब गुणों के नाम नहीं आते। अनन्त-अनन्त गुण। आहाहा! एक समय में एक गुण कहे तो भी अनन्त-अनन्त चौबीसी जाये तो भी पूरे न हो सके, इतने गुण हैं। आहा..!

भले.. क्या कहते हैं ? जितने गुण हैं, वह सब परिणमन में, वेदन में आते हैं। **भले ही सर्व गुणों के नाम न आते हों,...** नाम नहीं आते। आहाहा! पशु को शक्कर नाम आता है ? स्वाद तो आता है, स्वाद आता है। परन्तु यह शक्कर है, (ऐसा नाम नहीं आता)। वैसे इन सब गुणों का स्वाद आये, परन्तु सब गुण ऐसे-ऐसे हैं, वह जानने में नहीं आते। आहाहा! यह पुस्तक तो ८०००० छप गयी है। पूरे हिन्दुस्तान में और बाहर परदेश में, लन्दन, अमेरिका, अफ्रीका में हर जगह गयी है। सब जगह व्याख्यान चलते हैं। आहाहा!

भले ही सर्व गुणों के नाम न आते हों, और सर्व गुणों की संज्ञा भाषा में होती भी नहीं,... क्या कहते हैं ? जितने गुण हैं, उतने भाषा में आवें कहाँ से ? आहाहा! वीतराग के मुख में से भी आते नहीं। अनन्त-अनन्त गुण भाषा में कैसे आये ? आहाहा! **सर्व गुणों की संज्ञा...** अर्थात् नाम। आहा.. ! **भाषा में होती भी नहीं,...** संज्ञा भाषा में होती भी नहीं। **तथापि...** आहाहा! उन गुणों का नाम भी न आये, उन गुणों की भाषा भी न हो सके, फिर भी **तथापि उनका संवेदन तो होता ही है।** आहाहा! परन्तु वेदन में तो अनन्त गुण की पर्याय का वेदन आता है। अनन्त गुण की पर्याय का वेदन। नाम न आये, परन्तु पर्याय तो अनन्त गुण की वेदन में आती है। आहाहा! ऐसी बात। लोगों को सुनने मिलनी मुश्किल पड़े। इसे समझने के लिये ध्यान न रखे तो हो गया, पूरी जिन्दगी निकल जाये। आहाहा! बाहर की निरोगता, बाहर की अनुकूलता.. बस, पर में लक्ष्य। स्वयं अन्दर कौन प्रभु है ? स्वयंसिद्ध आत्मा कौन है ? उसे पहिचानने की दरकार भी नहीं, स्व को पहिचानने की दरकार नहीं। पर की कीमत करे। हीरा, माणिक। यह लाख का हीरा है, पचास हजार का है और करोड़ का है। आहाहा!

एक ऐसा आता है, हीरा-माणिक का बहुत होशियार परीक्षक था। फिर सेठ की ओर से अथवा राजा की ओर से उसे इनाम देना था। इसलिए सेठ को बुलाया। बुलाया और इनाम देने का कहा। उसमें एक प्रधान-आदमी ऐसा निकला, स्वामी! उसे पूछो कि यह आत्मा क्या है ? और गुण क्या है ? और धर्म क्या है ? आता है ? उसे इनाम देने के बजाय जूते मारो। खासड़ा समझे ? जूता। जूता मारो। पूरी जिन्दगी (बीत गयी) ९०-९५ (वर्ष हो गये) और परीक्षा करने में बाहर में हीरा-माणिक की परीक्षा करी, तूने तेरी नहीं की। जूते मारो इसे। ऐसी बात आयी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भले उसके गुण के नाम न आये, भले उस गुण की संज्ञा भाषा में न आये। **तथापि उनका संवेदन तो होता ही है। स्वानुभूति के काल में अनन्त गुणसागर आत्मा...** अनन्त गुणसागर। आहाहा! सागर में जैसे पानी के बिन्दु का पार नहीं, वैसे अनन्त गुण की संख्या का पार नहीं। आहाहा! स्वयंभूरमण समुद्र। जिसमें नीचे रेत नहीं है। अन्तिम का समुद्र। असंख्य योजन का। असंख्य योजन! अकेले रत्न भरे हैं नीचे। हीरे और माणिक। वहाँ कोई आदमी है नहीं। अकेले मच्छ है। आहाहा! वहाँ उसे कोई काम के नहीं है। मेरु पर्वत के नीचे सोना पड़ा है। अरबों मन सोना मेरु पर्वत के नीचे। वह किस काम का? पता न लगे, वह किस काम का? वैसे आत्मा में अनन्त गुण पड़े हैं, परन्तु अन्दर पता न लगे, उसका क्या काम? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

स्वानुभूति के काल में... आत्मा का विकल्परहित, रागरहित अनुभूति अर्थात् अनुभव, उसके काल में **अनन्त गुणसागर...** अनन्त गुणसागर **आत्मा अपने आनन्दादि गुणों की चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायों में रमण करता हुआ प्रगट होता है।** आहाहा! क्या कहते हैं? बहुत ऊँची बात आयी है। अनुभव के काल में **आत्मा अपने आनन्दादि गुणों की चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायों में...** पर्याय में यह आनन्दादि चमत्कारिक पर्याय आती है। आहाहा! शक्तिरूप-गुणरूप तो है, परन्तु पर्याय में चमत्कारिक वेदन आता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन के बाद चारित्र होता है। इसके बिना, बिना अंक के शून्य। चारित्र-फारित्र कहाँ है? चारित्र अर्थात् चरना। परन्तु किसमें चरना? कोई चीज़ है, उसमें या नहीं? पशु चरता है तो कोई घास है, उसमें चरते हैं या पत्थर में चरते हैं। वैसे चरना अपनी चीज़ का अनुभव हुआ, उसमें चरना। आहाहा!

सब प्राणी सुख के अभिलाषी हैं। परन्तु सुख के पन्थ की खबर नहीं। आहाहा! अभिलाषी तो सुख का है। सब सुख के (अभिलाषी) हैं, परन्तु सुख कैसे मिले, उसकी खबर नहीं है। आहा..! ऐसे अनन्त काल भटकते-भटकते अनन्त भव गये, परिभ्रमण करते हुए।

उसमें यहाँ कहते हैं,.. आहाहा! अनुभव आत्मा का होता है, राग से भिन्न, तब **अनन्त गुणसागर आत्मा अपने आनन्दादि गुणों की चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायों में...** आनन्दादि गुणों की.. गुण तो त्रिकाल। उसकी चमत्कारिक स्वाभाविक पर्याय प्रगट,

उसमें **रमण करता हुआ प्रगट होता है।** आहाहा! कहते हैं कि आत्मा में जो अनन्त गुण हैं, वह अपने अनुभव में सम्यग्दर्शन के काल में उसकी आनन्दादि गुणों की पर्यायों में रमण करता हुआ प्रगट होता है। पर्याय में रमण करता है। आहाहा! यह बात गुप्त नहीं रही। ये तो कितनी पुस्तक छप गयी। देश-परदेश चारों ओर चली गयी। परन्तु विचार करनेवाले होने चाहिए न। पढ़े लेकिन समझे नहीं। अपने आप अपनी कल्पना से पढ़े, उसमें समझे क्या?

वह निर्विकल्प दशा अद्भुत है,... आहाहा! वह अन्दर की निर्विकल्प—राग बिना की अनन्त गुणों की पर्याय प्रगट, उसकी दशा, दशा की बात है न। वस्तु तो वस्तु है। परन्तु निर्विकल्प विशेष, उसकी निर्विकल्पदशा विशेष। सामान्य तो गुण त्रिकाल पड़ा है। परन्तु उस ओर की दृष्टि हुई और अनुभव हुआ। **वह निर्विकल्प दशा अद्भुत है,...** निर्विकल्प दशा, हों! पर्याय। वस्तु तो अद्भुत है ही। परन्तु विशेष। आहाहा! विशेष तो अनन्त काल से विशेष बिना का सामान्य है ही नहीं। परन्तु वह विशेष दुःख में है। दुःख का वेदन (है)। आहाहा! सामान्य तो त्रिकाल आनन्दकन्द है। परन्तु विशेष में अनादि काल से दुःख का वेदन है।

यहाँ तो कहते हैं, **वह दशा प्रगट होने पर सारा जीवन पलट जाता है। निर्विकल्प दशा अद्भुत है, वचनातीत है।** आहा..! वचन से कह सके नहीं। एक ओर वक्तव्य है, ऐसा कहने में आता है। नय आते हैं न? कथंचित् व्यक्तव्य, कथंचित अव्यक्तव्य। आहाहा! व्यवहार से वक्तव्य है। आहाहा! यहाँ कहा वचनातीत है। वह वचन में आ सकता नहीं। अन्दर की दशा में वचन आ सकती नहीं। **वह दशा प्रगट होने पर सारा जीवन पलट जाता है।** भले गृहस्थाश्रम में हो, सारी दृष्टि पलट गयी, सारा जीवन पलट गया। आहाहा! कोई रजकण या राग का स्वामी नहीं होता। अपने अनन्त गुण की पर्याय का स्वामी होता है। क्यों?—कि आत्मा में एक स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का गुण है। स्वस्वामीसम्बन्ध। स्वस्वामीसम्बन्ध ४७ वाँ है न? ४७ शक्ति में अन्तिम। स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का एक गुण है। आत्मा में स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का गुण है। कि जो अपना स्व है, उसके साथ सम्बन्ध है। पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ४७ शक्ति में अन्तिम शक्ति। ४७वीं। स्वस्वामीसम्बन्ध शक्ति। वह क्या कहते हैं?

अपने जो द्रव्य–गुण है, उसकी पर्याय के वेदन में सम्बन्ध तो द्रव्य–गुण का ही है। सम्बन्ध कोई पर का है नहीं। एक अपेक्षा से। बाकी तो पर्याय का वेदन पर्याय में है। द्रव्य–गुण की अपेक्षा बिना पर्याय को पर्याय का वेदन है। आहाहा! ऐसा उपदेश सूक्ष्म लगे। कहो, पण्डितजी! आहाहा! वचनातीत सम्यग्दर्शन।

वह दशा प्रगट होने पर सारा जीवन पलट जाता है। आहाहा! शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. अनन्त गुण की पर्याय अवस्था में परिणमन हुआ और परिणमन के साथ वेदन हुआ। आहा..! तो कहीं रुचि जमती नहीं। इन्द्र का इन्द्रासन हो। आहाहा! अपना आनन्द और अपने गुण की पर्याय का वेदन, और परिणमन के समक्ष इन्द्र का इन्द्रासन भी सड़े हुए.. आहाहा! बिल्ली अथवा सड़े हुए कुत्ते जैसा लगे। समकिती को इन्द्र का सुख सड़े हुए कुत्ते जैसा (दिखता है) । आहाहा! अज्ञानी को कल्पना में सुख (लगता है) । पैसे में, भोग में कल्पना में जहर का प्याला पीता है।

यहाँ कहते हैं कि यह तो अमृत का प्याला है। आहाहा! अधिकार बहुत अच्छा आ गया। जीवन पलट जाता है। अब, एक बोल है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, भाद्र कृष्ण - ८, सोमवार, तारीख ६-१०-१९८०
वचनामृत -४२९, १, २ प्रवचन-४९

प्रश्न :- प्रथम आत्मानुभव होने से पूर्व, अन्तिम विकल्प कैसा होता है?

उत्तर :- अन्तिम विकल्प का कोई नियम नहीं है। भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व की सन्मुखता का अभ्यास करते-करते चैतन्यतत्त्व की प्राप्ति होती है। जहाँ ज्ञायक की ओर परिणति ढल रही होती है, वहाँ कौन सा विकल्प अन्तिम होता है (अर्थात् अन्त में अमुक ही विकल्प होता है) ऐसा 'विकल्प' सम्बन्धी कोई नियम नहीं है। ज्ञायकधारा की उग्रता-तीक्ष्णता हो वहाँ 'विकल्प कौन सा ?' उसका सम्बन्ध नहीं है।

भेदज्ञान की उग्रता, उसकी लगन, उसी की तीव्रता होती है; शब्द द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। अभ्यास करे, गहराई में जाये, उसके तल में जाकर पहिचाने, तल में जाकर स्थिर हो, तो प्राप्त होता है—ज्ञायक प्रगट होता है ॥४२९ ॥

वचनामृत - ४२९। अन्तिम बोल है। लिखे हैं न किसी ने? उसमें अन्तिम बोल। ४२९। यह लिखे हैं उसका अन्तिम का बोल। फिर पहले से, बाकी है न? प्रश्न, प्रश्न सूक्ष्म हैं।

प्रश्न :- प्रथम आत्मानुभव होने से पूर्व,... क्या कहते हैं? यह आत्मा जो आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु है, उसका अनुभव अर्थात् सम्यग्दर्शन, उसका सम्यग्दर्शन-अनुभव होने से पूर्व **अन्तिम विकल्प कैसा होता है?** प्रश्न समझे? आत्मा आनन्दस्वरूप चैतन्य गोला अन्दर सनातन सत्ता, उसका अनुभव सम्यग्दर्शन। अनुभव, वह पर्याय की अपेक्षा से बात है। ज्ञान, चारित्र की। श्रद्धा समकित की अपेक्षा से। बात तो एक ही है। कहते हैं कि **प्रथम आत्मानुभव होने से पूर्व,...** अथवा अन्तिम में **विकल्प कैसा होता है?** राग की वृत्ति कैसी होती है? आहाहा!

उत्तर :- अन्तिम विकल्प का कोई नियम नहीं है। सूक्ष्म बात है। आत्मानुभव सम्यग्दर्शन। अन्तर त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, उसकी दृष्टि अनुभव होने से पहले विकल्प-राग कैसा होता है, उसका कोई नियम नहीं है। है? **भेदज्ञानपूर्वक...** करता क्या है? सम्यग्दर्शन होने में और आत्मानुभव होने में होता है क्या? **भेदज्ञानपूर्वक...** राग से मैं भिन्न हूँ, ऐसे भेदज्ञानपूर्वक राग अर्थात् विकल्प, है विकार, उससे आत्मा भेद-भिन्न, ऐसे **भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व की...** शुद्धात्मतत्त्व त्रिकाली। आहाहा! पवित्रता का पिण्ड प्रभु ज्ञायकभाव, जो शुद्ध चैतन्य अनादि निरावरण अखण्डानन्द प्रभु, उसका (अनुभव) होने से पहले भेदज्ञान होता है। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म पड़े, इसलिए लोग बाहर से.. परन्तु मूल वस्तु के बिना तेरे बाहर के व्यर्थ प्रयत्न क्रियाकाण्ड आदि व्यर्थ है। ग्यारह अंग की पठन अनन्त बार की है और पंच महाव्रत आदि अनन्त बार लिये हैं। वह कोई नयी चीज़ नहीं है। वह तो संसार है, राग है। आहाहा!

यहाँ तो भेदज्ञानपूर्वक राग से भिन्न आत्मा राग से भिन्न है, ऐसे **भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व की सन्मुखता का अभ्यास करते-करते...** आहाहा! अन्दर शुद्धात्मतत्त्व परमानन्द प्रभु त्रिकाली ज्ञायकभाव, वह शुद्धात्मतत्त्व। उसके सन्मुख का। उसके सन्मुख। अनादि से राग और राग की दिशा पर, उस ओर की सन्मुखता है। उससे विमुख होकर। आहाहा! स्वभाव के सन्मुख होकर। आहाहा! यह पहली बात। सम्यग्दर्शन भेदज्ञान प्रथम में प्रथम करने की यह रीति है। आहाहा! **भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व की सन्मुखता...** अर्थात् क्या कहा? राग से भिन्न करके और स्वभाव के सन्मुख जाकर **शुद्धात्मतत्त्व की सन्मुखता का अभ्यास करते-करते चैतन्यतत्त्व की प्राप्ति होती है।** आहाहा! मुद्दे की रकम है यह। अन्तर राग से भिन्न, विकल्पमात्र से भिन्न और शुद्धात्मतत्त्व-सन्मुख, अन्तर-सन्मुख। राग और पर से भेदज्ञान अर्थात् विमुख। उससे विमुख होकर अन्तर चैतन्यतत्त्व **शुद्धात्मतत्त्व की सन्मुखता का अभ्यास करते-करते चैतन्यतत्त्व की प्राप्ति होती है।** लो, यह मुद्दे की रकम। सम्यग्दर्शन भेदज्ञान आत्म-अनुभव, यह सब एक चीज़ है। इस प्रकार से होती है। दूसरे कोई क्रियाकाण्ड लाख, करोड़ करे उससे तो पुण्यबन्ध हो तो हो, राग मन्द करे तो। आहाहा! **चैतन्यतत्त्व की प्राप्ति होती है।**

जहाँ ज्ञायक की ओर परिणति ढल रही होती है,... आहाहा! क्या कहते हैं? जहाँ

ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा पूर्ण चैतन्यस्वरूप द्रव्यस्वभाव निरावरण, उस ओर परिणति ढल रही होती है। वर्तमान पर्याय, वर्तमान अवस्था त्रिकाल की ओर ढल रही होती है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म पड़े, इसलिए लोगों को दूसरे (रास्ते पर) चढ़ा दिये। जन्म-मरण का अन्त.. बापू! आहाहा! चौरासी के अवतार का अन्त लाने की चीज़ तो यह है। आहाहा! क्या कहा?

जहाँ ज्ञायक की... ज्ञायकस्वरूप। पहले कहा था, शुद्धात्मतत्त्व के सन्मुख। बाद में कहा, **जहाँ ज्ञायक की ओर परिणति ढल रही होती है,...** चैतन्य भगवान जाननस्वभाव का पिण्ड, उस ओर वर्तमान पर्याय ढलती है। अन्तर्मुख ढलती है। समझ में आया? **ज्ञायक की ओर परिणति...** परिणति अर्थात् पर्याय। परिणति अर्थात् वर्तमान पर्याय, वर्तमान अवस्था। वह त्रिकाली पर ढलती है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म। मूल मार्ग यह है। श्रीमद् ने कहा न? 'मूल मारग सांभणो जिननो रे, करी वृत्ति अखण्ड सन्मुख..' करी वृत्ति। वृत्ति अर्थात् यह परिणति। वर्तमान परिणति 'करी वृत्ति अखण्ड सन्मुख..' अखण्ड चैतन्य ज्ञायक शुद्धात्मतत्त्व, उस ओर परिणति को ढाल, ला। आहाहा! यह जैन का मूल मार्ग है। आहाहा!

जहाँ ज्ञायक की ओर परिणति... अर्थात् वर्तमान पर्याय **ढल रही होती है,...** आहाहा! उस ओर परिणमन करती है। स्वभाव-सन्मुख, विभाव से विमुख। पर्यायदृष्टि का भी लक्ष्य छोड़कर पर्याय को स्वसन्मुख करना.. आहाहा! यह चैतन्य प्राप्ति का उपाय है। यह मार्ग है। आहाहा! **वहाँ कौन सा विकल्प अन्तिम होता है (अर्थात् अन्त में अमुक ही विकल्प होता है), ऐसा 'विकल्प' सम्बन्धी कोई नियम नहीं है।** अन्तिम में भेद अर्थात् राग से भिन्न करने के प्रसंग में और स्वभाव के सन्मुख जाने में अन्तिम में विकल्प-राग कैसा होता है, विकल्प, उसका कोई नियम नहीं है। **ऐसा 'विकल्प' सम्बन्धी कोई नियम नहीं है।**

ज्ञायकधारा की उग्रता-तीक्ष्णता... आहाहा! ज्ञायकस्वरूप चैतन्य की ओर जहाँ वर्तमान परिणति.. आहाहा! वर्तमान दशा-परिणति-वर्तमान प्रगट विशेष, यह विशेष सामान्य की ओर ढलती है। आहाहा! समझ में आता है? सूक्ष्म है। यह तो किसी ने प्रश्न किया था, उसका उत्तर है। आहाहा! ज्ञायकधारा। यह क्या कहते हैं? पहले शुद्धात्मतत्त्व कहा था। बाद में चैतन्य की प्राप्ति कही। बाद में ज्ञायक की परिणति कही थी। ज्ञायक कहा

था। यहाँ ज्ञायकधारा की। आहाहा! अन्दर जो ज्ञायक चैतन्यस्वरूप त्रिकाली अनादि-अनन्त प्रभु, उस ज्ञायकधारा की उस ओर के झुकाव से जो धारा प्रगट होती है, उग्रता अर्थात् तीक्ष्णता। **ज्ञायकधारा की उग्रता-तीक्ष्णता हो, वहाँ 'विकल्प कौन सा?' उसका सम्बन्ध नहीं है।** आहाहा! यह किसी ने लिखा है न कि, इतना पढ़ना। यह अन्तिम बोल है। किसी ने लिखकर रखा है। जिसने भी रखा हो। यह अन्तिम बोल है।

ज्ञायकधारा... चैतन्य ज्ञायकस्वरूप की सन्मुख की धारा है। आहा..! अनन्त गुण का धाम। स्वयं ज्योति सुखधाम। उस ओर जहाँ वर्तमान परिणति अन्तर ढले। वर्तमान परिणति बिना का तो कोई पदार्थ हो सकता नहीं। यह परिणति अनादि से पर की ओर है। राग, पुण्य, दया, दान, काम, क्रोध और शरीर। ये बाहर की क्रिया करूँ। करूँ अर्थात् भाव। कर सकता नहीं। यह बाह्य की परिणति है, उस परिणति को छोड़कर.. आहाहा! **ज्ञायकधारा की उग्रता-तीक्ष्णता हो...** अन्दर चैतन्यस्वरूप एकरूप विराजता है। उसकी जहाँ परिणति प्रगट हुई, धारा-पर्याय, आहाहा! (वहाँ) **'विकल्प कौन सा?' उसका सम्बन्ध नहीं है।** वहाँ कौनसा राग का विकल्प है, उसका कोई सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! ऐसी बात। करे तो आठ वर्ष की बालिका भी करे।

सम्यग्दर्शन, अनादि निगोद में से निकलकर.. आहाहा! एकाध भव होकर उसमें सम्यग्दर्शन पा सकता है। केवलज्ञान, एकाध भव बीच में होता है। आहाहा! क्योंकि चैतन्य ज्ञायकस्वरूप ध्रुवधारा अनादि से चीज़ पड़ी है। उस ओर जहाँ झुकाव हुआ, बाद में क्या विकल्प था, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! बहुत अन्तिम बात आयी।

ज्ञायकधारा की उग्रता... ज्ञायकधारा अर्थात् अन्तर की चैतन्य की ओर झुकाव से अर्थात् पर्याय का वहाँ झुकने से। सामान्य जो ज्ञायक त्रिकाली भाव, उस ओर जो विशेष पर्याय है, उस पर्याय को ज्ञायक की ओर झुकाकर.. आहाहा! वहाँ अन्दर धारा की तीक्ष्णता होती है। वहाँ विकल्प-राग कौन सा, (उसके साथ) कोई सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! वह तो राग से भिन्न होकर, चाहे जैसा विकल्प हो, उससे भिन्न होकर स्वरूप की धारा की ओर झुकता है। आहाहा! विषय थोड़ा सूक्ष्म आया है। आहाहा!

भेदज्ञान की उग्रता,... अन्तर में राग के विकल्प से भिन्न करने की। अन्तर में दया,

दान, व्रतादि जो सब विकल्प है, उससे भेद करने की उग्रता, **उसकी लगन,...** आहाहा! **उसी की तीव्रता...** अन्तर्मुख की तीव्रता **होती है;... भेदज्ञान की उग्रता, उसकी लगन, उसी की तीव्रता होती है; शब्द द्वारा वर्णन नहीं हो सकता।** आहाहा! ऐसी चीज़ है। शब्द द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। **अभ्यास करे,...** अन्तर में उतरने का। पर्याय के पाताल में। अन्तर पाताल अर्थात् ध्रुव। आहाहा! पर्याय को अन्तर में ले जाने का अभ्यास करे, **गहराई में जाये,...** गहराई में जाये। गहरा-गहरा तल। तल अर्थात् ध्रुव ज्ञायक, शुद्धात्मतत्त्व। आहाहा! अन्दर पूर्णानन्द का नाथ, उस ओर गहराई में जाये। **उसके तल में जाकर पहिचाने,...** आहाहा! उसके तल में अर्थात् पाताल अर्थात् ध्रुव। पार्याय का तल अर्थात् ध्रुव। पर्याय ध्रुव के ऊपर रहती है। आहाहा! सामान्य ऊपर विशेष हमेशा रहता है। विशेष है, वह पर्याय है। आहाहा! वह पर्याय गहराई में जाये, **उसके तल में जाकर पहिचाने,...** अन्दर भगवान परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ, **उसके तल में जाकर पहिचाने,...** आहा..! बहुत अच्छी विधि आयी। आहाहा! कभी सुनने मिले नहीं। क्या करना? मूल चीज़, पहले कौन-सी चीज़ करना? वह आये नहीं और ऊपर-ऊपर से उल्लास करके जन्म-मरण की घानी में पिले, ऐसे पिलता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **तल में जाकर स्थिर हो,...** पर्याय को-विशेष को सामान्य तल में ले जाकर.. आहाहा! स्थिर हो अन्दर। ऐसी भाषा। वह सब तो समझ में आये, व्रत करो, भक्ति करो, फलाना करो। पर्यूषण के दिन है, इसलिए चौविहारा उपवास करो, ऐसा करो तो कुछ समझ में भी आये। धूल में भी उसमें कुछ नहीं है। आहाहा! जन्म-मरण का अन्त लाने की चीज़ यह है। **तल में जाकर स्थिर हो,...** तल-तल, पाताल। आहाहा! **तो प्राप्त होता है...** तो भगवान का अनुभव होता है। तो आत्मा को आत्मा प्राप्त होता है। आहाहा! पर्याय-विशेष को सामान्य तल जो है, ध्रुव तल ज्ञायक तल वहाँ विशेष को लाकर स्थिर हो जा। अन्दर स्थिर हो जा। **तो प्राप्त होता है...** तो वहाँ भगवान चैतन्यस्वरूप की प्राप्ति-सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! ४२९वाँ बोल। अन्तिम वही है न? कितने हैं? लाये हो? ४३२। आहाहा!

ज्ञायक प्रगट होता है। जो ज्ञायकस्वरूप है जाननेवाला, उसके सन्मुख जाकर, पूरी दुनिया से विमुख होकर, सारे लोकालोक से विमुख होकर और अन्दर सूक्ष्म विकल्प,

मैं ज्ञायक हूँ—ऐसा सूक्ष्म राग, उससे भी हटकर। आहाहा! अन्दर में जा। जहाँ भगवान त्रिकाल निरावरण प्रभु विराजता है। आहाहा! ऐसी विधि है, भगवान! आहाहा! **ज्ञायक प्रगट होता है।** लो, उसमें जो लिखे थे, वह बोल पूरे हुए। अब शुरुआत से। जो बाकी थे, उसकी शुरुआत करते हैं। पहले से शुरुआत की थी, फिर भी आज पहला बोल लेते हैं।

हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मा में रुचि लगा। आत्मा में रुचे ऐसा है। आत्मा में आनन्द भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा॥ १॥

पहला बोल। **हे जीव!** पहला बोल। **हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो...** यह शर्त। पर में कहीं भी रुचता न हो, राग रुचता न हो, राग के कारण में रुचता न हो, सारी दुनिया ज्ञायक के अलावा, उस ओर रुचता न हो। आहाहा! **तो अपना उपयोग पलट दे...** यह पहला बोल। क्या कहा? **तुझे कहीं न रुचता हो तो...** जो कहीं भी पर रुचे तो अन्दर जा नहीं सकेगा। क्योंकि रुचि अनुयायी वीर्य। जिसकी जिसे रुचि, उसका उसमें पुरुषार्थ-वीर्य गति करे। आहाहा! रुचि अनुयायी वीर्य। जिसकी जरूरत लगे—जिसकी आवश्यकता लगे, उस ओर पुरुषार्थ किये बिना रहे नहीं। आहाहा! ऐसा यहाँ कहते हैं।

हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे... आहाहा! लो, यह आया। जो जानन.. जानन.. मति-श्रुत का जानने का उपयोग पर ओर झुके और पर ओर की क्रिया में उसमें लक्ष्य (करे), लक्ष्य, हों! पर का कर सकता नहीं। आहाहा! जो पर्याय पर ओर के झुकाव में रही है और वहाँ तुझे रुचता न हो तो। यह शर्त। आहाहा! कहीं भी यदि रुचे आत्मा के अलावा, तो अन्दर नहीं जा सकेगा। एक ओर राम और एक ओर गाँव। गाँव अर्थात् समूह। राग के विकल्प से लेकर पूरा जगत। अरे..! देव, गुरु और शास्त्र। आहाहा! उस ओर का उपयोग है और वहाँ तुझे रुचता न हो, आनन्द आता न हो, शान्ति मिलती न हो (तो) अपना उपयोग पलट दे। आहाहा! मुद्दे की बात है। यह तो पहले पढ़ लिया है। किन्तु फिर से लेना है। जो चल गया है, वही नहीं लेंगे। जो नहीं लिये हैं, वह अब लेते हैं। आहाहा!

अपना उपयोग पलट दे और आत्मा में रुचि लगा। आत्मा ज्ञायकस्वरूप अनन्त-अनन्त गुण की खान, निधान.. आहाहा! उस ओर रुचि लगा। आहा..! वही पोसाये। राग या दूसरी चीज़ पोसाये नहीं। रुचि नहीं, पोसाये नहीं। अपने में पोसाये नहीं। आहाहा! बनिया लाख, दो लाख का माल लेने जाये, तो वहाँ ढाई रुपये मण मिलता हो और यहाँ पौने तीन या तीन मिले तो वह माल पोसाता है, ऐसा कहा जाये। पोसाये। परन्तु वहाँ ढाई रुपया मण हो और यहाँ सवा दो, दो रुपये में (खपता हो), वह माल पोसाये? आहाहा! इसी प्रकार जिसको राग और पुण्य-पाप पोसाता न हो, क्योंकि वह दु:ख है। आहाहा! वह माल नहीं, तेरा माल नहीं। वह उपयोग पलट दे।

आत्मा में आनन्द भरा है;... आत्मा में रुचे ऐसा है। है? आत्मा में रुचि लगा दे और आत्मा में रुचे, ऐसा है। आहाहा! अन्दर में भगवान आत्मा में रुचे, ऐसा है। वहाँ रुचे ऐसा है। आहाहा! ऐसी बात साधारण आदमी समझे नहीं, इसलिए लोगों को क्रियाकाण्ड में जोड़ दे। अवतार तो चला जाता है, भाई! यह भव, भवरहित होने का यह भव है। भवरहित होने का, करने का भव है। यदि भवरहित न हुआ.. आहाहा! भविष्य में नरक, निगोद, सूअर, कौआ, कुत्ता.. ऐसे अनन्त-अनन्त अवतार करेगा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यदि वह सब तुझे रुचता न हो.. आहाहा! तो भगवान रुचे ऐसा है। **आत्मा में आनन्द भरा है;...** आत्मा में तो आनन्द भरा है। शक्कर में मिठास भरी है। आहाहा! ऐसे भगवान में.. भगवान अर्थात् आत्मा। आनन्द भरा है। **वहाँ अवश्य रुचेगा।** वहाँ तुझे जरूर रुचेगा। आहा..! **जगत में कहीं रुचे, ऐसा नहीं है...** जगत में कहीं रुचे, ऐसा नहीं है। आहाहा! 'कहीं' शब्द पड़ा है न? **जगत में कहीं रुचे, ऐसा नहीं है...** आहाहा! पुण्य परिणाम भी रुचे, ऐसा है नहीं। वह भी दु:ख है। आहाहा!

प्रवचनसार में कहा है कि शुभाशुभभाव.. शुभभाव का फल स्वर्ग। तो स्वर्ग में तो भोग का अशुभभाव है। शुभ का फल मिला, परन्तु है तो भोगने का अशुभभाव। वह पाप है। आहाहा! शुभ और अशुभ में अन्तर क्यों है? ऐसा आचार्य ने कहा है? क्या कहा? जब अशुभभाव से नरक और तिर्यंच में दु:ख है। तो शुभभाव से स्वर्ग में भी दु:ख ही है। यहाँ शुभभाव हुआ, इसलिए वहाँ शुभभाव करता है, ऐसा है? आहाहा! यहाँ शुभभाव से स्वर्ग मिला। स्वर्ग में वहाँ लक्ष्य रहता है, वह तो अकेला अशुभभाव पाप है। आहाहा! तो

आचार्य महाराज वहाँ प्रवचनसार में कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन। शुभ (के फल में) स्वर्ग में भी अशुभ ही अकेला भोगने में रहेगा। तो फिर शुभ है और अशुभ अठीक है, ऐसा तू लाया कहाँ से? आहाहा! गजब बात है! क्या कहा वह?

शुभाशुभभाव हेय है, ऐसा प्रवचनसार में पहले बताया। फिर स्पष्ट किया। क्यों हेय है? कि अशुभभाव से नरक और तिर्यंच मिले और शुभभाव से स्वर्ग मिले। परन्तु वहाँ भोगने का भाव तो अकेला अशुभ है। अथवा जो चीज़ मिली उस ओर लक्ष्य का झुकाव अशुभ ही है, दु:ख ही है। तो अशुभ के फल में दु:ख, तो शुभ के फल में भी दु:ख। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा! अरेरे..! तुझे शुभभाव ठीक क्यों लगता है? प्रभु! ऐसा कहते हैं। तुझे शुभभाव कैसे रुचता है? क्योंकि शुभभाव के फल में स्वर्ग और सेठाई, उस ओर लक्ष्य जाये तो अकेला दु:ख ही है। स्वर्ग में भी अशुभभाव में दु:ख है। आहाहा! वह सब सामग्री मिली, बत्तीस लाख विमान, पहला देवलोक, परन्तु उस ओर लक्ष्य जायेगा तो तुझे पाप ही होगा। तो शुभ के फल में पाप हुआ, अशुभ के फल में भी नरक आदि पाप, तो दो में अन्तर कहाँ हुआ? अशुभ से शुभ ठीक है, ऐसा आया कहाँ? आहाहा! समझ में आया? कठिन बात है, भगवान! दुनिया को अभी तो शुभ करो, शुभ करो, शुभ करो... करते-करते (हो जायेगा)।

यहाँ प्रभु ऐसा कहना चाहते हैं, प्रवचनसार, कुन्दकुन्दाचार्य। भगवान की वाणी, दिव्यध्वनि (है)। उसमें यह कहा कि शुभ को तू ठीक मानता है, तो हम तुमको कहते हैं कि स्वर्ग मिले या अरबों रुपया मिले, उस ओर लक्ष्य जायेगा तो अकेला पाप ही है। अकेला दु:ख है। तो शुभ के फल में भी दु:ख, अशुभ के फल में भी दु:ख। आहाहा! दुनिया से विरुद्ध है। दो में अन्तर कहाँ रहा? कि शुभ ठीक रहा कहाँ? समझ में आया? किस कारण से? शुभ-अशुभ एक ही है। दोनों दु:ख का कारण है। आहाहा! क्योंकि अशुभ से सीधा नरक में दु:ख है और इसको वहाँ सामग्री पर लक्ष्य जायेगा तो अकेला अशुभभाव (होगा)। शुभभाव (यहाँ) किया, इसलिए वहाँ शुभभाव करेगा, ऐसा है नहीं। आहाहा! विषयसुख इन्द्राणी, इन्द्र, विमान और.. आहाहा! उसको क्या कहते हैं? घरबखरी। फर्नीचर। देवलोक का फर्नीचर। वहाँ नजर पड़ेगी तो अशुभ होगा तुझे। अशुभ होगा ... शुभ ठीक कहाँ से हुआ? जिसके फल में दु:ख, जो वर्तमान में दु:ख, वह ठीक आया कहाँ

से ? आहाहा ! सुना न हो, सुना नहीं हो। शुभ और अशुभ दोनों एकसमान क्यों है, यह बात सुनी नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु :- स्वर्ग में तो बहुत मजा आये।

पूज्य गुरुदेवश्री :- दु:ख है। अशुभभाव है अकेला। जितना लक्ष्य जायेगा, स्त्री पर, इन्द्राणी पर, मकान, विमान पर.. अकेला अशुभ। अकेला अशुभ-अकेला दु:ख। आहाहा ! आचार्य ने गजब किया है न ! समझने की शैली में भी शुभ को दु:ख में डालकर शुभ भी ठीक है, ऐसा कहनेवाले को यह बताते हैं। आहाहा ! गजब बात है ! अशुभभाव से शुभ तो ठीक है न। प्रभु ! शुभभाव में क्या मिलेगा ? उसमें आत्मा तो मिले नहीं। शुभभाव में गति मिलेगी। गति भले स्वर्ग की हो, परन्तु वहाँ उत्पन्न हुआ.. ये स्त्री, ये इन्द्राणी, ये देव, ये विमान, ये मेरा.. अरबों साल, असंख्य अरब साल अशुभ में जायेगा तेरा। तो शुभ के फल में अशुभभाव असंख्य अरब (साल) रहे, प्रभु ! उस शुभ को तू ठीक कैसे कहता है ? प्रवचनसार में है। अभी वह गड़बड़ थी। शुभ करते-करते करो। ऐसे अशुभ से बचेगा, फिर शुभ छूटेगा तो धर्म होगा। आहाहा !

परमात्मा की पुकार... जैसे अशुभ के फल में दु:ख और वर्तमान दु:ख अशुभ। वैसे शुभ वर्तमान दु:ख... शुभ है न ? राग है न ? दु:ख (है)। उसके फल में दु:ख है। अशुभभाव होगा उस सामग्री में। आहाहा ! बराबर है ? इसलिए कहा कि तू शुभ को ठीक कहता है, प्रभु ! तुझे रुचता है क्यों ? वह रुचता है क्यों ? जिसके फल में दु:ख है, वह तुझे रुचता है क्यों ?

यहाँ बहिन यह कहती हैं, **जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है...** कहीं अर्थात् शुभ और अशुभ दोनों। आहाहा ! है ? आहाहा ! ऐसी बात कहे कौन ? सेठ लोगों को ... लगे। सेठ लेकर बैठे हो, पाँच-पच्चीस लाख खर्च किये हो। अभी वह आया है न ? गंगवाल, मिश्रीलाल गंगवाल। पच्चीस करोड़ रुपया। मिश्रीलाल गंगवाल है। पच्चीस करोड़ रुपया है। अभी वहाँ पाँच लाख दिये। पाँच लाख। लोगों को ऐसा हो जाये.. आहा.. ! पाँच लाख ! क्या है ? भाई ! न्याय से तुलना करेगा या नहीं ? कि ऐसे ही अनादि काल का ... प्रभु ! तुझे...

बहिन वह यहाँ कहती हैं, आहाहा! **जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है...** देखो! पुण्यभाव रुचे, वह भी नहीं। क्योंकि उसके फल में भी स्वर्ग में दु:ख है। आहाहा! स्त्री पर लक्ष्य जायेगा, इन्द्राणी की ओर लक्ष्य जायेगा, वह शुभभाव है? शुभ के फल में पाप आया, दु:ख आया। आहाहा! भाई ने तो वहाँ तक कहा, हुकमचन्दजी। दसलक्षणी पर्व। दस लक्षण की पर्व का पुस्तक छपा है न? उसमें लिया है। लक्ष्मी आदि मिलती है, वह पुण्य के कारण मिले। परन्तु भगवान ने वर्तमान में लक्ष्मी को परिग्रह में गिनी है। चौबीस प्रकार के परिग्रह में गिना है। परिग्रह वह स्वयं पाप है। आहाहा! और उस ओर झुकाव करना भी अशुभभाव पाप है। पण्डितजी! अरे..! ऐसी बातें। क्या कहा?

अन्तर में वर्तमान में शुभभाव हो, वह शुभराग है। राग है, वह दु:ख है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में अमृतचन्द्राचार्य फरमाते हैं कि पर की दया तो कर सकता नहीं। क्योंकि परद्रव्य है। परन्तु परद्रव्य की दया का भाव, वह हिंसा है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय, अमृतचन्द्राचार्य। आहाहा! तो जहाँ राग है, शुभराग और उसके फल में अशुभभाव। आहाहा!

मुमुक्षु :- ..

पूज्य गुरुदेवश्री :- पहले तो सुनने मिलना मुश्किल है। आहाहा! फिर रुचना मुश्किल। बाहर के ठाठ में मान.. मान.. मान.. मान.. आहाहा! अभिनन्दन। बड़ी उपाधि दे। अभिनन्दन दिये, फलाना दिया। उसमें क्या है? अभिनन्दन में तेरा लक्ष्य जायेगा तो वह अशुभभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु :- मान मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री :- मान मिले, गाली मिले। एक बार तुमने ना कही थी। अभिनन्दन देते थे, ना कहा। अरे..! ... कोई व्यक्ति का काम नहीं है।

यहाँ तो भगवान न्याय, लॉजिक, युक्ति से वस्तु का स्वभाव ऐसा (कहते हैं) कि तू शुभभाव में ठीक मानेगा तो एक तो शुभभाव वर्तमान दु:ख है और उसके फलस्वरूप लक्ष्मी या स्वर्ग मिले, वहाँ तुझे अकेला अशुभभाव ही रहेगा। वह दु:ख है। तो शुभ और अशुभ में तू अन्तर क्यों मानता है? आहाहा!

वह यहाँ कहा, **जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे**

ऐसा है। आहाहा ! है ? क्योंकि उसमें आनन्द भरा है। यह ऊपर आया न ? आनन्द भरा है। आहाहा ! शान्ति का काम है, भाई ! पुण्य के फल में चक्रवर्ती पद मिले। चक्रवर्ती पद की ओर लक्ष्य जाये तो अशुभभाव है, दुःख है। लोग दुःख संयोग को कहते हैं। संयोग दुःख नहीं है। नारकी को प्रतिकूल संयोग है, इसलिए दुःखी है—ऐसा है नहीं। स्वर्ग में अनुकूल संयोग है, इसलिए सुखी है—ऐसा है नहीं। संयोग पर लक्ष्य जाना, वह पाप है—अशुभ है। आहाहा ! अनुकूल सामग्री मिली, दो-पाँच-दस करोड़ धूल मिले। आहाहा ! वहाँ तो मुम्बई में, भाई ! तुरखिया है। जवान है, पैसा है। बहुत पैसा। यहाँ सुनकर... चालीस करोड़ की जो जमीन थी वह पचास करोड़ कर दी। आहाहा ! एक लाख ग्यारह हजार थे। उसके ढाई लाख कर दिये। अभी और भी विशेष दूँगा। मन्दिर बनाओ, दिगम्बर मन्दिर। ऐसा करोड़ों का बनाना, ऐसा बनाना कि कहीं (न हो)। स्थानकवासी है। कहा कि, भगवान ! वह भाव शुभ है। होता है, परन्तु ख्याल में न आये कि इस शुभ से दुःख है और उसके फल में भी दुःख है। यह कौन (माने) ? अनुकूल पुत्र, लक्ष्मी.. बड़ा पुत्र कमाये, छोटा पुत्र कमाये। निवृत्ति ली। आहाहा ! अरे.. ! भगवान !

तीर्थंकर देव त्रिलोकनाथ, उनकी कोई अजब-गजब की बात है ! जैनदर्शन का रहस्य समझना, ख्याल में लेना, वह भी कोई अपूर्व पुरुषार्थ है। ख्याल में लेना कि... आहाहा ! एक भाई ने कहा था, हुकमीचन्दजी। पुण्य से पैसा मिले, लेकिन पैसा पाप है। पैसेवाले पापी है। ऐसा लिखा है। आहाहा ! पढ़ा है ? है ? पण्डितजी ! उसमें है न। दस प्रकार के धर्म का (पुस्तक)। पैसेवाले नहीं, शुभ और अशुभ दोनों भाव पिटते हैं। समझ में आया ?

यहाँ कहा न ? **कहीं रुचे ऐसा नहीं है...** कहीं रुचे, (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! शुभ भी रुचे ऐसा नहीं है। क्योंकि वह दुःख है। और उसके फल में भी दुःख है। आहाहा ! अरे.. ! सुनना किस विधि से ? सत्य के पंथ पर... आहाहा ! प्रभुनो मार्ग छे वीरानो, कायरना काम नहीं, भाई ! आहाहा ! उसका रहस्य और उसका मर्म, वीतराग का मर्म और रहस्य समझना, वह कोई अलौकिक बात है, प्रभु !

यहाँ कहते हैं, **जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे**

ऐसा है। आहाहा ! है ? एक आत्मा में जरूर रुचे ऐसा है। **इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा।** इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा। पहला बोल आया था। दूसरा बोल नहीं आया था। दो से नौ नहीं आये हैं। फिर १०वाँ बोल आया थ। आहाहा !

अन्तर की गहराई से अपना हित साधने को जो आत्मा जागृत हुआ और जिसे आत्मा की सच्ची लगन लगी, उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी। आत्मा की सच्ची लगन लगे और अन्तर में मार्ग न हो जाए - ऐसा हो ही नहीं सकता। आत्मा की लगन लगनी चाहिए; उसके पीछे लगना चाहिए। आत्मा को ध्येयरूप रखकर दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिए। 'मेरा हित कैसे हो ?' 'मैं आत्मा को कैसे जानूँ ?' — इस प्रकार लगन बढ़ाकर प्रयत्न करे तो अवश्य मार्ग हाथ लगे॥ २॥

अन्तर की गहराई से अपना हित साधने को जो आत्मा जागृत हुआ... आहाहा ! अन्तर की गहराई। पुण्य-पाप से भी भिन्न अन्दर भगवान। शुभ-अशुभभाव से भी भिन्न। **अन्तर की गहराई से अपना हित साधने को जो आत्मा जागृत हुआ और जिसे आत्मा की सच्ची लगन लगी,...** सच्ची लगन क्यों कहा ? बातें करते देखते हैं, परन्तु हो बाहर मान के लिये। दस लाख दे, पच्चीस लाख दे, उसमें गहराई में वह होता है कि अपने को मान मिले। आहाहा ! और उसे क्या कहते हैं ? पत्थर की तख्ती। तख्ती में नाम रहे। देनेवाला यह, फलाने का यह, फलाने के नाम से, फलाने के चरण में। आहाहा ! यहाँ तो आत्मा वस्तु क्या है ? और जिनराज त्रिलोकनाथ शुभ और अशुभ की रीत दुःख में डालते हैं। उसके फल में दुःख है।

यहाँ कहते हैं, उसे छोड़कर आत्मा की सच्ची लगन लगा। आहाहा ! **अपना हित साधने को जो आत्मा जागृत हुआ और जिसे आत्मा की सच्ची लगन लगी, उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी।** अन्तर लगन लगे आत्मा की। आहाहा ! लगन.. लगन.। लगन नहीं कहते हैं ? लगन किया। लगन में लगन लगती है। वैसे आत्मा में लगन लगे। आहाहा ! वीतराग जिनेश्वरदेव का तो अभी विरह पड़ा है। उनका जो परमार्थ कथन, परमार्थ मार्ग एक ओर रह गया। दूसरे रास्ते पर चढ़ा दिया। और दूसरों को अनादि का

अभ्यास है, इसलिए वह रुचता है। और इसका तो अभ्यास नहीं है अन्दर का, इसलिए रुचना कठिन पड़े। आहाहा! आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. पूरा दिन करते हैं—ऐसा कहते हैं, मजाक उड़ाते हैं। आहाहा! क्या कहा?

उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी। आत्मा की सच्ची लगन होनी चाहिए। अखण्डानन्द का नाथ आनन्द से भरा प्रभु, उसकी लगन। आहाहा! उसके साथ लगन लगा दे। आहाहा! वह मार्ग कर देगी। **उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी। आत्मा की सच्ची लगन लगे और अन्तर में मार्ग न हो जाए - ऐसा हो ही नहीं सकता।** आहाहा! उसका अर्थ यह हुआ कि प्राप्ति नहीं है, तब तक उसकी लगन लगी नहीं। आहाहा! जो लगन लगनी चाहिए, वह लगन नहीं है। आहाहा! **आत्मा की सच्ची लगन लगे और अन्तर में मार्ग न हो जाए - ऐसा हो ही नहीं सकता। आत्मा की लगन लगनी चाहिए;...** आहाहा! **उसके पीछे लगना चाहिए।** लगन लगनी चाहिए और उसके पीछे लगना चाहिए। आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा ज्ञायक की लगनी चाहिए और लगन लगाकर लगानी चाहिए। उस ओर लगानी चाहिए। उसके पीछे लगना चाहिए। आहाहा!

आत्मा को ध्येयरूप रखकर... आहाहा! प्रत्येक समय और प्रत्येक पल आत्मा को ध्येयरूप रखकर **दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिए।** आहाहा! कमाना कब, हमें स्त्री-पुत्र को सम्भालना कि दिन-रात (लगन लगाये?) इसका नाम है वह दिन-रात याद रहता है या नहीं? भूल जाता है? लक्ष्मीचन्द नाम हो, वह कडवीचन्द हो जाये? आहाहा! औरतों का कडवी नाम होता है न? लक्ष्मी कडवी। जो नाम हो वह बदल जाये? **आत्मा को ध्येयरूप रखकर दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिए। 'मेरा हित कैसे हो?'** आहाहा! **'मैं आत्मा को कैसे जानूँ?'** आहाहा!**—इस प्रकार लगन बढ़ाकर...** है? लगन बढ़ाकर **प्रयत्न करे तो अवश्य मार्ग हाथ लगे।** तो जरूर मार्ग हाथ लगे बिना रहे नहीं। यह उसकी पद्धति है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

विक्रम संवत-२०३६, असोज कृष्ण - १४, गुरुवार, तारीख ६-११-१९८०
वचनामृत -३, ५ प्रवचन-५०

ज्ञानी की परिणति सहज होती है। हर एक प्रसंग में भेदज्ञान को याद करके उसे घोखना नहीं पड़ता, परन्तु उनके तो ऐसा सहज परिणमन ही हो जाता है — आत्मा में धारावाही परिणमन वर्तता ही रहता है॥ ३॥

वचनामृत तीसरा बोल। **ज्ञानी की परिणति सहज होती है।** आहाहा! सवेरे कहा था न? कि अंश, वस्तु के अंश में पर्याय के अंश में दोष है। नहीं द्रव्य में, नहीं गुण में। क्योंकि दोष नहीं कर्म कराता। वह दोष का अंश त्रिकाली... क्रमबद्ध में विवाद यह आता है कि क्रमबद्ध में नियतवाद हो जाता है। परन्तु क्रमबद्ध में उसकी दृष्टि ज्ञायक पर जाती है। क्रम—समय-समय में जो क्रम-क्रम से पर्याय होती है, उसकी दृष्टि ज्ञायक पर, पुरुषार्थ में जाती है। वहाँ पुरुषार्थ है। उस ज्ञायक पर जाने से अंशबुद्धि टूटने पर ज्ञान की शुद्ध परिणति, जैसा उसका स्वभाव है, वैसी उसकी परिणति अर्थात् अवस्था होती है। यह धर्म की पद्धति है। आहाहा!

यह ज्ञानी की परिणति अर्थात् अवस्था सहज होती है। अर्थात्? उसे नया करना नहीं पड़ता कि इस राग की एकता तोड़ूँ अथवा राग तोड़ूँ, ऐसा नहीं रहता। राग की एकता टूट गयी है और राग को जो ज्ञान होता है, वह भी सहज ज्ञान होता है। सूक्ष्म बात है। बहुत संक्षिप्त भाषा में है। **ज्ञानी की परिणति...** आहाहा! परिणति अर्थात् धर्म। धर्मी का धर्म दूसरी भाषा से कहें तो धर्मी का धर्म सहज होता है। उसे यह दया पालूँ, व्रत करूँ, और भक्ति करूँ और.... ऐसा उनका कर्ताबुद्धिपना नहीं होता। आहाहा! ऐसी स्थिति है।

हर एक प्रसंग में भेदज्ञान को याद करके उसे घोखना नहीं पड़ता,... प्रसंग-प्रसंग में यह राग है, वह मैं नहीं; इस प्रकार रटना नहीं पड़ता। राग से भिन्न जैसा उसका स्वभाव है, ऐसी दृष्टि हुई है। अंश बुद्धि टूटी है, अंशी की बुद्धि हुई है। वह कायम धारा

रहती है। आहाहा! ऐसा धर्म। व्रत करूँ, तप करूँ, और अपवास करूँ, भक्ति करूँ, भगवान की पूजा करूँ, यह करूँ—ऐसा उसे नहीं रहता। आता है, तो भी भेदज्ञान को याद करके उसे रटना नहीं पड़ता। यह राग मैं नहीं, ऐसा वहाँ अब करना नहीं पड़ता। आहाहा! ऐसी धर्म की बात है।

परन्तु उनके तो ऐसा सहज परिणमन ही हो जाता है... धर्मी को स्वाभाविक वस्तु जो है, जो पर्याय में दोष होने की योग्यता है, उसे जिसने तोड़ दिया है और जिसकी दृष्टि द्रव्य और गुण पर-द्रव्य पर पड़ी है। भेद नहीं। गुण अर्थात् पवित्रता पर पड़ी है। इसलिए उसे भेद नहीं करना पड़ता। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। आहाहा! **उनके तो ऐसा सहज परिणमन ही हो जाता है — आत्मा में धारावाही परिणमन वर्तता ही रहता है।** आहाहा! यह धर्म। राग से भिन्न एक धारा। जैसी आत्मा सत्ता है, आत्मा जैसी एक सत्ता धारा है, अनादि सत्ता जैसी है, वैसी धारा पर्याय में वर्तती रहती है। आहाहा! ऐसा धर्म।

आत्मा में धारावाही... एक धारा अर्थात् ... राग में वह जुड़ जाए और पश्चात् राग से भिन्न पड़े, ऐसा नहीं होता। आहाहा! ज्ञानी को राग आता है, द्वेष आता है, विषय-वासना भी आती है, तथापि उसका भेदज्ञान एक धारा वर्तता है। अब उसे भिन्न नहीं करना पड़ता। समझ में आया?

ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरे को प्रोत्साहन देनेवाले हैं। ज्ञान रहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं है किन्तु रुंधा हुआ कषाय है। परन्तु ज्ञान न होने से जीव, कषाय को पहिचान नहीं पाता। ज्ञान स्वयं मार्ग को जानता है, और वैराग्य है वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता किन्तु सबसे निस्पृह एवं स्व की मौज में ज्ञान को टिका रखता है। ज्ञान सहित जीवन नियम से वैराग्यमय ही होता है॥ ४॥

चौथा बोल। **ज्ञान और वैराग्य...** आत्मा का ज्ञान और वैराग्य। अर्थात्? शुभ-अशुभभाव में जो रक्तपना है, उसमें से विरक्त होना, इसका नाम वैराग्य है। वैराग्य अर्थात् स्त्री, कुटुम्ब-परिवार छोड़ना और दुकान छोड़कर एकान्त में रहे, वह वैराग्य, वह वैराग्य नहीं है। आहाहा! बात-बात में अन्तर पड़ता है। **ज्ञान और वैराग्य...** चैतन्यस्वरूप का ज्ञान, पूर्णानन्द का ज्ञान और इस ओर में पुण्य-पाप के भाव, शुभाशुभभाव से विरक्त।

पुण्य-पाप अधिकार में आता है, भाई! समयसार। वैराग्य किसे कहना? पुण्य-पाप अधिकार।

वैराग्य उसे कहना कि शुभ और अशुभभाव से विरक्त होना और स्वभाव में रक्त होना, इसका नाम वैराग्य। आहाहा! प्रियंकरजी! भाव में बहुत अन्तर है। आहाहा! ज्ञान और वैराग्य। एक अस्ति है, एक नास्ति है। ज्ञान अस्ति है, त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की अस्ति की प्रतीति का अनुभव और वैराग्य—पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव से रहितपना, उसका नाम वैराग्य। आहाहा! बाहर से स्त्री, परिवार छोड़े, दुकान छोड़ी या धन्धा छोड़ा, इसलिए वह वैरागी है, ऐसी वैराग्य की व्याख्या वीतराग मार्ग में नहीं है। आहाहा! जिसके साथ जुड़ता था, राग के साथ, वह जुड़ान छोड़कर ज्ञानस्वभाव के प्रति जुड़ान करना, अस्तिरूप से ज्ञानस्वरूप आत्मा है, ऐसा भान हुआ। परन्तु राग से विरक्त होकर उसमें जुड़ने का नाम वैराग्य कहलाता है। आहाहा!

ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरे को... एक दूसरे को **प्रोत्साहन देनेवाले हैं।** सम्यग्ज्ञान है, वहाँ पुण्य-पाप के भाव से विरक्त है। जहाँ पुण्य-पाप के भाव से विरक्त है, वहाँ सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! अब ऐसी बात। **ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरे को प्रोत्साहन...** प्र-उत्साह। मदद करता है। ज्ञानस्वरूपी आत्मा, ऐसी अस्ति। ऐसा अस्तिपना जहाँ है, ऐसा जहाँ अनुभव हुआ, इससे इस ओर से, शुभ-अशुभभाव से विरक्त हुआ। आहाहा! वे एक-दूसरे को सहायता देनेवाले हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :- सहायता का तो आप निषेध करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- सहायता किसे? अन्दर की। एक गुण दूसरे गुण को सहायता दे, ऐसा कहना है। वह निमित्त से है परन्तु वस्तु ऐसी है। पर की बात यहाँ नहीं है। पर मदद करता है, यह बात यहाँ नहीं है। अन्दर में ज्ञानस्वरूपी भगवान, ऐसा जहाँ भान हुआ, वह इस ओर में पुण्य-पाप के भाव से विरक्त हुआ। इसका नाम वैराग्य है। वे एक-दूसरे को सहायता करते हैं। ज्ञान हो, वहाँ वैराग्य होता है; वैराग्य हो, वहाँ ज्ञान होता है। यह स्पष्टीकरण करते हैं। है?

ज्ञान रहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं है... आहा..! आत्मा अन्दर सम्यक्ज्ञान चैतन्यमूर्ति के ज्ञान बिना वैराग्य नहीं है। है? **ज्ञान रहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं**

है... वास्तव में अर्थात् सच्चा वैराग्य नहीं है। आहाहा! तब (क्या है ?) **रुंधा हुआ कषाय है।** रुंधी हुई कषाय है – दबी हुई है। आहाहा! जैसे पानी; अग्नि का निमित्त और पानी, ऐसे ऊफान आवे, ऊफान। परन्तु वह ऊफान पोला है। ऐसा बढ़ा, इसलिए वहाँ दूध बढ़ा, दूध गर्म हुआ (इसलिए बढ़ा) या पानी बढ़ा ऐसा गर्म, वह पानी बढ़ा, ऐसा ऊँचा हुआ, इसलिए पानी बढ़ा है, ऐसा नहीं है। वह तो पोला है। इसी प्रकार इस ज्ञानस्वरूप में ज्ञान के अन्तर भान बिना राग पोला है। वैराग्य पोला है। राग अर्थात् शुभराग अथवा वैराग्य, वह पोला है। आहाहा! रुंधा हुआ है। रुंधा हुआ कहा न ? पोला है। वास्तव में है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग।

परन्तु ज्ञान न होने से जीव, कषाय को पहिचान नहीं पाता। अन्तर के चैतन्य स्वरूप के ज्ञान बिना उस कषाय के अंश को पहचान नहीं सकता। वह राग का अंश है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का राग का अंश है। इस प्रकार वह ज्ञान बिना कषाय को पहचान नहीं सकता। उस कषाय को ही अपना स्वरूप मानकर वहाँ अटक गया है। आहाहा! समझ में आया ? **ज्ञान न होने से जीव, कषाय को पहिचान नहीं पाता।** आहाहा! सार... सार... है।

ज्ञान स्वयं मार्ग को जानता है,... आहाहा! अन्तर में राग से भिन्न पड़ने पर जो आत्मा का ज्ञान (हुआ), वह ज्ञान स्वयं मार्ग को पहिचानता है। वह श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र को पहिचानता है। आहाहा! **ज्ञान स्वयं मार्ग को जानता है,...** यह उसका लक्षण कहा है **और वैराग्य है, वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता...** आहाहा! वैराग्य कहीं अटकने नहीं देता। कोई दया, दान के राग में अटकने नहीं देता। आहाहा! उसका नाम वैराग्य है। ऐसे वैराग्य... वैराग्य.. (करे), वह वैराग्य नहीं है। दोनों बातें ली हैं। ज्ञान मार्ग को पहचानता है। ज्ञान स्वयं मार्ग को पहचानता है। स्वयं-खुद पहचानता है। किसी की मदद के बिना (पहचानता है)। **और वैराग्य है, वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता...** आहाहा! पूरी दुनिया से अन्तर है।

(समयसार) ९६ गाथा में कहा है न ? मन का विषय परमेष्ठी, पंच परमेष्ठी भी मन का विषय है। ज्ञान यथार्थ हो, वह मन के विषय में भी... क्या कहा ? रुकता नहीं। रुकता नहीं। क्या कहा ? आहाहा! ज्ञानस्वरूपी प्रभु आत्मा, ऐसा भान होने पर पंच परमेष्ठी जो मन का विषय है, वह मन का विषय है। आहाहा! उसमें वह ज्ञान रुकता नहीं है। उसमें वह

ज्ञान अटकता नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। पंच परमेष्ठी में भी ज्ञान रुकता नहीं है क्योंकि वह राग है और मन का विषय है। आहाहा!

वैराग्य है, वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता... पंच परमेष्ठी में भी फँसने नहीं देता। आहाहा! वैराग्य है... है? **वह ज्ञान को...** अर्थात् आत्मज्ञान को कहीं रुके ऐसा नहीं है। वह ज्ञान तो वैराग्य है, इसलिए पृथक् रहता है। आहाहा!

मुमुक्षु :- ज्ञान को वैराग्य की आवश्यकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- होता है, आवश्यकता नहीं, होता है। जहाँ ज्ञान है, वहाँ वैराग्य होता है। ज्ञान रहित वैराग्य, वह रुंधा हुआ कषाय है। यह बात आ गयी है। आहाहा! रुंधा हुआ – दबा हुआ कषाय है। आहाहा! ज्ञान और वैराग्य दोनों साथ ही होते हैं। आहाहा! यहाँ तक लिया है, शील अधिकार–अष्टपाहुड़। शील अधिकार। नरक में भी शील है। नरक में भी शील है। शील अर्थात् मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का अभाव, ऐसा शील स्वभाव वहाँ भी है। आहाहा! और आत्मा के भान बिना चाहे जितना राग घटावे और बाह्य त्याग करे, तथापि उसे शील नहीं कहा जाता। वह तो स्वरूप से भ्रष्ट है। आहाहा! है न पाहुड़ में? वहाँ तक है पाहुड़ में तो (कि) उस शील के प्रताप से तीर्थंकर होता है। नारकी में भी शील होता है। आहाहा! अर्थात् स्वभाव की दृष्टि और राग का वैराग्य, यह भाव नारकी में भी है।

श्रेणिक राजा अभी नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में। तथापि ये ज्ञान और वैराग्य दोनों हैं। आहाहा! भले चौथे गुणस्थान में हैं, तथापि वह शील है। अर्थात्? अनन्तानुबन्धी का अभाव, वही शील है और उसके प्रताप से आगे जाकर वे तो तीर्थंकर होनेवाले हैं। यह तो दृष्टान्त है। परन्तु वहाँ सिद्धान्त है, अष्टपाहुड़ में। शीलपाहुड़ में सिद्धान्त है कि नरक में भी शील है। शीलपाहुड़ में (यह बात है) और उस शील के प्रताप से बाहर में तीर्थंकर होते हैं। आहाहा! और यहाँ नग्न दिगम्बर मुनि (हो), हजारों रानियों का त्याग (करे), पंच महाव्रत और शुक्ललेश्या (हो); तथापि वह अनन्त संसार में नरक और निगोद में भटकेगा। आहाहा! क्योंकि मिथ्यात्व, वही संसार है। समकित, वही मोक्ष है। कलश आता है न? कलश (१९८)। **स हि ऐव मुक्तः**। आहाहा! जिस पर वजन चाहिए, उस पर वजन नहीं और बाहर में वजन देकर अनन्त काल से भटक मरता है। दुःखी है। चौरासी के अवतार में कहीं सुख नहीं है। सुख आत्मा में है।

यहाँ यह कहते हैं, **वैराग्य है, वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता...** आहाहा! उसे वैराग्य कहते हैं। तीर्थंकर की भक्ति में भी वैराग्य फँसने नहीं देता। आहाहा! इन्द्र, शकेन्द्र एकावतारी हैं। एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। उनकी स्त्री (इन्द्राणी) भी एक भव में मोक्ष जानेवाली है। इस नन्दीश्वर द्वीप में शाश्वत् ५२ जिनालय हैं। उनमें १०८ जिन प्रतिमा रत्न की है। वे अष्टाह्निका में वहाँ जाते हैं। घुंघरू बाँधकर नाचते हैं और भक्ति करते हैं। आहाहा! तथापि उस क्रिया से भिन्न हैं और उस ओर का जो राग, उससे भी भिन्न हैं। आहाहा! ऐसी बात है। यह भिन्न करना नहीं पड़ता, भिन्न है ही। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

वैराग्य है, वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता... आहाहा! राग के कण में भी अटकता नहीं। आहाहा! उसे भी अपने से पृथक् (रखता है)। वैराग्य है, वह ज्ञान के कारण उसे जानता है। कहीं अटकता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग। **किन्तु सबसे निस्पृह...** सबसे निस्पृह में पंच परमेष्ठी भी आ गये। आहाहा! पंच परमेष्ठी से भी निस्पृह। वैराग्य। स्वभाव के सन्मुख का ज्ञान और पर सन्मुख के राग के अभाव का वैराग्य। आहाहा! ऐसी बात है। धर्म का ऐसा स्वरूप है। साधारण रीति से धर्म मानते हैं, वह धर्म है नहीं और इसे एकान्त कहते हैं।

मुमुक्षु :- ...वैराग्य का अर्थ त्याग लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री :- समझ में नहीं आता।

मुमुक्षु :- वैराग्य न आवे तो चारित्र लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री :- चारित्र नहीं, यहाँ राग से रहित की बात चलती है। राग से रहित दशा, वह वैराग्य। चारित्र तो .... यह तो .... परन्तु सुनते कहाँ हैं? पहले नरक में कहाँ चारित्र है? परन्तु शील है। सम्यग्दर्शन और अनन्तानुबन्धी का अभाव है। वह शील वहाँ पहले नरक में है। चौथे गुणस्थान में (है)। आहाहा! चारित्र की दशा तो आगे और उत्कृष्ट, बहुत उत्कृष्ट है।

निस्पृह एवं स्व की मौज में ज्ञान को टिका रखता है। आहाहा! वैराग्य जो समकिती का, वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता परन्तु सबसे निस्पृह... आहाहा! कहीं अपने को अपनापन दूसरे में मानना, यह नहीं रहता। भगवान की भक्ति का राग, वह भी

मेरा है, मुझमें है, ऐसा वह नहीं मानता। आहाहा! ऐसी बात है। निस्पृह **सबसे निस्पृह...** इस ओर। इस ओर से निस्पृह—पर की ओर से। **एवं स्व की मौज में...** आहाहा! आत्मा के आनन्द की मौज में। पर की ओर से निस्पृह। आहाहा! ऐसी बात है। कहीं फँसने नहीं देता। **सबसे निस्पृह एवं स्व की मौज में ज्ञान को टिका रखता है।** आहाहा!

ज्ञान सहित जीवन... चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा... ज्ञान अर्थात् आत्मा। उस ज्ञानसहित—आत्मा के सहित का जीवन **नियम से वैराग्यमय ही होता है।** आहाहा! पर की ओर में कहीं स्पृहा और पर की ओर में कहीं रुकना और आत्मा के अतिरिक्त परपदार्थ में कहीं भी लाभ का कारण मानना, वह वैराग्य और ज्ञान में नहीं रहता। आहाहा! **ज्ञान सहित जीवन नियम से वैराग्यमय ही होता है।** आहाहा! सम्यग्ज्ञानसहित का जीवन, आत्मा के सम्यग्ज्ञानसहित का जीवन वैराग्यमय ही होता है। आहाहा! वैराग्यमय 'ही' होता है। निश्चय से... आहाहा! नारियल में जैसे गोला, पूरी काचली, काचली पूरी रहने पर भी पृथक् पड़ा गोला, वह पृथक् ही रहता है। आहाहा! चारित्र नहीं होता। अर्थात् कि काचली टूटती नहीं। काचली। काचली कहते हैं न ? नरेटी। टूटी नहीं, तथापि पृथक् रहता है। इसी प्रकार चारित्र नहीं होता, छठे गुणस्थान का चारित्र। आहाहा! तथापि चौथे गुणस्थान की दशा में वह काचली से भिन्न गोला (हो), वैसे राग से भिन्न (चैतन्य) गोला रहता है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात लगती है। और .... पड़े, इसलिए इसे एकान्त कहकर उड़ा दे, बापू! हाँ तो कर। मार्ग यह है। आहाहा! मार्ग यह ही है; इसके अलावा कोई मार्ग कहता हो, वह मार्ग है नहीं। आहाहा! यह चौथा बोल हुआ।

अहो! इस अशरण संसार में जन्म के साथ मरण लगा हुआ है। आत्मा की सिद्धि न सधे, तब तक जन्म-मरण का चक्र चलता ही रहेगा। ऐसे अशरण संसार में देव-गुरु-धर्म का ही शरण है। पूज्य गुरुदेव के बताये हुए चैतन्यशरण को लक्षगत करके उसके दृढ़ संस्कार आत्मा में जम जायें — यही जीवन में करने योग्य है॥ ५॥

पाँचवाँ। **अहो! इस अशरण संसार में जन्म के साथ मरण लगा हुआ है।** अरे..! अशरण संसार। कोई पर्याय, रागादि शरण है नहीं। आहाहा! शरण प्रभु यह आत्मा अन्दर है। अरहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहू शरणं, केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं - यह भी व्यवहार

है। आहाहा! यद्यपि केवली पण्णत्तो धम्मो, यह तो वीतरागता है। परन्तु उस वीतरागता का आश्रय वीतरागी द्रव्य है। इसलिए शरण द्रव्य की है, पर्याय की भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? **अहो! इस अशरण संसार में...** कहीं शरण नहीं है। **जन्म के साथ मरण लगा हुआ है।** जन्मा तो देह छूटना ही है। जन्मते ही देह छूट जाता है; बहुतों को जन्मने के बाद आया, वहाँ देह छूट जाता है क्योंकि दोनों भिन्न चीजें है। **जन्म के साथ मरण लगा हुआ है।**

आत्मा की सिद्धि न सधे,... आहाहा! आत्मा की सिद्धि न सधे – शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान की सिद्धि जब तक सिद्ध न हो, **तब तक जन्म-मरण का चक्र चलता ही रहेगा।** आहाहा! अनन्त भव सिर पर है। जब तक मिथ्यात्व है, वहाँ तक अनन्त भव का बोझा सिर पर है। आहाहा! क्योंकि मिथ्यात्व, वह स्वयं संसार है। और संसार, वही चैतन्य के ऊपर बड़ा बोझा है। आहाहा! बाकी बाह्य दूसरी चीज़ को तो स्पर्श भी नहीं करता, नहीं दबाता। आहाहा! **आत्मा की सिद्धि न सधे, तब तक जन्म-मरण का चक्र चलता ही रहेगा।**

ऐसे अशरण संसार में... बहिन ने जरा ... दी है। **देव-गुरु-धर्म का ही शरण है।** निमित्त से। निश्चय से तो आत्मा की शरण है। व्यवहार से सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चा धर्म... आहाहा! उनका शरण है। नाम दिया है मेरा। **पूज्य गुरुदेव के बताये हुए चैतन्यशरण को लक्षगत करके...** अन्दर स्वरूप चैतन्य है, उसे लक्ष्यगत करके। आहाहा! **उसके दृढ़ संस्कार आत्मा में जम जायें...** उसके दृढ़ संस्कार। मैं आत्मा ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... आहाहा! जिसका शरीर का नाम दिया है, अर्थात् वह नाम है नहीं। शरीर का नाम दिया है। शान्तिभाई नाम है? शरीर में है?... है कुछ? परन्तु फिर भी इतनी नाम की लगनी (कि) नींद में इसे कहे कि चन्दु! हं...! परन्तु कहाँ से आया? आहाहा! ऐसी लगन लगी कि जो नहीं है, उसे अपना मानकर स्वप्न में भी हकार करता है। आहाहा! जो चीज़ इसमें है नहीं, जो चीज़ इसकी है नहीं, (उसे अपनी मानी है)। आहाहा!

ऐसे अशरण संसार में देव-गुरु-धर्म का ही शरण है। ....उसके दृढ़ संस्कार आत्मा में जम जायें... आहाहा! आत्मा में दृढ़ संस्कार पड़ जाये, **यही जीवन में करने योग्य है।** वही जीवन में करने योग्य है। बाकी कुछ करनेयोग्य नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु :- ....

पूज्य गुरुदेवश्री :- चैतन्य का लक्ष्य करके।

मुमुक्षु :- ....

पूज्य गुरुदेवश्री :- सन्मुखता... शरण बाहर नहीं है। देव-गुरु-धर्म की शरण निमित्त है। यह बात की है। दूसरी कोई शरण नहीं। परन्तु यह शरण है। निमित्त में भी अन्दर आत्मा का लक्ष्य करना चाहिए। **चैतन्यशरण को लक्षगत करके...** ऐसा कहा है न ? चैतन्य की शरण को लक्ष्यगत करके। शरण तो यह है।

मुमुक्षु :- स्वानुभूति नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- स्वानुभूति कहो या .... आहाहा ! यह तो अभी स्वानुभूति से पहले लक्ष्यगत करने की बात है। स्वानुभूति से पहले लक्ष्यगत करने की बात है। आहाहा !

चैतन्यशरण को लक्षगत करके... निमित्तरूप भगवान की शरण... इसे लक्ष्यगत करके। आहाहा ! समझ में आया ? देव-गुरु-धर्म वे तो परद्रव्य हैं। वह तो मन का विषय है। ९६ गाथा। वह मन का विषय है, आत्मा का विषय नहीं। आहाहा ! चैतन्य का... आहाहा ! शरण को लक्ष्यगत करके। आहाहा ! अन्दर चैतन्यस्वरूप जानने-देखनेवाला ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे लक्ष्यगत करके **उसके दृढ़ संस्कार आत्मा में जम जायें...** देखा। दृढ़ संस्कार (अर्थात्) चैतन्य के लक्ष्य के दृढ़ संस्कार। देव-गुरु-धर्म... इनसे संस्कार पड़ जाए वे .... आहाहा !

मुमुक्षु :- .....

पूज्य गुरुदेवश्री :- होता ही है। .... (समयसार) ३८ गाथा में कहा न ? अनादि का अप्रतिबुद्ध, अनादि का मोहरूप अज्ञान में रहा हुआ। है दो शब्द मोह और अज्ञान (भाव एक ही है)। ...अनादि के मोह में राग मुझमें रहा हुआ, ऐसा जो अप्रतिबुद्ध। आहाहा ! उसे गुरु समझाते हैं। उसे गुरु ने समझाया। आहाहा ! समझकर लक्ष्य में लिया। लक्ष्य में लेकर संस्कार डाले। वह कहते हैं। जो संस्कार भविष्य में प्राप्त होकर ही रहेंगे, वहाँ तो भविष्य की बात ली ही नहीं। वहाँ तो प्राप्त करके कोल-करार करता है कि यह

जो आत्मा का ज्ञान मुझे हुआ, वह अब मिथ्यात्व के अंश का अंकुर उत्पन्न हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! अज्ञान के अंश का अंकुर उत्पन्न हो, ऐसा है नहीं। पंचम काल में? पंचम काल के साधु पंचम काल के श्रोता को कहते हैं। कोई कहे कि समयसार तो मुनि के लिये है (ऐसा लोग कहते हैं)। यहाँ तो यह कहते हैं। पंचम काल के श्रावक-गृहस्थ, अप्रतिबुद्ध गृहस्थ... आहाहा! समकिती, मुनि तो नहीं, समकिती नहीं, अप्रतिबुद्ध कहते हैं, उसे गुरु बारम्बार समझाते हैं। आता है न? आहाहा! ३८ गाथा में शुरुआत में आता है। वह स्वयं बारम्बार अन्दर मनन करता है। मेरा स्वरूप एकदम दोष के अंश के अंकुर रहित है। मेरा स्वरूप निर्दोष है। मेरा स्व-रूप है.... मेरी जाति का स्वरूप ही भगवान है। आहाहा! कैसे जँचे? इसलिए....

चैतन्यशरण को लक्षगत करके... अकेले देव-गुरु धर्म की शरण को लक्ष्यगत करके नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :- गुरुदेव ने बताये हुए...

पूज्य गुरुदेवश्री :- बताये हुए परन्तु उसमें स्वयं में है, उसे जाने हुए। अपना स्वरूप चैतन्यस्वरूप सच्चिदानन्द है। आहाहा! वे डॉक्टर आये थे न? बहुत समझ सके नहीं, गुरुगम बिना! किस नय की कौन सी अपेक्षा है, यह समझ सके नहीं। .... गुरुगम न मिले। उसे समझना कठिन है।

यहाँ यह कहते हैं। **चैतन्यशरण को लक्षगत करके...** उसका अर्थ है। चैतन्यस्वरूप आत्मा को लक्ष्यगत करके **उसके दृढ़ संस्कार आत्मा में जम जायें—यही जीवन में करने योग्य है।** आहाहा! जीवन में यह करनेयोग्य है। भक्ति करनेयोग्य है और पूजा करना चाहिए, दया करना चाहिए, व्रत पालने योग्य है—ऐसा नहीं कहा। इस जीवन में करनेयोग्य है। यह पाँचवाँ बोल (पूरा हुआ)।

मुमुक्षु :- .....

पूज्य गुरुदेवश्री :- संस्कार आते हैं। पहले यह क्या है, यह ख्याल आये बिना अन्दर जाएगा किस प्रकार? यह चीज़ क्या है? सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ आत्मा और दूसरों में कहा हुआ आत्मा, दोनों में अन्तर कैसे है, इतना लक्ष्य किये बिना अन्दर में जाएगा किस प्रकार? समझ में आया? पश्चात..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)